करुणा रस

[मध्ययुगीन हिन्दी-रामकाव्य के परिवेश में]

आगरा विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध

लेखक

डा० ब्रजबासीलाल श्रीवास्तव एम० ए०, पी-एच० डी०

हिन्दी-विभाग

राजकीय हमीदिया कालेज, भोपाल (म० प्र०)

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य संसार

नई सड़क, दिल्ली—६

प्रथमावृत्ति] १९६१ [मूल्य १२॥)

प्रथम संस्करण
जनवरी, १९६१

मूल्य
१२-५० (साढ़े बारह रुपये)

प्रकाशक
रामकृष्ण शर्मा बी० ए०
हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली—६

मुद्रक
हरिहर प्रेस
नावड़ी बाजार, दिल्ली।

जिनकी अपार करुणा का सतत चिन्तन मेरी साधना बन जाय,

उन्हीं परम श्रद्धेय पूज्यपाद साक्षात् परब्रह्म श्री गुरुदेव

की

सेवा में

यह लघु प्रयास

सादर

समर्पित है !

प्राक्कथन

भारतीय काव्य-शास्त्र में रस का विशेष महत्त्व है। उसे काव्य की आत्मा का स्थान मिला है। रसों में शृंगार को रसराज माना है, किन्तु स्थायीभाव की अनुभूति की व्यापकता और तीव्रता में यदि कोई रस खड़ा हो सकता है तो वह करुणरस है। वह कविता का आदि स्रोत है। क्रौंच-वध का हृदयगत् शोक महर्षि वाल्मीकि की वाणी में श्लोक-रूप से प्रस्फुटित हुआ। कविवर पंत ने इसी बात को स्वीकार करते हुए कहा है—

"वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान।
उमड़कर आँखों से चुपचाप,
बही होगी कविता अनजान॥"

कविवर भवभूति ने तो एक ही करुणरस को रस माना है "एको रसः करुण-एव" और सब रसों को उसके आवर्त, बुद्बुद् और तरंग का रूप दिया है। करुणरस को इतना महत्त्व मिलना अकारण नहीं है। रसानुभूति का मर्म व्यापक सहानुभूति और हृदय की आर्द्रता में है। जितनी सहानुभूति और आर्द्रता करुणरस में है उतनी और किसी में नहीं है। शोक में जो भावों का परिष्कार होता है वह और किसी स्थायी-भाव में नहीं है।

डा० ब्रजबासीलाल ने अपने शोध-प्रबन्ध का विषय करुणरस लेकर बड़ी साहित्य-मर्मज्ञता और मनोवैज्ञानिक सूझबूझ का परिचय दिया है। इसके सहारे रस का असली स्वरूप प्रकट होता है। शोक में भी रसरूप आनन्द का किस प्रकार आविर्भाव हो जाता है इस समस्या के विवेचन में यूनानी त्रासदी (Tragedy) का भी महत्त्व प्रकाश में आ जाता है तथा रस और भाव का अन्तर भी स्पष्ट हो जाता है। रस भाव नहीं है, वरन् भाव का आस्वाद है। रस भाव का आस्वाद होने के कारण अपनी सामग्री के सम्बन्ध में मनोविज्ञान का विषय बन जाता है। डाक्टर साहब ने करुणरस के स्थायीभाव का मनोवैज्ञानिक और शरीर क्रिया-विज्ञान सम्बन्धी विवेचन बड़े मार्मिक ढंग से किया है। यद्यपि आजकल के पाश्चात्य मनोविज्ञान में विभिन्न मत प्रचलित हैं तथापि उनमें जो प्रारम्भिक सिद्धान्त हैं वे प्रायः एक से हैं। किसी एक आचार्य का मत देने से भी पश्चिमी विचार-धारा का दिशा-निर्देश हो जाता है। उस

दिशा-निर्देश से हमारे ज्ञान का क्षितिज विस्तृत होता है और हमारे शास्त्रीय ज्ञान की पूर्ति हो जाती है। जहाँ तक शास्त्रीय ज्ञान का प्रश्न है प्राचीन ग्रन्थकारों दण्डी, विश्वनाथ, वाग्भट्ट आदि के ग्रन्थों में करुणरस का विवेचन किया गया है जो सर्वथा स्तुत्य है।

करुणरस के सिद्धान्तों को उदाहरणों से पुष्ट करने के लिए डाक्टर साहब ने मध्यकाल के राम-साहित्य को ठीक ही चुना है। उत्तररामचरित में भगवान रामचन्द्र ने बड़े मर्मभेदी शब्दों में कहा है—दुःख का अनुभव करने के लिए ही राम को चेतना मिली है—"दुःख संवेदनायैव रामे चैतन्यमाहितम्"। भगवान राम का पूर्व और उत्तर जीवन करुणाप्रधान है। अभिषेक की तैयारी होते-होते वनवास मिल गया लेकिन वे सच्चे धीरवीरों की भाँति अविचलित रहे—

"प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा···।"

करुणरस का एक और महत्त्व यह है कि उसमें धैर्य की परीक्षा हो जाती है और कष्ट-सहिष्णुता में मानव आत्मा की ऊँचाई और गहराई का पता चल जाता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम का उत्तरकालीन जीवन भी बड़ा करुणामय रहा। भवभूति ने उस पर सान चढ़ा दी थी। तभी तो उसके सम्बन्ध में कहा गया है कि "अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति बज्रस्य हृदयम्"। करुणरस के सम्बन्ध में रामकाव्य का बड़ा सुन्दर पर्यवेक्षण हुआ है उसमें संस्कृत अपभ्रंश और हिन्दी के मुख्य-मुख्य ग्रन्थों का सहारा लिया गया है। इस पर्यवेक्षण के लिए डा० ब्रजबासीलाल श्रीवास्तव और उनके निर्देशक डाक्टर रामकुमार वर्मा दोनों ही बधाई के पात्र हैं। आशा है यह ग्रंथ हिन्दी के बढ़ते हुए आलोचना-साहित्य में अपना उचित स्थान प्राप्त करेगा।

इ १८६/४ बानगंगा,
भोपाल
२६—१—६१

—गुलाबराय

भूमिका

जनजाग्रति के लिए काव्य का प्रयोग विश्वव्यापी प्रवृत्ति रही है। किन्तु प्राचीन काल ही में इस प्रकार के प्रयोग हुए और वे भी वीररस तक सीमित रहे। तत्कालीन युद्ध की सीमा तथा परिस्थितियों में वीररस काव्य वीरों के उत्साह-वर्द्धन का साधन था और इस प्रकार वीररस की रचना समय की आवश्यकता के रूप में प्रकट हुई। अन्य रसों के संबंध में इस प्रकार के प्रयोगों के अवसर नहीं आए तथा उनका प्रयोग नहीं हो सका। किन्तु यह निश्चित है कि यदि अन्य रसों के भी इस प्रकार के प्रयोग उनके उपयुक्त क्षेत्रों में किए जाते तो सफलता अवश्य मिलती।

जहाँ तक चरित्रनिर्माण तथा सदाचार की प्राप्ति का प्रश्न है करुणरस के विशेष अध्ययन से इस कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती है। इस दिशा में यद्यपि मुझे अधिक खोज करने का अवसर नहीं मिल सका तथापि अपने एक दो छात्रों पर किए गए प्रयोगों में मुझे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। किसी विशेष उपचार के स्थान में करुणरस-काव्य का पारायण, करुणरस की कविताओं की रचना तथा करुणरस के आलंबनों का पर्यवेक्षण एवं उनके संबंध में अपने भावों की अभिव्यक्ति आदि मेरे प्रयोग की स्थूल रूपरेखा थी जिसके निर्धारित समय के प्रयोग से व्यक्तित्व की विषमता, अनिच्छित अपशब्दों की बरबस स्मृति, स्वार्थपरता आदि मानसिक विकारों का आंशिक शमन संभव हो सका। मैं समझता हूँ हेगल के निम्नलिखित विचार अक्षरशः सत्य हैं—

"मानव शोक में देवताओं की सृष्टि होती है तथा शोक अपने अधिक ठोस रूप में मानव चरित्र है......।"

जिस प्रकार युद्ध के समय जनजाग्रति तथा देश की रक्षा के लिए वीररस काव्य के प्रयोग से सफलता मिली उसी प्रकार मेरा विश्वास है कि शान्ति के समय में करुणरस-काव्य का प्रयोग चरित्रनिर्माण, समाजोत्थान तथा शान्ति को स्थायी बनाए रखने के लिए अमोघ सिद्ध होगा।

मध्ययुगीन हिन्दी साहित्यगत रामकथा के कवियों में निम्नलिखित तीन मुख्य

कवि हैं जिनकी कृतियों से अपेक्षित सामग्री लेकर प्रस्तुत पुस्तक में विषय का विवेचन किया गया है—

सूर की रामकथा— सूरसागर नवम स्कंध ।
तुलसी की रामकथा— रामचतिमानस ।
केशव की रामकथा— रामचन्द्रिका ।

मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्यगत रामकथा के विवेचन के अतिरिक्त रामकथा की पृष्ठभूमि में वाल्मीकि रामायण तथा भवभूति के उत्तररामचरित का पृथक् से अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है जो उपर्युक्त विवेचन को करुणरस की प्रारंभिक एवं मूल अभिव्यक्तियों के संदर्भ में समझने में महत्वपूर्ण योग देगा ! लोक-साहित्यगत करुणरस की अभिव्यक्ति का विवेचन एक पृथक् प्रकरण के अन्तर्गत करके लोकमानसगत करुण रस की अनुभूतियों का दिग्दर्शन कराया गया है । हिन्दी रामकथा में प्रकट जीवन-दर्शन का विवेचन एक पृथक् प्रकरण में करके अनुभूति के साथ मान्यताओं पर भी विचार किया गया है । इस लघुप्रयास में इस प्रकार मध्ययुगीन हिन्दी साहित्यगत रामकथा में प्राप्त करुणरस की सामग्री तथा प्रवृत्तियों का समुचित अध्ययन किया गया है तथा साथ में रामकथा का मार्मिक पक्ष भी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया गया है ।

विषय की दृष्टि से पुस्तक दो खण्डों में विभक्त है—

खण्ड 'क'—करुण रस का मनोविज्ञानाश्रित शास्त्रीय विवेचन ।

खण्ड 'ख'—मध्ययुगीन हिन्दी साहित्यगत रामकथा में करुणरस की अभिव्यक्ति ।

इस प्रकार रस के शास्त्रीय विवेचन को प्रयोग के रूप में समझने के लिए करुणरस की अभिव्यक्ति का खण्ड विशेष उपयोगी होगा, ऐसा मेरा विश्वास है । साथ ही इस रूप में अध्ययन का एक विशेष दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया गया है जो करुण रस के पूर्ण विवेचन को उसके सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य में उपस्थित कर देता है ।

इस पुस्तक के प्रस्तुत करने में मुझे निम्नलिखित महानुभावों से विशेष सहायता मिली है जिसके लिए मैं उनका अति आभारी हूँ तथा उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ ।

श्रद्धेय डा० रामकुमार वर्मा अध्यक्ष हिन्दी-विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग से इस प्रयास के लिए प्रेरणा प्राप्त हुई है और उन्होंने इस दिशा में मेरा पथ-प्रदर्शन किया है । उनके प्रति कृतज्ञतापन मात्र से संतोष नहीं हो सकता । उनके निर्देशन में साहित्य की कुछ सेवा कर सका तो उनकी प्रसन्नता एवं प्रशंसा का भाजन होकर आत्म-संतोष प्राप्त कर सकूँगा । उनके चरणों में नतमस्तक होने का सौभाग्य मिलता रहे, मेरी तो यही लालसा है ।

आदरणीय आचार्य श्री विश्वेश्वर जी गुरुकुल वृन्दावन से संस्कृत के शास्त्रीय

ग्रन्थों का विवादास्पद अंश मैंने समझा है तथा समय-समय पर उनसे अमूल्य सुझाव प्राप्त किए हैं।

श्री हाकिमसिंह शर्मा बी० ए०, एल० टी० इंचार्ज जे० टी० सी० विभाग एस. आर. के. कॉलेज फीरोजाबाद, श्री जीवनलाल शास्त्री अध्यापक रत्नमोती संस्कृत पाठशाला गोकुल तथा मेरे छात्र श्री द्वारिकाप्रसाद अग्रवाल तथा श्री जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव एम० ए० (अन्त्य) गोकुल से अनुक्रमणिका प्रस्तुत करने, उद्धरणों आदि का मिलान करने आदि में विशेष सहायता प्राप्त हुई है।

मैं श्रद्धेय डा० गुलाबराय जी का भी अति आभारी हूँ। उन्होंने अनुग्रहपूर्वक इस पुस्तक की भूमिका लिखकर मुझे प्रोत्साहित किया है। श्रद्धेय बाबू जी के परम स्नेह और सौजन्य के लिए धन्यवाद देना मेरी धृष्टता होगी। मैं उनके आशीर्वाद का पात्र बना रहूँ, यही मेरी विनम्र प्रार्थना है।

इस पुस्तक के प्रकाशन में श्री रामकृष्ण शर्मा व्यवस्थापक 'हिन्दी साहित्य संसार' के सौजन्य, सौहार्द्र एवं स्नेह का परिचय प्राप्त हुआ है। उनको धन्यवाद देना अपने को ही धन्यवाद देना होगा क्योंकि पुस्तक के लेखक और प्रकाशक एक दूसरे से अभिन्न होते हैं।

अन्त में, मैं उन समस्त लेखकों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिनकी कृतियों से इस कार्य में सहायता ली गई है तथा उद्धरण आदि के रूप में जिनकी सामग्री का उपयोग किया गया है। साहित्य के क्षेत्र में मेरा यह प्रथम प्रयास कहाँ तक सफल है, इसका निर्णय तो सुधीर पाठक ही कर सकेंगे।

२६ जन० १९६१ —व्रजबासीलाल

विषयानुक्रमणिका

खण्ड—क

खण्ड—ख

खण्ड—क

विषय-प्रवेश

करुणरस की मनोविज्ञानाश्रित शास्त्रीय समीक्षा

विषय-प्रवेश

मानव-जीवन के द्वन्द्व में मनोभावों की सृष्टि

मानव-जीवन—मानव-जीवन की सार्थकता तथा मानव-जीवन के उद्देश्य से अवगत होने की मानव-लालसा चिरकाल से एक समस्या बनी हुई है। मनोविज्ञान के आचार्यों ने मानस-शास्त्र के सूक्ष्मतर तत्वों पर प्रकाश डाला, आदर्श मानस की कल्पना की तथा मानस परिष्कार के लिए अपेक्षित सिद्धान्तों की उद्भावना की। अतएव मनोविज्ञान के इन आचार्यों के समक्ष इस समस्या का रखा जाना स्वाभाविक था। इन तत्वान्वेषी आचार्यों ने अपनी अनवरत खोज के पश्चात् कहा—

"मानव-जीवन की सार्थकता किसमें है—यह प्रश्न अनेक बार पूछा जा चुका है किन्तु इसका संतोषजनक उत्तर कभी नहीं दिया जा सका। केवल धर्म ही इस प्रश्न का उत्तर दे सकता है। घोर अन्धकार के बीच जीवन की जो कुछ भी ज्योति दिखलाई देती है वह केवल आध्यात्मिक एवं धार्मिक जीवन का प्रकाश है।"[1]

मनोविज्ञान के दूसरे आचार्य जुंग ने बार-बार स्वीकार किया कि अपने अथवा साधारणतया जीवन के तात्पर्य के संबंध में उनके पास कोई उत्तर नहीं है। उन्हें विश्वास है कि प्राचीन प्राच्य ज्ञान के पास इसका उत्तर है तथा वह इसका उत्तर दे सकता है।[2]

---

1. "The question, what is the purpose of hnman life, has been asked times without number, it never recieved a satisfactory answer··· ··only religion is able to answer the question ···The only gleam of life which he sees in the deep gloom is again, a gleam of the metapysical and religious light." Ancient Psyco-synthesis versus Modern Psycoanalysis".—Dr. Bhagwan Das

2. "Jung confesses repeatedly that he himself has no answer to give to that most frequent of question, what is the meaning of my life or life in general ?..... But he feels that ancient eastern wisdom has and can give the answer." Complete Essays of Schopenhauer translated by T. Baily Saunders M. A. Suffering of the World V–5.

आधुनिक युग की वैज्ञानिक अभिरुचि ने संसार की प्रत्येक समस्या का हल विज्ञान के द्वारा खोज निकालने का प्रयास किया किन्तु मानव-जीवन की समस्या इस खोज के लिए अपवाद सिद्ध हुई यह स्पष्ट है। इस समस्या को धार्मिक क्षेत्र की वस्तु कहकर विज्ञान मौन हो गया।

साधना क्षेत्र की विभिन्नता के फलस्वरूप धार्मिक विधि-विधान में विभिन्न धर्मों की उद्भावना हुई। यही नहीं, धर्मानुयायी अपनी अनन्यता में धर्मान्ध भी बन गए जिसके फलस्वरूप विश्वव्यापी धार्मिक युद्धों का श्रीगणेश हुआ। इस प्रकार धर्म के बाह्य क्षुब्ध वातावरण को देखकर धर्म से इस समस्या का हल प्राप्त करने की आशा में निराशा प्रतिगोचर होने लगी। इसीलिए संभवत: धर्म द्वारा दिए गए सरल एवं सुलझे हुए उत्तर से मानव को संतोष न हुआ।

मूलत: सभी धर्मों ने स्वीकार किया कि मानव जीवन का उद्देश्य ईश्वर प्राप्ति है। उपर्युक्त समस्या का यह निश्चित उत्तर है किन्तु इसकी सत्यता में मानव-विश्वास सदा सन्देहशील रहा। यही नहीं, कुछ लोगो ने तो ईश्वर की सत्ता को ही अस्वीकार कर दिया किन्तु इस समस्या का कोई दूसरा उत्तर न दिया जा सका।

ईश्वर-प्राप्ति के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन हुआ तथा अनवरत खोज के पश्चात् यह मान्य हुआ कि ईश्वर सत्-चित्-आनन्द स्वरूप है और मानव-जीवन केवल सत्चित् स्वरूप। अतएव मानव-जीवन का उद्देश्य आनन्द-प्राप्ति है। इस तथ्य से मनोवैज्ञानिक भी सहमत हुए। उनको मानव की स्वाभाविक जिज्ञासा के रूप में मानव-जीवन का उद्देश्य आनन्द-प्राप्ति प्रतिलक्षित हुआ।

आनन्द अन्त:करण का विषय है तथा सुख इन्द्रियों का। आनन्द एवं सुख को पर्याय समझने की भूल से आनन्द के स्थान में सुखवाद का जन्म हुआ तथा इन्द्रियजन्य सुखों के लिए ही जीवन की सार्थकता निर्धारित हो गई। किसी ने कहा "ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्" तो दूसरे ने आलस की अँगड़ाई में "सब के दाता राम" को पुकारा।

सुखवाद तृष्णा तथा असंतोष की आग में विचलित हो उठा। वास्तविकता का भान हुआ। सूक्ष्म निरीक्षण के फलस्वरूप दु:ख मूल सत्य के रूप में प्रकट हुआ।

महात्मा बुद्ध ने चार आर्य सत्यों की कल्पना की, दु:ख, दु:ख समुदाय (हेतु) दु:ख निरोध तथा दु:खनिरोध गामी मार्ग। इनको बुद्ध ने आर्य सत्य कहा। दु:ख सत्य की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा—

"जन्म भी दु:ख है, बुढ़ापा भी दु:ख है, मरण.......शोक रुदन मन की खिन्नता दु:ख है। अप्रिय से संयोग, प्रिय से वियोग भी दु:ख है। इच्छा करके जिसको नहीं पाता वह भी दु:ख है। संक्षेपत: पांचों उपादान स्कन्ध दु:ख हैं।"

कबीर को भी कोई शरीरी सुखी नहीं दिखलाई दिया। उन्होंने योगी, जंगम, तापस सभी को दु:खी देखा। आशा एवं तृष्णा सभी शरीरों में व्याप्त है जो दु:ख का मूल कारण है।

शापनहॉअर के विचारों का भाव भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है। उनके अनुसार क्षेम की प्रत्येक दशा, संतोष की प्रत्येक अनुभूति अपने रूप में निषेधात्मक है। कहने का तात्पर्य यह है कि यह पीड़ा से मुक्त है जो (पीड़ा) अस्तित्व का धनात्मक तत्व है। फलतः किसी जीवन की प्रसन्नता का माप उस जीवन के मोद एवं प्रसन्नता से नहीं हो सकता, प्रत्युत् उस परिमाण से जहाँ तक वह वेदना से मुक्त हो चुका है।[1]

संक्षेपतः कहा जा सकता है कि मूलानन्द की प्राप्ति इन्द्रियजन्य सुख से परे है। इन्द्रियजन्य सुख उस परमानुभूति में बाधक है। परिणाम में इन्द्रियजन्य सुख दुःख की भावना से त्राण पाना ही आनन्द है।

इद्रिय सुख का प्रबल आकर्षण तथा तज्जन्य दुःख के कारण विरक्ति मानव-जीवन की द्वन्द्वात्मक स्थिति को जन्म देती है। आकर्षण एवं विकर्षण के बीच मानव-मानस प्रगतिशील हो उठता है। मन चंचल तथा पर्मार्थी कहा गया है। मन की चंचलता ही मनोभावों को जन्म देती है।

मनोभावों के तीन रूप—मनोभाव तीन रूपों में प्रकट होते हैं— १—ज्ञानात्मक, २—भावात्मक और ३—क्रियात्मक।

ज्ञानात्मक मनोभाव किसी वस्तु का परिज्ञान कराते हैं। भावात्मक उस वस्तु के ज्ञान के आधार पर रति या विरति उत्पन्न करते है तथा क्रियात्मक इस रति या विरति के अनुसार पात्र को (आकर्षण विकर्षण उत्पन्न कर) आगे बढ़ने या पीछे हटने के लिए उद्यत कर देते है। प्रत्येक कार्य इन तीनों के समूहालम्बनात्मक रूप में प्रकट होता है। इनका समूहालम्बनात्मक रूप एक दूसरे के लिए सहयोगी होता हो ऐसा समझना संगत नहीं है। प्रायः प्रत्येक कार्य में इनकी द्वन्द्वात्मक स्थिति ही प्रकट होती है। किसी कार्य के लिए ज्ञान बाध्य करता है तो भावना अनिच्छा प्रकट करती है तथा किसी कार्य में भावना की प्रबल गति पर ज्ञान आदर्श का अंकुश लगा देता है। इस प्रकार प्रत्येक कार्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूप में किसी अंश तक द्वन्द्वात्मक होता है।

मनोभावों में करुण भावना का विकास

करुण भावना की प्रारम्भिक अनुभूति नवजात शिशु की प्रथम अभिव्यक्ति में प्रकट होती है। डा० श्रीमती ब्रिजेज ने करुण मनोभावों के विकास का अध्ययन

1. ......that every state of welfare, every feeling of satisfaction is **negative** in its charcter; that is to say, it consists in freedom from pain which is the positive element of existence It follows, therefore, that happiness of any given life is to be measured, not only by its joys and pleasnres, but the extent to which it has been free from suffering-- from positive evil. "...Complete Essays of Schopenhauer translated by T. B. Saunders. V--5

किया है। उनके विचारों का भाव निम्नलिखित है—

"प्रथम विभिन्न विशेष मनोभाव संश्लिष्ट एवं मिश्रित भावात्मक उत्तेजना या विकलता से धीरे-धीरे प्रगति सहित निकलते हुए दिखलाई देते हैं। सबसे आदि (संभवतः जन्म समय या उसके शीघ्र बाद) करुणभावना उत्तेजना से पहिचानी जा सकती है।[1]

इस प्रकार मनोभावों का प्रारम्भिक रूप जो मानव शिशु में प्रतिलक्षित होता हैं उत्तेजना अथवा विकलता के रूप में प्रकट होता है। यह विकलता करुण भावना की द्योतक है। इसका विकास अन्यान्य मनोभावों को जन्म देता है। इस सम्बन्ध में डा० ब्रिजेज ने एक पूरा रेखाचित्र उपस्थित किया है जिसके अन्तर्गत इस मूल विकलता से करुण भावना तथा इसकी सहचरी अन्य आनन्दमूला भावनाओं का उदय दिखलाया गया है।[2]

करुण भावना के बाह्याभिव्यंजकों का विकास—करुणभावना के बाह्याभिव्यंजकों का अध्ययन करने से ज्ञात होगा कि शिशु की प्रथम बाह्याभिव्यंजना अश्रुरहित होती है। दो या तीन माह तक अश्रुमोचन प्रारम्भ नहीं होता। इन दिनों में उसकी "चीख पुकार तथा चिल्लाना" ही प्रतिलक्षित होता है। मुखाकृति में विषाद की रेखाएँ भी दृष्टिगोचर होती है किन्तु अश्रुमोचन के साथ "आँखें मीड़ना" प्रारम्भ में प्रकट नहीं होता। शिशु में यह प्रवृत्ति ६ से १० मास के बीच आती है।

---

1. —"First, the different specific emotions are seen to emerge gradually, with growth, out of diffuse, undifferentiated emotional excitement of agitation very early (perhaps at birth or soon thereafter) distress can be distinguished from excitement......"(she) Bridges; Genratic theory of emotion-- Emotion in Man & Animal 47, page 163

2. **Early Emotional Development,**
(Bridges)

Excitement (or agitation) —Birth

Distress Excitement

Delight —3 months

—6 months

Fear Disgust (Anger Distress--Excitemet) Delight

Fear Disgust Anger Distress Excitment Delight

Elation

Affection
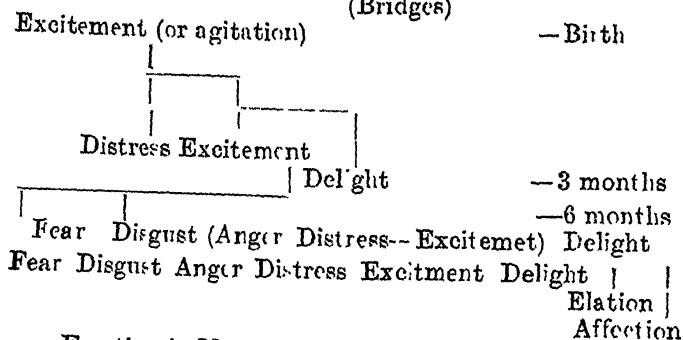
— —Emotion in Man & Animal. 1947 Page 163

करुणाभिव्यक्ति का दूसरा रूप बालक के "सिसकने" में प्रकट होता है जिसके अन्तर्गत प्रबल अश्रुमोचन भी दिखलाई देता है। इस समय तक भी अश्रुमोचन के साथ विषादपूर्ण उद्‌गार की प्रवृत्ति प्रकट नहीं होती। यह प्रवृत्ति वयस्कों में अनुभव एवं सामाजिक दीक्षा के फलस्वरूप कालान्तर में प्रकट होती है। सहनशील व्यक्तियों में यही दशा उदासीनता के रूप में दिखलाई देती है जो समय-समय पर प्रलाप में बरबस फूट पड़ती है।

करुण भावना के प्रकाशन की रीति में अन्तर—करुण भावना के प्रकाशन की प्रारम्भिक दशा में प्रायः सम्पूर्ण शरीर क्रियाशील रहता है। "आँखें सिकुड़ जाती हैं, चेहरा चमकने सा लगता है, मुट्ठियाँ प्रायः बंध जाती हैं, बाँहें तन जाती हैं, पैर कड़े हो जाते है या उनका फेंकना प्रारम्भ हो जाता है, मुँह खुला हुआ तथा वर्गाकार बन जाता है तथा उसके कोने नीचे को खिचे रहते हैं।"[1]

इस प्रारम्भिक दशा के पश्चात वयस्कों की दशा का प्रकटीकरण होता हैं जो प्रायः समय के साथ परिवर्तनशील रहती है। भिन्न-भिन्न देशों एवं जातियों की रीतियों में भी अन्तर पाया जाता है। यही नहीं, एक ही देश अथवा एक ही जाति में प्राचीन तथा अर्वाचीन दशाओं में भी विकास-क्रम प्रतिलक्षित होता है। मध्य विक्टोरिया युग से आज रोने का ढंग परिवर्तित हो चुका है, यंग ने इस बात को स्वीकार किया है[2]। अपने यहाँ भी सिद्ध-साहित्य के अन्तर्गत शोक के समय 'हाथ उठाने" की एक दो प्रसंगों में चर्चा हुई है किन्तु इस प्रकार की कोई प्रवृत्ति धार्मिक काल में प्रतिलक्षित नहीं होती। धार्मिक काल में "छाती पीटने" का वर्णन हुआ है।

स्त्री और पुरुषों की प्रकाशन रीति में भी अन्तर पाया जाता है। पुरुष प्रायः सिर पीटते हैं तो स्त्रियाँ प्रायः छाती पीटती है। पुरुष अश्रुमोचन के समय आँखें मींड़ते तथा आँखे वस्त्रादि से पोंछते भी जाते हैं किन्तु स्त्रियाँ प्रायः इन क्रियाओं को नहीं करतीं। पुरुष शोक में इधर-उधर घूमता है तो स्त्रियाँ स्थान बदलना संभवतः उचित नहीं समझतीं।

---

1. "The cry of distress reco.nizable in the month-old baby, is irregular. There are short intakes of breath and long cries on expiration... The eyes are 'Screwed Up' tight, the face flushed, the fists often clenched, the arms tense, and legs still or kicking spasmodically, the mouth is open and square in shape or more usually kidney-shaped with the corners pulled down The pitch of the cry is high and somewhat disc rdeat and sounds something like—'ah-ah-eu ah-eu". Emotion in Man and Animal, 47 Page 165.
2. "In the mid-Victorian era and even later the Englishman at times would weep openly and conspicuously at Theatrical perfcrmances, sermon and other gatherings; this was accepted as soc ally correct. To day the styles in weeping have changed." P. T. Young: Emotion in Man and Animal '47, Page 184

जीवन की विवश एव असहाय परिस्थितियाँ—जीवन की विवश एवं असहाय परिस्थितियों का कटु अनुभव मनुष्य अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य की परिमिति में करता है। जब वह देखता है कि अपनी सम्पूर्ण शक्ति एवं सामर्थ्य को लगाकर भी वह इष्ट नाश अथवा अनिष्ट प्राप्ति के अन्तर्गत कोई व्यतिक्रम नहीं कर पाता है वह अपनी विवशता एवं असहायावस्था पर कातर हो उठता है। ऐसे अवसरों पर उसको भान होता है कि उसकी शक्ति कितनी परिमित है।

इन विवश एवं असहाय परिस्थितियों के अन्तर्गत प्रारम्भ में अमर्ष प्रकट होता है। प्राय: व्यक्ति दाँत पीसते तथा हाथ मलते रह जाते हैं। अमर्ष की विफलता आत्मग्लानि तथा मानसिक असह्य वेदना को जन्म देती है। प्राय: मनुष्य इसी कारण अपनी असहाय परिस्थितियों में मानसिक सतुलन खो बैठते हैं।

आज वर्षो एवं युगों की पिष्टपेषित एवं असंख्य बार अनुभूत अनुभूतियों के फलस्वरूप अपनी विवश एवं असहाय परिस्थितियों में मानव प्रारम्भिक मनोभाव अमर्ष, घृणा आदि के स्थान में परिष्कृत मनोभाव दु:ख, आत्मग्लानि, आदि का अनुभव करता है जिनके अन्तर्गत करुणानुभूति प्रमुख एवं प्रधानरूप से रहती है।

विवश एवं असहाय परिस्थितियों में दूसरों की सहानुभूति—इन विवश एवं असहाय परिस्थितियों में इसलिये समाज में सहानुभूति प्रकट करने की प्रथा है जिसके द्वारा संतप्त प्राणी दारुण अनुभूति के अन्तर्गत अपने नाड़ी-संस्थान को विश्रृंखल होने से बचा लेता है। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों के अनुसार समाज द्वारा प्रदर्शित सहानुभूति संतप्त प्राणी के लिए उसके महत्व की प्रदर्शिका बन जाती है। वह देखता है कि उसके हित में कितने व्यक्ति उपस्थित हुए हैं। इस प्रकार सहानुभूति प्रदर्शन में प्रकट उसका महत्व उसकी अहंवृति की संतुष्टि का कारण होता है जिसके फलस्वरूप वह शान्ति प्राप्त कर लेता है। ऐसे अवसरों पर प्राय: मनुष्य भाग्यवाद का सहारा लेते हैं जिसे करुण मनोभावों को सह्य बनाने का एक साधन कहा जा सकता है। अपनी विवश एवं असह्यावस्था को वह भाग्य का विधान समझ कर संतोष कर लेता है।

पश्चिमी विद्वानों ने भी ऐसी ही परिस्थितियों के अन्तर्गत भाग्यवाद का उदय निश्चित किया है। उनके विचारों का भाव इस प्रकार है —

"जबतक प्रकृति-विजय के साधन एवं यंत्र अपूर्ण हैं तथा जबतक दरिद्रता योनि-अनाचार, विक्षिप्त दशा, पाप तथा युद्ध जैसे सामाजिक समस्याओं के लिए प्रभावशाली समाधान नहीं मिलता तबतक त्याग की भावना चाहे वह भाग्य के लिये हो अथवा ईश्वर की इच्छा के प्रति मानसिक शान्ति के लिये निकटतम मार्ग हैं।"[1]

1. "So long as tools and technique for the mastery of nature are lacking so long as there is no effective solution for the social problem of poverty, injustice, insanity crime and power, the attitude of resignation be it to fate or the will of God is the shortest way to peace of mind." Ency. of the Social Sc's—Macmillon & Co. N. York Edn. 1935.

धार्मिक रूप में भाग्यवाद—भाग्यवाद का सिद्धान्त उपनिषद्काल में पूर्वजन्मवाद के सम्पर्क में सम्पुष्टि प्राप्त करता है अथवा यह कहा जा सकता है कि भाग्यवाद ही पूर्वजन्मवाद के रूप में प्रकट हुआ। इस जन्म के सुख-दुःख पूर्वजन्म में किये गये शुभाशुभ कर्मों के फल हैं। परोक्ष में उनका लेखाजोखा है। यही लेखाजोखा भाग्य कहलाता है।

भाग्यवाद का मनोवैज्ञानिक आधार—असफलता, निराशा, शोक आदि की अति मार्मिक अनुभूति के समय मानव नाड़ी-संस्थान विशृंखल होने लगता है। साधारण मनोभावों को सहने की परिमित शक्ति नाड़ी-संस्थान में होती है। अतएव शोक एवं संताप की आत्यंतिक दशा नाड़ी-संस्थान के लिये असह्य हो जाती है। ऐसे अवसर पर यदि कोई सुगम प्रवाह नहीं मिलता तो प्रायः घातक परिणाम दृष्टिगोचर हो सकते हैं। इस दृष्टि से भाग्यवाद मानव-स्वभाव एवं मानव-प्रकृति पर आधारित एक सफल प्रयत्न है जिसके द्वारा शोक-शमन संभव हो जाता है।

भाग्यवाद के अन्तर्गत मानव-क्रियाकलापों में एक अप्रत्यक्ष प्रेरक शक्ति अथवा प्रभु-इच्छा की कल्पना की गई है। अतएव साधनपूर्णता की आशा तथा अपनी शक्ति पर विश्वास होते हुए भी असफलता एवं निराशा की आशंका बनी रहती है। कर्ता अपनी शक्ति एवं समार्थ्य की परिमति अप्रत्यक्ष सत्ता में खोज लेता है जो शक्ति उसके कार्यों को एक विशिष्ट मार्ग की ओर उन्मुख कर सफलता अथवा असफलता का विधान करती है। इस अवस्था में संघातिक रूप में प्रकट न होकर संभावित रूप में ही प्रकट होती है। इसीलिये कटु एवं अप्रिय होते हुए भी दारुण एवं घातक सिद्ध नहीं हो पाती।

पश्चिमी विद्वानों के अनुसार, "नैतिक पतन कुचल डालने की अपनी शक्ति खो देता है, भौतिक क्षति सह्य हो जाती है यदि दोनों को किसी शक्ति से सम्बोधित कर दिया जाय जो शक्ति मानवी नियंत्रण के परे हो।"[1]

"...... सामाजिक प्रगति के लिये भाग्यवाद का महत्व उस सरलता में है जो सामाजिक विषय परिस्थितियों के उत्तरदायित्व से बचने के लिये उपयोगी सिद्ध हो सकती है।"[2]

एलफ्रेड एडलर के अनुसार भाग्यवाद मानव की हीन भावना ग्रन्थि का प्रकाशन मात्र है। भाग्यवाद के स्वर में वह यह दिखलाना चाहता है कि समाज में वह भी किसी प्रकार किसी से कम न था यदि भाग्य में ऐसा प्रतिकूल विधान उसके लिये निर्धारित न होता। अतएव कहा जा सकता है कि "उसके अभाग्य के मूल में गर्व रहता है।

1. "Moral failure loses its power to crush, material loss be comes tolerable, if both can be attributed to a force behind human control."
2. "For the social process the importance of fatalism lies in the ease with which it may serve as a way of escape from responsibilities for social mal-adjustments."
—Ency. of Social Scs. Macmillon—1935 Page 147

अभाग्यशाली होना महत्वपूर्ण होने का एक ढंग है।"[1] मनोविज्ञान की यह बात तीखी होते हुये भी सत्य है किन्तु इस गर्व तथा महानता में ही पीड़ित व्यक्ति की प्राण-रक्षा निहित है यह भी निर्विवाद है।

भाग्यवाद का क्षेत्र—भाग्यवाद को अशिक्षित, अर्द्धशिक्षित अथवा मूर्खों तक सीमित समझ लेना भूल होगी। वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति के लिए चाहे वह विद्वान हो या मूर्ख, धनी हो या निर्धन, स्वस्थ हो अथवा अस्वस्थ ऐसे अवसर आते हैं जब उसको अपनी विवशता का भान होता है तथा किसी अप्रत्यक्ष सत्ता द्वारा वह अपनी परिस्थितियों को संचालित समझ कर परितोष करने के लिए बाध्य होता है। इस अवसर पर ही भाग्यवाद की प्रवृत्ति क्रियाशील होती है। धर्म एवं नैतिक आचार के विश्वकोष में यह विचार निम्नलिखित रूप में प्रकट हुए है—

" आगे चलकर मनुष्य की भाग्यवाद के विचार पर पुनः वापिस होने की संभावना रहती है जब मानसिक विकास के एक उच्च स्तर पर वह सृष्टि के सकारणत्व क्रम एवं अन्त पर संदेह करना प्रारम्भ कर देता है।"[2]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भाग्यवाद मानव जीवन में करुण रस के उन प्रसंगों में अपेक्षित रूप से प्रकट होता है जिनके अन्तर्गत मानव की विवश एवं असहाय परिस्थितियाँ परम निराशा का सृजन करती हैं। भाग्यवाद की इस प्रवृत्ति से निस्संदेह असह्य शोकानुभूति सह्य बन जाती है। इसीलिए भाग्यवाद परंपरागत रूप में प्रत्येक देश एवं जाति की संस्कृति का अंग बना हुआ है।

उपर्युक्त धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के अन्तर्गत जिस प्रकार जीवन का लक्ष्य आनन्द प्राप्ति निश्चित हुआ तथा दुःख की परिस्थितियों में भी इस लक्ष्य की ओर मानव समाज की दृष्टि रही जिसका रूप भाग्यवाद में प्रतिलक्षित हुआ, ठीक उसी प्रकार साहित्य के रस का लक्ष्य भी आनन्द-प्राप्ति माना गया। **'रस्यते इति रसः'**—जिससे आनन्द प्राप्त हो वही रस है, रस की यह परिभाषा भी इस तथ्य का उद्घाटन करती है।

●

---

1. "Vanity is at the root of their misfortune. Being unlucky is one way of being important." Alfred Adler—Understanding Human Nature—1937, Page 262.
2. "Further men tend to fall back on the idea of fate, when at a higher level of intellectual development, they begin to doubt of a rational order or a rational end in the universe"

—Enc. of the Religion and Ethics V.6, 1912.

: १ :

करुण रस की मनोविज्ञानाश्रित शास्त्रीय समीक्षा

करुण रस

खाद्य रस जिस प्रकार शरीर का पोषण तथा रसना की तृप्ति का साधन होता है उसी प्रकार काव्यरस आभ्यंतर मानस का पोषक तथा हृदय की रसना की तृप्ति करता है।[1] इस प्रकार भौतिक खाद्य सामग्री के साथ मानसिक भाव-सामग्री मानव-जीवन के लिए समान रूप से अपेक्षित है। भाव-सामग्री मानस की आनन्दानुभूति का साधन है जिसे जीवन की झलक, जीवन का आधार, जीवन की पूर्णता आदि नामों से प्रकट किया जा सकता है। जीव सच्चित् स्वरूप है और सच्चिदानन्द स्वरूप होने की उसकी लालसा है। इस आनन्द-प्राप्ति को ही यदि जीवन का लक्ष्य कह दिया जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। रसानुभूति के समय मन लौकिक राग-द्वेष से विरत होकर सत्त्व स्थिति को प्राप्त कर लेता है जिसे शास्त्रकारों ने रजोगुण और तमोगुण से अस्पृष्ट मन की स्थिति कहा है।[2] आचार्य शुक्ल ने इसी को हृदय की मुक्तावस्था नाम दिया है।

"मैं इस दशा को हृदय की मुक्त दशा मानता हूँ—ऐसी मुक्त दशा जिसमें

---

१. "यथा हि गुडादिभिर्द्रव्यैर्व्यञ्जनैरौषधिभिश्च षाडवादयोरसा निर्वर्त्यन्ते, तथा अपि स्थायिनो भावा रसत्वमाप्नुवन्ति··· यथा हि नाना व्यञ्जनसंस्कृतमन्नं भुञ्जाना रसानास्वादयन्ति सुमनसः पुरुषा हर्षादींश्चाप्यधिगच्छन्ति तथा नाना भावाभिनयव्यञ्जितान् वागङ्ग सत्त्वोपेतान् स्थायिभावानास्वादयन्ति सुमनसः प्रेक्षकाः।"—नाट्य शास्त्र छठा अध्याय, श्लोक ३१ के बाद उद्धृत, पृष्ठ २८७–२८९, गायकवाड़ सं० ५६

२. "रजस्तमोभ्यामस्पृष्टं मनः सत्त्वमिति स्मृतम्"—साहित्य दर्पण तृतीय परिच्छेद श्लोक २१ के बाद उद्धृत, पृष्ठ ८७, क्षेमरान सं० १९७३

व्यक्ति बद्ध घेरे से छूट कर अपनी स्वच्छंद भावात्मिका क्रिया में तत्पर रहता है।"[1]

आनन्दानुभूति मूल रूप में अविभाज्य होती है। अतः रस के विभेद—शृंगार, हास्य, करुण आदि उस आनन्दानुभूति के प्रकारान्तर मात्र हैं। जिस प्रकार लौकिक षट् व्यंजनों की आस्वादजन्य भिन्न-भिन्न नामरूपात्मकता है किन्तु मूलतः उनके द्वारा उनके उपभोक्ता को एक रस अथवा एक आनन्द की प्राप्ति होती है, ठीक उसी प्रकार साहित्य के रसों की विभिन्नता भी एक रस या एक आनन्द की प्राप्ति कराती है। यहाँ भी लक्ष्य आनन्द-प्राप्ति है। अतएव करुणरस के द्वारा रस-निष्पत्ति के साधनों में अन्य रसों के साधनों से स्पष्ट भेद मिलेगा किन्तु करुण रस के साधनों द्वारा जो आनन्दानुभूति संभव होगी वह अन्य रसों से प्राप्त आनन्दानुभूति से किसी प्रकार भी भिन्न नहीं हो सकती। अस्तु, करुण रस के इन साधनों की व्याख्या ही करुण रस की परिभाषा का क्षेत्र है।

करुण रस की विभिन्न परिभाषाएँ आचार्यों द्वारा समय-समय पर दी गई हैं। ऐतिहासिक कालक्रम में उनका अवलोकन यहाँ अप्रासंगिक न होगा।

भरत के पश्चात् विक्रम की प्रथम शताब्दी के ग्रन्थ 'जैनागम अनुयोग द्वार सूत्र' के अनुसार करुण रस का विवरण इस प्रकार है—प्रिय के वियोग, गिरफ्तारी, प्राणदण्ड, रोग, पुत्र आदि का मरण, शत्रुओं से भय आदि कारणों से करुण रस उत्पन्न होता है। शोक करना, विलाप करना, उदासी तथा रोना इसके चिह्न हैं।[2]

अतः भरत के अनुसार इष्टवध दर्शन से अथवा प्रतिकूल वचनों के श्रवण आदि विशेष भावों से करुण रस उत्पन्न होता है।[3]

अश्रुमोचन, रोदन मोह प्राप्ति, विलाप, दैवनिन्दा आदि के द्वारा करुण रस का अभिनय होना चाहिए।[4]

भरत ने व्याख्या करते हुए आगे लिखा है—

शोक स्थायीभाव से करुण रस उत्पन्न होता है। यह शाप, क्लेश, इष्ट नाश, वियोग, वैभवनाश, वध, बन्धन, विप्लव, विनाश, दुख-प्राप्ति आदि विभावों से उत्पन्न होता है। अश्रुपात, विलाप, मुख सूखना, विवर्णता, अंग-शिथिलता, दीर्घ श्वास-प्रश्वास, स्मृति लोप आदि अनुभावों द्वारा अभिनय करना चाहिए। निर्वेद, ग्लानि, चिन्ता, औत्सुक्य, आवेग, भ्रम, मोह, श्रम, भय, विषाद, दैन्य, व्याधि, जड़ता, उन्माद

---

१. चिंतामणि दूसरा भाग प्रथम संस्करण, पृष्ठ २०५

२. 'नव रसों का एक प्राचीन विवरण'—श्री नाहटा, सरस्वती, मई ५९

३. "इष्टवधदर्शनाद्वा विप्रियवचसा संश्रवाद्वापि।
एभिर्भावविशेषैः करुणरसो नाम संभवति॥—नाट्य शास्त्र ६/६२, पृष्ठ ३१८

४. "सस्वन रुदितैर्मोहागमैश्च परिदेवितैर्विलपितैश्च।
अभिनेयः करुण रसो देहायासाभिधातैश्च॥—नाट्य शास्त्र ६/६३, पृष्ठ ३१८

अपस्मार, त्रास, आलस्य, स्तम्भ, वेपथु, विवर्णता, अश्रु, स्वरभेद आदि इसके व्यभिचारी हैं।[1]

काव्यादर्शकार दण्डी के अनुसार इष्टनाश आदि के कारण चित्त की व्याकुलता ही शोक कहलाती है।[2]

दशरूपककार धनंजय के अनुसार इष्टनाश अथवा अनिष्ट की प्राप्ति से शोक संतत आत्मा करुण रस अनुभव करती है। निश्वास, उच्छ्वास, रोदन, स्तम्भ, प्रलाप अपस्मार, दैन्य, व्याधि, मरण, आलस्य, संभ्रम, विषाद, जड़ता, उन्माद, चिन्ता आदि व्यभिचारी होते हैं।[3]

सरस्वती कण्ठाभरणकार श्री भोज के अनुसार रस जो मूर्च्छा को उत्पन्न करता है, विलाप को उत्पन्न करता है, मृत्यु के लिए मन को प्रेरित करता है तथा चित्त में दुःख उत्पन्न करता है करुण कहलाता है।[4]

काव्यानुशासनकार श्री हेमचन्द्र के अनुसार इष्टनाशादि विभाव, दैवनिन्दा आदि अनुभाव तथा दुःखमय व्यभिचारियों से उत्पन्न शोक करुण है।[5]

साहित्यदर्पणकार श्री विश्वनाथ कविराज के अनुसार इष्टनाश एवं अनिष्ट प्राप्ति से करुण नामक रस होता है। इसका वर्ण कपोत तथा इसके देवता यम कहे गए हैं। शोक स्थायी भाव है। शोच्य आलंबन, दाहादि उद्दीपन, दैवनिन्दा, भूमि पतन क्रन्दन आदि अनुभाव, वैवर्ण्य, उच्छ्वास, निश्वास, स्तम्भ, प्रलाप, निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद, जड़ता, उन्माद, चिन्ता आदि

---

१. "अथ करुणो नाम शोकस्थायिभाव प्रभवः। स च शापक्लेशविनिपतितेष्टजन विप्रयोगविभवनाशवधबन्धविद्रवोपघातव्यसनसंयोगादिभिर्विभावैः समुपजायते। तस्याश्रुपातपरिदेवनमुख शोषणवैवर्ण्यस्रस्तगात्रतानिश्वासस्मृतिलोपादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः। व्यभिचारिणश्चास्य निर्वेदग्लानिचिन्तौत्सुवयावेग भ्रममोहश्रम भयविषाद दैन्यव्याधिजड़तोन्मादापस्मार त्रासालस्य मरणस्तम्भवेथुवैवर्ण्याश्रुस्वर भेदादयः।"—नाट्य शास्त्र ६/६३ पृष्ठ ३१७

२. "इष्टनाशादिभिश्चेतोवैक्लव्यं शोकः उच्यचे"—पृष्ठ २६८ भण्डारकर ३८

३. "इष्टनाशादनिष्टाप्तौ शोकात्मा करुणोऽनुतम्
निःश्वासोच्छ्वासरुदितस्तम्भप्रलपितादयः।" ४/८१ पृष्ठ १०९ पाण्डुरंग' ४१

४. "मूर्च्छां विलापौ कुरुते कुरुते साहसे मनः
करोति चितं दुःखेन योऽसौ करुण उच्यते॥" पंचम परि०, पृष्ठ ७६

५. "इष्टनाशादि विभावो दैवोपालम्भाद्यनुभावो दुःखमय व्यभिचारी शोक, करूणः" अ० २ सू० १२

व्यभिचारी होते हैं।[१]

रसगंगाधर प्रणेता पण्डितराज जगन्नाथ कहते हैं कि पुत्र आदि के वियोग या मृत्यु आदि से उत्पन्न चित्त की व्याकुलता शोक कहलाती है।[२]

वाग्भटालङ्कारकार वाग्भट्ट के अनुसार करुण रस शोक से उत्पन्न होता है। भूपात, रोदन, वैवर्ण्य, मोह, निर्वेद, प्रलाप, अश्रु व्यभिचारी होते हैं।[३]

रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र नाट्यदर्पणकारों के अनुसार मृत्यु, बन्धन, धन-भ्रंश, शाप और आपत्ति से करुण उत्पन्न होता है। अश्रु विवर्णता, दैवनिन्दा आदि से उसका अभिनय होता है। अश्रु विवर्णता, निश्वास, मुख सूखना, स्मृतिनाश, शरीर-शिथिलता आदि अनुभाव होते हैं। दैवनिन्दा, निर्वेद, ग्लानि, चिन्ता, औत्सुक्य, मोह, श्रम, भय, विषाद, दैन्य, व्याधि, जड़ता, उन्माद, अपस्मार, आलस्य, मरण, स्तम्भ, कम्प, वैवर्ण्य, स्वर-भेद आदि व्यभिचारी भाव होते हैं।[४]

आचार्य केशव कहते हैं कि सुख के सब उपाय जहाँ छूट जाते हैं, वहाँ

---

१. "इष्टनाशादनिष्टाप्तेः करुणाख्यो रसो भवेत।
धीरैःकपोत वर्णोऽयं कथितो यमदैवतः॥ ... २५२ पृ० २६७
शोकोऽत्र स्थायिभावः स्याच्छोच्यमालम्बनं मतम्।
तस्य दाहादिकाऽवस्था भवेदुद्दीपनं पुनः॥ ... २६३
अनुभावा दैवनिन्दा भूपातक्रन्दितादयः।
वैवर्ण्योच्छ्वासनिःश्वास स्तम्भप्रलपनानि च॥ .. २५४
निर्वेदमोहोपस्मार व्याधिग्लानिस्मृतिश्रमाः।
विषादजड़तोन्माद चिन्ताऽऽद्याव्यर्भिचारिणः॥ . २५५

२. "पुत्रादिवियोगमरणादिजन्मा
वैक्लव्याख्यश्चित्तवृत्ति विशेषः शोकः।—"पृष्ठ १३० विद्याभवन बनारस' ५५

३. "शोकोत्थः करुणो ज्ञेयस्तत्र प्रणतरोदने।
वैवर्ण्यमोहनिर्वेदप्रलापाश्रुणि कीर्तयेत्॥ ५/२१ खेमराज सं० १९९२

४. "मृत्यु बन्ध धनभ्रंशशाप व्यसन संभवः
करुणोऽभिनयस्तस्य वाष्प वैवर्ण्य निन्दनैः।" तृ० विवेक/११६
शापोऽभिमत वियोगहेतुर्दिक प्रभाववतः आक्रोशः व्यसनमर्थः। अनेन देशोच्चाटनादेर्जातं विप्लवजातं संग्रह्यते। एभ्यो विभावेभ्यः शोक स्थायी करुणो रसः सम्भवति। वाष्पवैवर्ण्याभ्यां निःश्वासमुखशोष स्मृतिलोपस्रस्त-गात्रताऽऽदयोऽनुभावाः सूचिताः। निन्दनमात्मनोदैवस्यान्यस्य चोपालम्भः। अनेन रुदितप्रलपितोरस्ताडनादि गृह्यते। व्यभिचारिणस्तस्य निर्वेदग्लानि-चिन्तौत्सुक्य मोह श्रम भय विषाद दैन्य व्याधि जड़तोन्मादापस्मारालस्य मरणस्तम्भवेपथु वैवर्ण्याश्रु स्वरभेदादय इति।"—पृष्ठ ३४, सं० १९२९ ओरियन्टल इंस्टीट्यूट बड़ौदा

करुणरस स्वतः ही आकुल होकर उत्पन्न होता है।[1]

देव कहते है कि इष्टनाश तथा अनिष्ट को सुनकर मन में शोक उत्पन्न होता है, चार प्रकार से आशा छूट जाती है इस स्थिति को करुण कहते हैं।[2]

महाराजकुमार श्री बाबूसिंह हिन्दूपति कहते हैं कि जिसके सुनने से शोक चित्त करुणामय हो जाता है उस कविता को कवि करुणरस की कविता कहते है।[3]

प्रवृत्तिवादी मैकडूगल के सिद्धान्तों के अनुकूल आचार्य शुक्ल ने रस का विवेचन निम्नलिखित रूप में किया है—

१. भाव दशा, २. स्थायी दशा और ३. शील दशा।

शोक के संबंध में आचार्य शुक्ल के विचार इस प्रकार हैं।[4]

एक अवसर पर एक आलंबन के प्रति	अनेक अवसरों पर एक आलंबन के प्रति	अनेक अवसरों पर अनेक आलंबनों के प्रति
भाव दशा	स्थायी दशा	शील दशा
शोक	संताप	खिन्नता

आगे भावों के वर्गीकरण में उन्होंने दो प्रकार के भाव माने हैं— (अ) सुखात्मक, (आ) दुःखात्मक।

सुखात्मक के अन्तर्गत राग, हास, उत्साह आश्चर्य तथा दु,खात्मक के अन्तर्गत शोक, क्रोध, भय एवं जुगुप्सा रखे है। शोक के संबंध में दिया गया उनका विवरण निम्नलिखित है—

चेतन धारण (आलंबन) (Cognition)	पीड़ित, गत या नष्ट इष्ट व्यक्ति या वस्तु अथवा कोई अत्यन्त अनिष्ट।
इच्छा या संकल्प (Conation)	दुःख के भार से मुक्त या हलके होने की।
गति या प्रवृत्ति (कायिक) (Tendency)	सिर छाती पीटना,भूमि पर गिरना, रोना।

---

१. "छूटि जात केशव जहाँ, सुख के सबै उपाय।
करुणारस उपजत तहाँ, आपुनते अकुलाय॥"
—रसिकप्रिया सं० १६७१, खेमराज श्रीकृष्णदास, बनारस

२. "बिनसे ईठ अनीठि सुनि मन में उपजत सोग।
आसा छूटे चारि विधि, करुन बखानत लोग॥"
—शब्द रसायन, हि० सा० स०, प्रयाग

३. "शोक चित्त जाके सुने करुणामय ह्वै जाय।
ता कविताई को कहै, करुणारस कविराय॥"—काव्यनिर्णय

४. रसमीमांसा सं० २००६, भाव की दशाएँ, पृष्ठ १८६
रसमीमांसा सं० २००६,—भाव-वर्गीकरण, पृष्ठ १६३
रसमीमांसा सं० २००६,— संचारीभाव, पृष्ठ २००

लक्षण (सात्त्विक) (Symptom)	अश्रु, वैवर्ण्य, गद्गद् कण्ठ, उच्छ्वास, निश्वास ।
भाव (Emotion)	शोक
संचारीभाव (दुःखात्मक)	लज्जा, असूया, अमर्ष, अवहित्था, त्रास, विषाद, शंका, चिन्ता, नैराश्य, उग्रता, मोह अलसता, उन्माद, असंतोष, ग्लानि, अपस्मार मरण, व्याधि ।
(उभयात्मक)	आवेग, स्मृति, विस्मृति, दैन्य, स्वप्न, चित्त की चंचलता

पाश्चात्य मनोवैज्ञानकों में से वन्डट का भाव विभाजन करुणरस की परिभाषा के अन्तर्गत आ सकता है। शोक का अध्ययन करते हुए वन्डट ने स्थायीभाव शोक का संभावित संचारीभावों सहित एक विभाजन-रेखाचित्र दिया है जो शोक के व्यापक क्षेत्र तथा अपेक्षित अँग-प्रत्यंगों का प्रकटीकरण करता है। वन्डट द्वारा दिए गए रेखाचित्र के आधार पर शोक का निम्नलिखित रेखाचित्र प्रस्तुत किया जा सकता है।
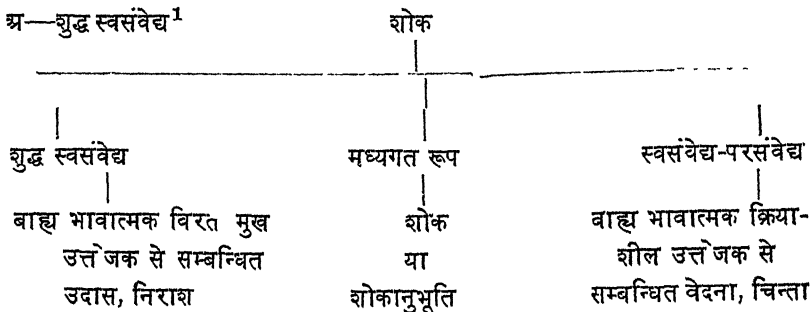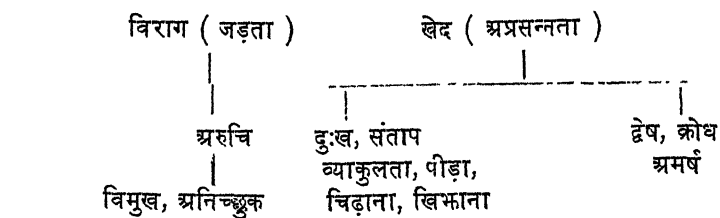
1. Wundtian Classification of Emotion-The Psychology of Feeling and Emotion Ed. 36, Page 117.

A—Subjective Forms

करुणरस की परिभाषा का विकास

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर एक संक्षिप्त सारणी बनाई जा सकती है जो समूहालम्बनात्मक रूप में करुण रस की शास्त्रीय परिभाषा कही जा सकती है। इस परिभाषा के अंग-प्रत्यंगों का विवेचन आगे किया जायगा।

करुण रस की परिभाषा—

देवता—यम।

रंग—गृह कपोत के समान।

आलंबन—इष्टनाश एवं अनिष्ट प्राप्ति। प्रिय बन्धु बान्धव एवं पुत्रादि का मरण एवं वियोग। धन वैभव का नाश। पराजय, पराभव, बन्धन एवं वध। धर्म अपघात एवं शाप। क्लेश एवं दुःख प्राप्ति।

उद्दीपन—प्रिय जनों के दाह कर्म, वस्त्रादि के दर्शन, गुण-कथन, भूतकालीन वैभव का
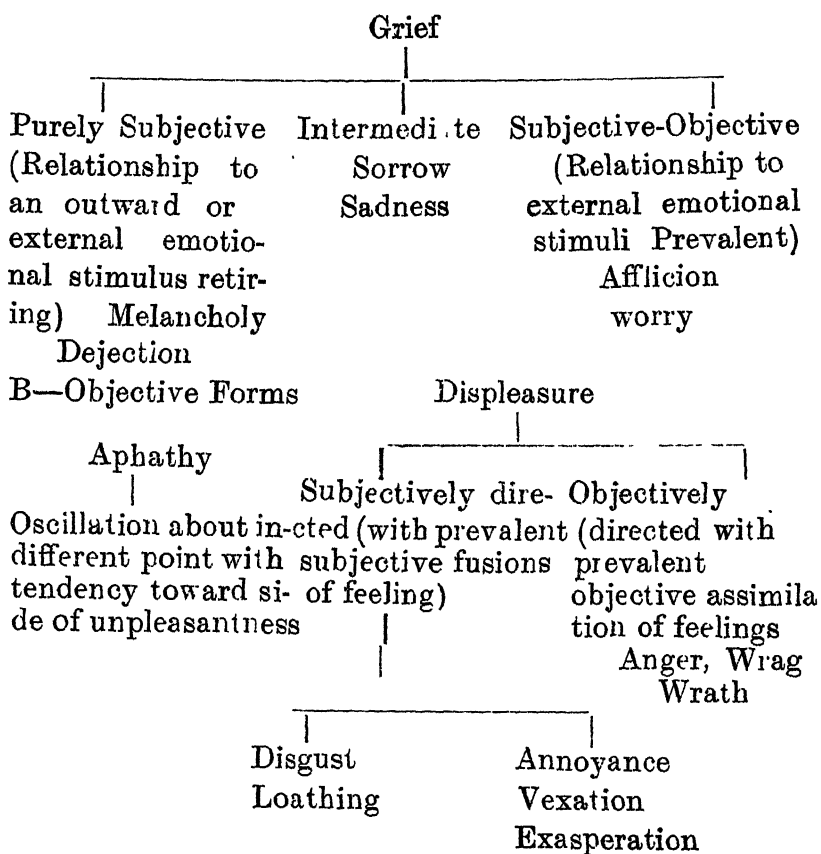
स्मरण एवं कथन, वर्तमान असहायावस्था, बन्धन के साधन, विजेता के आनन्द मंगल।

अनुभाव—भूमिपतन, रोदन, देव-निन्दा, आत्मनिन्दा, भाग्य-निन्दा आदि तथा विवर्णता, उच्छ्‌वास, स्तम्भ, प्रलाप, स्वरभंग, अश्रु, मुखसूखना, कम्प आदि

सचारी—निर्वेद, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, विषाद, जड़ता, उन्माद, चिन्ता, मोह, अपस्मार, भ्रम, दैन्य, आलस्य, मरण, शंका आवेग, त्रास, औत्सुक्य, भय, असूया, लज्जा, अमर्ष, अवहित्था, नैराश्य, असंतोष, विस्मृति, स्वप्न, चित्त की चंचलता आदि।

स्थायी भाव—शोक

करुण रस के देवता और रंग—किसी वस्तु की चित्रात्मक एवं सुग्राह्य अभिव्यक्ति के लिए प्रतीक रूप में रूप एवं धर्म साम्य के आधार पर समगुण धर्म स्वभाव वस्तुओं के उदाहरण दिये जाते है। रस के देवता तथा रंग के निर्णय में भी यह बात प्रतिलक्षित होती है। साथ ही देवता को किसी विषय के अधिष्ठाता के रूप में भी मानते है। इस रूप में भी देवता की तद्‌रूपात्मकता एवं तदाकारवृत्ति की ओर संकेत रहता है। इस संबंध में उपाध्याय जी के भी ऐसे ही विचार हैं—

"जिस रस का जो गुण, स्वभाव और लक्षण होता है, उसका देवता प्राय: उन्हीं गुणों और लक्षणादि का आदर्श होता है, क्योंकि उसी के आधार से उस रस की कल्पना होती है।"—(रसकलस, पृष्ठ ७`)

अत: करुण रस के देवता यम है—इसका आशय यह है कि करुण रस के (आश्रय के) गुणकर्मस्वभाव यम के सदृश होंगे। करुण रस का वर्ण कपोत चित्रत है, इसका तात्पर्य यह है कि करुण रस के आश्रय की बाह्य अभिव्यंजना (अनुभाव) कपोत वर्ण के समान होगी।

यम के दो रूप प्रसिद्ध हैं—

१—उपनिषद् काल के यम।

२—पौराणिक काल के यम।

उपनिषद् काल के यम एक आचार्य के रूप में सम्मुख आते है। वे ब्रह्मज्ञान के प्रकाण्ड पण्डित है। नचिकेता उपाख्यान उनके इस व्यक्तित्व का प्रमाण है। यम को मृत्यु नाम से भी संबोधित किया गया है। नचिकेता के पिता उसे मृत्यु को देते हैं। कहना न होगा कि यह मृत्यु "मरण" का पर्याय ही है किन्तु इस मृत्यु में निम्न-लिखित विशेषताएँ हैं—

१—नचिकेता यम का अतिथि समझा जाता है।

२—अपने आतिथ्य सत्कार स्वरूप नचिकेता वरदान प्राप्त करता है।

३—नचिकेता पुन: भूलोक को लौट आता है।

डा० मूर ने ऋगवेद के आधार पर यम का निम्नलिखित वर्णन दिया है—

"निरभ्र दिवस के क्षेत्र में जहाँ यम प्रत्येक आनन्द को प्रदान करते हैं और प्रत्येक कामना संतुष्टि प्राप्त करती है वहाँ तुम्हारी आनन्दानुभूति कभी क्षीण न होगी [१]।"

यम का दूसरा रूप पौराणिक काल से प्रारम्भ होता है तथा आज भी उसी रूप में प्रचलित है। इस काल के यम वैदिक काल के यम से नितान्त भिन्न हैं। जहाँ वैदिक काल के यम ब्रह्मज्ञानी हैं तथा पुण्यात्मा व्यक्तियों के लिये मंगलदाता तथा उनकी श्रद्धा एवं भक्ति के आधार हैं वहाँ परवर्ती काल के यम भयावह राक्षसेन्द्र हैं। वह नरयान में आरूढ़ है तथा खड्ग-खेटक धारण किये हुए राक्षसों से आवृत्त है[२]।

उपनिषद् काल के यम ब्रह्मज्ञानी है। ब्रह्मज्ञान के अन्तर्गत आत्मज्ञान मुख्य विषय है। आत्मज्ञान की प्राप्ति करुण रस से संभव है। भौतिक जगत में मानव अपनी असहायावस्था तथा प्रकृति के नियमों के समक्ष अपनी कटु विवशता का अनुभव उस समय करता है जब वह देखता है कि इष्टनाश तथा अनिष्ट प्राप्ति के संबंध में वह कुछ भी व्यतिक्रम नहीं कर पाता। अपनी विवशता में वह अति कातर हो उठता है। इस विवशता एवं कातरता की स्वानुभूति के कारण अन्य प्राणियों के साथ उनके इष्टनाश तथा अनिष्टप्राप्ति के समय उसकी सहानुभूति हो उठना अति स्वाभाविक है। उसकी यह दशा यम के इस प्रथम रूप में पूर्ण मेल खाती है। साथ ही यहाँ यह स्पस्ष्ट कर देना भी आवश्यक है कि घटना कालक्रम में नाट्यशास्त्र की रचना पौराणिक काल से पूर्व हो चुकी थी। अतएव यम के उपनिषद् काल के रूप की ही प्रतिष्ठा नाट्यशास्त्र में हुई होगी।

कुछ आचार्यों ने (विशेष कर हिन्दी के) करुण-रस के द्रवीभूत हृदय तथा अश्रुपूर्ण नेत्रों को दृष्टिगत रख कर जल के देवता वरुण को ही करुण का देवता माना है।

करुण रस का रंग—कपोत वर्ण के समान माना गया है। कपोत से यहाँ गृह कपोत से तात्पर्य है जिसका वर्ण मलीन होता है। जैसा कि अन्य रसों के उदाहरणों से प्रकट है आचार्यों का अभिप्राय कपोत के रंग मात्र से है—स्वयं कपोत से नहीं है।

---

१. In those fare realms of cloudless day.
Where Yama every joy supplies
And every longing satisfies.
Thy bliss shall never know decay.
—Dr. Muir—Hindu Mythology by W. J. Wilkins.

२. राक्षसेन्द्रं प्रवक्ष्यामि निर्ऋतं (तिं)
नैर्ऋतः (ती) स्थितम्)।
नरयानसमारूढं रक्षोभिर्बहुभिर्वृतम्
कालमेष (घ) समाभासं खड्ग खेटक धारिणम्"
—सोमेश्वर-यानसोल्लास—८८४, १९३९ ई०

अतएव कपोत की भावभंगिमा तथा सरलता से यहाँ कोई प्रयोजन नहीं है। मलिन स्वतः कोई रंग नहीं होता। इसलिये कपोत के उदाहरण द्वारा मलिनता का प्रकटीकरण किया गया है।

भरत ने शोकदृष्टि का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करते हुए लिखा है।

"शिथिल पलक, जलपूर्ण नेत्र, अवरुद्ध नेत्र तारे—इस प्रकार मन्द संचारिणी दीनता प्रकट करने वाली शोकदृष्टि कही जाती है।"[1]

शोक दृष्टि के उपर्युक्त वर्णन द्वारा करुण रस के आश्रय की मलिनवर्णता स्पष्ट है। इस प्रकार करुण रस के वर्ण का कपोतचित्रित कथन, शोकाकुल व्यक्ति का सजीव चित्र खींचने का प्रयास है तथा हमारी भावनाओं को शब्द के साथ रूप देने की व्यवस्था की गई है। प्राचीनों की संभवतः यही धारणा रही होगी कि वर्ण के प्रतीक द्वारा भाव-जगत के तथ्यों को सुग्राह्य रूप दिया जाय तथा कहना न होगा कि मलिनवर्ण कपोत तथा करुण-रस इस दृष्टि से कितने उपयुक्त बैठे हैं।

करुण रस के भेद—संस्कृत के आचार्यों में भरत, भावप्रकाशकार तथा भानुदत्त आदि ने करुण रस के भेदों का विभिन्न दृष्टिकोणों को लेकर विवेचन किया है। इन भेदों से जैसा कि आगे दिये गए विवरण से प्रकट होगा, करुण-रस के संबंध में किसी विशेष तथ्य का उद्घाटन नहीं होता। ये भेद तो करुण-रस के कारण, प्रभाव और मात्रा आदि की व्याख्या ही करते हैं।

भरत के नाट्यशास्त्र (अध्याय ६, ७८) में करुण रस के तीन भेद दिये गये हैं जो करुण रस की उत्पत्ति के कारणों का उल्लेख मात्र करते हैं—१. धर्मोपघातज, २. अपचयोद्भव, ३. शोककृत।

भावप्रकाशकार ने करुण को मानसिक वाचिक और कायिक तीन प्रकार का माना है। ये भेद अनुभाव के संदर्भ में करुण का विवरण प्रस्तुत करते हैं। भावप्रकाशकार की दृष्टि मन वचन और कर्म की ओर रही है। इस प्रकार इन भेदों से भी किसी विशेष तथ्य का उद्घाटन नहीं होता इनको करुण की अनुभावगत व्याख्या कहना उचित होगा।

भानुदत्त की रस-तरंगिणी में स्वनिष्ठ और परनिष्ठ नामक दो भेदों की कल्पना की गई है। जब स्वयं आश्रय ही करुण का आलंबन बन जाय तो स्वनिष्ठ करुण और जब आश्रय से पृथक आलंबन से करुण रस संबधित हो तो परनिष्ठ कहा जाय। दूसरे

---

१. अवस्रस्तोत्तरपुटा
रुद्धतारा जलाविला
मन्द सञ्चारिणी दीना
सा शोकेदृष्टिरुच्यते"
—नाट्य-शास्त्र ८-५६ गायकवाड़' ३४ प० ६

शब्दों में कह सकते हैं कि स्वनिष्ठ के अन्तर्गत आश्रय और आलंबन एक हो जाते हैं जबकि परनिष्ठ के अन्तर्गत दोनों की पृथक स्थिति बनी रहती है।

इसी प्रकार कारण को दृष्टिगत रखकर निम्निलिखित भेद भी किये गये हैं—इष्ट जन्य, स्मृत अनिष्ट-जन्य तथा श्रुत-अनिष्ट जन्य।

हिन्दी के आचार्यों में देव ने अपने काव्यरसायन में करुण के पाँच भेदों की कल्पना की है।

"करुना, अतिकरुना अरुमहाकरुन लघु हेतु।
एक कहत है पाँच में, दुख में सुखहि समेत॥"

रस-निष्पति की दृष्टि से करुण रस के भेद करना संगत प्रतीत नहीं होता। एक ही रस का विभाजन करने का तात्पर्य अनुभूति के भेद-क्रम को स्थापित करना है जो असंगत न होते हुए भी दुष्कर अवश्य है। साथ ही अनुभूति का भेदक्रम विषय-गत कम तथा व्यक्तिगत अधिक होता है। इसलिए सामाजिक की अनुभूति की दृष्टि से इस विभाजन का रूप निश्चित करना लगभग असंभव है। इसलिये देव को छोड़कर हिन्दी के अन्य किसी आचार्य ने इस प्रकार के विभाजन को प्रश्रय नहीं दिया। सूक्ष्म विवेचन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कवि का यह विभाजन वर्णन-प्रकारान्तर मात्र है। करुण, अतिकरुण तथा महाकरुण विषय की शोकसंतापाक्रान्त प्रवृत्ति की उत्तरोत्तर वृद्धि को प्रकट करते हैं। महाकरुण तक पहुँच कर कवि मरण की पूर्ण सम्प्राप्ति करा देता है। लघुकरुण तथा सुखकरुण कारुणिक दिनों के स्मृतिरूप हैं। लघु करुण के अन्तर्गत महान आपत्ति से अभी त्राण मिला है तथा उस आपत्ति की स्मृति के संदर्भ में वर्तमान सुरक्षित स्थिति संतोष का विषय है। सुख करुण में सुख के उपकरणों में दुःख के दिवसों की स्मृति होती है जो वर्तमान सुख को प्रियतर बना देती है।

करुण रस की उत्पत्ति—करुण रस की उत्पत्ति के संबंध में मनीषियों के विभिन्न विचार हैं। उनका संक्षेप में यहाँ अवलोकन कर लेना उचित होगा।

१. भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में मूलतः चार रस माने हैं—शृंगार रौद्र, वीर तथा वीभत्स। करुण रस की उत्पत्ति उन्होंने रौद्र रस से मानी है।[1]

रसास्वाद के समय चित्त की निम्न चार दशाएँ होती हैं[2]—विकास, विस्तार, विक्षोभ तथा विक्षेप। यही चार दशाएँ साहित्य में क्रमशः शृंगार, वीर, वीभत्स

---

१. "शृंगारादि्ध भवेद्हास्यो—रौद्राच्च करुणो रसः" ६—३९ ना० शा० गायकवाड़ ५६, पृ० २९५

२. स्वादः काव्यार्थसंभेदादात्मानन्दसमुद्भवः।
विकाशविस्तरक्षोभविक्षेपैः स चतुर्विधः ॥ ४/४३
शृङ्गार—वीर—वीभत्स—रौद्रेषु मनसः क्रमात्। ४/४४
हास्याद्भुतभयोत्कर्षकरुणानां त एव हि ॥"—दशरूपक

तथा रौद्र के नाम से प्रकट हुई हैं। इन मूल चार रसों से पुनः अन्य चार रसों की उद्‌भावना हुई। इस प्रकार इन आठ रसों का रेखा-चित्र निम्नलिखित रूप में दिया जा सकता है—
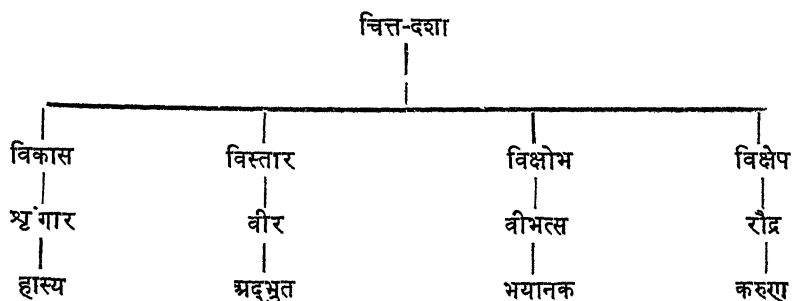
२. शारदातनय ने (भावप्रकाश में) मूल चार रसों की उत्पत्ति वेदों से मानी है। उनके अनुसार सामवेद से श्रृंगार रस, ऋग्वेद से वीर रस, अथर्ववेद से रौद्र रस तथा यजुर्वेद से वीभत्स रस उत्पन्न हुए तथा रौद्र रस की जो क्रूर क्रिया है वही करुण रस है।[1]

३. महर्षि व्यास के अनुसार जगत संहार के पश्चात् शिव ने ब्रह्मा को बनाया तथा ब्रह्मा से सृष्टि रचना के लिए कहा। ब्रह्मा ने सृष्टि रचना के पश्चात् पिछले कल्प की भगवान् शिव की लीलाओं को देखना चाहा। नंदिकेश्वर उनके सम्मुख प्रकट हुए। उन्होंने ब्रह्मा को सम्पूर्ण नाट्यवेद पढ़ाया तथा अपनी बताई हुई विधि के अनुसार एक रूपक रचने तथा भारतों की सहायता से खेलने को कहा।

त्रिपुरवध रुपक बना और खेला गया। उसमें जब वीरभद्र ने दक्षयज्ञ विध्वंस किया तथा देवताओं को भिन्न-भिन्न प्रकार से दण्ड दिया तब उन भिन्न कर्णनासा दीन तथा आर्त की भाँति रोते और विलाप करते हुए स्त्री-पुरुषों को देखकर करुण और रौद्र की उत्पत्ति हुई।[2]

४. रस-उत्पति के सम्बन्ध में एक दूसरा सिद्धान्त निम्नलिखित है। शिव ने इसको सूर्य से कहा तथा योगमाला संहिता में इसका वर्णन हुआ। (भरत के नाट्य-शास्त्र में इसका विवरण नहीं दिया गया है किन्तु भोज ने अपने श्रृङ्गार-प्रकाश में इसका उल्लेख किया है।)

'इस सिद्धान्त के अनुसार अहं अपनी अभिमान वृत्ति एवं इन्द्रियों द्वारा बाह्य

१. "श्रृङ्गार उदभूत्सामो वीरोऽभूद्विततो ऋचः
अथर्ववेदतो रौद्रो वीभत्सो यजुषः क्रमात्।
क्रूर क्रिया या रौद्रस्य सैव स्यात्करुणाह्वया"—भावप्रकाश, तृ० अधि०

२. "रुद्रेण वीरभद्रेण दक्षस्य ध्वंसिते मखे
दण्डितेषु च देवेषु नाना प्रहरणैः पृथक्।"

वातावरण के सम्पर्क में आता है तब यह अहंकार सत रज तम तीन गुणों के अनुकूल जिस गुण से अहं अभिभूत होता है उसी के अनुकूल विभिन्न प्रकटीकरण के साथ रस-रूप को प्राप्त होता है।

इस प्रकार रस केवल नायक और नायिका का अहंकार है जो भावगुणों के साथ विभिन्न रूप धारण कर लेता है। जब रंगमंच पर एक नाटक खेला जाता है तब दर्शक जो नायक तथा नायिका के अहंकार के समान अहंकार से अभिभूत हैं मानसिक रूप में अपने आपको उसी स्थिति में ले जाते हैं जिसमें पात्र-भीम और हनुमान (जब द्रोपदी तथा सीता दुःशासन तथा रावण द्वारा त्रासित थीं) रंगमंच पर होते हैं।

जब दर्शक मण्डली आठ प्रकार के भावों शृङ्गारादि का अनुभव करती हैं तब यह समझना चाहिए कि अहं अपने आठ प्रकार के भावों में परिवर्तित कर रहा है जिनको आठ प्रकार के रस कहा जाता है।[1]

५. तैत्तिरीयोपनिषद् के ब्रह्मानन्द बल्ली के अन्तर्गत रस परमानन्द की अनुभूति के लिए प्रयुक्त हुआ है। श्रुति का तात्पर्य—

"यह पुण्यरूप भगवान ही रस कहे जाते हैं क्योंकि यह आनन्दप्रद है। यह जीवात्मा इसी रस को पाकर आनन्दयुत होता है।[2]

६. करुण रस की उत्पत्ति इच्छा से भी मानी गई है। इच्छा के दो रूप होते हैं—राग और द्वेष या काम एवं क्रोध। राग के प्रीति रूप का शृङ्गार से, सम्मानरूप का अद्भुत से तथा दया रूप का करुण रस से सम्बन्ध है।

७. इसी प्रकार प्रकृतियों से भी रस की उद्भावना की गई है। प्रकृति तीन हैं—सत, रज, तम।

तम से—रौद्र, वीर, भयानक उत्पन्न होते हैं।

उपर्युक्त सिद्धान्तों का विवेचन करने से ज्ञात होगा कि इनमें से कुछ उत्पत्ति-मूलक हैं, अन्य रस के गुणस्वभाव सम्बन्धी तथा दूसरे परम्परानुगत। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :—

परम्परानुगत—क्रमांक १,२

---

१. अंग्रेजी में भूमिका-शारदातनय, भावप्रकाश, गायकवाड़ ओर० सीरिज़ के अन्त में उद्धृत।

२. "यद् वै तत्सुकृतम्। रसो वैसः" ७/११

सत से—शान्त, वीभत्स तथा अद्भुत उत्पन्न होते हैं।

रज से—शृङ्गार, करुण एवं हास्य उत्पन्न होते हैं।

"विलोक्य तान्प्रलपतश्छिन्नकर्णाक्षिनासिकान्
दीनान्देव्याः सखीनाँ च करुणो यद्भून्महान्
तस्मात प्रवृत्तः करुणो रौद्रादिति विभाव्यते...।"—भाव प्र० तृ० अधि०

रूप प्रकाशक—क्रमांक ३
उत्पत्तिमूलक—,, ,, ४, ६ और ७
समानधर्मी— ,, ,, ५

परम्परागत सिद्धान्तों में करुण रस की उत्पत्ति रौद्र से मानी गई है तथा रौद्र के समय चित्त की विक्षेप दशा बताई गई है। विक्षेप का अर्थ होता है—इधर-उधर भटकना, फेंकना। चित्त की यह दशा रौद्र में और विशेषकर करुण में अति स्वाभाविक है। आपत्ति के समय चित्त का इधर-उधर भटकना तथा आपत्ति-मुक्ति के लिए प्रयत्न करना प्रकृति की रक्षा योजना का एक मुख्य साधन है जिससे आपद्ग्रस्त मानव की रक्षा संभव हो जाती है। साथ ही चित्त की एकाग्रता के अभाव में दुःख का भार भी वाह्य हो जाता है। इस प्रकार चित्तदशा से सम्बन्धित यह सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है। परम्परागत दूसरे सिद्धान्त में रौद्र एवं करुण की उत्पत्ति अथर्ववेद से बताई गई है। इस सिद्धान्त की कोई सहेतुक व्याख्या संभव प्रतीत नहीं होती। संभवतः उत्पत्ति की अलौकिकता सिद्ध करने के लिए इस सिद्धान्त की कल्पना की गई हो।

रूपप्रकाशक तथा समानधर्मी सिद्धान्त उत्पत्ति के सम्बन्ध में कोई प्रकाश न डालकर करुण रस का वर्णन एवं अनुभूति मात्र उपस्थित करते हैं। अतः उनके संबंध में किसी विवेचन की आवश्यकता नहीं है।

उत्पत्तिमूलक सिद्धान्त—क्रमांक ४, ६, ७ में अहंकार का सिद्धान्त ही प्रमुख है। प्रकृति का सिद्धान्त इसके अन्तर्गत ही आता है। अहंकार सत-रज और तम तीन गुणों के अनुकूल ही अभिभूत होता है। अतएव कहा जा सकता है कि रज या तम प्रकृति से अभिभूत अहं के द्वारा करुण की उत्पत्ति होती है। इच्छा सिद्धान्त के अन्तर्गत करुण के सामाजिक की करुणा एवं दया की प्रवृत्ति की ओर संकेत किया गया है। इस प्रकार यह सिद्धान्त पृथक किसी अन्य तथ्य का उद्घाटन नहीं करता।

अतः अहंकार का सिद्धान्त प्रमुखतः यहाँ विवेचन अपेक्षी है। अहं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन यहाँ इस प्रसंग पर प्रकाश डालने के लिए आवश्यक होगा। फ्राइड द्वारा उसका जो अध्ययन प्रस्तुत किया गया है वह अगले पृष्ठों में स्पष्ट वर्णित है। अहं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन अगले चित्र से भी स्पष्ट हो जावेगा—
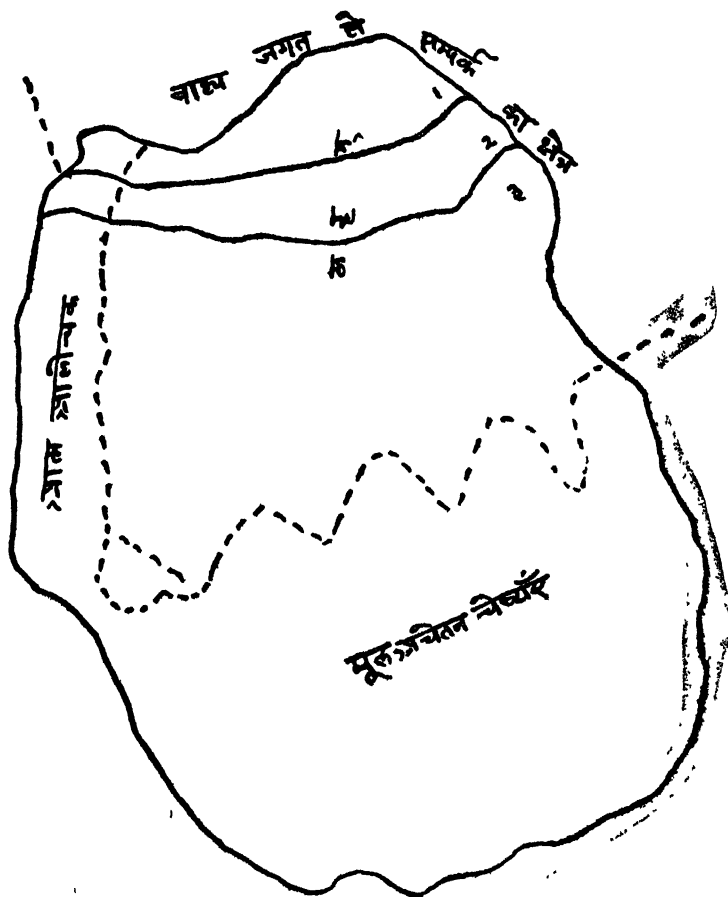
१. चेतन
२. अर्द्धचेतन
३. अचेतन

अहम् = Ego आत्म आलोचक = Super Ego.
मूल अचेतन चेष्टाएँ = Id.
After-Freud—"His Dream and Sex Theories" Page 85,86 Pocket Book. Inc. Rockefeller Center. N.Y. Septr. 48 Edn

अहं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर मानव-मस्तिष्क के तीन रूप माने गये हैं—१. चेतन, २. अर्द्धचेतन और ३. अचेतन।

फ्राइड के अनुसार वे प्रवृत्तियाँ जो सामाजिक बन्धन अथवा अन्य किन्हीं कारणों से वाह्य जगत में प्रकट नहीं हो पातीं, अचेतन रूप धारण कर लेती हैं। इनको अचेतन चेष्टाएँ नाम दिया गया है। इन्हीं मूल अचेतन चेष्टाओं के एक अंश का नाम "अहं" है। अहं की पहुँच चेतन-स्तर तक रहती है। उसका कार्य चेतन और अचेतन जगत में समझौता कराने का होता है। अहं साथ ही अचेतन चेष्टाओं की मांगों को पूरा करने की चेष्टा भी करता है। किन्तु चेतन जगत के अधीन होने के कारण वह स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष रूप से यह कार्य नही कर पाता। उसके कार्यों एवं क्रियाकलापों का निरीक्षण आत्मालोचक करता है। इस प्रकार अहं को तीन ओर खिचना पड़ता है—अचेतन जगत की ओर, चेतन जगत की ओर तथा आत्म आलोचक की आदर्शनिष्ठा की ओर। अहं मूल अचेतन चेष्टाओं की संतुष्टि के लिए भिन्न-भिन्न उपाय निकाल लेता है तथा आत्म-आलोचक को भी भुलावा देकर वह उनको संतुष्ट कराता है। इस प्रकार धूम्रपान, प्रसाधन एवं शृंगार तथा काव्यादि रचना मूल-अचेतन चेष्टाओं की संतुष्टि के प्रकारमात्र हैं। इस प्रसंग के और स्पष्टीकरण के लिए पृष्ठ ३९ पर दिये गये अहं के अध्ययन का चित्र द्रष्टव्य है।

एलफ्रैड एलडर ने फ्राइड की 'कामवासना' के स्थान पर 'विजय कामना' को अपनी मान्यता का आधार बनाया है। 'हीनता-ग्रन्थि' एडलर की अपनी खोज थी। एडलर की दृष्टि से करुणरस का मनोवैज्ञानिक विवेचन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है।

रसानुभूति दो रूपों में होती है—आलम्बन एवं आश्रयगत तथा समाजिकगत। आलम्बन एवं आश्रयगत अनुभूति के अन्तर्गत दैव एवं भाग्य निन्दा के अवसर प्रायः उस समय आते हैं जब इष्टनाश तथा अनिष्ट प्राप्ति के समय मनुष्य अपनी विवशता तथा असहायावस्था का अनुभव करता है किन्तु अपने आपको अभाग्यशाली कहना भी दूसरे शब्दों में अपना महत्व प्रकट करना है। यह प्रवृत्ति 'विजय कामना' से प्रेरित होती है। अलफ्रेड एलडर ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट लिखा है कि—

"उनके अभाग्य के मूल में उनका गर्व है। अभाग्यशाली बनना महत्वपूर्ण होने का एक ढंग है।"

सामाजिकगत अनुभूति के अन्तर्गत आर्त्त एवं संतप्त प्राणी के प्रति सहानुभूति प्रदर्शन आता है। सामाजिक या दर्शक का करुणा प्रदर्शन 'विजय कामना' का ही रूप होता है। करुणाप्रदर्शकों को इस प्रकार के अपने कार्यो द्वारा दीन एवं आर्त्त प्राणियों पर (जिन पर करुणा प्रदर्शन का दिखावा वह किए हुए होते हैं) वास्तव में अपनी महत्ता तथा सुरक्षित स्थिति के प्रदर्शन का अवसर मिल जाता है। इस प्रकार उनकी हीन

भावना ग्रन्थि संतुष्टि प्राप्त करती है।[1] एडलर के यह विचार सूक्ष्म-दृष्टि से सार-पूर्ण प्रतीत होते हैं।

फ्राइड ने जिसे अचेतन मन कहा है तथा महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है जुंग ने उसकी दो रूपों में कल्पना की—व्यक्तिगत अचेतन तथा जातीय अचेतन (Racial unconscious)। जुंग ने जातीय अचेतन (समष्टि मन) को काव्य-कला तथा मानव की अन्य आदर्श कामनाओं तथा अध्यात्मिक साधना, ईश्वरत्व एवं देवत्व की कल्पना एवं उसमें आस्था तथा अन्यान्य अच्छाइयों का आधार माना है और इस प्रकार फ्राइड की भावनाओं को बिल्कुल नवीन रूप दिया है। कहना न होगा कि जुंग का जातीय अचेतन भारतीय मनीषियों के वासना अथवा संस्कार सिद्धान्त के कितने समीप है। रस-निष्पत्ति का आधार ही सामाजिक की वासना अथवा उसके संस्कार होते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीनों का उत्पत्तिमूलक अहं का सिद्धान्त मनोवैज्ञानिकों की नवीनतम खोजों के अति समीप है। अवश्य ही प्राचीनों का यह सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित रहा होगा। कालान्तर में सिद्धान्त परम्परानुगत रूप में चलता रहा तथा उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किसी प्रकार लुप्त हो गया।

करुण रस का विवेचन—

आलंबन—भिन्न-भिन्न मनीषियों की परिभाषा के आधार पर प्रस्तुत सारिणी के अनुकूल करुण रस के संभावित आलंबन निम्नलिखित हैं।

१—प्रिय बन्धुबान्धव एवं पुत्रादि का मरण एवं वियोग-इष्ट नाश।

२—धन वैभव का नाश

३—पराजय एवं पराभव तथा बन्धन एवं वध।

४—धर्म अपघात एवं शाप।

५—क्लेश एवं दुःख प्राप्ति; अनिष्ट प्राप्ति।

उपर्युक्त आलंबनों के अन्तर्गत मानव जीवन की प्रायः सभी दुःखात्मक परिस्थितियाँ आ जाती है—

राजनीतिक—क्रमांक ३
सामाजिक—क्रमांक १, २ और ५
धार्मिक—क्रमांक ४

---

१. '...... .....Thus there are individuals who crowd to the scene of a disaster in order to be mentioned in the newspapers. and achieve a cheap fame without actually doing anything to help the sufferers.

...........Professional sympathizers and alms-givers are not to be divorced from their activity for they are actually creating a feeling of their own superiority over the miserables and povetry-stroiken victims whom they are alleged to be helping.'

—Understanding Human Nature by A. Adler, 1937 Ed., Page 276.

१—इष्टनाश जनित करुण रस के आलंबन के अन्तर्गत सभी रागात्मक संबन्ध आ जाते हैं। इसमें साधारणतया पुत्रनाश या पुत्रवियोग सबसे अधिक शोकप्रद होता है। इसीलिए संभवतः कलियुग के घोर पाप एवं यातनाओं का वर्णन करते हुए यह भी कहा गया कि पिता के सामने पुत्र की मृत्यु होगी। रसगंगाधर प्रणेता पण्डित-राज जगन्नाथ के द्वारा दी गई करुणरस की परिभाषा के अन्तर्गत भी पुत्रनाश या पुत्रवियोग का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है। इस सम्वन्ध में यहाँ यह स्पष्टीकरण आवश्यक है कि पण्डितराज के जीवन-वृत्त में इस प्रकार की किसी घटना का निश्चित उल्लेख नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि उनको पुत्रनाश अथवा पुत्र-वियोग की स्वानुभूति हुई तथा इसी कारणवश उन्होंने इस आलंबन को परिभाषा के अन्तर्गत विशेष प्रश्रय दिया। अस्तु, निश्चय ही पण्डितराज की दृष्टि पुत्रगत शोक की गंभीरता की ओर रही होगी तथा इसी कारण उनकी परिभाषा में आलंबन के अन्त-र्गत पुत्रनाश एवं पुत्रवियोग का विशेष उल्लेख हुआ।

२—धनवैभवनाशजनित करुण रस के आलंबन की असहायावस्था प्रायः प्रत्येक समाज में प्रतिलक्षित होती है। जीवनयापन का साधन जीवन से भी अधिक महत्त्व-पूर्ण होता है इसलिए धनवैभवनाश के समय धनवान व्यक्ति को इष्टनाश के समान शोक का होना अति स्वाभाविक है किन्तु भारतीय संस्कृति ने आध्यात्मवाद से इतर भौतिक वैभव को महत्त्व नहीं दिया। इसीलिए हिन्दी साहित्य में धन-वैभवनाशगत आलंबनों का प्राय. अभाव रहा है।

पराजय, पराभव तथा बन्धन एवं वध—के अन्तर्गत राजनीतिक क्षेत्र के आलंबन आते हैं। विजित पक्ष करुणरस का आलंबन होता है। विजित पक्ष का शोक-संताप मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अनिच्छित परिस्थिति को अनुकूल बनाने के प्रयत्न कहे जा सकते हैं जिनमें अपनी पराजयादि के प्रमुख कारणों का वर्णन अपना महत्त्व प्रकट करता है।

धर्म अपघात तथा शापजनित करुणरस के आलंबनों के अन्तर्गत धर्म का कर्म काण्डगत रूप आता है। शूद्र स्पर्श, अभक्ष्य पदार्थों का अनजान में भक्षण, कर्मकाण्ड विधिनिषेध में व्यक्तिकर्म अथवा विलम्ब तथा धर्मरक्षण लालसा के समक्ष विधर्मी जनों का विरोधादि धार्मिक व्यक्ति के लिए मानसिक क्षोभ एवं शोक के कारण होते हैं। धार्मिक व्यक्ति की आदर्श निष्ठा की पृष्ठभूमि में यह क्षोभ अति कष्टकर सिद्ध होता है जिसका चरम उत्कर्ष धर्मवीर के रूप में आत्मबलिदान तथा आत्मघात तक में प्रकट हुआ।

शाप के अन्तर्गत एक क्षुब्ध आत्मा किसी नैतिक अथवा धार्मिक वैषम्य को सहन न कर सकने के फलस्वरूप अशुभवाणी प्रकट करने के लिए विवश हो जाती है। करुण-रस का आलंबन होता है शापित व्यक्ति जो शापदाता की शक्ति के आगे अपनी असहायावस्था का अनुभव करता है तथा शाप के दुष्परिणाम का विचार कर परम कातर हो उठता है।

आज भी "बुरी भाखा" तथा "ऐसी वाणी" आदि शब्दों द्वारा श्राप की परम्परानुगत ध्वनि प्रकट होती है किन्तु शापदाता की शक्ति में विश्वास एवं आस्था के अभाव में प्राय: करुण के स्थान में रौद्र का दृश्य दिखलाई देता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से शाप "कुत्सित संवेदन" कहे जा सकते हैं तथा शापदाता जितना अधिक क्षुब्ध होगा उतना ही अधिक उसका शाप प्रभावशाली तथा क्रियाशील होगा। रामायण तथा महाभारत काल में सम्पूर्ण घटनाओं का मूलकारण प्राय: कोई शाप रहा है। उस युग में शाप संभवत: अनुशासन एवं नियंत्रण के प्रचलित साधन थे जिनके भय से समाज में नैतिकता का अनुपालन होता था।

अनिष्टप्राप्तिजनक करुणरस के आलंबनों के अन्तर्गत दैहिक, दैविक एवं भौतिक कष्टों से दुखी तथा अन्यान्य विपत्तियों में ग्रस्त व्यक्ति आते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के लिए इस प्रकार के कष्ट सुपरिचित तथा प्राय: अनुभूत होते हैं। अतएव अनिष्टप्राप्तिजनक आलंबनों के साथ सामाजिक की सहज सहानुभूति संभव हो जाती है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुकूल शोक-अभिव्यंजना शोक-शान्ति का एक मनोवैज्ञानिक साधन है जिसके द्वारा इष्टनाशगत विषम परिस्थिति में शोकसंतप्त प्राणी मानसिक सम-अवस्था प्राप्त कर लेता है। साथ ही मानव व्यवहार के अध्ययन से यह भी स्पष्ट है कि शोक की अभिव्यंजना प्रत्येक आश्रय के साथ एक सी नहीं होती। पुत्र मृत्यु पर माता-पिता बन्धु बान्धव सभी रोते तथा शोक प्रकट करते हैं किन्तु माता के शोक तथा अन्य व्यक्तियों के शोक में विशेष अन्तर होता है जिसका यद्यपि कोई भौतिक मापदण्ड संभव नहीं है तब भी यह अनुभवगम्य न हो ऐसी बात नहीं है।

करुण का प्रथम आलंबन—क्रौंचवध आख्यान में हत क्रौंच को माना जा सकता है। काम संमोहित क्रौंच पक्षी के युग्म में से एक का वध तथा दूसरे का आर्त्त चीत्कार आदि कवि बाल्मीकि के शोक को श्लोक का रूप दे देता है। वाल्मीकीय रामायण का समय ५०० ई० पू० माना गया है। उस समय की करुण भावना का रूप आदिकवि के श्लोक से स्पष्ट है। रामायण काल की शोकानुभूति का यह आदर्शरूप था जिसके अन्तर्गत मनुष्य पशु पक्षियों तक के दु:ख से दु:खी हो उठता था।

महाभारत काल का समान आलंबन—महाभारत का समय २०० ई० पू० माना गया है। इस प्रकार रामायण तथा महाभारत काल में ३०० वर्षो का अन्तर है। इस अवधि में संभवत: पशु-पक्षियों के क्रौंच आख्यान में प्रकट मानव की करुण भावना में विशेष उदासीनता आ चुकी थी। महाभारतमें आदि पर्व के अन्तर्गत संभवपर्व में एक आख्यान पाण्डुशाप का आया है। महाराज पाण्डु मृगया के लिए बन जाते हैं तथा कामचेष्टारत एक हरिण-युग्म पर बाण छोड़ते हैं जिससे हरिणी अविलम्ब मर जाती है। आहत हरिण कुछ क्षणों के लिए जीवित रहता है। यह हरिण कर्दम ऋषि थे जो सपत्नीक मृगरूप में कामचेष्टारत थे। इस प्रकार की मृगया की निन्दा करते हुए ऋषि ने महाराज से कहा—इस प्रकार कामरत युग्म को तो कोई साधारण व्यक्ति भी न मारेगा फिर आप तो ज्ञानवान् हैं तथा राजा हैं। महाराज पाण्डु इस

प्रकार की मृगया को राजधर्म बतलाकर अपने कार्य को न्यायसंगत ठहराने का प्रयत्न करते हैं।

इस आख्यान से स्पष्ट है कि कालक्रम में मानव वासना परिवर्तित एवं संशोधित होती रहती है जिसके साथ आलंबन के रूप में अपेक्षित परिवर्तन संभव हो सकता है।

उद्दीपन—विभाव का दूसरा भेद उद्दीपन विभाव है। इसके अन्तर्गत वह सब बातें आ जाती हैं जिनसे आलंबन द्वारा प्रस्तुत पृष्ठभूमि उद्दीप्त हो उठती है। तथा सामाजिक रसनिष्पत्ति की ओर अग्रसर हो जाता है। आलंबन एवं उद्दीपन दोनों का अन्योन्याश्रित संबंध है। आलंबन के अनुकूल उद्दीपन विभावों की एक तालिका प्रस्तुत की जा सकती है—

विभाव

१—सामाजिक	अ—इष्टनाश	अ—दाहकर्म, वस्त्रभूषणादि के दर्शन, गुणकथन
	आ—धनवैभवनाश	आ—गतवैभवस्मरण, वर्तमान असहायावस्था
	इ—दुःख-क्लेश	इ—असहायवस्था, दूसरों की सुरक्षित दशा
२—धार्मिक —	धर्म अपघात	२—धार्मिक कृत्य एवं पूजा-पाठ का समय
३—पराजय, पराभव, बन्धन, वध		३—विपक्षी के आन्दोल्लास, गर्वोक्तियाँ विजित का भूतकालीन वैभवस्मरण व कथन
		वातावरण एवं प्रकृति—१,२,३, सब के लिए

उद्दीपन विभाव इस प्रकार तीन रूपों में प्रकट होते हैं—१. वचनगत, २. क्रियागत, ३. वातावरणगत। साहित्य-रत्नाकर में उद्दीपन के इन रूपों को निम्नलिखित प्रकार से चार भेदों में विभाजित किया है (१) आलंबन के गुण, (२) उसकी चेष्टाएँ (३) उसके अलंकार, (४) तटस्थ-प्रकृति आदि।

इन भेदों का समाहार उपर्युक्त विवेचन के अन्तर्गत निम्नलिखित रूप से हो जाता है—

१. **वचनगत**—आलंबन के गुण-कथन तथा उक्तियाँ (आश्रय की तथा अन्य व्यक्तियों की)

२. **क्रियागत**—आलंबन की चेष्टाएँ। करुण रस के आलंबनों में मृत व्यक्ति की चेष्टाएँ कुछ नहीं होती किन्तु अन्य व्यक्तियों द्वारा उसको उठाना, चिता पर रखना आदि उद्दीपन का कारण होता है।

३. **वातावरणगत**—अलंकार तथा तटस्थ।

मानव प्रकृति मनोविज्ञानिक दृष्टि में अपनी भावना के रंग में शेष जगत को रँगने का प्रयत्न करती है इसीलिए यदि हम प्रसन्न हैं तो हमको मानव समाज ही नहीं प्रत्युत प्रकृति भी पशु-पक्षियों सहित आनन्द मनाती प्रतीत होती है। इसके विपरीत हमारे शोक में हमको अपना वातावरण शोकाकुल दिखलाई देता है। प्रियजन के वस्त्राभूषण तथा उसके उठने बैठने के स्थान जो अब तक सुखद थे शोक को उद्दीप्त करने वाले बन जाते हैं। उद्दीपन के अन्तर्गत इस प्रकार वचन तथा क्रिया के साथ वातावरण का विशेष महत्व है।

अनुभाव—इस के अन्तर्गत आलंबन एवं आश्रयगत वे बाह्य व्यंजक आते हैं, जिनके द्वारा अनुभूति का अनुमान होता है। भरत मुनि के अनुसार--वाणी से, शरीर से और सहजरूप में जो नाना अर्थों (वस्तुओं) का अनुभव करता है उसे अनुभव कहते हैं।[1]

अनुभाव चार प्रकार के होते है—(१) कायिक (२) वाचिक (३) आहार्य (४) सात्विक।[2] कायिक के पुनः तीन भेद बताए हैं—(१) शारीर (२) मुखज (३) शाखांगोपाँग—संयुक्त चेष्टाकृत[3] मुखज चेष्टाओं में सिर के तेरह प्रकार के कर्म तथा दृष्टि आदि के पच्चीसों भेद बताए गए हैं। फिर भी अन्त में कह दिया है कि लोक स्वभाव के अनुसार बहुत से भेद होते है; जिन्हें प्रयोक्ता स्वयं जोड़ लें।[4] इस प्रकार नाट्य-शास्त्र में अनुभावों का अति विस्तार से विवेचन हुआ है। इन तथ्यों तक अभी पश्चिमी प्रगतिशील देशों के विद्वानों की पहुँच नहीं हो पाई है। यहाँ करुणरस से संबंधित निम्नलिखित उन भावों को ले रहे हैं जिनके सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों ने भी विचार किया है—

अश्रुमोचन, गुणकथन, प्रलाप, छाती पीटना, सिर ठोकना आदि तथा इनके आठ प्रकार के सात्विक भाव।

सत्त्व से उत्पन्न होने वाले भाव सात्विकभाव कहलाते हैं। सत्त्व से उत्पत्ति स्वीकार करते हुए भरत ने (शंका समाधान करते हुए) यह भी स्वीकार किया है कि अन्य भाव-सत्त्व के बिना ही उत्पन्न होते हैं। समाहित मन सत्त्व की निष्पत्ति का कारण है। उदासीन अथवा अन्यमनस्क होने पर मनोविकारोद्भूत वैवर्ण्य, अश्रु आदि उत्पन्न नहीं हो सकते .....[5]

१. यदयमनुभावयति नानार्थनिष्पन्नान्वागङ्गसत्त्वःकृताभिनयानिति।"—ना० शा० सप्तम अध्याय पृष्ठ ३४७ टिप्पणी गायकवाड़' ५६

२. "आङ्गिको, वाचिकश्चैव ह्याहार्यः सात्त्विकस्तथा"—ना० शा० अ० ८ श्लोक १० गायकवाड़ (Vol. II, 31)

३. त्रिविधस्त्वाङ्गिको ज्ञेयः शारीरो मुखजस्तथा
तथा चेष्टाकृतश्चैव शाखाङ्गोपाङ्ग संयुतः"—वही अ० ८ श्लोक १२ गायकवाड़ पृष्ठ ३

४. "एभ्योन्ये बहवो भेदा लोकाभिनय संश्रियाः
ते च लोक स्वभावेन प्रयोक्तव्याः प्रयोक्ततृभि ॥"—ना० शा० अ० ८ श्लोक ३९ गायकवाड़ पृष्ठ ६

५. भरत "किमन्ये भावाः सत्त्वेन विनाऽभिनीयन्ते यस्मादुच्यन्ते एते सात्विका इति, अत्रोच्यते एवमेतत् कस्मात्-इह हि सत्त्वं नाम मनःप्रभवम् तच्च समाहित मनस्त्वादुच्यते। मनसःसमाधौ सत्त्वनिष्पत्तिर्भवति तस्य च योऽसौ स्वभावो रोमाञ्चाश्रुवैवर्ण्यादिलक्षणो यथाभावोपगतः स न शक्योऽन्यमनसा कर्तुमिति" ना० शा० पृ० ३७५ गायकवाड़' ५६

काव्यानुशासनकार हेमचन्द्र के अनुसार—प्राण सत्त्व है। उससे उत्पन्न भाव सात्विक है। प्राण में जब पृथ्वी का भाग प्रधान होता है तो स्तम्भ जब जल का भाग प्रधान होता है तो अश्रु, जब तेज का भाग तीव्रता के साथ प्रधान होता है तो स्वेद और जब साधारणतया (तीव्रता रहित) प्रधान होता है तब वैवर्ण्य उत्पन्न होता है। जब आकाश का भाग प्रधान होता है तो प्रलय तथा वायु के मन्द, मध्य तथा तीव्र आवेश के अनुसार रोमांच, कम्प तथा स्वरभेद होते हैं। स्तम्भादिक शरीर धर्म जो अनुभाव रूप मे बाहर प्रकट होते है इन आन्तरिक रूपों की अभिव्यंजनामात्र हैं।[1]

अनुभाव एवं मनोभावों के सम्बन्ध में पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों के विचार यहाँ देख लेना उचित होगा। प्राचीनों के उपर्युक्त सिद्धान्त आधुनिक मनोवैज्ञानिक खोज के कितने समीप है—यह विशेष रूप से यहाँ अवलोकनीय है।

रुक्मिक ने इस प्रकार के अनुभाव—स्वेद, व्रीडा, कंठ सूखना तथा गला भर आना आदि को **शरीर की (स्वस्थ अवस्था के गुणधर्म की) प्रतिक्रिया कहा है।** (इसी को भरत ने समाहृत मन की दशा बतलाया है जिससे सत्त्व की उत्पत्ति होती है।)

एच० एच० ब्रिटेन ने मनोभावों की उत्पत्ति **वाह्य की अपेक्षा केन्द्रीय कारणों से अधिक मानी है।** मनोभावों की नाड़ी संस्थान की शक्ति को बढ़ाने के लिए प्रतीत होती है जिससे अविलम्ब शक्तिशाली क्रिया का विश्वास हो जाता है।[2] हेमचन्द्र का भी यही निष्कर्ष है कि स्तम्भादि शरीर धर्म आंतरिक रूपों की अभिव्यंजनामात्र हैं।

शरीर-विज्ञान शास्त्र तथा मानस रोगचिकित्सा की नवीन खोज इधर यह निश्चित कर चुकी हैं कि स्वचालित नाड़ी-संस्थान तथा नाड़ीशून्य ग्रन्थि मनोभावों की प्रतिक्रिया में महत्वपूर्ण हाथ रखती है। यह खोज भी मनोभावों की आन्तरिक क्रिया-

---

१. "सीदत्यस्मिन्मन इति व्युत्पते: सत्वगुणोत्कर्षात्साधुत्वाच्च प्राणात्मकं वस्तु: सत्वम् तत्र भावाः सात्विका: भावा इति वर्तन्ते। ते च प्राणभूमि प्रसृत मत्यादि-संवेदनवृत्तयो बाह्यजड़रूपभौतिकनेत्रजलादि विलक्षणा विभावेन रत्यादिगते नैवातिचर्वणागोचरेणाहृता अनुभावैश्चगम्यमाना भावा भवन्ति। तथा हि पृथ्वी भाग-प्रधाने प्राणे संक्रान्तश्चित्तवृत्तिगण: स्तंभो विष्टब्धचेतनत्वम् जलभागे प्रधाने तु बाष्प: तेजसस्तु प्राणनैकटयादुभयथा तीव्रत्वेन प्राणानुग्रह इति द्विधा स्वेदो वैवर्ण्यञ्च' ।"
अ—२, पृष्ठ १००

2. 'Emotions are due more to central factors than to peripheral ones. The particular function of emotions would seem to raise the 'nervous potentiality' so that immediate and vigorous action is assured.'
—The Function of the Emotion by H. H. Britain (Indian Journal of Psychology Vol. I—1926.)

शीलता की ओर ही संकेत करती है।[१] यह स्पष्ट है।

अतएव कहा जा सकता है कि सात्विक भाव वास्तव में मानसिक असम अवस्था के परिचायक हैं तथा मानसिक सम अवस्था प्राप्त कराने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार मनोभावों की असाधारण अवस्थाओं में भी शरीर-रक्षा के प्रयत्न चलते रहते हैं तथा नाड़ी संस्थान विशृंखल होने से बच जाता है।

आचरणवादी मनोविज्ञान के संस्थापक वाटसन की बिहेवियर (Behaviour) पुस्तक १९१४ में प्रकाशित हुई थी। उनके पश्चात् इस दिशा में मनोविज्ञान की विशेष प्रगति हुई। मनोविज्ञान की परिभाषा भी 'मानव आचरण-अध्ययन-शास्त्र' के रूप में परिवर्तित हो गई। विशेष दशाओं में प्रति-लक्षित बाह्य व्यंजकों का विस्तृत अध्ययन मनोविज्ञानियों ने किया। भारतीय मनीषियों की दृष्टि अनुभावों के प्राय: सभी संभव कारणों की ओर रही है जिनका समावेश उन्होंने अपनी परिभाषाओं में किया है। साथ ही महत्त्वपूर्ण प्रसंग यथा शोक—दृष्टि तथा अश्रु आदि की सहेतुक तथा बाह्य व्यंजकों के आधार पर विस्तृत व्याख्या भी की है।

स्तम्भ तथा प्रलय—संज्ञाशून्य खड़ा रह जाना, सुधबुध न रहना। (स्तम्भ में शरीरगत चेष्टा होती रहती है किन्तु प्रलय की दशा में चेष्टा बिल्कुल नहीं होती तथा स्थिति पूर्ण संज्ञा शून्य हो जाती है) प्रलय, तथा स्तम्भ के संभव कारणों का उल्लेख करते हुए भरत ने बताया—

"हर्ष, भय, शोक, विस्मय, विषाद तथा रोषादि से स्तम्भ उत्पन्न होता है"[२]

श्रम, मूर्च्छा, मद, निद्रा, प्रहार, मोह आदि से प्रलय उत्पन्न होता है"[३]

इन दशाओं का अध्ययन करते हुए एफ. ए. लण्ड ने बताया कि जनसाधारण के विश्वास के प्रतिकूल मानसिक गम्भीर उदासीनता अश्रुशून्य होती है।[४] प्रलय की दशा में मनोवैज्ञानिक अध्ययन की यह विशेषता स्वाभाविक है।—यह स्पष्ट है।

वैवर्ण्य—के कारणों का अध्ययन करते हुए भरत ने बताया शीत, क्रोध, भय,

---

१. 'Much recent research in physiology and psychiatry has confirmed the familiar belief that the autonaumic nervous system and the ductless glands play important parts in emotional responses.'
—The Encyclopeadia of Psychology, 1946 Ed. Page 134.

२. "हर्षभयशोकविस्मयविषादरोषादिसंभवः स्तम्भः"—ना० शा० ७–९६ पृष्ठ ३७५ गायकवाड़ ५६

३. "श्रममूर्च्छामदनिद्राभिघातमोहादिभिः प्रलयः"—ना० शा० ७–९९ वही

४. "Contrary to common belief, the deep depression of Psychotic individual is tearless."
Emotion in Men & Animal. Page. 258 Ed. 47

रोग, क्लमताप से उत्पन्न वैवर्ण्य होता है।[१] मार्शल ने इस सम्बन्ध में बाह्य व्यंजकों का सूक्ष्म अध्ययन किया है। उन्होंने लिखा है—

..... लेकिन जब क्षति पूर्ण न होने वाली होती है वास्तविक शोक उसी समय उत्पन्न होता है। इस अवसर पर रक्त संचार शिथिल पड़ जाता है, चेहरा पीला तथा स्नायु ढीले पड़ जाते हैं, पलकें लटक जाती हैं, सिर संकुचित वक्ष पर लटक जाता है तथा ओठ, गाल एवं नीचे का जबड़ा स्वयं अपने भार से नीचे को झुक जाते है ....[२]।

इस प्रसंग में रुक्मीक द्वारा किया गया अध्ययन और भी विस्तृत है। पीड़ा या शोक के अन्तर्गत मुख के संभावित बाह्य व्यंजकों का सूक्ष्म विवरण उनके अनुसार निम्न लिखित है—[३]

माता तथा भ्रू	उठी हुई, गाँठें पड़ी हुई, बाहर तथा नीचे की ओर वक्र ; समतल तथा खड़ी सिकुड़न।
नेत्र	अंशतः या पूर्ण बन्द (अश्रु)।
नासिका	दबी हुई, फैली हुई।
मुख	नीचा, खुला तथा टेढ़ा (कराहने में)।

१. "शीतक्रोधभयश्रमरोगक्लमतापजं च वैवर्ण्यम्।"—ना० शा० ७–६८

२. But when the loss is felt to be irreparable then real sorrow comes upon us, then the circulation becomes linguid, the face pale, the muscles flacid, the eyelids droop, the head hangs on the contracted chest, the lips, cheeks lower jaw all sink downwards from their own weight.—Encyclopeadia of Psychology —1946 Ed. P. 138.

३. Outline of facial Expressions.—Pain and Grief.

Brows and forehead.	Raised, knitted.—Oblique out & down wrinkles—Horizontal and vertical.
Eyes	Partly or fully closed. (tears)
Nose	Compressed (thinned) elogated.
Mouth	Lowered. open and skewed (ingroanning)
Lips	Depressed at corners. Lower lips trembling.
Lower jaw	Dooping.
Head	Sunk forward.

ओठ	किनारों पर झुके हुए, नीचे का ओठ काँपता हुआ।
नीचे का जबड़ा	लटका हुआ, शिथिल।
सिर	आगे की ओर झुका हुआ।

अश्रु के संभावित कारणों पर प्रकाश डालते हुए भरत ने लिखा है—

"आनन्द, अमर्ष, धूम, अंजन, जम्हाई, भय, शोक, अनिमेष देखने, शीत तथा रोग से अश्रु उत्पन्न होते हैं।"[1]

उत्तररामचरित में भवभूति ने अश्रु एवं प्रलाप को जीवन धारण के लिए हितकर बताकर आधुनिक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों की ओर संकेत किया है।[2]

आधुनिक-मनोवैज्ञानिकों के अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि—

"शोक, वासनागत स्मृति के द्वारा कम होने पर, दया, किसी उत्तेजक तथ्य द्वारा सान्त्वना प्राप्त करने पर तथा दुखान्त सुखान्त के समन्वय के समय अश्रुमोचन संभव हो सकता है।

यह केवल क्षति या शोक नहीं है जो अश्रुमोचन का कारण हो प्रत्युत दुःखद दशा में किसी सुखद परिस्थिति की उपस्थिति ही अश्रुमोचन का अविलम्ब अवसर होता है। उदाहरणस्वरूप दाहकर्म में अश्रु उस समय आते हैं जिस समय मृत व्यक्ति का गुण-कथन किया जाता है—वह अपनी संतान के श्रेष्ठ पिता थे, एक उदार हृदय नागरिक थे, आदि-आदि।[3]

---

१. "आनन्दामर्षाभ्यां धूमाञ्जनजृम्भणाद्भयाच्छोकात्।
अनिमेषप्रेक्षणतः शीताद्रोगाद्भवेदश्रु" ॥—ना० शा०—७—९७, पृष्ठ ३७९ गायकवाड़ ५६

२. "पूरोत्पीडे तटाकस्य परीवाहः प्रतिक्रिया।
शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते" ॥—उ० रा० ३—२९ वही
"स्वयं कृत्वा त्यागं विलपनविनोदोऽप्यसुलभ
स्तद्याप्युच्छ्वासो भवति ननु लाभो हि रुदितम्" ॥—उ०—रा० ३—३० वही
(स्वयं, त्याग करके विलाप कर जी बहलाना ही दुर्लभ है, तो भी अभी तक प्राण धारण हो रहा है। निश्चय ही रोना भी जीवन धारण के लिए लाभ स्थानीय ही है।)

३. '..... It is not merely loss or bereavement which brings tears. Rather it is the presence of some alevating or happy circumstances within an otherwise distressing situation which is the immediate occasion for tears.

At a funeral, for example, tears flow when the speaker eulogizes the deceased by saying that he was a fine father to his children, a great hearted citizen, and so on and so forth.........'

—Emotion in Man & Animal by P. T. Young. 1947 Ed. Page. 138

अश्रु मोचन के समय संभावित बाह्य व्यंजकों का अध्ययन डारविन द्वारा किया गया है। उन्होंने निम्नलिखित तथ्यों की ओर संकेत किया है—

"भौंहों की सिकुड़ने वाली स्नायु सिकुड़ती हैं जिससे भौहें अन्दर तथा नीचे की ओर खिचती हैं। इससे भ्रूभंग-गत सीधी दरारें पड़ जाती हैं। साथ ही माथे के आरपार टेढ़ी सिकुड़न अदृश्य हो जाती है। भौंहों के सिकुड़ने के साथ-साथ आँखों के चारों ओर के स्नायु भी सिकुड़ते है तथा आँख के चारो ओर सिकुड़न पैदा करते हैं। तब नाक की पिरामिड जैसी स्नायु सिकुड़ती है तथा भौहें तथा माथे की त्वचा को और नीचे की ओर खींचती है जिससे नासिका के आधार पर काटती हुई सिकुड़न पड़ जाती है। ऊपरी ओष्ठ के स्नायु भी सिकुड़ते है तथा ओठ को ऊपर उठा देते है। इस क्रिया से कपोलों का मांस ऊपर को खिच जाता है जिससे कपोलों पर तह पड़ जाती है जो नथनों से मुख के किनारों तथा नीचे तक जाती है।"[1]

इस प्रकार अश्रुमोचन के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि यह शोक-शमन का एक प्राकृतिक साधन है जिसके द्वारा शोकाकुल प्राणी का जीवन रक्षा संभव हो जाती है। मनोवैज्ञानिक खोज ने अश्रुमोचन के लिए दु:खद एवं सुखद परिस्थितियों का समन्वय अपेक्षित बतलाया है। समन्वय के इस सिद्धान्त को प्रसंग में नवीन प्रगति कह सकते हैं।

स्वर-भंग—के अन्तर्गत गला भर आना, स्वर का गद्‌गद्‌ होना तथा वाणी की अस्पष्टता आदि आते है। भरत ने स्वरभंग के लिए सम्भावित कारणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह भय, हर्ष, क्रोध, जरा, शोक, रोग, मद से उत्पन्न होता है।[2]

मनोवैज्ञानिक अध्ययन के अन्तर्गत बताया गया है कि ग्रीवा के समीप भोजन नली के सिकुड़ने के कारण स्वर-भंग हो जाता है। वाणी का प्रकाशन शारीरिक अवयवों के साथ-साथ मानसिक सहयोग पर भी आधारित है। इन दोनों का सहज समन्वय ही वाणी के प्रकाशन की सफलता है। शोक-दशा में इन दोनों अंगों में

---

१. The corrugator muscles of the brow contract, drawing the eye brows downward and inward to produce the vertical furrows of the frown and the simultaneous disappearance of the transverse wrinkles across the forehead. The orbicular muscles contract at the same time as corrugator and produce wrinkles around the eyes. The pyramidal muscles of the nose (procerus) contract and draw the eye brows and the skin of the forehead still lower down producing transverse wrinkles across the base of the nose. The muscles running to the upper lip contract and raise the lip. This action also draws upward the flesh of the cheeks producing a fold on each cheek from near the nostrils to the corners of the mouth and below.

—Emotion in Man and Animal, Ed. 1947, Page 256

२. "स्वरभेदो भयहर्षक्रोधजरारौक्षयरोगमदजनितः"।

विषमता उत्पन्न हो जाती है। इसलिए स्वरभंग आवश्यक हो जाता है।[1]

रसानुभूति की दृष्टि से स्वरभंग तथा प्रलाप विशेष महत्त्वपूर्ण है। अश्रुमोचन तथा अश्रुरहित गंभीर शोक, स्तम्भ तथा प्रलय की स्थिति में वाह्य अभिव्यंजकों के अभाव में एक मूक-दृश्य उपस्थित हो जाता है जिसे सामाजिक चुपचाप देख सकता है किन्तु स्वर-भंग तथा प्रलय के समय सामाजिक का हृदय सहज ही द्रवीभूत हो जाता है।

कम्प— इसके संभावित कारणों का उल्लेख करते हुए किसी प्रकार शोक छूट गया है। भरत ने केवल शीत, भय, हर्ष, रोष, स्पर्श तथा जरा को कम्प का कारण माना है।[2] शरीर-विज्ञान के अनुसार स्पष्ट है कि शारीरिक क्रिया के साथ मानसिक असहयोग के कारण कम्प उत्पन्न होता है तथा शोकाभिभूत मानव-मानस शारीरिक क्रियाओं के नियंत्रण को खो बैठता है। इस प्रकार शोक निश्चित रूप से कम्प का एक कारण ठहरता है। इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि—

"कंकाल सम्बन्धी स्नायु दुर्बल तथा शिथिल पड़ जाते है। शारीरिक आसन बदल जाते हैं। मोड़ने वाले स्नायु फैलने वाले स्नायुओं पर प्रधानता पा लेते हैं जिस रूप में हम साधारणतया एक व्यक्ति को शोकाक्रान्त कहते हैं।"[3]

स्वेद— शरीर से पसीना निकलना। स्वेद की उत्पत्ति के सम्बन्ध में छांदोग्य उपनिषद् में एक आध्यात्मिक कारण दिया हुआ है। "मैं बहुत हो जाऊँ तथा अनेक प्रकार उत्पन्न होऊँ" इस भावना से तेज उत्पन्न हुआ। फिर तेज ने भी इसी प्रकार की इच्छा की तथा तेज से जल उत्पन्न हुआ। इसी कारण आन्तरिक रूप में मनोवेग के कारण तेज के प्रताड़ित होने से स्वेद निकलने लगता है। वाह्य रूप में सूर्य अथवा

---

१. "In grief there are other bodily changes as well—
'The lump in the throat'—can be referred to a contraction of smooth muscles in the al'mentary canal at the level of throat.

—Emotion in Man and Animal, Ed. 47, Page 254.

२. "शीतभयहर्षरोषस्पर्शजरारोगजः कम्पः"।—7-96 पृष्ठ 375 मा० शा० गायकवाड़' 56

३. "The skeletal muscles are weak and flabby. The bodily posture is altered. The flexor muscles dominate the extensors so that we commonly speak of the person as being 'bowed over' with grief. The grief-stricken widow for example box with head and shoulders bent, her eyes fixed on the ground, her step falters".

—Emotion in Man and Animal: Ed. 1947. Page 254

अग्नि का तेज भी स्वेद का कारण होता है।[1]

स्पष्ट है कि इस रूपक द्वारा शरीर विज्ञान के तथ्यों की ओर संकेत किया गया है। शरीर विज्ञान के अनुसार-वायु-कोष की गति के अनुसार रक्त-प्रवाह की गति में अन्तर पड़ता है तथा चित्त का बाह्य जगत से सम्पर्क होने के परिणामस्वरूप अनुभूति (प्रवृत्यात्मक या निवृत्यात्मक) का भार वायुकोष पर पड़ता है। इस भार से वायुकोष तथा वायुकोष से रक्त-प्रवाह में आधिक्य अथवा कमी आ जाती है जो वास्तव में विशेष परिस्थिति के लिए शरीर को प्रस्तुत करने का उपक्रम होता है। इस प्रकार रक्त प्रवाह की साधारण सम-अवस्था में व्यतिक्रम ही स्वेद का कारण है।

शोकानुभूति के अन्तर्गत स्वेद प्रायः उसी समय प्रकट होता है जिस समय शोक प्रकटीकरण के अन्य साधन प्रलाप, अश्रु आदि किसी प्रकार क्रियाशील नहीं हो पाते।

संचारीभाव—रस के सहकारी कारण समझे जा सकते हैं। ये स्थायीभाव को बल देकर विलीन हो जाते हैं। जल के बुद्बुद् की भाँति यह प्रकट तथा विलीन होते रहते हैं तथा विद्युत् चमक की भाँति क्षणिक ज्योति प्रकाशित कर अदृश्य हो जाते हैं।

संचारीभाव मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित हैं।[2] अतएव संक्षेपतः कहा जा सकता है कि करुण रस के संचारी भाव—

अ—शोक के कारण उत्पन्न शारीरिक विषम अवस्था के शमन के उपकरण तथा अविलम्ब समअवस्था प्राप्त कराने के प्राकृतिक साधन हैं।

आ—भावावेश दशा में—अतिरिक्त शक्तिप्रवाह के स्रोत हैं।

इ—स्थायीभाव शोक की निष्पत्ति के अपेक्षित कारण हैं।

संचारीभावों की गति, संप्राप्ति तथा प्रभाव के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक अध्ययन निम्नलिखित तथ्यों का उद्घाटन करता है।[3]

---

१. छांदोग्य उपनिषद्(६,२,३)
"तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तत्तेःजोऽसृजत
तत्तेज ऐक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत
तस्माद्यत्र क्व च शोचति स्वेदते वा पुरुषस्तेजस
एव तद्व्यापो जायन्ते।"

२. Emotional excitement is often free from disruption. Everyone has heard an account of some body who in the face of danger acted wisely and with a very high energy expenditure, thus saving the situation from total disaster. —P. T. Young. Emotion in Man and Animal, P. 32 Ed. 1947.

३. The thought processes move much more rapidly than under normal conditions. Ideas and possible courses of action occur to the subject in great number; some are accepted and others rejected.—P. T. young

अ—भावावेश दशा में मानसिक क्रियाशीलता अति तीव्र हो जाती है। सार्थक एवं निरर्थक संचारी वेग के साथ उदय तथा लय होते रहते हैं।

आ—संचारीभावों के उदय एवं अस्त में किसी विशेष क्रम अथवा व्यवस्था को कोई स्थान नहीं मिलता।

इ—संचारी भावों की संप्राप्ति आलंबन एवं आश्रय के संस्कार, अनुभूति की गंभीरता तथा विशेष वातावरण के प्रभाव के अन्तर्गत होती हैं। इसीलिए व्यष्टि को दृष्टिगत रखते हुए संचारी भावों की संप्राप्ति में विभिन्नता भी संभव है।

ई—भावावेश दशा में संयत विचार शक्ति तथा अध्ययन की प्रगति अवरुद्ध हो जाती है।

प्रकरण के अनुकूल यहाँ संक्षेपतः करुणरस के संभावित संचारी भावों की शास्त्रीय व्याख्या पर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है। करुण रस के अन्तर्गत साधारणतया निम्नलिखित संचारीभाव आते हैं—[1] निर्वेद, ग्लानि, विषाद, चिन्ता, मोह, स्मृति, भ्रम, दैन्य, आलस्य, शंका, औत्सुक्य, भय, आवेग, त्रास, व्याधि, अपस्मार, उन्माद, जड़ता, मरण, आदि।

निर्वेद—इष्टनाश तथा वियोगादि के कारण उत्पन्न होता है। इसके अन्तर्गत उदासीनता, दीनता, दीर्घोच्छ्वास, विवर्णता, अश्रु आदि अनुभाव होते हैं। निर्वेद

---

१. रस व्यापकता के आधार पर रसों में उत्तम, मध्यम आदि विभाजन अथवा रसराज का निर्णय यहाँ अपेक्षित नहीं है। साथ ही इस द्वन्द्व में मेरी आस्था भी नहीं है। इस प्रयत्न में प्रायः रस विशेष के अन्तर्गत अधिक से अधिक संचारी भावों की व्यापकता का दिग्दर्शन कराने के सफल-असफल प्रयास भी हुए हैं। ऐसा प्रयास भी यहाँ अभीष्ट नहीं है। साथ ही यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है कि किसी विशेष रस के लिए विशेष संचारियों की संख्या निर्धारित करना भी भूल है। प्रसंगानुकूल सभी संचारी रस-विशेष के अन्तर्गत आ सकते हैं। कुछ विद्वानों ने प्रयुक्त या संभावित संचारी भावों की संख्या की दृष्टि से ९ रसों की स्थिति का दिग्दर्शन कराया है। आवृत्ति के संदर्भ में इस प्रकार का कार्य स्तुत्य कहा जायगा अन्यथा केवल रसों की महत्ता प्रकट करने के लिए इस प्रकार का परिश्रम मैं अनावश्यक ही समझता हूँ।

रस	प्रयुक्त या संभावित संचारी भाव	रस	प्रयुक्त या संभावित संचारी भाव
श्रृङ्गार	२९	वीर	६
करुण	११	वीभत्स	५
भयानक	१०	अद्भुत	४
रद्रौ	८	हास्य	३

शांत रस का स्थायीभाव भी होता है किन्तु उस दशा में निर्वेद वैराग्यजन्य होता है।

ग्लानि—शारीरिक कष्ट तथा मानसिक असह्य संताप के कारण उत्पन्न होती है। इसके अन्तर्गत विवर्णता, उत्साह आदि अनुभाव होते हैं।

विषाद—अनिष्ट प्राप्ति, पराभव एवं पराजय, बन्धन आदि के कारण निरुत्साहित होना विषाद कहलाता है। इसमें संताप, दीर्घोच्छ्वास आदि अनुभाव होते हैं।

चिन्ता—अनिष्टप्राप्ति से उत्पन्न चित्तवृत्ति की व्याकुलता चिन्ता कहलाती है। चित्त की शून्यता, कृशता, अधोमुखता, निरर्थक विचारों में लीन होना आदि अनुभाव होते है।

मोह—शोक संतप्त दशा में चित्त का विक्षिप्त होना, वस्तु का यथार्थ ज्ञान न रहना मोह कहलाता है। इसके अन्तर्गत चेतनाहीनता, चित्त का भ्रमित होना आदि अनुभव आते हैं।

स्मृति— पूर्व अनुभूत दुःख तथा कष्टादि का स्मरण स्मृति के अन्तर्गत आता है। प्रियसुखानुभूति का अभाव भी करुण का स्मृति संचारी बन जाता है।

भ्रम—शोक के कारण वस्तु के यथार्थ ज्ञान का न होना, भ्रम है। भ्रमवश किसी वस्तु को कुछ और समझ लेना आदि इसके अनुभाव हैं।

दैन्य--अपनी हीन दशा का प्रकाशन तथा अपनी असहायावस्था के कारण अपनी विवशता पर कातर होना दैन्य कहलाता है। इसके अन्तर्गत विवर्णता, मनस्ताप आदि अनुभाव आते है।

आलस्य—दुःख एवं कष्ट के कारण कार्य-विमुख होना आलस्य कहलाता है। इसके अन्तर्गत एक स्थान पर स्थिर रहना, कार्य-उपेक्षा आदि अनुभाव आते है।

शंका—अनिष्ट की आशंका से उत्पन्न होती है। इसके अन्तर्गत विवर्णता, स्वरभंग, कम्प आदि अनुभाव आते हैं।

औत्सुक्य—कष्टमुक्ति, प्रियजन की प्राणरक्षा आदि के लिए किए गए साधनों द्वारा उत्पन्न आशा के रूप में औत्सुक्य का उदय होता है किन्तु इस रूप में करुण रस की अनुभूति के स्थान में विप्रलम्भ की अनुभूति को ही विशेषकर प्रश्रय मिलता है।

भय—शाप आदि से पूर्व भयभीत तथा त्रसित होना भय संचारी के अन्तर्गत आता है। इसमें कम्प, मुख पीला पड़ना आदि अनुभाव होते हैं।

आवेग—अप्रिय एवं अनिष्टजन्य समाचार से उत्पन्न चित्त-विकलता आवेग कहलाती है। इसके अन्तर्गत विस्मय, स्वेद, विवर्णता, अनुभाव आते हैं।

त्रास—शापित व्यक्ति की चित्तव्यग्रता त्रास कहलाती है। इसके अन्तर्गत चित्तसंताप अंगों की शिथिलता आदि अनुभाव आते हैं।

व्याधि— वियोगसंतप्त मन का संताप व्याधि कहलाता है। इसमें [illegible] ताप आदि अनुभाव होते हैं।

अपस्मार—शोक संतप्त होकर मृगी रोग की सी दशा होना—अपस्मार कहलाता है। इसके अन्तर्गत दीर्घश्वास, पृथ्वी पर संज्ञाशून्य गिरना, मुख से झाग आदि का निकलना आदि अनुभाव होते हैं।

उन्माद—शोकाकुल होकर चित्त का भ्रमित होना उन्माद कहलाता है। इसके अन्तर्गत निरर्थक रोना, गाना, हँसना आदि अनुभाव होते हैं।

जड़ता—इष्टनाश तथा अनिष्ट प्राप्ति की दशा में किंकर्तव्य विमूढ़ होना जड़ता है। इसके अन्तर्गत मौन, निर्निमेष भाव से देखना आदि अनुभाव होते हैं।

मरण—मृत्यु से पूर्व की अति वेदना पूर्ण दशा का वर्णन मरण संचारी के अन्तर्गत आता है। प्रियजनों के आतुर एवं शोकार्त्त होने से मरण की व्यंजना होती है।

स्थायीभाव शोक

स्थायीभाव के संबंध में आचार्यों के निम्नलिखित विचार हैं—

अ—जिस प्रकार मनुष्यों में राजा, शिष्यों में गुरु श्रेष्ठ होता है उसी प्रकार सब भावों में स्थायीभाव महान होता है।[1]

आ— सब भावों में जिसका रूप व्यापक हो उसे स्थायी भाव मानना चाहिए तथा शेष भावों को संचारी।[2]

इ—स्थायीभाव आस्वादांकुर के मूल रूप हैं तथा अविरुद्ध अथवा विरुद्ध भाव इनको मिटा नहीं सकते। वे स्वयं इनमें लय हो जाते है।[3]

ई—स्थायी भावों की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि वे जिस रूप में आश्रय में प्रकट होते हैं उसी रूप में सहृदय भी उनका अनुभव करता है।[4]

ई—जो विरुद्ध अथवा अविरुद्ध भावों से नष्ट नहीं होते प्रत्युत अन्य सब भावों को अपने आप में लय करके स्थित बने रहते है वे ही समुद्र के समान स्थायी, स्थायीभाव होते हैं।[5]

---

१. "यथा नराणां नृपति. शिष्याणां च यथा गुरुः
एवं हिसर्वं भावानां भावः स्थायी महानिह ॥"—ना० शा० ७-८ पृ० ३५० गायकवाड़' ५६

२. "बहूना समवेतानां रुपं यस्य भवेद्बहु
स मन्तव्यो रसः स्थायी शेषाः संचारिणो मताः।"
"बहूनां चित्तवृत्तिरुपाणां भावानां मध्ये यस्य बहुलं रुपं
यथोपलभ्यते स स्थायी भावः।"

३. "अविरुद्धा विरुद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः
आस्वादांङ्कुर रूपोऽसौ भावः स्यायीति सम्मतः।"—सा० दर्पण ३/७४ वही पृ० २३१

४. वाङ्मय विमर्श—आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रथम संस्करण, पृष्ठ १४७

५. "विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न यः
आत्मभावं नयत्याशु स स्थायी लवणाकरः।" दशरुपक ४/३४"

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि स्थायीभाव व्यापक एवं प्रभावशाली होते हैं।

आस्वादांकुर के मूल रूप हैं। वासनागत रूप में सामाजिक के पास होते हैं तथा आश्रय से उनका तादाम्य हो जाता है। अभिनवगुप्त ने स्थायीभाव को वासना (सहज प्रवृत्ति तथा क्षुधावासना)—संवित् (जन्मजातवृत्ति) तथा चित्तवृत्ति (मनोवस्था)—इन तीन शब्दों से अभिहित किया है।

स्थायीभाव के व्यापक तथा प्रभावशाली रूप के संबंध में मनोविज्ञान का कोई तुलनात्मक अध्ययन उपलब्ध नहीं है। मनोविज्ञान ने भावों की व्यापकता तथा प्रभुविष्णुता के आधार पर मूल प्रवृत्तियों की उद्भावना अवश्य की है जिनके सबंध में भी सब एक मत नहीं हैं किन्तु उनसे यह तो स्पष्ट है कि भावों में व्यापकता एवं गंभीरता के आधार पर अन्तर अवश्य होता है।

स्थायीभाव शोक मूलप्रवृत्तियों की दृष्टि से आर्त्त-प्रार्थना (Appeal) तथा आधीनता स्वीकृति (Submission) के अन्तर्गत आता है। यह प्रवृत्तियाँ सहज वृत्ति के रूप में मानव स्वभाव में जन्म से ही दृष्टिगोचर होती हैं। जन्म के पश्चात् आर्त्त-प्रार्थना ही प्रथम भाव होता है जिसका अनुभव नवजात शिशु करता है। जीवन के आपद्-ग्रस्त क्षणों में आर्त्त-प्रार्थना सहजरूप में प्रकट हो जाती है। अपनी शक्ति की परिमिति तथा अपनी असहायावस्था के अन्तर्गत आधीनता-स्वीकृति का उदय होता है। भौतिक जगत की परिस्थितियों के अन्तर्गत इस प्रवृत्ति का रूप इतना स्वाभाविक हो गया है कि यह भी सहज-वृत्ति के रूप में प्रतिलक्षित होती है। अपने से शक्तिशाली की आधीनता स्वीकृति बिना किसी ननु नच के एक स्वाभाविक बात बन गई है।

पुनश्च आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने भावों के दो भेद किए हैं—मूल और तद्भव। मूल भावों के अन्तर्गत वे भाव लिए हैं जिनकी अनुभूति किसी दूसरे भाव की पूर्वानुभूति के आश्रित न हो जैसे—क्रोध, भय, आनन्द, शोक, आश्चर्य। तद्भव भावों के अन्तर्गत वे भाव लिए हैं जिनकी अनुभूति दूसरे भाव की अनुभूति के आश्रय से उत्पन्न हो जैसे—दया, कृतज्ञता, पश्चाताप आदि। मूल भावों के उपर्युक्त वर्गीकरण में शोक और आनन्द दोनों को स्थान दिया गया है किन्तु साहित्य में केवल शोक को लिया गया है। इस अन्तर का स्पष्टीकरण आचार्य शुक्लजी ने निम्नलिखित शब्दों में किया है जिससे स्थायी भाव शोक की व्यापकता स्पष्ट रूप से प्रकट होती है—

"आधुनिक मनोविज्ञानियों ने क्रोध, भय, आनन्द और शोक को मूल भाव कहा है। इसमें से साहित्य के 'भावों' की गिनती में आनन्द को छोड़ और सब आ गए है। शोक के रखे जाने और आनन्द के न रखे जाने का कारण क्या है? इसका एकमात्र उत्तर यही हो सकता है कि 'रसविधान' की दृष्टि से ऐसा किया गया है। साहित्यिकों का सारा भाव-निरूपण रस के विचार से किया गया है। आश्रय के जिस भाव की व्यंजना से श्रोता या दर्शक के चित्त में भी आलम्बन के प्रति वही भाव

साधारण्याभिमान से उपस्थित हो सकता है उसी को रस का प्रवर्तक मान कर आचार्यों ने प्रधान भाव की कोटि में रखा है। इस बात को अच्छी तरह ध्यान में रखना चाहिए। शोक का आलम्बन ऐसा होता है कि वह मनुष्य मात्र को क्षुब्ध कर सकता है पर आनन्द में यह बात नहीं है। किसी अज्ञात और अपरिचित व्यक्ति को भी प्रिय के मरण आदि पर विलाप करते सुन, सुनने वालों की आँखों में आँसू आ जाते हैं पर किसी को पुत्र-जन्म पर आनन्द प्रकट करते देख राह चलते आदमी आनन्द से नाच नहीं उठते। किसी-किसी आनन्दोत्सव में उन्हीं का हृदय पूर्ण योग देता है जिससे उसका लगाव या प्रेम होता है, पर किसी के शोक में योग देने के लिए मनुष्य-मात्र का हृदय प्रकृति द्वारा विवश है, इसीसे आनन्द को रस के प्रधान प्रवर्तक भावों में स्थान न देकर आचार्यों ने "हर्ष" को केवल संचारी रूप में रखा है। इस युक्ति-पूर्ण विधान से उनकी सूक्ष्मदर्शिता का पता चलता है।"[१]

"शोक को लेकर विचार करने पर हमारा पक्ष बहुत स्पष्ट हो जाता। अपनी इष्ट-हानि या अनिष्ट प्राप्ति से जो 'शोक' नामक वास्तविक दुःख होता है, वह तो रसकोटि में नहीं आता, पर दूसरों की पीड़ा, वेदना देख जो 'करुणा' जगती है, उसकी अनुभूति सच्ची, रसानुभूति कही जा सकती है। 'दूसरों' से तात्पर्य ऐसे प्राणियों से है जिनसे हमारा कोई विशेष सम्बन्ध* नहीं। 'शोक' अपनी निज की इष्ट हानि पर होता है, और 'करुणा' दूसरों की दुर्गति या पीड़ा पर होती है। यही दोनों में अन्तर है। इसी अन्तर को लक्ष्य करके काव्यगत पात्र (आश्रय) की शोकपूर्ण व्यंजना द्वारा उत्पन्न अनुभूति को आचार्यों ने शोक-रस न कहकर 'करुण रस' कहा है। करुण ही एक ऐसा व्यापक भाव है जिसकी प्रत्यक्ष या वास्तविक अनुभूति सब रूपों में और सब दशाओं में रसात्मक होती है। इसीसे भवभूति ने करुण रस को ही रसानुभूति का मूल माना और अंग्रेज कवि शेली ने कहा कि "सब से मधुर या रसमयी वाग्धारा वही है जो करुण प्रसंग लेकर चले।" [२]

स्थायीभाव के वासनागत रूप के सम्बन्ध में भारतीय आचार्यों के विचारों के समान ही पाश्चात्य विद्वानों के विचार हैं। भारतीय आचार्यों ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि बिना रति आदि वासना के रस का आस्वादन ही सम्भव नहीं है।[३] महाकवि कालिदास ने भी वासना के सम्बन्ध में यही विचार प्रकट किए हैं। वह वासना को जन्मजन्मान्तरगत बताते हैं।

"मधुर शब्द सुनकर अथवा सुन्दर दृश्य देखकर मनुष्य व्याकुल हो उठता है। इसका कारण यही है कि वह निश्चय ही जन्मजन्मान्तर के प्रेमप्रसंगों को अनजाने

१. रस मीमांसा, पृष्ठ १९७ सं० २००७
२. चिंतामणि १९५६ पृष्ठ २५२
३. "न जायते तदास्वादो विना रत्यादिवासनाम्"।—३।३१ सा० दर्पण पृष्ठ ९५

ही भाव या वासना रूप में स्थिर होने के कारण स्मरण करता है।[1]

वासना के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों के निम्नलिखित विचार हैं—

मार्शल—"कला की यह प्रवृत्ति किसी एक या दूसरे रूप में साधारण पैत्रिक सम्पत्ति है। जो जाति के प्रत्येक सदस्य के लिए है—मैं समझता हूँ कि यह निर्विवाद सत्य है।"[2]

सले—"एक आलंबन की उपस्थिति के माध्यम द्वारा हमारी भाव-दशा की शक्ति न्यून अंशों में पुनः सचेतन हो जाती है जो इसका अंशतः प्रकाशन है। इस प्रकार हमारी (भूतकालीन) स्वयं अनुभूत पीड़ा अथवा दुःख के प्रकाशन के अंश से सम्बन्धित आलंबन की उपस्थिति के कारण एक मनुष्य को अश्रुपूर्ण नेत्र देखकर हमको भी मानसिक क्लान्ति हो उठती है।[3]

अब तक फ्राइड के सिद्धान्तों के प्रवर्तक अनुयायी मन के अचेतन भाग में केवल दूषित प्रवृत्तियों का संघटन मानते थे। किन्तु जुंग ने इससे आगे खोज कर सिद्ध किया कि हमारा अचेतन मन अमर बीज भूमि है जो प्राचीन प्रतीकों से अपने आपको प्रकाशित करता है और इन प्रतीकों के द्वारा आत्मा की नवीनता को प्रकट करता है। तत्त्वत. हमारे पूर्वजों के असंख्य अनुभवों से उद्भूत यह एक पौराणिक मूर्ति है। इनमें से प्रत्येक में मानव-मनोविज्ञान का एक अंश तथा मानव भाग्य विधा है। पीड़ा एवं आल्हाद का जो असंख्य बार हमारे पूर्वजों की गाथा में संभावित हुए हैं यह

---

१. रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्य्युत्सुकी भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि"।—शकु० ५।९

२. 'That this art impulse in one form or another is common heritage for all members of our race is, I think true without doubt.

—Pain Pleasure and AEsthetics by A. H. Marshal, Page 100

३. The process of sympathy in its most general form may be described as the revival in a lower degree of strength of a affective state through the medium of a presentation answering to a part of its reflex discharge or manifestation. Thus depression on seeing a person in tears is due to the presence of a presentation corresponding to a part of the manifestation of a pain and grief as experienced in our own case.

—Human Mind by James Sulley, Page 108, Ed 1892

एक अवशेष है। इसलिए संगृहीत अचेतन सब प्रकार की कला का मूलस्रोत है।[1]

शरीर-विज्ञान के अनुसार स्थायीभाव शोक का विश्लेषण

कालकिन ने भावानुभूति का अध्ययन शरीर-विज्ञान की दृष्टि से किया है। यह अध्ययन अनुभूति की शरीरगत आन्तरिक प्रगति एवं क्रियाशीलता का विश्लेषण एवं प्रकटीकरण करने के साथ अनुभूति के वैज्ञानिक रूप का भी उद्घाटन करता है।

पुत्र के मृत शरीर को आलंबन मान लिया जाय तो सबसे प्रथम मूर्तिपट पर आलंबन का प्रभाव पड़ेगा। मूर्तिपट से पश्चकपाल-खण्ड प्रभावित होता है। पश्च-कपाल-खण्ड का सम्बन्ध अन्य संवेदन केन्द्र तथा रोलेण्डिक क्षेत्र से है। इसलिए पश्चकपाल-खण्ड के पश्चात् अनुभूति का प्रभाव अन्य संवेदनकेन्द्र तथा रोलेण्डिक क्षेत्र पर पड़ता है। रोलेण्डिक क्षेत्र मस्तिष्क-पुच्छ से जुड़ा हुआ है। अतएव रोलेण्डिक क्षेत्र के पश्चात् अनुभूति मस्तिष्क-पुच्छ को प्रभावित करती है जहाँ एच्छिक तथा अनै-च्छिक पेशियाँ संचालित हो उठती है तथा अनुभूति अन्तांग रोलेण्डिक क्षेत्र को प्रभा-वित करने लगतीं है जो अन्तांग ललाट खण्ड से जुड़ा हुआ होता है। अतएव अनुभूति ललाटखण्ड में पहुँच कर बाह्य व्यंजकों का सृजन करती है तथा इन बाह्यव्यंजकों द्वारा ही अनुभूति का प्रकटीकरण गोचर हो जाता है।

कहना न होगा कि अनुभूति का आन्तरिक रूप अति गतिशील होता है तथा मूर्तिपट से ललाट-खण्ड तक अनुभूति क्षणमात्र में पहुँच जाती है। इस प्रकार अनुभूति की आन्तरिक प्रगति के साथ सम्पूर्ण स्नायु-मण्डल जाग्रत एवं सचेतन हो जाता है। इस रूप में अनुभूति द्वारा उपस्थित विजातीय विषम अवस्था से क्षुब्ध स्नायुमण्डल अविलम्ब स्वस्थ एवं सम अवस्था प्राप्त करने का स्वतः ही प्रयत्न करता है तथा अनुभूति को मूर्तिपट से प्राप्त कर अविलम्ब बाह्यव्यंजकों द्वारा निकाल देता है। इस प्रकार इन बाह्यव्यंजकों द्वारा विषम अवस्था का विरेचन होकर पुनः सम अवस्था प्राप्त हो जाती है। जिसको प्राप्त करना शरीर का स्वाभाविक धर्म है।

कालकिन ने अपने इस अध्ययन द्वारा निश्चय ही अनुभूति के तथ्यों के

---

१. ......The unconscious is not only the receptacle of all unclean spirits, but is in particular the one ever living seed ground which manifest itself through ancient symbolical images, and yet by means of these images, points to a renewal of spirit. Essentially therefore it is mythological figure resultant of countless experiences of our ancestors. Each of these contains a piece of human psychology and human destiny, a relic, of suffering and delight that has happened countless time in our ancestoral story. So the "collective unconscious" is the main source of all types of arts."

—'Art Symbolism' Indian Journal of Psychology. Vol XXIV 1949, Page 122.

स्पष्टीकरण में विशेष योग दिया है। कालकिन के इस अध्ययन का रेखाचित्र पृष्ठ ६१ पर दे दिया गया है।

स्थायीभाव शोक के सम्बन्ध में पाश्चात्य दृष्टि

हेगल ने स्थायीभाव शोक का सूक्ष्म अध्ययन किया है तथा अपने अध्ययन के आधार पर स्थायीभाव शोक से सम्बन्धित प्रायः सभी तथ्यों का विस्तृत विवरण दिया है। हेगल के इन विचारों को यहाँ देख लेना आवश्यक होगा। इन विचारों द्वारा शोक की व्यापकता, प्रभविष्णुता तथा चरित्र निर्माण के लिए आवश्यकता आदि तथ्यों पर अपेक्षित प्रकाश पड़ सकेगा। हेगल के विचारों का भाव निम्नलिखित है—

"......कला में किसी प्रकार हम उससे द्रवित हो सकते हैं जिसके अन्तर्गत शोक की प्रामाणिक अभिव्यक्ति होती है...निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि न तो सुखान्त और न दुःखान्त में शोक वह हो जो केवल किसी की मूर्खता है अथवा व्यक्तिगत सनक है। उदाहरणतः शेक्सपियर का टिमन शुद्ध भौतिक आधार पर मानव-द्रोही व्यक्ति है। उसके मित्रों ने उसको चूस लिया है, उसके संग्रह को समाप्त कर चुके हैं और जब उसको उनके धन की आवश्यकता हुई तो वे उसको छोड़कर चले जाते हैं। परिणामतः वह मानवता का कट्टर शत्रु बन जाता है। यह स्थिति प्रकृति के अनुकूल है तथा विचारणीय है किन्तु इसके अन्तर्गत शोक की अभिव्यक्ति नहीं हुई है जिसको सिद्धान्तों के अनुकूल सिद्ध किया जा सके।[1]

दूसरी ओर यह टिप्पणी दी जा सकती है कि जहाँ तक वैज्ञानिक परिज्ञान मुख्य रूप से अपेक्षित है प्रत्येक वस्तु की शिक्षा, सत्य की प्रामाणिकता तथा अन्तर्दृष्टि पर आधारित है शोक की प्रामाणिक अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल विषय सामग्री नहीं हो सकती। विज्ञान के तथ्य इस भौतिकवाद के एक भाग हैं और यही कारण है कि विज्ञान एक विशेष प्रकार की शिक्षा, वैज्ञानिक विशेषरूपों के ज्ञान तथा इस दिशा में किए गए प्रयत्न एवं उनके पारस्परिक असाधारण प्रकार तथा विस्तार से सम्बन्धित महत्त्व के प्रकटीकरण को चाहता है। इस प्रकार के अध्ययन में रुचि किसी प्रकार भी सार्वजनिक रूप में मानवहृदयों पर प्रभाव नहीं डाल सकती प्रत्युत यह सीमित है

---

१. In art however, only that ought to move us which contains in itself the real impart of pathos.
.. ...We may affirm that neither in comedy nor in tragedy ought pathos to be that which is only folly or personal idiosyncracy. Shakespear's Timon, for example is on purely material grounds a misanthrope, his friends have eaten him up, consumed his substance and when he himself requires their gold desert him. He consequently becomes a passionate enemy of mankind. The situation both conceivable and consistant with nature, but it contains no pathos that can be justified on principles.
—Hegal : Philosphy of fine arts. Page 310
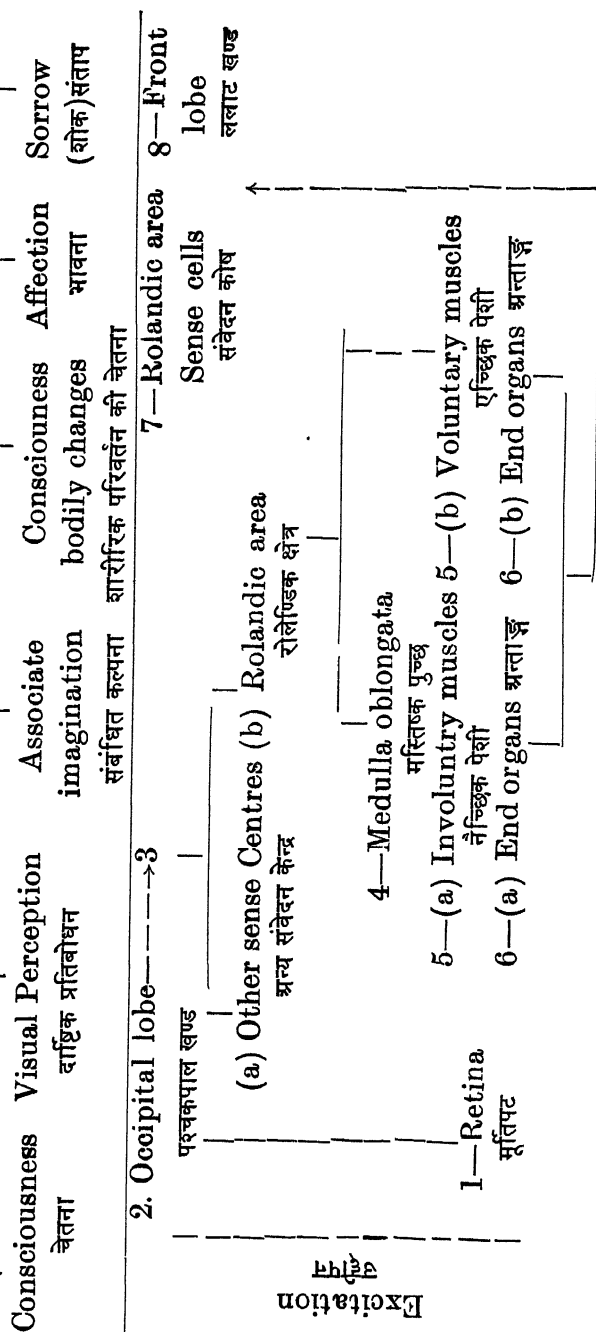
Object—Dead body of son
विषय—पुत्र का मृत शरीर

After Calkins scheme—
M. W. Calkins—A First Book of Psy., P 215. T14,
अनुवाद—डा० रघुवीर के अंग्रेजी से हिन्दी कोश के अनुसार

और सदा विज्ञान के भक्तों के संकुचित क्षेत्र में सीमित रहेगी।[१]

" यह और भी अधिक आवश्यक है कि कला द्वारा प्रत्येक प्रकार की शोकानुभूति आचार सम्बन्धी प्रत्येक तथ्य जो क्रियात्मक तथा अति आवश्यक रुचि के है मानव-हृदयों को सौंप दिए जाँय।[२]

...अब इस आवश्यकता के लिए अपेक्षित शोक अपनी अभिव्यंजना के लिए अभिव्यंजना की शक्ति के प्रकाशन का ही नही प्रत्युत पूर्ण विस्तार का भी अपेक्षी है। संक्षेपत: (इसको) अपनी अभिव्यक्ति को वाह्याकार देने तथा उसकी सर्वांग पूर्णता तक उठने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए।[3]

...आत्मा जो शोक का प्रकाशन करती है वह आत्मा होनी चाहिए जो अमित प्रवाह के लिए पूर्ण हो तथा जो अपने आपको असीम रूप में विस्तृत करने तथा अपने गुणों की अभिव्यंजना के योग्य हो।[४]

---

१. In another direction we may remark that everything which depends solely, that is to say, in so far as scientific apprehension is the main requirement, upon instruction, testimony to the truth, and insight of what is offered as such is no fit subject matter for the representation of a genuine pathos. The facts of scientific knowledge are a part of this material. And the reason of this is that science demands a particular form of education and efforts towards and knowledge of the specific forms of science and their relative importance of exceptional variety and extention, a interest in this type of study is by no means an universally moving influence in the hearts of men, but is limited and must ever remain limited to a narrow circle of votaries.

—Hegal : Philosophy of Fine Arts, Page 310-311.

२. It is all the more necessary that we should through art entrust every type of pathos to the human heart, every motive of ethical significance, which are of practical and vital interest.

—Hegel: Philosophy of Fine Arts, Page 312.

३. Now a pathos of this need requires for its display not merely the power of exposition, but also that of perfect cleboration. And what is more, the soul which entrusts to its pathos the spiritual wealth it possesses must be one with real wealth to dispose of, and not one that can rest in a condition of purely intensive selfconcentration. It must in short be ready to give an outward semblance to its self expression and rise to the finished perfection of that.

—Hegal : Phiosophy cf Eine Arts. Page 312.

४. The spirit which is to reveal to us pathos must be a spirit which is full to running over, which is able to spread itself adroad and give expression to its virtue.

—Hegal : Philosophy of Fine Arts, Page 312.

.. तब यह आवश्यक है कि शोक इसलिए कि अपने आप में ठोस हो जैसाकि आदर्शकला के लिए होना आवश्यक है अपनी कलापूर्ण अभिव्यक्ति में प्रकाशित होना चाहिए जैसे मानों शोक ठोस तथा सम्पन्न आत्म–प्रकृति से प्रवाहित हो रहा हो ।[1]

...मानव शोक में देवताओं की सृष्टि होती है तथा शोक अपने अधिक ठोस एवं क्रियात्मक रूप में मानव-चरित्र है ।[2]

हेगल के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शोक अति व्यापक तथा प्रभावशाली रूप में क्रियाशील होता है । करुण रस की अभिव्यक्ति मानव-मानस को शुद्ध एवं सात्विक बनाती है । इस प्रकार मानव-चरित्र निर्माण भी शोकानुभूति पर आधारित है । इसलिए शोक की आदर्श अभिव्यक्ति के लिए हेगल ने विशेष ज़ोर दिया है ।

हेगल के उपर्युक्त विचार भारतीय दृष्टिकोण के अन्तर्गत भी पूर्ण विकसित रूप में प्रकट हुए हैं । करुणरस के अन्तर्गत आध्यात्मिक शोक इस अवस्था का मूल आधार है जिसके द्वारा मानव चरित्र-गठन ही नही प्रत्युत मानव-जीवन का ध्येय ईश्वर-प्राप्ति भी पूरा होता है।[3]

---

१. That it is necessary that pathos, in order to be in itself concrete, as it should be in ideal pathos issuing from a spiritual nature, rich and comprehensive.
—Hegal : Philosophy of Fine Arts, Page 313

२. The Gods are born into pathos of man, and pathos in its more concrete form of activity is human character.
— Hegel : Philosophy Of Fine Arts, Page 314

३. उपाध्याय जी ने वैदेही-वनवास के वक्तव्य में तथा आचार्य शुक्ल ने चिन्तामणि में हेगल के विचारों के समान ही निम्नलिखित शब्दों में अपना मत प्रकट किया है—

"करुण रस द्रवीभूत हृदय का वह सरस प्रवाह है जिससे सहृदयता क्यारी सिंचित, मानवता फुलवारी विकसित और लोकहित का हरा-भरा उद्यान सुसज्जित होता है ।" — (वैदेही-वनवास)

'मनुष्य की प्रकृति में शील और सात्त्विकता का आदि सस्थापक यही (करुणा) मनोविकार है ।'

"मनुष्य के अन्तःकरण में सात्त्विकता की ज्योति जगाने वाली यही करुणा है ।"—शुक्लः चिन्तामणि—करुणा, ५६ पृ० ४६ व ४८

करुण रस की इसी द्रवीभूतता, सवेदना की तीव्रता तथा सहानुभूति की विशेषता को दृष्टिगत रखते हुए ही तो भवभूति ने कहा था—

एको रसः करुण एव निमित्त भेदा—
द्भिन्नः पृथक् पृथगिव श्रयते विवर्तान् ।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान्विकारा—
नम्भो यथा सलिलमेव हितत्समग्रम् ।। ३/४७ चौ०' ५३

अपने यहाँ प्रामाणिक एवं अप्रामाणिक शोक का विभाजन नही हुआ किन्तु निर्विवाद है कि पाश्चात्य साहित्य के समान शोक के अप्रामाणिक चरित्रों को भी भारतीय साहित्य में स्थान नहीं मिला। मानवता का प्रेमी भारतीय कवि कभी मानव-द्रोही पात्रों की कल्पना ही न कर सका। इसलिए इस प्रकार के विभेद की कभी आवश्यकता भी अनुभव नहीं हुई।

करुणरस के दोष – करुणरस के संभावित दोष निम्नलिखित हैं।

शब्द वाच्यता—स्वशब्द द्वारा रस, स्थायीभाव अथवा संचारीभावों का कथन दोष होता है क्योंकि रस व्यंग्यार्थ है। व्यंजना द्वारा ही उसका आस्वादन होना चाहिए।[1]

विरोधी रस वर्णन—वर्णनीय रस की विरोधी सामग्री का प्रयोग है। करुण रस के विरोधी रस शृंगार तथा हास्य हैं। अतः करुण रस के वर्णन में इन रसों के विभावादि का वर्णन अनुचित होगा।

रस पुनर्दीप्ति—रस-परिपाक के पश्चात् उसी रस का पुनः वर्णन मानव स्वभाव के अनुसार अरुचिकर होता है। इसीलिए यह भी एक दोष माना गया है।

अकाण्ड छेदन—असमय में रस भंग सामाजिक की जिज्ञासा को अधूरा छोड़ने के कारण असंगत होता है। इसी लिए दोष गिना जाता है।

करुण रसाभास—रस का अनौचित्यरूप में व्यंजित होना रसाभास कहलाता है। विरक्ति में शोक का वर्णन करुण रसाभास कहलायेगा।

रसदोषों का आधार मूलतः मनोवैज्ञानिक है—मानव—व्यवहार के अध्ययन के अन्तर्गत हुई खोज के आधार पर स्पष्ट है कि आत्मश्लाघा, प्रसंग प्रतिकूल चर्चा, विषय समाप्ति के पश्चात् पुनः उसी का प्रारम्भ तथा बीच में किसी प्रसंग को अधूरा छोड़ना मानव-व्यवहार एवं शिष्टाचार के नाते अवांच्छनीय हैं। व्यवहारमान्य आचार संबंधी यही विचार साहित्य में भी स्थान पा सके तथा क्रमशः शब्दवाच्यता, विरोधी रस वर्णन, रस पुनर्दीप्ति तथा अकाण्ड छेदन आदि के रूप में दोष गिने गए।

रस-निष्पत्ति—रस-निष्पत्ति के संबंध में भारतीय आचार्यों का सिद्धान्त "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः" गेस्टाल्ट मनोविज्ञान की मान्यताओं के पूर्ण अनुकूल है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक व तु-जात में संपूर्णता की स्थिति मानी गई है। रस-निष्पत्ति का विवेचन करते हुए प्रपानक रस का उदाहरण दिया जाता है जिसकी सार्थकता ही संपूर्णता में है। प्रपानक रस की वस्तुएँ पृथक्-पृथक् रहकर अपना पृथक् अस्तित्व भले ही रखें किन्तु प्रपानक रस की अनुभूति संभव नहीं हो

---

१. "व्यभिचारिरसस्थायिभावानां शब्दवाच्यता।" —काव्यप्रकाश ७/६०—६२

२. "विरोधिरस सम्बन्धिविभावादि परिग्रहः।" —ध्वन्यालोक ३—१८

"प्रतिकूल विभावादिग्रहो।"—काव्याप्रकाश ७/६१

"परिपन्थिरसाँगस्य विभावादेः परिग्रहः।" —साहित्यदर्पण ७—१३

सकती। यह पूर्णता भारतीय चिन्तनधारा का मूल आधार है। यहाँ कोई नई वस्तु नहीं है—

"ॐ पूर्णमद: पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥"

करुणरस की अभिव्यक्ति—करुणरस की अभिव्यक्ति शैलीगत किन रूपों में श्रेष्ठ संभव होगी, इस तथ्य पर भी विद्वानों ने विचार किया है। यों तो कुशल कलाकार प्रत्येक शैली में रसविशेष की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति कर सकते हैं, फिर भी, शैली की अपनी विशेषता होती है। यहाँ एक-दो उदाहरण देकर इस बात को स्पष्ट किया जा रहा है।

डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार राग केदारा करुणरस के लिए परम उपयुक्त साधन है। उनका मत निम्नलिखित शब्दों में द्रष्टव्य है—

" केदारा के स्वर में वह भावना है कि करुणा की समस्त मूर्छनाएँ एक बार ही हृदय में जाग्रत हो जाती है। ऐसा ज्ञात होता है जैसे सारा संसार तरल होकर किसी की आँखों से आँसू बनकर निकलना चाहता है। तारिकाएँ आकाश की गोद में सिमिट कर पतली किरणों में प्रार्थना करने लगती हैं। कलिकाएँ सुगंधि की वेदना से फूल बन जाती है और बिन्दु में डूबकर पृथ्वी के चरणों में आत्मसमर्पण करना चाहती हैं।

—(डा० वर्मा : विभूति-समुद्रगुप्त पराक्रमांक पृ० ९३/९४ विद्यामंदिर प्रकाशन)

यहाँ यह अवलोकनीय है कि सूर ने करुणरस के प्रसंगों में जहाँ केदारा के १३ पद रखे हैं वहाँ मारु के ७७ पद रखे हैं और इस प्रकार 'केदारा' के स्थान पर करुण रस की अभिव्यक्ति के लिए 'मारु' को प्राथमिकता दी है।

" है " का प्रयोग—"पंतजी 'है' को कविता से निकाल देने के लिए कहते हैं! कहते हैं, इसे माया-मृग समझकर कविता की सीता के पास न आने देना चाहिए। परन्तु सब जगह यह बात नहीं। करुणा के स्थल पर 'है' ही एक हृदय तक धंसकर उसे कमजोर करता और करुण को उभाड़ता है—

कहां है उत्कंठा का पार !!
इसी वेदना में विलीन हो अब मेरा संसार !
तुम्हें, जो चाहो, है अधिकार ?
टूट जा यहीं, यह हृदय हार !!!

—(निराला प्रबंध पद्य से उद्धृत)

रस और राग के प्रसंग में यहाँ निम्नलिखित तथ्य उल्लेखनीय हैं जिनसे डा० वर्मा तथा सूर की मान्यताओं पर प्रकाश पड़ता है। संगीतरत्नाकर में सरगम के 'ग' और 'नी' स्वर को करुण के अन्तर्गत माना है" स री वीरे ··

ग नी तु करुणे "

सितारमार्ग द्वितीय भाग (वाणी मंदिर प्रकाशन'५७) के पृष्ठ ९८ तथा

११३ पर क्रमशः केदार और बिहाग के सम्बन्ध में दिया हुआ है—'केदारा में दोनों मध्यमों का प्रयोग होता है। आरोह के स्वर में 'रे' 'ग' वर्जित हैं। इसका वादी शुद्ध मध्यम तथा संवादी षड्ज है। इस प्रकार केदारा करुण के लिए प्रमुख राग सिद्ध नहीं हो सकता। डा० वर्मा का उपर्युक्त विवरण से कदाचित् कुछ और आशय रहा होगा। बिहाग का वादी गंधार और निषाद है। इसलिए बिहाग करुण के लिए उपयुक्त होगा।

मनोविज्ञान की समीक्षा में करुणरस

मनोविज्ञान की समीक्षा के अन्तर्गत शोकानुभूति को जीवन रक्षा का एक प्राकृतिक साधन कहा जा सकता है जिसके द्वारा विशृंखल होने से पूर्व नाड़ीसंस्थान संतुलन प्राप्त कर लेता है। मानसिक अथवा शारीरिक संतुलन प्राप्त करना ही मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानस-अन्तर्वृत्तियों का प्रमुख कार्य है। भौतिक जगत के सम्पर्क में मानव इस संतुलन को विशेष परिस्थितियों के अन्तर्गत खो देता है। उसको पुनः प्राप्त कराकर जीवन रक्षा के साथ जीवनयापन को सुलभ बनाना इन अन्तर्वृत्तियों का काम है। इसीलिए मनोविज्ञान-शास्त्रियों ने इनको अतिरिक्त शक्ति के प्रवाह की प्रवाहिका भी कहा है। करुणरस के संचारीभावों को इन अन्तर्वृत्तियों के साहित्यिक नाम समझने चाहिए। संचारीभाव रसनिष्पत्ति की ओर अग्रसर कराने के साथ अतिरिक्त शक्ति-प्रवाह को प्रवाहित भी कर देते हैं। इस निस्सरण विधान से मानसिक स्फूर्ति की प्राप्ति होती है। मध्ययुगीन कवियों ने इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का विशेष अध्ययन किया तथा शास्त्रीय संचारीभावों से इतर अन्य प्रभावशाली अन्तर्वृत्तियों की भी खोज की। तुलसी एवं सूर इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय है।

साहित्यिक आस्था के अनुकूल मनोविज्ञान भी इन अन्तर्वृत्तियों को वासनागत मानता है। जन्म-जन्मान्तरगत वासनाओं का बीजभूत अचेतन आज की नवीतम खोज है। रस-सिद्धान्त अनुभूति-क्षेत्र की वस्तु होने के कारण वासनागत तथ्यों पर विशेष रूप से आश्रित है। इसीलिए "अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं" अनुपयुक्त समझा गया।

मनोवैज्ञानिक अध्ययन अन्तर्वृत्तियों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को प्रकट करने के साथ शोकानुभूतिगत बाह्यव्यजंकों के लिए भी उदसीन न रहा। शोकानुभूतिगत मुख की सूक्ष्म विवेचना की गई। आलंबन की विशेष गतिविधि को सकारणता देने के प्रयत्न हुए। शास्त्रीय विवेचन के अन्तर्गत आदि आचार्य भरत ने तत्त्वतः मनोवैज्ञानिक अध्ययन को अपने विवेचन का आधार बनाया तथा संभव बाह्यव्यंजकों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म समीक्षा का। पाश्चात्य मनोविज्ञान के विद्यार्थी के लिए अन्तर्वृत्तियों की नवीन खोज तथा बाह्य् य व्यंजकों का विस्तृत एवं सूक्ष्म अध्ययन कुतूहल एवं प्रशंसा का विषय बन सकता है किन्तु भारतीय मनीषियों ने यह खोज आज से हजारों वर्ष पूर्व कर ली थी यह जानकर उसको दांतों तले उँगली दबानी पड़ेगी। यही क्यों भारतीय मनीषियों का अनुसंधान आज भी कई दिशाओं में आगे है तथा पाश्चात्य-

विद्वानों का पथप्रदर्शन कर सकता है।

यह जानकर हर्ष होता है कि यद्यपि भारतीय मनीषियों ने मनोविज्ञान के नाम से किसी विषय का पृथक् विवेचन नहीं किया तथापि उनका रससिद्धान्त मनोविज्ञान की अधुनातम खोज के पूर्ण समीप है।

आध्यात्मिक शोक और भक्तिरस

आध्यात्मिक शोक मानस की आन्तरिक वह व्याकुलता है जिसके अन्तर्गत उस परम सत्ता को जानने में अपने ज्ञान की परिमिति तथा उस अज्ञात सत्ता को ज्ञात करने में अपनी विवशता के समक्ष मानव कातर हो उठता है। ज्ञानपिपासा मानव की जन्मजात सहचरी है। उसने पार्थिव जगत को ज्ञात किया तथा इस सफलता पर वह मुग्ध हो गया किन्तु इस सम्पूर्ण पार्थिव ज्ञान के "इदं इत्थं" के परे उसका द्वान्द्वात्मक जिज्ञासा "ऐसा क्यों नहीं है" उसको अपने इस ज्ञान की अपूर्णता के साथ एक अज्ञात संचालन-शक्ति की ओर संकेत कर मौन हो जाती है।

आध्यात्मिक शोक का आधार—संसार में एक विशेष क्रम है जिसका परिपालन अक्षुण्ण रूप में होता रहता है। इस संचालन- कुशलता के पीछे किसी अज्ञात शक्ति का हाथ है। इस प्रकार का विश्वास स्वाभाविक रूप से जिज्ञासु को हो जाता है। आज के वैज्ञानिक युग में निरीश्वरवादी विचारों के अर्न्गत भी मानवी खोज का एक ऐसा स्थल आता है जहाँ विज्ञान को मौन रह जाना पड़ता है। इस अज्ञात शक्ति के प्रति जिज्ञासा का समाधान न होने के कारण सत्यान्वेषी को शोक होता है।

मृत्युभय मानव के आध्यात्मिक शोक का दूसरा कारण है जिस पर विजय पाने की लालसा में उसके अनवरत प्रयत्न सदा अपूर्ण रहे है। अमरता प्राप्त करने की मानव लालसा सदा कल्पनासंभावित सुखस्वप्नों को जन्म देती रही जो कभी सत्य न हो सकी। इस मृत्युभय से मुक्ति पाने का एकमात्र साधन ब्रह्मविद्या का ज्ञान समझा गया। इसीलिए मानव जीवन में अध्यात्म मार्ग की जिज्ञासा कभी न कभी उदय होती रही।

अध्यात्मिक शोक के प्रसंग—अध्यात्मिक शोक के प्रसंगों का स्पष्टीकरण करने के लिए यहाँ एक दो उदाहरण देख लेना आवश्यक होगा जिससे आध्यात्मिक, शोक की मूल अनुभूति पर प्रकाश पड़ सके।

ब्रह्मविद्या के जिज्ञासु नारद अध्यात्मिक शोक का अनुभव करते हैं इस प्रकार का एक आख्यान छान्दोग्य उपनिषद् प्रपाठक ७ खण्ड के अन्तर्गत आया है।

एक समय महात्मा नारद सनत्कुमार के पास पहुँचे तथा कहा, 'हे भगवन् मुझे ब्रह्मविद्या पढ़ाइए"। सनत्कुमार ने कहा, "जो कुछ तुम जानते हो उसको मेरे समीप बैठकर सुनादो जिससे उससे आगे की बात मैं बताऊँ।"

नारद ने कहा—"भगवन् मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास पुराण, व्याकरण, पितृकर्म, गणितशास्त्र, भाग्यविधान, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, देव-

ज्ञान, ब्रह्मविद्या, पाँचों तत्वों की विद्या, धनुर्वेद, ज्योतिषशास्त्र, सर्पज्ञान, गन्धर्व विद्या आदि को जानता हूँ। इन सब का मैंने अध्ययन किया है और मुझे ये विद्याएँ आती हैं। हे भगवन् मैं सर्व विद्या सम्पन्न हूँ किन्तु आत्मा का ज्ञाता नहीं हूँ। मैंने सुना है कि आत्म का ज्ञाता मनुष्य जन्ममरण की चिन्ता से मुक्त हो जाता है। भगवन्, **मैं शोक में हूँ। मुझ चिन्तातुर को आप शोकमुक्त करें।** मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मैंने केवल बहुत से शब्दों को ही पढ़ा है।"[1]

उस अज्ञात सत्ता को जानने की जिज्ञासा तथा उस जिज्ञासा का निरुत्तर रह जाना वैदिक कालीन ऋषियों के शोक का भी कारण बना। ऋग्वेद के संहिता (मं० १ सू० २२) के अन्तर्गत सृष्टि के चमत्कारों के प्रति निम्न रूप में कुतूहलवृत्ति का संचार हुआ —

"ऊँचे पर रखे हुए यह तारे रात में दिखाई दिए किन्तु दिन में कहाँ चले गए? आकाश के आश्चर्य समझ में नहीं जाते। रात में चमकता हुआ चन्द्रमा निकलता है किन्तु दिन में कहाँ चला जाता है?......"[2]

इसी प्रकार की जिज्ञासा एक अशिक्षित व्यक्ति को भी हुई। अफ्रीका की अशिक्षित "बासूटो" जाति का एक गड़रिया जंगल में अपनी भेड़ें चरा रहा था। भेड़ें चराते हुए उसको आध्यात्मिक शोक की अनुभूति निम्नलिखित रूप में हुई—

(गड़रिया स्वयं कह रहा है) "बारह वर्ष हुए अपनी भेड़ों के झुण्ड को मैं जंगल में चरा रहा था। आकाश में धुँध थी। मैं एक चट्टान पर बैठ गया। **मेरे मन में शोकपूर्ण प्रश्न उठने लगे—हाँ, शोकपूर्ण क्योंकि मैं उनका उत्तर पाने में असमर्थ था।** अपने हाथों से तारो को किसने छुआ? किन स्तम्भों पर यह आधारित हैं? जलप्रवाह कभी थकता क्यों नहीं? प्रवाह के अतिरिक्त किसी अन्य नियम को वह जानता नहीं। सवेरे से शाम और शाम से सवेरे तक बहता ही रहता है किन्तु वह कहाँ रुकता है? उसको कौन गति देता है? बादल भी आते हैं और चले जाते हैं तथा फटकर पृथ्वी पर पानी बरसा देते हैं। वह कहाँ से आते हैं? और उन्हें कौन

---

१. "अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदः तं होवाच यद्वेत्थ तेन मोपसीद्, ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति १...
स होवाचर्ग्वेदं भगवोऽध्येमि, यजुर्वेदम्, सामवेदमाथर्वणं, चतुर्थमितिहासपुराणं पंचमं वेदनां वेदं पित्र्यम् राशिं देवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि...२
सोऽहं भगवो मन्त्रविदेवस्मि नात्मावि ह्यवं मे भगवद्दृभयस्त रति शोकमात्मविदिति सोऽहं भगवेः शोचामि तं मा भगवांछोकस्य पारं तारयत्विति तं होवाच यद्वै किंचैतध्यगीष्ठा ना मैवैतत्...३...(छाँदो० प्र०७-ख०१)

२. "अमीय ऋक्षानिहितास उच्चाः नक्तं ददृशे कुहचिद् दिवा ईयुः अद० धानि वरुणस्य व्रतानि।" (ऋग—सं० म० १ सू० २२)

भेजता है ? मैं वायु को देख नहीं सकता किन्तु यह है क्या ? कौन इसको लाता है और कौन इसको चलाता है ? दोनों हाथों में मुँह छिपाकर, सिर झुकाए मैं सोचता रह गया।"[१]

आध्यात्मिक शोक के उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि सृष्टि वैचित्र्य की निरुत्तर जिज्ञासा तथा मृत्यु-बन्धन से मुक्ति के असफल प्रयत्नों के फलस्वरूप प्राचीन जिज्ञासुओं को आध्यात्मिक शोक की अनुभूति हुई। आधुनिक खोज के द्वारा सृष्टिवैचित्र्य का उत्तर किसी अंश तक जिज्ञासुओं को प्राप्त हो गया है तथा आज इस प्रकार के शोक की उद्भावना सम्भव नहीं है किन्तु इस प्रकार के उदाहरणों से आध्यात्मिक शोक की प्रकृति पर प्रकाश तो पड़ता ही है। साथ ही मृत्युभय आज भी उसी रूप में विद्यमान है। इसका हल अभी तक सम्भव नहीं हो सका है।

जिज्ञासागत आध्यात्मिक शोक का दूसरा प्रसंग अनुकूल साधना की खोज के अन्तर्गत आता है। धार्मिक विभिन्नता के साथ साधन विभिन्नता के अन्तर्गत अनुकूल साधन की खोज कर लेना भक्त के लिए एक समस्या बन जाती है। प्रभु खोज के स्थान में प्रभु तक पहुँचने के अनुकूल मार्ग की खोज में ही साधक अटक कर रह जाता है। इस स्थिति में उसकी असमर्थता तथा निराशा उसको परम कातर बना देती है।

धार्मिक आस्थानुकूल साधन की प्राप्ति भी हरिकृपा पर निर्भर है। यह तथ्य साधक की विवशता का मुख्य कारण बन जाता है। साधनखोज के लिए अपने श्रम एवं प्रयास को वह अविश्वास की दृष्टि से देखने लगता है। उसकी यह विवशता उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है जब तक कि किसी प्रकार उसकी जिज्ञासा का समाधान नहीं हो जाता। किसी प्रकार अनुकूल साधन की प्राप्ति हो भी गई तो उसकी क्रियात्मक कठिनाइयाँ गुरुखोज के लिए उसको विवश कर देती हैं। इसीलिए साधन खोज ही नहीं प्रत्युत प्रभुखोज से भी बढ़कर गुरुखोज को बतलाया गया है।

---

१. The Psychology of Emotions—By Ribet, Page 239,

"In the following reported by a traveller, we have an instance of this spontaneous transition to disinterested curiosity in the case of an intelligent-Basute : "Twelve years ago (the man himself speaking) "I went to feed my flocks. The weather was hazy. I set down upon a rock and asked myself **sorrowful questions, yes, sorrowful, because I was unable to answer them.** Who has touched the stars with his hands ? On what pillars do they rest ? The waters are never weary, they know no other law than to flow without ceasing--from morning till night, and from night till morning but where do they stop, and who makes them flow thus ? Who sends them ? I can not see the wind, but what is it ? Who brings it, makes it blow ? Then I burried my face in both my hands." The Basute :

गुरु मिल जाने पर प्रभु मिलने में कोई कठिनाई नहीं होती—यह आध्यात्मिक क्षेत्र की प्रामाणिक आस्था है। गुरुखोज इसीलिए प्रभुखोज से भी महत्वपूर्ण तथा कठिन है। मध्ययुगीन चिन्तनधारा के अन्तर्गत साधना के लिए गुरु की आवश्यकता प्रत्येक साधक ने अपेक्षित रखी है जिसके अन्तर्गत गुरुमहिमा तथा सद्गुरु की कृपा की प्रतिष्ठा हुई है।

गुरुगत साधना में भी गुरुकृपा के साथ साधक की अपनी योग्यता आवश्यक समझी गई। "मूरख हृदय न चेत जौ गुरु मिलैं बिरंचि सम" अयोग्य साधकों के लिए कवि का संकेत है जो अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है। साधक की अपनी अयोग्यता उसके आध्यात्मिक शोक का कारण होती है। साधनागत स्पर्धा उसको भुला डालती है।

"गुरुमत" तथा "मनमत" दो शब्द गुरुसाधना के अन्तर्गत विशेष उल्लेखनीय हैं। गुरुमत होना ही साधक के लिए अपेक्षित एवं आवश्यक समझा गया है किन्तु ऐसा प्रायः सम्भव नहीं हो पाता। मन प्रायः गुरुमत की प्रतिकूलता तथा विरोध करता है, गुरुवचनों का परीक्षण करता है, शंका एवं संदेह की दृष्टि से गुरु आज्ञा की आलोचना करता है। मन के यह सब कार्य अहंवृत्ति के फलस्वरूप स्वाभाविक कहे जा सकते हैं। मन का वह विरोध साधक के लिए घोर आत्मग्लानि का कारण बन जाता है जब वह देखता है कि उसके विरोध के होते हुए भी गुरु उस पर परम उदार और परम कृपालु बने हुए हैं। इस आत्मग्लानि में करुण मनोभावों की सृष्टि होती है।

आत्म-निरीक्षण—आत्मनिरीक्षण के अन्तर्गत आध्यत्मिक शोक के प्रसंग प्रकट हो सकते हैं जब एक अवधि के पश्चात् अपनी आध्यात्मिक प्रगति का अवलोकन करता हुआ भक्त देखता है कि वह आज भी वहाँ का वहीं है। इस आत्मनिरीक्षण के द्वारा उद्घाटित दोषों का परिज्ञान उसको अपनी अपवित्रता का आभास कराता है। साधक को बार-बार यही संकोच होता है कि इस पवित्रता के साथ स्वामी की शरणागति किस प्रकार सम्भव है। कबीर ऐसे आत्मविश्वासी भक्त भी अपने पिछले कारनामों के साफ किए जाने की प्रार्थना करते हुए दिखलाई देते हैं। भविष्य में सावधान एवं दृढ़ रहने का कबीर का आश्वासन उनकी निजी विशेषता है। साधारण साधक तो अपनी विवशता में अपने आत्मविश्वास को ही खो बैठता है।

आध्यात्मिक विरह—अज्ञातसत्ता के प्रति प्रेम की बात ज्ञान, कर्म तथा भक्ति के तीन पृथक् मार्गो. की प्रतिष्ठा के समक्ष अनहोनी अवश्य प्रतीत होती है किन्तु असम्भव नहीं। यह सत्य है कि इस प्रकार के प्रेम का क्षेत्र यहाँ विकसित न हो सका किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि मौलिक रूप में यह विदेश से ही प्राप्त हुआ।

शरीर बन्धनों में बद्ध, आत्मा के लिए बन्धनजन्य प्रभुदूरी आध्यात्मिक विरह की पृष्ठभूमि है। आत्मा का परमात्मा से चिरन्तन तथा शाश्वत सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को पुनः प्राप्त करने के लिए विरह-वेदना का जन्म अति स्वाभाविक है किन्तु

यह प्रत्येक के लिए सम्भव नहीं है। इसीलिए इसकी अनुभूति रहस्यात्मक हो जाती है। इस विरह-वेदना के सम्बन्ध में जितना कहा जाय उतनी ही समस्या उलझती जाती है अतएव निषेधात्मक प्रणालीं द्वारा साधकों कीं भावनाओं की अभिव्यक्ति सम्भव हो सकी है।

आत्मा की उन्मुखदशा ही प्रेम के प्रथम चरण का प्रतीक होती है। इस क्षणिक आलोक से आत्मा की आँखें खुल जाती हैं। वह प्रभु का सानिध्य प्राप्त करने के लिए आतुर हो उठती है। विरह तन्मय होकर शरीर-साधन के लिए आवश्यक सम्पूर्ण आवश्यकताओं को भी भूल जाती है। आध्यात्मिक विरह के विरही पागल हो जाते हैं या जीवित नहीं रहते कबीर का यह विश्वास साधार प्रतीत होता है।

"राम वियोगी ना जिबै, जिबै त बौरा होइ।"

रूप के अभाव में नाम ही रूप का स्थान ले लेता है, नाम की रट लग जाती है। एक क्षण का नाम वियोग प्रियवियोग की भाँति दारुण बन जाता है। नाम विरह की इस अन्यतमावस्था में रोमरोम से नाम का उच्चारण होने लगता है। इस अलौकिक स्थिति को प्राप्त नाममय साधक यदि साध्य हो जाय तो क्या आश्चर्य ?

आध्यात्मिक विरह के अन्तर्गत मध्ययुगीन विचारधारा ने चिरन्तन एवं विश्वव्यापी विरह की भी कल्पना की है। विश्वव्यापी विरह-भावना प्रेममार्गी कवियों की देन कही जा सकती है। कबीर में इस भावना के दर्शन होते है। विद्यापति भी इस ओर एक स्थल पर संकेत करते है[1]। सूर और मीरा विरह के चिरन्तन रूप को प्रश्रय देते है जो विश्वव्यापी विरह को भी यथास्थान प्रकट करता है। इस चिरन्तन एवं विश्वव्यापी विरह को विरहतन्मयासक्ति कहा जा सकता है। इस स्थिति में प्रभुमिलन आशा का प्रश्न ही नहीं रहता। भक्त अपनी विवशता एवं निराशा में ही अपनी साधना का परमलाभ प्राप्त करता है।

आध्यात्मिक शोक कदाचित साहित्यगत दो वादों में प्रकट हुआ—

१. भक्तिवाद, और २. रहस्यवाद।

भक्तिवाद आगे चलकर भक्तिरस बन गया तथा करुणरस के क्षेत्र से पृथक हो गया। रहस्यवाद 'वाद' के रूप में ही प्रचलित रहा। यहाँ रहस्यवाद तथा भक्ति रस शोकमूला-प्रवृत्ति की दृष्टि से व्याख्या कर लेना आवश्यक है।

रहस्यवाद

गोचरजगत के अद्भुत व्यापारों में एक चेतना तथा एक क्रम की अनुभूति किसी अगोचर परम सत्ता का आभास कराने के लिए विवश कर देती है। उस अज्ञात को ज्ञात करने की मानव-लालसा उसकी जिज्ञासा का आध्यात्मिक विकास है तथा इस लालसा के अपूर्तिजनित शोकपूर्ण उद्गार रहस्यवाद के प्रथम आभास कहे जा सकते

१. "जहाँ जहाँ पद युग धरइ। तँहि तँहि सरोरुह भरइ॥
जँह जँह नयन विकाश। तँहि तँहि कमल परकाश॥"

हैं। अज्ञात अज्ञात होने के कारण स्वयं रहस्यात्मक है। "वह क्या है, कैसा है ? आदि मूल जिज्ञासाएँ आदिम मानव से आज तक उसी रूप में उत्तरापेक्षी समस्याएँ बनी हुई हैं। भविष्य में भी इनका कोई हल सम्भव नहीं है। इसीलिए रहस्यवाद सृष्टि के प्रारम्भ से प्रलय तक प्रगतिशील रहता है। व्यष्टि की वैयक्तिक अनुभूति की विभिन्नता ही रहस्यवाद की प्रगतिशीलता है।

इस क्षेत्र में अनवरत, अध्यवसाय के परिणाम स्वरूप यह मान लिय गया है कि—

१—वह केवल अनुभूतिगम्य है।

२—वाणी के लिए वह सदा अनिवर्चनीय रहेगा !

इस खोज के पश्चात् रहस्यवाद विश्लेषण एवं विकल्प से संश्लेषण तथा संकल्प के क्षेत्र की वस्तु बन गया है। ज्ञानक्षेत्र से अनुभूतिक्षेत्र में उतरा तथा शास्त्रों से साहित्य के लिए मान्य हुआ। शास्त्रों ने जहाँ "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन" तथा "नैषा तर्केण मतिरापनेया" कहकर उसको अलभ्य अमूल्य एवं अप्राप्य बतलाया वहाँ साहित्य ने "मोरे घर आए राजाराम भरतार" कह कर लभ्य एवं प्राप्य सिद्ध किया।

रहस्यवाद की मूलधारा आनन्दमूला थी तथा भारत की वह निजी सम्पत्ति है—प्रसादजी ने यह सिद्ध किया है। उनके इस मत से असहमत होने के लिए कोई कारण नहीं है किन्तु यह अवश्य है कि साहित्य की रहस्यधारा पर अभारतीय प्रभाव भी पड़ा। १४ वीं शताब्दी में भारतीय समाज एवं संस्कृति पर सूफीमत का प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हो गया था जिससे भारतीय रहस्य धारा को अछूता समझना उचित प्रतीत नहीं होता। यद्यपि भारतीय संस्कृति का आधारभूत सिद्धान्त पुरुष की विरह-विरलता तथा स्त्री का पुरुष के प्रति आकर्षण अक्षुण्ण रहा किन्तु इस धारा की आनन्दमूला मूल प्रवृत्ति दुःखोन्मुख हो गई इसमें सन्देह नहीं है।

इस दुःखमूला प्रवृत्ति की सकारणता का भी प्रसाद जी ने भारतीय दृष्टिकोण से अनुशीलन किया है किन्तु भारतीय रहस्यधारा के साथ सूफीमत की प्रबल विचार-धारा अपने कूलों में आबद्ध रहकर एक दूसरे के प्रभाव से वंचित रहीं यह मानना वैज्ञानिक सिद्धान्तों के प्रतिकूल पड़ेगा। आज के सूफी ग्यारहवीं शताब्दी के अपने रूप को स्थिर न रख सके तो यह कैसे संभव था कि रहस्यवाद की मूलधारा अपने भारतीय रूप में अक्षुण्ण बनी रहती। इस विवाद की ओर संकेत करने का मेरा तात्पर्य यही है कि साहित्य की रहस्यधारा के अन्तर्गत प्रायः दुःखवादी साहित्य का सृजन हुआ। इसके देशी अथवा विदेशी होने का निराकरण करने की यहाँ आवश्यकता नहीं है।

साहित्य की रहस्यधारा साधना क्षेत्र की वस्तु थी। उसका विकास कल्पना की ओर रहा था आज वह पूर्णतया कल्पना क्षेत्र की वस्तु बन गई है। इसका मूल कारण साधना की रहस्यात्मकता रहा है। साधनापद्धति का भारतीय दृष्टिकोण साधक की

निराश्रयता में विश्वास नहीं रखता। इस दृष्टिकोण का अक्षुण्ण रूप साहित्य की इस रहस्यधारा में प्रकट हुआ। गीता में बताया गया—"उस ज्ञान को तू समझ, श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य को भलीभाँति दण्डवत प्रणाम करने, उनकी सेवा और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करने से परमात्म तत्व को भलीभाँति जानने वाले वे ज्ञानी महात्मा तुझे तत्त्वज्ञान का उपदेश करेंगे[1] ?" साहित्य में "गुरु बिन होइ न ज्ञान" कह कर इस आस्था को साधना-मार्ग के लिए निर्गुण सगुण के भेदों का ध्यान न रखते हुए साधनाव्यापी रूप दिया गया।

साधना पथ को जिस प्रकार उपनिषद् काल के महर्षियों ने आपद्युत माना उसी प्रकार साहित्य में भी यह विश्वास बना रहा कि यह पथ किसी प्रकार भी निरापद नहीं है। उपनिषद् के यह "शब्द जिस प्रकार छुरे की धार तीक्ष्ण और दुस्तर होती है तत्त्वज्ञानी लोग उस पथ को भी वैसा ही दुर्गम बताते हैं"[2] साहित्य की निम्नलिखित अभिव्यक्ति में प्रकट हुए—

"सीस उतारे भुइ धरै तौ पैठै घर माँहि"

साधना की दुःखमूला प्रवृत्ति का एक कारण साधना पद्धति का परसंवेद्य रूप है। गुरु आश्रित होने के कारण साधक को गुरु उन्मुख होना पड़ता है। गुरु सेवा गुरु को प्रसन्न कर सकती है किन्तु साधना पद्धति के प्रकाशन के लिये उनको विवश किस प्रकार किया जा सकता है "मस्तमौला" स्वभाव के लिये गुरु प्रसिद्ध हैं। अतः साधक को अपनी बारी आने तक क्षोभपूर्ण राह देखने के लिये विवश होना पड़ता है। इस प्रकार का क्षोभ मध्ययुगीन काव्य में यथास्थान प्रकट हुआ है किन्तु आशावादी भारतीय आत्मा को निराश होने के कम अवसर प्राप्त हुए हैं। प्रायः गुरु कृपा का सौभाग्य साधक को प्राप्त हुआ।

साधनागत परमानन्द की व्यंजना "गूँगे के री शर्करा" सदृश व्यक्त एवं सुग्राह्य न हो सकी किन्तु इस आनन्दानुभूति के अविरल स्रोत की याचना तथा उसका अभाव प्रत्येक साधक को अनुभव हुआ तथा कोई नाम वियोगी हुआ तो कोई सुरति वियोगी।

"उस दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्छल सम्बन्ध जोड़ने" की लालसा ने आत्मा को एक विशेष दृष्टिकोण दिया। भारतीय सांस्कृतिक चेतना के अनुसार आत्मा बनी स्त्री तथा परमात्मा बना पुरुष, विरहिणी आत्मा का विरह चिरन्तन रूप में विकसित हुआ। आत्मा विरह व्यथिता होकर "त्राहि-त्राहि" पुकारने लगी। आत्मा की यह पुकार निर्गुण साधना के अन्तर्गत साधक की प्रणत पुकार बनी तथा सगुण साधना में शोकसंतप्त भक्त का अतिनिवेदन।

---

१. "तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया,
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः" गीता ४/३४

२. "क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया
दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति"—कठ० १।३।१४

अज्ञात के प्रति रहस्यात्मक आर्कषरण तथा उसकी अप्राप्ति के परिणामस्वरूप वेदना का दारुण अनुभव रहस्यवादी साधकों की मूल अनुभूति रहा। इसको उन्होने स्त्री-पुरुष के विरह की विभिन्न दशाओं के अन्तर्गत प्रकट किया। प्रेमी-प्रेमिका के इस रूप को उन्होंने व्यापक अर्थ में लिया। इसीलिये अन्य स्थलों पर पिता पुत्र तथा माता पुत्र के सम्बन्धों की कल्पना की गई तथा बाल-अपराधों की क्षमायाचना के द्वारा रहस्यात्मक अभिव्यक्ति संभव हुई।

रहस्यवाद के अन्तर्गत शोकानुभूति आध्यात्मिक जिज्ञासा के निरुत्तर रहने के फलस्वरूप प्रकट होती है। अपनी उमंग में आत्मा कल्पना करने लगती है–"सुगंधित पुष्प चुन लूँ। इनका एक सुन्दर हार बना लूँ। इस हार को उसके गले में डाल दूँ। किन्तु वह कौन ?" इस "कौन" की जिज्ञासा में उसका स्वप्न टूट जाता है। अपनी विवशता तथा अपनी असहायावस्था पर आत्मा अति दुःखी हो उठती है। इस प्रकार की शोकानुभूति रहस्यवाद की परंपरानुगत विचारधारा की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति है।

परमात्मा के सम्बन्ध में आत्मा की जिज्ञासाएँ जन्म-जन्मान्तर से मौन चली आ रही हैं जो साधक की शोकानुभूति का मुख्य कारण हैं। वह जीवन पर्यन्त इन प्रश्नों के उत्तर प्राप्त नहीं कर पाता। इस प्रकार रहस्यवाद की मूल अनुभूति आध्यात्मिक शोकानुभूति का भी सृजन करती है।

भक्ति रस—साहित्य के नौ रसों से पृथक् भक्ति और वात्सल्य रस की भी कल्पना कुछ विद्वानों द्वारा की गई है। भक्ति का स्थायीभाव श्रद्धा तथा वात्सल्य का स्थायीभाव स्नेह माना गया है। यह कल्पना विशेष कर भक्ति मार्ग वैष्णव अनुयायी आचार्यों द्वारा की गई है। भक्त के आर्त्त निवेदन, परिताप, ग्लानि, प्रबल मनोवेगों के समक्ष विवशता एवं असहायोवस्था आदि शोकमूला भाव हैं जिनके कारण भक्ति रस के स्थायीभाव श्रद्धा को स्थायित्व प्राप्त होता है अन्यथा साहित्य में श्रद्धा तथा वात्सल्य को मौलिक स्थायीभाव नहीं माना गया है। श्रद्धा की गिनती भावों में की गई है—

"रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जितः

भावः प्रोक्तः ,, का० प्र० सं—१९३३, ४/३५

समवयस्कों का स्नेह रति, छोटों का बड़ों के प्रति स्नेह भक्ति तथा बड़ों का छोटों के प्रति स्नेह वात्सल्य कहलाता है, इस प्रकार साहित्य में भक्ति को पृथक् मानने के लिये कोई स्थान ही नहीं है।

साथ ही साहित्य और धर्म के पृथक् क्षेत्र हैं। धर्म को साहित्य के शास्त्रीय विवेचन तक खींचना युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता। आचार्य शुक्ल जी ने इस संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए एक स्थल पर लिखा है—

"अध्यात्म शब्द की मेरी समझ में काव्य या कला के क्षेत्र में कहीं कोई जरूरत नहीं है।" —रस मीमांसा, सं २००६, पृष्ठ ६९

पश्चिमी समीक्षक हेगल भी साहित्य को धर्म से पृथक् रखना चाहते हैं। उन के विचारों का भाव निम्नलिखित है।

"कला का सीधा सम्बन्ध किसी प्रकार भी धार्मिक सिद्धान्तों के प्रकाशन में अथवा उनके सत्य की किसी विशेष अन्तरदृष्टि से नहीं है। परिणामतः यह महत्वपूर्ण है कि इन तथ्यों से इनको पृथक् रखा जाय · यह और भी अधिक आवश्यक है कि कला द्वारा प्रत्येक प्रकार की शोकानुभूति, आचार सम्बन्धी प्रत्येक तथ्य जो क्रियात्मक तथा अति आवश्यक रुचि के हैं, मानव हृदयों को सौंप दिये जाँय।"[१]

हिन्दी साहित्य में भक्तिरस का यह प्रश्न कदाचित् भक्तिमार्ग से ही आया मध्ययुगीन हिन्दी कलाकर प्रायः भक्त एवं कवि हुए है। अतएव उनकी काव्यसामग्री का साहित्य एवं भक्तिमार्ग - दोनों ही क्षेत्रों में तुल्य समादर है। यही नहीं साहित्य-प्रेमी तथा भक्त दोनों इस सामग्री पर संभवतः एकाधिपत्य भी प्रकट करना चाहते हैं। एक ओर तुलसी के 'मानस' में कला एवं अभिव्यक्ति के सौन्दर्य की चर्चा होती है तो दूसरी ओर उसके अखण्ड पाठ एवं विधिवत् पारायण होते हैं तथा धूप आदि देकर पवित्र स्थान पर रखी जाती है जहाँ साहित्य प्रेमियों के हाथ भी न पहुँच सकें। इन्हीं प्रयत्नों में दोनों ओर भक्ति रस की प्रतिष्ठा का प्रश्न उठा तथा साहित्य के नौ रसों के स्थान में ग्यारह रसों की चर्चा प्रारम्भ हुई। कहना न होगा कि करुण का आध्यात्मिक शोक ही भक्ति के रूप में प्रकट हुआ तथा महत्ता प्राप्त कर पृथक् रस बन गया है।

करुण एवं शान्त रस—करुण का स्थायीभाव शोक है और शान्त का स्थायीभाव निर्वेद। इसलिए करुण और विप्रलंभ की भाँति करुण और शान्त भी एक बिन्दु पर मिलते दिखलाई देते हैं। शोक के कारण विरक्ति उत्पन्न हो जाती है किन्तु इस विरक्ति में नष्ट प्रिय के प्रति राग एवं मोह बना रहता है जो शोक का कारण होता है किन्तु शान्त रस की विरक्ति में अन्याय वस्तुओं से विरक्ति के साथ स्वयं इष्ट अथवा नष्ट प्रिय वस्तु की निरर्थकता तथा उसके प्रति मोह का ज्ञान भी हो जाता है जिसके फलस्वरूप स्वयं इष्ट के प्रति भी उदासीनता प्रकट हो जाती है। विप्रलंभ श्रृङ्गार की परिणति प्रायः निर्वेद में हो जाती है। करुण की

---

१. "Art is, however, not directly concerned either in the exposition of religious dogmas, nor, indeed, in any exceptional insight into their truth. It is consequently of importance that she should be help aloof from such disquitions."

Hegel—Philosophy of Fine Art. Vol. I, Page 3II

"It is all the more necessary that we should through art entrust every type of pathos to the human heart, every motive of ethical significance, which are of practical and vital interest."

Hegel—Philosophy of fine Art. Vol. I—Page 311

परिणति भी शान्त रस में हो जाती है। इन दोनों परिणतियों में अन्तर यह है कि पूर्व परिणत आवेगजन्य होती है और पर परिणत करुण का विकास होता है—शोक से खिन्नता और उदासीनता और उदासीनता से विरक्ति एवं निर्वेद। इस प्रकार का एक प्रसंग यहाँ अवलोकनीय है—

"आश्रम सागर सांत रस पूरन पावन पाथु।
सेन मनहुँ करुना सरित लिए जाहिं रघुनाथु॥" अयो० २७५

करुण एवं विप्रलंभ शृङ्गार—भरत ने करुण तथा विप्रलंभ शृङ्गार का भेद निम्नलिखित रूप में किया है—

"करुण के कारण शाप, क्लेश, विनिपात, इष्टजन वियोग, विभवनाश, बन्धन, वध आदि हैं। यह निरपेक्ष है किन्तु औत्सुक्य तथा चिन्ता प्रधान विप्रलंभ शृंगार सापेक्ष है। इस प्रकार करुण और विप्रलंभ दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं।"[१]

"इष्टजनवियोग" के अन्तर्गत करुण एवं विप्रलंभ की स्थिति आती है। करुण एवं विप्रलंभ दोनों की स्थिति की सम्भावना इष्टजनवियोग के अन्तर्गत होती है। इसीलिए इन दोनों रसों के बीच एक सीमा रेखा की आवश्यकता उपस्थित हुई। भरत ने इसका निराकरण निरपेक्ष एवं सापेक्ष कहकर किया—करुण निरपेक्ष है तथा विप्रलंभ सापेक्ष।

सापेक्ष एवं निरपेक्ष का तात्पर्य आशामय (Optimistic) तथा निराशामय (Pessimistic) से है। विप्रलंभ शृंगार में प्रिय मिलन की आशा बनी रहती है किन्तु करुण प्रियमिलन की आशा नहीं रहती। इस प्रकार आशा एवं निराशा के आधार पर विप्रलंभ तथा करुण को पृथक कहा गया है। इस कथन के अनुसार दोंनों रसों के बीच सूक्ष्म सीमा रेखा खींचते हुए कहा जा सकता है कि जब तक आशा की चिनगारी बनी रहती है विप्रलंभ का क्षेत्र है तथा जैसे ही आशा की चिनगारी बुझी करुण का क्षेत्र आ जाता है। आशा की इस चिनगारी को विप्रलंभ की विभिन्न दशाओं के अन्तर्गत उत्तरोत्तर कम होता हुआ देखा जा सकता है तथा अन्त में "मरण" दशा वह देहरी है जिसके एक ओर आशा की चिनगारी टिमटिमाती दिखलाई देती है और दूसरी ओर बुझी हुई। अतएव कहा जा सकता है कि जहाँ तक प्रेमी प्रेमिकाओं अथवा प्रेमियों के वियोग का सम्बन्ध है विप्रलंभ तथा करुण का सीमाप्रस्तर "मृत्यु" है। मृत्यु (या मृत्यु समझ ली गई) से पूर्व तक विप्रलंभ तथा मृत्यु के पश्चात् करुण का क्षेत्र आ जाता है।

---

१. "करुणरसस्तु शापक्लेशविनिपतितेष्टजनविभवनाशवधबन्धसमुत्थो निरपेक्षभावः औत्सुक्यचिन्तासमुत्थः सापेक्ष भावो विप्रलंभकृतः एवमन्यः करुणोऽन्यश्च विप्रलंभ इति, एवमेष सर्वभावः संयुक्तः शृंगारो भवति।"

भरत-ना० शा० ६—५१

विप्रलंभ का स्थायीभाव रति है और करुण का स्थायीभाव शोक। ऊपर इष्टनाश-जनित करुण का उल्लेख कर चुके हैं। जब इष्ट का नाश हो जाता है तो स्थिति स्पष्ट रहती है। ऐसी दशा में केवल करुणरस ही होता है। अनिष्ट प्राप्ति के प्रसंग में मुख्यतः कठिनाई उठती है। रति और शोक दोनों भावों की सम्मिलित स्थिति के कारण रसनिर्णय में कठिनाई उपस्थिति होती है। रति या शोक में से जब तक एक की दूसरे पर प्रधानता स्पष्ट न हो जाय, रसनिर्णय करना संभव नहीं होता। इन भावों की मिश्रित स्थिति के अन्तर्गत करुण-शृंगार और करुणवात्सल्य नामक दो पृथक् भेदों की भी कल्पना की गई है। आचार्य शुक्ल ने इस मिश्रित स्थिति को दो भागों में विभाजित किया है—

१. प्रियवियोगजनित अपनी विरहावस्था-विकलता आदि।

२. वियुक्त प्रिय के संबंध में आशंका एवं उसके कष्ट की चिन्ता के कारण क्षोभ!

पहली स्थिति को वह विप्रलंभ के अन्तर्गत रखते हैं और दूसरी को करुण के अन्तर्गत।

आचार्य जी के मत का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक स्थिति से दूसरी स्थिति में अन्तर का आधार अति सूक्ष्म है। रति और शोक दोनों भावों की मिश्रित स्थिति है। इन दोनों में जो दूसरे से अधिक प्रभावशाली हो जायगा उसी के अनुकूल रस का निर्णय करना पड़ेगा। इस बात को और स्पष्ट करते हुए कह सकते हैं कि दोनों भावों के मिश्रित रूप की संभावना अधिक है। ऐसा नहीं कह सकते कि वियोग की विशेष परिस्थितियों में एक आश्रय वियोग से केवल विकल होगा और दूसरा प्रिय के कष्ट की आशंका से केवल कातर होगा—दूसरे शब्दों में एक केवल विप्रलंभ का आश्रय होगा और दूसरा केवल करुण का। बात यह है कि वियोगजन्य परिस्थितियों में इस प्रकार का पृथक् विभाजन सभव नहीं होता। जो आश्रय प्रिय के वियोग के कारण विकल हो रहा है वह प्रिय की अनिष्ट की आशंका से कातर न होगा अथवा जो आश्रय वियुक्त प्रिय की अनिष्ट की आशंका से कातर हो रहा है वह वियोग के समय स्वयं विकल होगा, ऐसा सोचना भ्रमात्मक ही कहा जायगा। यह अवश्य है कि एक आश्रय को वियोगजनित विकलता अधिक होगी तो दूसरे मे अनिष्ट-जनित आशंका। उदाहरणस्वरूप माँ के पुत्र और पत्नी के पति का एक आलंबन लें। माँ को वियोगजनित विकलता के स्थान में पुत्र की अनिष्टजनित आशंका अधिक होगी तो पत्नी को अनिष्टजनित आशंका के स्थान में वियोगजनित विकलता अधिक!

यहाँ एक मतविशेष का साधारणरूप से प्रतिपादन कर रहे हैं। इसलिए यह असंगत न होगा कि इसके सभी पहलुओं पर विचार करते हुए हमको इस संभावना पर भी विचार करना चाहिए कि यदि उपर्युक्त उदाहरण में स्थिति विलोम हो जाय,

माँ वियोगजनित विकलता का अनुभव अधिक करे और पत्नी पति की अनिष्टजनित आशंका से क्षुब्ध हो। यहाँ साहित्य के साथ हमारी संस्कृति के संबंध पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। हमारी संस्कृति के अनुकूल हम माँ में रति भाव की कल्पना नहीं कर सकते। पत्नी में रति के साथ शोक रह सकता है और ऐसी पत्नी संभव है जिसको पति के वियोग में रति के स्थान में शोक हो किन्तु ऐसी माँ की कल्पना भी नहीं कर सकते जिसे पुत्रवियोग में शोक के स्थान में रति भाव का अनुभव हो। माँ के लिए शोक ही निश्चित कर दिया गया है। इसीलिए वात्सल्य रस की पृथक् सता महत्वपूर्ण बन गई है। व्यवहारिक जीवन में भी हम स्त्रीमात्र को माँ कह कर संबोधित कर सकते है किन्तु स्वयं अपनी माँ को भी 'पिताजी की पत्नी' नहीं कह सकते। अस्तु, स्पष्ट है कि आचार्य जी के मत को साधारणरूप में नहीं ले सकते। हमको रति और शोक की प्रधानता के साथ आश्रय विशेष का भी ध्यान रखना होगा।

इन दोनों भावों के मिश्रित पर में से एक-एक भाव को पृथक्-पृथक् छाँट लेना तथा एक की दूसरे पर महत्ता निश्चित कर लेने में प्रायः कठिनाई हुई है। उदाहरणस्वरूप गोपीविरह को लें। गोपीविरह के प्रसंग में विप्रलंभ है अथवा करुणरस, यह निर्णय करना कठिन रहा है। यहाँ जैसा कि ऊपर दिखा चुके है, यह स्पपष्ट कर देना भी आवश्यक है कि यह कठिनाई रतिभाव के आश्रय के साथ ही हुई है अथवा यह कहें कि उस आश्रय के साथ उठी है जिसमें शोक के साथ रति की भी संभावना होती है और वास्तव में इसी प्रकार के आश्रय के साथ रसनिर्णय की समस्या उठती है। गोपीविरह ऐसा ही प्रसंग है। इसी कारण इसके संबंध में रसनिर्णय एक समस्या बन गई है। कतिपय विद्वान् इस प्रसंग को विप्रलंभ का और दूसरे करुण का बताते हैं।

मैं समझता हूँ ऐसे प्रसंगों को भरत द्वारा प्रतिष्ठित करुण और विप्रलंभ के भेद के आधार पर सुलझा सकते हैं। इन प्रसंगों में भी निरपेक्ष और सापेक्ष दृष्टि के अन्तर्गत निर्णय किया जाय। प्रस्तुत प्रसग का विवेचन करते हुए कह सकते हैं कि गोपियों के विरह मे किसी भी स्थिति में निरपेक्ष भाव की संभावना नहीं है—वे इस प्रकार की विरह-वेदना का अनुभव नहीं कर सकतीं जिस प्रकार की एक विधवा करती है। अतएव यह सापेक्ष वियोग है और इसलिए विप्रलंभ का उदाहरण है करुण का नहीं। यहाँ एक कठिनाई दूसरे आश्रयों के सम्बन्ध में उठ सकती है। उदाहरणस्वरूप यही स्थिति यशोदा के लिए भी है। वही कब ऐसा सोच सकती हैं कि वे पुत्रविहीना माँ हैं। अस्तु, उनका वियोग भी विप्रलंभ के अन्तर्गत आता है। नहीं, उनका वियोग करुण के अन्तर्गत ही जायगा क्योंकि वह माता है। जैसाकि ऊपर विस्तृत विवेचन कर चुके हैं। माँ के सम्बन्ध में विप्रलंभ का प्रश्न ही नहीं उठता। उनके लिए पुत्रवियोग करुण का ही कारण होगा।

प्रिय के वियोगजनित विकलता अथवा रतिभाव की स्थिति करुण के समीप

तक पहुंच जाती है जब विप्रलंभ के अन्तर्गत मरण निवेदन होता है। विप्रलंभ के चार भेद करते हुए आचार्य केशवदास जी ने एक भेद "करुण" भी रखा है। विप्रलंभ और करुण की सूक्ष्म सीमा-रेखा विप्रलंभ के अंतिम चरण में मिल जाती है और वियोगिनी उस पर झूलती-सी दिखलाई देती है।

विप्रलंभ एवं करुण के बीच स्थापित इस सूक्ष्म सीमा रेखा का निम्नलिखित उदाहरणों द्वारा स्पष्टीकरण किया जा सकता है। इन उदाहरणों द्वारा विप्रलंभ एवं करुण की पृथक्-पृथक् स्थिति पर प्रकाश पड सकेगा।

"जो वाके तन की दशा देख्यौ चाहत आप।
तौ बलि नेकु बिलोकिए चलि औचक चुपचाप॥ बिहारी

उपर्युक्त दोहा दूती द्वारा मरण निवेदन है। नायिका की दशा उस सीमा तक पहुँच चुकी है जहाँ वह नायक के देखने अथवा उससे सम्पर्क प्राप्त करने की समस्त आशा खो चुकी है। इसीलिए कवि ने दूती के मुख में "औचक" शब्द रखकर यह प्रार्थना की है कि आपका आगमन यदि सहसा (औचक) होगा जबकि आपके आने की न कोई आशा है और न कोई संभावना तो नायिका के शरीर की वास्तविक दशा का परिचय आपको मिल सकता है। यदि औचक या सहसा आगमन न होकर आगमन का संदेश पहिले पहुँच जायगा तो नायिका की दशा में आशा का स्फुरण हो सकता है तथा उसकी वास्तविक दशा का चित्र आप नहीं देख सकेंगे। इस प्रकार दूती के द्वारा नायिका की उस दशा का संकेत हो रहा है जिसमें वह करुण रस की परिस्थिति तक पहुँच चुकी है। प्रार्थना द्वारा दूती करुण रस को विप्रलंभ की दशा में ले आना चाहती है और यदि नायक के द्वारा दूती की प्रार्थना स्वीकार हुई तो नायिका का जीवन मृत्यु के अन्धकार से लौटकर जीवन के प्रकाश में आ जायगा।

"एहो नन्दलाल ऐसी व्याकुल परी है बाल,
हाल ही चलौ, तौ चलौ, घोरे, घुरि जायगी।
कहै पदमाकर नहीं तो ये झकोरे लगे,
ओरे लौं अचाका बिन घोरे घुरि जायगी।
सीरे उपचारन धनेरे घनसारन सों
देखत ही देखौ दामिनी लौं दुरि जायगी।
तौ ही लगि चैन जौ लौ चेति है न चन्द्रमुखी,
चेतेगी कहूँ तौ चाँदनी में चुरि जायगी॥"—पद्माकर

बिहारी के समान पद्माकर की दूती भी नायिका की मरण दशा का निवेदन कर रही है। नायक के दर्शन से जीवनरक्षा हो सकती है इसका दूती को विश्वास है। इसीलिए वह "हाल ही चलो" का आग्रह करती है। नायिका की दशा उस सीमा तक

पहुँच चुकी है जहाँ करुण का क्षेत्र प्रारम्भ होनेवाला है। यदि नायक दूती की प्रार्थना स्वीकार कर "हाल ही" चल देता है तो नायिका की जीवन-रक्षा संभव हो जायगी तथा करुण का क्षेत्र न रहेगा। यदि नायक ने कुछ विलम्ब किया तथा उधर "चन्द्रमुखी चेती" तो निश्चय ही वह "चाँदनी में चुरि जायगी" और करुण रस का क्षेत्र प्रकट हो जायगा।

इष्टनाश की सीमारेखा के सम्बन्ध में यहाँ निम्नलिखित शंका उठ सकती है। विप्रलंभ एवं करुण का अन्तर प्रकट करते हुए बताया गया कि जहाँ तक आशा की चिनगारी बनी रहे विप्रलंभ तथा जैसे ही आशा की चिनगारी बुझ जाय तो करुण का क्षेत्र आ जाता है। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है—किसी की आशा की चिनगारी बुझ जाय ? रसानुभूति के अन्तर्गत आलंबन, आश्रय तथा सामाजिक (या पाठक) विशेषरूप से आते हैं। आलंबन एवं आश्रय मुख्यरूप से रसव्यंजना के आधार होते हैं। अतएव कहा जा सकता है कि भाव-व्यंजना करनेवाले पात्र (आश्रय) की ही आशा की चिनगारी बुझ जाय तो करुण रस समझना चाहिए। रसनिष्पत्ति सामाजिक में मानी गई है। साधारणीकरण द्वारा सामाजिक का आश्रय के साथ तादात्म्य हो जाता है। अतएव आश्रय के साथ सामाजिक की आशा की चिनगारी भी बुझी हुई प्रतीत होती है। इस प्रकार आश्रय एवं सामाजिक के तादात्म्य द्वारा इस शंका का निवारण हो जाता है।

शास्त्रों में आश्रय एवं सामाजिक के तादात्म्य के प्रतिकूल दशा को रसाभास की श्रेणी में रखा है किन्तु आचार्य शुक्लजी ने इस प्रकार की रसात्मकता को मध्यम कोटि की माना है।[1]

"किसी भाव की व्यंजना करने वाला, कोई क्रिया या व्यापार करने वाला पात्र भी शील की दृष्टि से श्रोता (या दर्शक) के किसी भाव का जैसे श्रद्धा, भक्ति, घृणा, रोष, आश्चर्य, कुतूहल या अनुराग का आलंबन होता है। इस दशा में श्रोता या दर्शक का हृदय उस पात्र के हृदय से अलग रहता है अर्थात् श्रोता या दर्शक उसी भाव का अनुभव नहीं करता जिसकी व्यंजना पात्र अपने आलंबन के प्रति करता है बल्कि व्यंजना करनेवाले उस पात्र के प्रति किसी और ही भाव का अनुभव करता है। यह दशा भी एक प्रकार की रस-दशा ही है यद्यपि इसमें आश्रय के साथ तादात्म्य और उसके आलंबन का साधारणीकरण नहीं रहता—जैसे कोई क्रोधी या क्रूर प्रकृति का पात्र यदि किसी निरपराध या दीन पर क्रोध की प्रबल व्यंजना कर रहा है तो श्रोता या दर्शक के मन में क्रोध का रसात्मक संचार न होगा, बल्कि क्रोध प्रदर्शित करने वाले उस पात्र के प्रति अश्रद्धा, घृणा आदि का भाव जगेगा। ऐसी दशा में

---

१. रसानुभूति में में 'उत्तम मध्यम' की कोटि स्थापित करना भ्रमात्मक ही है। रसानुभूति तो एक रस, अखण्ड और एक कोटि की ही होती है जहाँ तादात्म्य न होगा वहाँ स्तुति ही क्या होगी।

आश्रय के साथ तादात्म्य या सहानुभूति न होगी, बल्कि श्रोता या पाठक उक्त पात्र के शीलद्रष्टा या प्रकृति-द्रष्टा के रूप में प्रभाव ग्रहण करेगा और यह प्रभाव भी रसात्मक ही होगा। पर इस रसात्मकता को हम मध्यम कोटि की ही मानेंगे।

इस विवेचन से आचार्य जी का दृष्टिकोण स्पष्ट है। आश्रय एवं सामाजिक के तादात्म्य न होने की अवस्था में वह मध्यम कोटि की रसानुभूति मानते है। इस प्रकार की रसानुभूति करुण रस के सम्बन्ध में भी जैसाकि पहले दिखा चुके हैं, उसके साथ विप्रलंभ का वर्णन आदि संभव है इसीलिए आचार्यजी के दृष्टिकोण का यहाँ उल्लेख किया गया (यद्यपि इस प्रकार की मध्यम कोटि रसानुभूति को मैं रसानुभूति नहीं मानता हूँ)—"करुण ही विप्रलंभ होगया" कहकर की जा सकती है। इस प्रकार इस विभेद की पृथक् स्थिति समीचीन प्रतीत नहीं होती। जिस प्रकार विप्रलम्भ करुण में परिणत हो जाता है उसी प्रकार करुण भी विशेष परिस्थितियों में विप्रलम्भ में परिणत हो जाता है।

उत्तररामचरित में राम-सीता के मिलन की वस्तुस्थिति इससे पृथक् है। राम को सीता के मिलने की कोई आशा नहीं है। वह सीता को मृत समझकर विलाप करते हैं। अतएव यह पूर्ण प्रसंग करुण के अन्तर्गत आता है। सीता मिलन से पूर्व—किसी आकाशवाणी आदि द्वारा—मिलन का आश्वासन प्राप्त न होने के कारण—मिलन से पूर्व तक करुण की स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता। मिलन असंभावित एवं आकस्मिक रूप से होता है। अतएव इस अवसर पर विप्रलंभ का प्रश्न ही नहीं उठता। यह मिलन अद्भुत-रस के अन्तर्गत आता है। राम ने स्वयं इस वियोग तथा पहिले वियोग का अन्तर निम्नलिखित शब्दों में प्रकट किया है—

"उपायानां भावादविरलविनोद व्यतिकरै—
विमर्दैर्वीराणां जनितजगत्यद्भुतरसः
वियोगो मुग्धाक्ष्याः स खलु रिपुघातावधिरभू—
त्कटुस्तूष्णीं सह्यो निरवधिरयं तु प्रविलयः।"
—(उ० रा० च०/३/४४)

रिपुघातपर्यन्त रहनेवाला पहिला वियोग विप्रलंभ का उदाहरण था और यह दूसरा विरह अवधि शून्य होने के कारण करुणरस का उदाहरण है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि "करुणविप्रलंभ" नामक पृथक् विभेद की कोई आवश्यकता नहीं है। इसीलिए साहित्यदर्पणकार से इतर भट्ट आदि अन्य किसी आचार्य ने इस विभेद की कल्पना नहीं की।

करुण एवं रौद्र रस—प्राचीन काल में शापजनित परिस्थितियों में शापित व्यक्ति करुण का तथा शापदाता रौद्र का आलंबन होता था! इसी रूप में कदाचित् करुण रस को रौद्ररस की प्रतिक्रिया कहा गया।

करुण और रौद्र रस के आश्रय, आलंबन एवं स्थायीभाव आदि में स्पष्ट

अन्तर है। इसलिए किसी एक के स्थान पर दूसरे का भ्रम नहीं हो सकता। मनोभाव के विकास-क्रम का अध्ययन किया जाय तो यह भी स्पष्ट हो जायगा कि रौद्र से ही करुण उत्पन्न नहीं होता प्रत्युत करुण से भी रौद्र उत्पन्न हो सकता है और इस क्रम को निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं—

रौद्र-करुण-रौद्र अथवा रौद्र-करुण एवं करुण-रौद्र।

प्राचीन कथाओं में भी इस प्रकार के प्रसंग आए हैं कि शापित व्यक्ति भी शापदाता को प्रत्युत्तर में शाप दे डालता है। शोकाभिभूत व्यक्ति भी यदि शक्ति-सामर्थ्यवान हुआ तथा प्रतिकार संभव हुआ तो शोक के स्थान में रौद्ररस का अभिनय करता है। अभिमन्यु की मृत्यु पर अर्जुन का शोक रौद्र एवं वीर में परिणत होगया था। भरत का कैकेयीभर्त्सना-प्रसंग शोक का क्रोध में और क्रोध का पुनः शोक (आत्म-ग्लानि एवं परिताप) में पर्यवसान है।

रौद्र और करुण मनोभावों से सम्बन्धित मानस का एक प्रसंग यहाँ अवलोकनीय है। इस प्रसंग में कवि की कला तो है ही—कवि ने उसी शब्दावली का दोनों भावों के लिए प्रयोग किया है किन्तु साथ ही मनोभावों के सान्निध्य तथा पूर्वा पर सम्बन्ध पर भी प्रकाश पड़ता है—

रावण सीता से "मानु मम बानी" के लिए आग्रह करता है और इसके उत्तर में सीता के कटु वचनों को सुनकर क्रुद्ध हो जाता है—

"सुनत वचन पुनि मारन धावा, मयतनया कहि नीति बुझावा।
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई, सीतहि बहुबिधि त्रासहु जाई।
मास दिवस महुँ कहा न माना, तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना।"

लंकादहन के पश्चात् हनुमान् सीताजी से विदा लेते हैं। उस समय सीता जी इन्हीं शब्दों को अति दुखी होकर दुहराती है—

"मास दिवस महुँ नाथु न आवा, तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा।"

इस प्रकार दोनों मनोभावों की क्रियाशीलता तथा एक--दूसरे के सम्बन्ध एवं अध्ययन सान्निध्य को दृष्टिगत रखते हुए इन दोनों रसों का तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है।

ट्रेजेडी और करुण रस—पाश्चात्य काव्यशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य अरस्तू ने ट्रेजेडी के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन किया है तथा जिन मान्यताओं की उन्होंने प्रतिष्ठा की है उनका आज भी समादर है। ट्रेजेडी और करुणरस का अध्ययन काव्य शास्त्र के क्षेत्र में पाश्चात्य एवं भारतीय चिन्तन को स्पष्ट कर देगा।

ट्रेजेडी के लिए जिस स्थायीभाव की कल्पना अरस्तू ने की है वह भय, त्रास तथा शोक का मिश्ररूप है। ट्रेजेडी में इष्ट का वध रस का कारण होता है जो एक सीमा तक अनिवार्य भी समझा जा सकता है। किन्तु करुणरस में शोक प्रमुख है उसके

साथ त्रास का सद्भाव हो सकता है। वैसे, करुण बिना त्रास के भी संभव है। भय के लिए तो करुणरस में कोई स्थान ही नहीं है। भयानक स्वयं एक पृथक् रस है।

ट्रेजेडी की प्रक्रिया विरेचन सिद्धान्त पर आधारित है। जिस प्रकार रेचक औषधि उदर विकारों को शुद्ध कर शरीर को स्वस्थ बना देती है उसी प्रकार ट्रेजेडी के द्वारा मनोविकारों से विषाक्त मन शुद्ध एवं परिष्कृत हो जाता है। दूसरे शब्दों में ट्रेजेडी का मुख्य लक्ष्य दुःख से मुक्ति मात्र है जबकि करुणरस का उद्देश्य इससे आगे आनन्द प्राप्ति है। प्रक्रिया को और स्पष्ट करते हुए कह सकते हैं कि ट्रेजेडी और करुण दोनों मनोविकारों का परिष्करण करते हैं किन्तु ट्रेजेडी कपड़े के धब्बों को एक-एक करके छुटाती है तो करुणरस सारे वस्त्र को एक रंग में डुबो देता है जिससे धब्बों आदि का कोई अस्तित्व ही नहीं रहता।

परिशिष्ट—क

करुणरस की अनुभूति सुखात्मक अथवा दुःखात्मक

करुणरस की अनुभूति सुखात्मक है अथवा दुःखात्मक—यह एक विवादास्पद विषय रहा है। नाट्यदर्पण के रचयिता रामचन्द्र गुणचन्द्र ने इस विषय का विस्तृत प्रतिपादन करते हुए निश्चय किया है "सुख-दुःखात्मको रसः।"

इस प्रसंग में आगे व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा है—भयानक, वीभत्स, रौद्र तथा करुणरस के श्रवण तथा इनके अभिनय के दर्शन से श्रोता अथवा सामाजिक के चित्त में एक विचित्र क्लेश-दशा उत्पन्न होती है तथा सामाजिक उद्विग्न हो उठता है। सुखस्त्राद से उद्वेग किस प्रकार उत्पन्न होगा। अतएव सामाजिक के उद्वेग को दृष्टिगत रखते हुए यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो जाता है कि इन रसों से सुखात्मक अनुभूति नहीं होती। कवि शक्ति और नट-कौशल से वस्तु के प्रदर्शन में एक विशेष चमत्कार आ जाता है जिसके कारण दुःखात्मक अनुभूति भी सामाजिक को प्रवृत्त किए रहती है।[1]

रसकलिका के लेखक रुद्र भट्ट भी इसी मत को मानते हैं। उन्होंने भी करुण की अनुभूति को दुःखात्मक तथा रस की दशा को सुखदुःखात्मक माना है। "करुणामयानामपि उपादेयत्वं सामाजिकानाम् रसस्य सुखदुःखात्मिकया तदुभयलक्षणेन उपपद्यते अतएव तदुभयजनकत्वम्।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस विषय पर प्रकाश डालते हुए निम्नलिखित विचार प्रकट किये हैं—

---

१. "भयानकादिभिरुद्विजते समाजः न नाम सुखास्वादाद् उद्वेगो घटते, यत् पुनरेभिरपि चमत्कारो दृश्यते, स रसास्वादविरामे सति यथावस्थितवस्तुप्रदर्शकेन कीवनटशक्तिकौशलेन, अनेनैव च सर्वांगल्लादरेन कविनटशक्तिजन्मर्ना चमत्कारेण विप्रलब्धाः परमानन्दरुपता दुःखात्मकेष्वपि करुणादिषु सुमेधरुः प्रतिजानते।"

—(नाट्यदर्पण)

"क्रोध, भय, जुगुप्सा, और करुणा के सम्बन्ध में साहित्य-प्रेमियों को शायद कुछ अड़चन दिखाई पड़े क्योंकि इनकी वास्तविक अनुभूति दुखःखात्मक होती है। रसास्वाद आनन्दस्वरूप कहा गया है, अतः दुःखरूप अनुभूति रस के अन्तर्गत कैसे ली जा सकती है, यह प्रश्न कुछ गड़बड़ डालता दिखाई पड़ेगा। पर आनन्द शब्द को व्यक्तिगत सुख-भोग के स्थूल अर्थ में ग्रहण करना मुझे ठीक नहीं जंचता। उसका अर्थ मैं व्यक्तिबद्ध दशा से मुक्त और हल्का होकर अपनी क्रिया में तत्पर होना ही उपयुक्त समझता हूँ। इस दशा की प्राप्ति के लिए समय-समय पर प्रवृत्त होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। करुणरस प्रधान नाटक के दर्शकों के आँसुओं के सम्बन्ध में यह कहना कि आनन्द में भी तो आँसू आते हैं, केवल बातें टालना है। दर्शक वास्तव में दुःख ही का अनुभव करते हैं। हृदय की मुक्त दशा में होने के कारण वह दुख भी रसात्मक होता है।"

—(चिंतामणि—रसात्मक बोध के विविध-रूप)

पाश्चात्य विद्वानों ने इस सम्बन्ध में निम्नलिखित विचार प्रकट किये हैं—

अरस्तू—"शोकावसायी अभिनय के देखने से दर्शक के हृदयगत करुण तथा भय के भावों का विरेचन हो जाता है। हमारे दैनिक जीवन में इन भावों की विशुद्धि हो जाने से हम पहिले से अधिक स्वस्थ तथा मुक्त हो जाते है जैसे मल निसःरण पर शरीर हल्का, नीरोग तथा स्फूर्तिमय प्रतीत होता है। [१]"

फ्राइड—" · उपर्युक्त सिद्धान्त (अरस्तू) पर्याप्त नहीं है। भावात्मक निःसरण के पश्चात् हम स्वस्थ अनुभव करते है किन्तु उस समय के हमारे सन्तोष का यह कोई कारण नहीं है···बात यह है कि नेता के पतन में हम अपनी विजय समझते हैं क्योंकि अप्रत्यक्षरूप से हम उसको अपना शत्रु समझते हैं।" [२]

स्टुअर्ड तथा ऑगडन—"जब हमारा जीवन सरलता तथा सुविधानुकूल व्यतीत होता है तो हम भावात्मक उत्तेजना को—यहाँ तक साधारणरूप में वेदनायुत उत्तेजना को भी आनन्दपूर्वक प्राप्त कर लेते हैं।"[३]

---

1. Witnessing a tragedy affected a purgation of the feeling of pity and terror's and left us free of these emotions in our daily life.
2. The above theory is not sufficient. We have relief after some emotional out-burst but it does not account for our satisfaction at that time. Freud says that we unconsciously book upon him as a rival.
3. When our life follows a smooth and easy course, we enjoy emotional stimulation even of a slightly painful kind.

—Modern Psychology and educated by Stuart and Oagden-P. 113.

शैले—"हमारे मधुरतम गीत वह होते हैं जो अति शोकपूर्ण विचारों का प्रकटीकरण करते हैं।[1]

दुःखान्त गाथा में हमारी सहानुभूति निम्नलिखित सिद्धान्त पर आधारित है—जिस आनन्द (सुख) का अस्तित्व वेदना में है दुखान्त काव्य उस आनन्द की छाया की व्यवस्था कर आनन्द प्रदान करता है। आनन्द जो शोक में है स्वयं आनन्द के आनन्द से मधुरतर होता है।"[2]

आचार्य शुक्ल जी ने इस समस्या के लिये मनोवैज्ञानिकों का समाधान देते हुए लिखा है—"मनोवैज्ञानिक अनुभूति को क्रीड़ावृत्ति मानते हैं। श्रम और पीड़ा जब क्रीड़ा की वृत्ति में स्वतः परवर्तित होते हैं जब उनकी अनुभूति आनन्दस्वरूप होती है।" —(रसमीमांसा—४१५ सं० २००७)

करुण विप्रलंभ—संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत कुछ ऐसे भी प्रसंग आए हैं जहाँ दो प्रेमियों में से एक की मृत्यु हो जाने के पश्चात् पुनः मिलन हो जाता है। अन्य स्थलों पर मृत्यु समझ ली जाती है तथा कुछ समय पश्चात् पुनः मिलन हो जाता है। ऐसे उदाहरण कादम्बरी में पुण्डरीक तथा महाश्वेता और उत्तररामचरित्र में सीता (हिंस्र जन्तुओं द्वारा मृत समझ ली गई है) तथा राम के है। साहित्य दर्पणकार ने इन प्रसंगों के लिये "करुणविप्रलंभ" नाम से एक पृथक् भेद की कल्पना की है—

"यूनोरेकतरस्मिन् गतवति लोकान्तरं पुनर्लभ्ये
विमनायते यदैकस्तदा भवेत् करुणविप्रलंभः"
—(साहित्य दर्पण २/२०९)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी "रस मीमांसा" में इस विभेद की ओर संकेत करते हुए लिखा है—

करुण रस और करुण विप्रलंभ में अन्तर—करुणविप्रलंभ में किसी शक्ति के द्वारा मृत प्रिय के फिर से जीवित होने की आशा रहती। यदि कहीं इसप्रकार की आशा न हो तो करुण रस हो जाता है।

—(रस मीमांसा—सं०२००६, पृ० १९)

---

1. We look before and after.
   And pine for what is not,
   Our sincerest laughter,
   With some pain is fraught,
   sweetest songs are those that tell of saddest thought.
2. Our sympathy in tragic fiction depends on this principle; tregedy delights by affording a shadow of that pleasure which exist in pain. This is the source of melancholy which is inseparable from the sweetest melody. The pleasure that is in sorrow is sweeter than the pleasure of pleasure itself,
   —Shelley—Defence of poetry.

पुण्डरीक तथा महाश्वेता के आख्यान में करुण एवं विप्रलंभ की स्थिति का विश्लेषण निम्नरूप में किया जा सकता है—

पुण्डरीक की मृत्यु
महाश्वेता का विलाप — करुण

मृत शरीर को कोई दिव्य
ज्योति उठा ले जाती है
तथा आकाशवाणी द्वारा
महाश्वेता को आश्वासन
दे जाता है कि पुनः मिलन
होगा। — करुणविप्रलंभ

पुनः मिलन के लिये विरह — विप्रलंभ

इस विश्लेषण से स्पष्ट है कि आकाशवाणी से पूर्वतक करुण तथा आकाशवाणी के पश्चात् विप्रलंभ का स्पष्ट एवं पृथक् क्षेत्र स्थित है। इन दोनों को मिलाकर करुण-विप्रलंभ कहा गया है जिसकी व्याख्या भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के उपर्युक्त विचारों को संक्षिप्त रूप में इस प्रकार रख सकते हैं—

करुण की अनुभूति का जहाँ तक प्रश्न है वह दुःखात्मक होती है किन्तु निम्न-लिखित आधार पर वह सुखात्मक-सुखभोग के स्थूल अर्थ में नहीं प्रत्युत व्यक्तबद्ध दशा से मुक्त रूप में हो जाती है तथा सामाजिक की प्रवृत्ति बनी रहती है।

वस्तुगत आधार—१. कविशक्ति तथा नटकौशल।

हृदयगत आधार—१. सामाजिक का हृदय व्यक्तबद्ध दशा से मुक्त।
२. शोक के भाव का विरेचन।
३. नेता के पतन में अपनी विजय।
४. सरल एवं सुविधाजनक जीवन में साधारण वेदना का आनन्दरूप।
५. क्रीड़ा-वृत्ति के रूप में अनुभूति के आन्दस्वरूप होने के कारण।
६. वेदना का आंनद आनन्द के आनन्द से मधुरतर होने के कारण।

उपर्युक्त विवरण को रेखाचित्र से इस प्रकार दिखा सकते हैं—

हृदय की मुक्त दशा को ही मनोवैज्ञानिकों ने अनुभूति के गुण तथा हृदय की विभिन्न दशाओं के रूप में प्रकट किया है। उदाहरण स्वरुप किसी एक तथ्य को लेकर यहाँ विचार कर सकते हैं। हृदय की वेदनाप्रियता अथवा क्रीड़ा के उपभोग के समय अपने अस्तित्व से मुक्त हो जाना अति स्वाभाविक है। यदि हृदय भौतिक राग-द्वेष से मुक्त नहीं हुआ तो इस ओर रम ही नहीं सकता। अस्तु इन तथ्यों को हृदय की मुक्त दशा के अन्तर्गत प्रकट किया जा सकता है। इस तथ्य पर रस-विवेचन के अन्तर्गत प्रकाश डालते हुए पण्डितराज जगन्नाथ ने निम्नलिखित विचार प्रकट किए हैं—

"रत्याद्यवच्छिन्नभग्नावरणा चिद् एव रसः"—रस पृथक् पदार्थ न होकर चैतन्यरूप ही है। चैतन्य के ऊपर से अज्ञान का आवरण हट जाता है जिससे रति आदि स्थायीभाव रसरूप होते हैं।

वस्तुगत दशा के अन्तर्गत कविशक्ति तथा नटकौशल का उल्लेख हुआ है। इस तथ्य की ओर भी आगे आने वाले आचार्यों का ध्यान गया तथा काव्य को कवि द्वारा भावित बतलाया गया। कवि मूल भौतिक अनुभूति को अपनी कल्पना तथा कला के आधार पर जो साहित्यिक रूप देता है वह भावित रूप कहलाता है। जिस प्रकार लोहा स्वर्ण बनकर महत्वपूर्ण बन जाता है, इसी प्रकार एक व्यक्ति के भाव एवं अनुभूति साधारणकृत रूप में जो कवि के भावन व्यापार द्वारा संभव होता है, जन-साधारण की वस्तु बनकर सार्वजनीन हो जाती है। इस तथ्य की ओर संकेत रस को "ब्रह्मानंद सहोदरः" अथवा "ब्रह्मानंद सचिवः" कहकर भी किया गया है। ब्रह्मानंद रूप रसानंद रूप से इस दृष्टि से पीछे पड़ जाता है कि ब्रह्मानंद, रूप में वासना का त्याग अथवा उच्छेदन अभीष्ट होता है तो रसानंद में वासना का विभावन अथवा विशोधन अभीष्ट है जो सहज संभव है इसीलिए ज्ञानमार्ग में उच्चकोटि के महर्षियों की भी पतन की कथाएँ प्रचलित हैं किन्तु रसानंद भोगी की विरति का कभी कोई उल्लेख नहीं हुआ। वास्तविकता यह है कि वासना का उच्छेदन, शमन अथवा असंभव-प्रायः ही है।

विभावन व्यापार को निम्नलिखित रूप में प्रकारान्तर से प्रकट किया गया है तथा भावन व्यापार की प्रक्रिया पर भी प्रकाश डाला गया है।

अनुभूति के तीन रूप होते हैं—शारिरिक, मानसिक तथा बौद्धिक। इन तीनों रूपों में अनुभूति—उतरोत्तर अप्रत्यक्ष तथा सूक्ष्म होती जाती है। रसानुभूति मानसिक एवं बौद्धिक रूपों के मध्य की वस्तु है वह बौद्धिक की भाँति अरूप भी नहीं होती तथा मानसिक से सूक्ष्मतर भी होती है। इसीलिए इस अनुभूति में लौकिक प्रत्यक्ष अनुभूति के समान दुःख का अनुभव नहीं होता। साथ ही रसानुभूति के रूप में अनुभूति अपने सुखद अथवा दुःखद गुण की परिभाषा भी बदल देती है। उस समय सुव्यवस्थित सुखद तथा अव्यवस्थित दुःखद प्रतीत होता है। काव्य-भावना व्यापार में काव्य सामग्री को

सुव्यवस्थित रूप में प्रकट करता है। अतः प्रसंगानुकूल वह लौकिक रूप में दुःखद होती हुई भी रसानुभूति में पूर्णतया सुखद होती है।[1]

साहित्यगत अनुभूति पर दो रूपों में विचार कर सकते हैं—

१—आश्रयगत अनुभूति।

२—सामाजिकगत अनुभूति।

आश्रयगत अनुभूति में अभिनय प्रधान होता है। जितना अच्छा अभिनय होगा उतना ही अधिक वह पात्र के संतोष एवं आनंद का विषय होगा। पात्र बाह्यरूप में रोता पीटता दिखलाई दे सकता है और लौकिक दुःखात्मक अनुभूति की भाँति शोक के उपयुक्त अभिनय करता है किन्तु उससे किसी भी प्रकार दुःखी नहीं होता। उसके दुःख में और लौकिक दुःख की अनुभूति में यह विशेष अन्तर होता है कि उसको अप्रत्यक्ष रूप में अपनी सुरक्षित स्थिति का विश्वास रहता है। लौकिक आश्रय का यह विश्वास नष्ट हो जाता है। इसलिए वह दुःख का अभिनय नहीं कर सकता प्रत्युत दुःख का अनुभव ही करता है। लौकिक शोकानुभूति के पश्चात् आश्रय उदासीन, खिन्न तथा दुःखी दिखलाई देता है जबकि साहित्यगत् अभिनय के पश्चात् प्रसन्न, आनंदित उल्लसित दिखलाई देता है। इसका मुख्य कारण यह है कि पात्र का उद्देश्य अभिनय की सफलता है इसलिए अपने अभिनय की प्रशंसा से आनंद तथा सुख की प्राप्ति होती है। यदि मान लीजिए कि उसका अभिनय अच्छा न हुआ तथा लोगों ने आलोचना की तो उसको दुःख होगा। यह तथ्य आलोच्य विषय से संबंधित नहीं है। यहाँ तो सफल अभिनय से ही तात्पर्य है जिसके अन्तर्गत लौकिक शोकानुभूति का हूबहू अनुकृति कर लेता है। लौकिक आश्रय के शोकानुभूति की प्रशंसा का प्रश्न ही नहीं उठता। इस प्रकार स्पष्ट है कि पात्र की शोकानुभूति उसके लिए सुखद होती है।

सामाजिकगत अनुभूति अन्तर्गत केवल अश्रु तथा स्वरभंग ही बाह्य व्यंजक के रूप में प्रकट होते हैं जबकि लौकिक अनुभूति में अश्रु तथा स्वरभंग से लेकर प्रलाप, मोह तथा अपस्मार आदि सभी दशाएँ प्रकट होती हैं। अश्रु का अध्ययन करते हुए देख चुके हैं कि अश्रु केवल दुःख अथवा केवल सुख में संभव नहीं होते, प्रत्युत विषम परिस्थिति में दुःखान्त सुखान्त के समन्वय में संभव होते हैं। अतएव प्रत्यक्ष अनुभूति में अश्रु शोक की स्मृति के कम होने पर आलंबन के सुखद स्मृति के समन्वय में प्रकट होते हैं जबकि रसानुभूति में आलंबन की नैतिक, धार्मिक अथवा राजनीतिक निष्ठा के अन्तर्गत उसके द्वारा घोर यंत्रणा सहकर भी सत्य अथवा अहिंसा आदि मनोनीत सिद्धान्तों की रक्षा को देखकर तज्जनित उल्लास एवं आनंद के प्रसंग में दुःख-सुख के समन्वय में प्रकट होते हैं। सामाजिक में इस अश्रुमोचन के पश्चात् लौकिक आश्रय के

---

१. डा० नगेन्द्र द्वारा प्रतिपादित

अश्रु मोचन के समान विवर्णता, उदासीनता तथा क्लान्ति आदि दिखलाई नहीं देते प्रत्युत वह आनंद, उल्लास तथा आनंद का अनुभव करता है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार पात्र अपने सफल अभिनय के पश्चात् प्रसन्न होता है।

इस प्रकार करुण रस की अनुभूति सामाजिक को सुख, संतोष तथा आनंद ही प्रदान करती है और इसी रूप में उसको सुखात्मक कहा जाता है।

परिशिष्ट—ख

करुणरस की परिभाषा का विकास

विभिन्न आचार्यों द्वारा दी गई परिभाषाओं के सूक्ष्म विवेचन द्वारा करुणरस की परिभाषा का विकास-क्रम निश्चित किया जा सकता है।

मूलतः चार रस माने गए तथा करुण की उत्पत्ति रौद्र रस से मानी गई। रौद्र रस की क्रिया को ही करुणरस कहा गया। शास्त्रीय मर्यादा का यह प्रारम्भिक काल कहा जा सकता है। प्राचीनों के लिए रौद्र रस की क्रिया प्रायः शाप के कारण होती थी। शाप की व्याख्या करते हुए नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र गुणचन्द्र ने लिखा है—"किसी प्रभावशाली ऋषि मुनि आदि का इष्ट के वियोग के प्रति ले जाने वाला क्रोध शाप होता है।"[1] इसीलिए संभवतः स्वयं भरत ने भी करुण रस के कारणों को एक समस्त पद (करुणस्तु शापक्लेशविनिपतिनेष्टजनविभवनाशवधबन्धसमुत्थो निरपेक्ष भावः) "विनिपति ... समुत्थो" द्वारा निर्दिष्ट किया तथा उसके साथ "शापक्लेश" पद जोड़कर सीमित कर दिया। इस प्रकार इसका अर्थ हुआ—केवल शापक्लेश में पड़े हुए इष्टजन के विभवनाश, वध तथा बन्ध से समुत्थित निरपेक्ष भाव करुण है। इस सम्पूर्ण पद के मिलने से एक कारण बन गया और इस प्रकार करुण की सीमा केवल शापग्रस्त व्यक्ति तक निश्चित करके अति संकीर्ण कर दी गई।

भरत के पश्चात् दण्डी ने इष्टनाश के साथ "आदि" धनंजय ने इष्टनाश अथवा "अनिष्ट प्राप्ति" तथा विश्वनाथ ने "इष्टनाश एवं अनिष्ट प्राप्ति" लिखकर करुणरस के क्षेत्र को विस्तृत किया। भरत के समय तक प्रायः "इष्टनाश" का ही उल्लेख हुआ। किन्तु दण्डी, धनंजय तथा विश्वनाथ ने स्पष्टतः दूसरे अंग "अनिष्ट प्राप्ति" का भी उल्लेख किया।

विश्वनाथ के पश्चात् पण्डितराज जगन्नाथ ने पुनः करुणरस के क्षेत्र को विशेष एवं परिमित करना चाहा। उन्होंने "पुत्रादि वियोग एवं मरण" को ही करुण का क्षेत्र निर्धारित किया। "इष्टनाश" एवं "अनिष्ट प्राप्ति" शब्दों के अन्तर्गत पुत्रादि का ही उल्लेख क्यों किया? यह विषय शास्त्रीय खोज का है। संस्कृत साहित्य के इतिहास से तो यह प्रकट नही होता कि स्वयं पण्डितराज को पुत्रवियोगादि सहना पड़ा

---

१. "शापोभिमत वियोगहेतुर्दिक प्रभाववतः आक्रोशः।"—ना० द० १११ की व्याख्या

हो तथा इस कारण से वह इस परिवर्तन को करने के लिए विवश हो गए। हो सकता है पुत्र वियोग की अनुभूति की दारुण एवं मर्मस्पर्शी प्रकृति को समझकर ही पण्डित-राज ने यह परिवर्तन किया हो।

पण्डितराज के पश्चात् रामचन्द्र गुणचन्द्र ने "बन्ध, धन-भ्रंश, शाप तथा व्यसन का पृथक् उल्लेख कर "बन्धन, धनभ्रंश तथा व्यसन के प्रसंगों की करुण रस के क्षेत्र में अभिवृद्धि की। यद्यपि भरत ने बन्धन एवं विभवनाश का उल्लेख पूर्व ही कर दिया था किन्तु उसको इष्टनाश से संबंधित ही रखा था। यहाँ यह प्रसंग स्वतंत्र रूप में प्रकट हुए हैं इसलिए इनके द्वारा अभिवृद्धि समझी गई।

व्यसन की व्याख्या करते हुए उन्होंने व्यसन का अर्थ बतलाया — अनर्थ या अनिष्ट होजाना। इस अनर्थ शब्द से ही युद्ध, अकाल, विप्लव आदि का संग्रह हो जाता है—यह भी उन्होंने स्पष्ट किया। करुणरस के अभिनय के संबंध में लिखते हुए उन्होंने बतलाया—रोना, मुख-मालिन्य और निन्दन (आत्मनिन्दा, दैवनिन्दा, एवं भाग्य-निन्दा आदि) द्वारा करुण का अभिनय होता है। इस अभिनय की व्याख्या द्वारा करुणरस के क्षेत्र में निन्दन द्वारा आत्मनिन्दा के प्रसंगों का भी समावेश हुआ। आत्मनिन्दा के प्रसंग आध्यात्मिक शोक के अन्तर्गत भी जाते हैं। इस प्रकार नाट्य-दर्पणकार के समय तक करुणरस का सीमित क्षेत्र विशेषरूप से विस्तृत हुआ।

हिन्दी के आचार्यो में आचार्य केशवदास जी ने करुण की परिभाषा देते हुए लिखा है, "सुख के सब उपाय जहाँ छूट जाते हैं वहाँ करुणरस स्वतः ही आकुल होकर उत्पन्न होता है।" आचार्य जी का संकेत आशा की चिनगारी बुझ जाने की ओर है जो करुण एवं विप्रलंभ का विभेदनिर्णायक तथ्य है। किन्तु रामचन्द्रिका में आचार्य जी ने करुण रस के विशेष स्थल भी दिखलाए हैं।

(i) ऋषि सतानन्द तथा महाराज जनक दशरथ को भोजन के लिए बुलाने जाते और कहते हैं, "जिस प्रकार कल कष्ट किया था आज भी कष्ट कीजिए। हम लोग तो आपके चरणोदक के प्यासे हैं" इस विनय को सुनकर सबको करुणरस की अनुभूति निम्न शब्दों में हुई—

"जब ऋषिराज विनै कर लीनो, सुनि सबके करुणारस भीनों।"

(ii) दूसरा विशेष प्रसंग रामजननी-मिलन अवसर पर उपस्थित होता है। इस मिलन में आचार्य जी करुणरस की अभूतपूर्व छटा देखते हैं—

"मिले जाय जननीन कों जबही श्री रघुराई।
करुणारस अद्भुत भयो मो पै कह्यो न जाई॥"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने करुणरसानुभूति के विकासक्रम की ओर संकेत करते हुए तीन दशाओं की प्रतिष्ठा की है—

साथ ही शुक्ल जी ने भारतीय दृष्टिकोण को पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर भी खरा पाया है। उन्होंने इस प्रयास में स्पष्ट दिखला दिया है कि पाश्चात्य साहित्य एवं समीक्षा की ओर दौड़नेवाले नवयुवक अपने साहित्य एवं शास्त्रीय विवेचन की ओर भी देखें—जिन खोजपूर्ण तथ्यों के लिए आधुनिक मनोविज्ञान आज गर्व कर रहा है उनकी खोज भारतीय साहित्य आज से सहस्रों वर्ष पूर्व कर चुका था।

आचार्य जी ने करुण का विकासक्रम अनुभूति की दृष्टि से निश्चित किया है तथा करुण रस की अनुभूति को विप्रलम्भ की अनुभूति का क्रमिक विकास माना है।

करुणरस की परिभाषा का विकास प्रकारान्तर से विरोध परिहार के अन्तर्गत भी हुआ। करुण और शृंगार विरोधी रस हैं। इनके विरोधपरिहार के संबंध में प्राय: प्रयास हुआ—

महाभारत के युद्ध में भूरिश्रवा के मर जाने पर युद्ध क्षेत्र में उसके कटे हुए हाथ को देखकर उसकी पत्नी के विलाप-प्रसंग में निम्नलिखित श्लोक आया है—

"अयं स रशनोत्कर्षी पीनस्तनविमर्दन:
नाभ्युरुजघनस्पर्शी नीवीविस्रंसन: कर:।"

(संभोग समय तगड़ी को हटानेवाला, उन्नत उरोजों का मर्दन करनेवाला, नाभि, जंघा और नितम्ब का स्पर्श करनेवाला और नाड़े को खोलने वाला यह वही प्रियतम का हाथ है।)

इस श्लोक द्वारा संभोगशृंगार की पूर्ण अभिव्यक्ति हो रही है किन्तु नायिका की विशेष स्थिति के कारण यह संभोग शृंगार भी करुणरस का सहायक तथा उद्दीपक हो जाता है।

भवभूति के उत्तररामचरित के अन्तर्गत इस विरोध का परिहार तृतीय अंक में हुआ है। महाकवि की उत्कृष्ट कला ने इस अंक में शृंगार एवं करुण का अति सुन्दर समन्वय किया है। इस अंक में भी संभोग शृंगार के उत्कृष्ट दृश्य हैं किन्तु उन सब से करुणरस का ही उद्दीपन होता है। राम का विलाप "अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्" की सीमा तक पहुँच जाता है। वह स्थल-स्थल पर सीता के विरह में विलाप करते हैं। सीता के स्पर्श के कारण उनकी अनुभूति और भी मर्मस्पर्शी बन जाती हैं। वह बार बार मूर्च्छित होते तथा पुकार उठते हैं—

"हा हा देवि, स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्ध:
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ मोह: स्थगयति कथं मन्दभाग्य: करोमि ?" —(उ०रा०३/३८)

उधर सीता राम के स्पर्श का अनुभव कर संभोग शृंगार की अनुमति का प्रकटीकरण कर रही हैं—

"सस्वेदरोमाञ्चितकम्पितांगी जाता प्रियस्पर्शसुखेनवत्सा
मरुन्नवाम्भः परिधूतसिक्ता कदम्बयष्टिः स्फुटकोरकेव ।" —(उ० रा० ३/४२)

इस प्रकार उत्कृष्ट काव्यकला के आधार पर शृंगार एवं करुण के परिहार की बात संभव हुई तथा इस रूप में भी करुण रस के क्षेत्र का विकास हुआ ।

करुण रस के इस विकासक्रम का एक रेखा चित्र निम्नलिखित रूप में दिया जा सकता है ।

भरत (नाट्यशास्त्र)	करुणरस (रौद्रस्य क्रिया) शापित व्यक्ति का (इष्टनाश, वध, बन्धन, विभवनाश)
दण्डी, धनंजय, विश्वनाथ	इष्टनाश—अनिष्टप्राप्ति
पण्डितराज जगन्नाथ	पुत्रादि वियोग एवं मरण
रामचन्द्र गुण चन्द्र	मृत्यु बन्ध धनभ्रंश शाप व्यसन निन्दन
केशवदास	आर्तनिवेदन एवं मिलन प्रसंग
आनन्दवर्धन, भवभूति	विरोध परिहार—शृंगार, करुण
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	करुण—विप्रलंभ का क्रमिक विकास (जहाँ तक प्रेमी-प्रेमिकाओं के प्रेम का संबंध है)
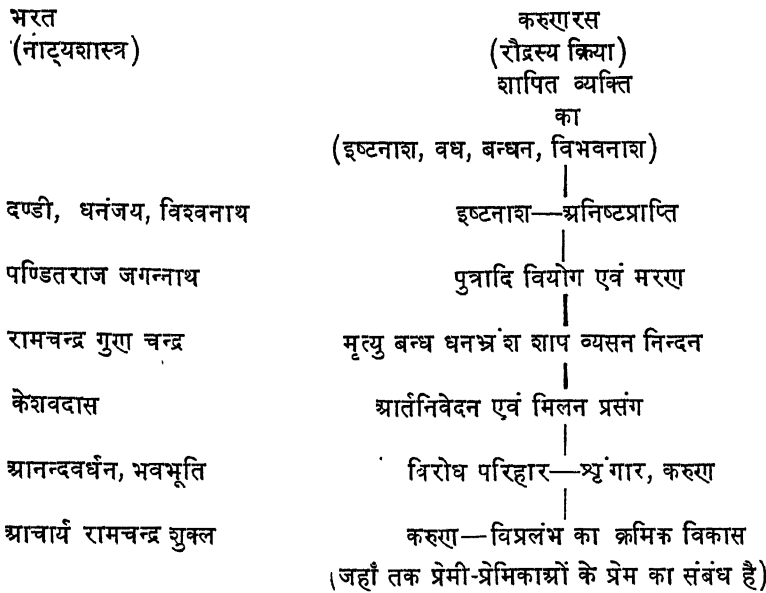
(क) मनोभावों में करुणरस (मध्य युगीन हिन्दी)

जिज्ञासा
विवशता
किंकर्तव्य विमूढ़ता
अनभिज्ञता
नाम
साधन
आत्मरक्षा
आत्मविस्मृति
आत्मघात
निराशा
साधनगत
साध्यगत
अनिश्चय
विरह
मानवीकरण
कल्पना
अशिष्टता
जाति अपमान (मरण)
प्रतीकार
परवशता
आत्मजसमंशता
अभिमान
आत्मा से
पर से
आत्मलघुत्व
प्रभुमहत्व
आत्मघात का विचार
अनिश्चय, सदोषता, प्रतीकार भावना,
उदासीनता
प्रतिकूलता, परवशता, प्रतिज्ञा, ग्लानि, क्षोभ,
विफलता, निराशा
अग्नि में कूदकर
जल में कूदकर
पहाड़ से कूदकर
विषपान द्वारा
अपवित्रता
विवशता
दीनता, अवलम्बन, साधन अनभिज्ञता, प्रबलता,
उदासीनता, सत्याग्रह
कल्पना, मुक्तवचन, सदेसा,
हीनभावना, पराभव, क्षोभ, पश्चाताप,
उदासीनता, ग्लानि, विरक्ति, अमर्ष, आशंका।
करुणरस का विश्लेषण
उत्पत्ति—१. शृंगार, रौद्र, वीर, वीभत्स
करुण
२. ऋग, साम, अथर्व, यजु
वीर
शृंगार
रौद्र
वीभत्स
करुण
३. इच्छा
राग
द्वेष
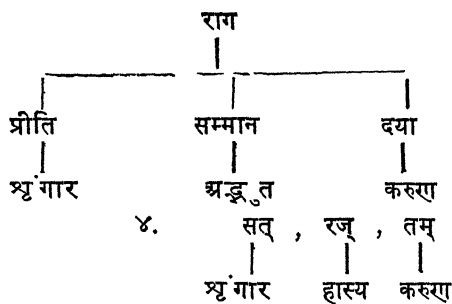
विभेद—१. करुण २. अतिकरुण ३. महाकरुण ४. लघुकरुण ५. सुखकरुण

देवता—यम, वरुण

आलंबन—प्रियजन वियोग, प्रियजन मरण, पराजय, बन्धन, वध, क्लेश एव दुख, धर्म अपघात, धन वैभव नाश।

उद्दीपन—प्रियजन दाह कर्म, वस्त्रादि दर्शन, गुणकथन, परिताप असहायावस्था।

अनुभाव—भूमिपतन, रोदन, दैवनिन्दा, भाग्य निन्दा, विवर्णता, उच्छ्वास, स्तम्भ, प्रलय, स्वर भंग, अश्रु, मुखशुष्कता, कम्प।

संचारीभाव—निर्वेद, ग्लानि, व्याधि, चिन्ता, स्मृति, विषाद, जड़ता, मोह अपस्मार, भ्रम, दैन्य, मूर्च्छा, शंका, आवेग, त्रास।

स्थायीभाव—शोक

"एको रसः करुण एव"

शोकस्थायी में परिणति

शृंगार (रति)—स्मृतिगत संभोग शृंगार (इष्टनाश के समय) वियोग दशा (निराशा जन्य)

हास (हास्य) क्षोभगत हास (हँसते हुए रोना)

करुण (शोक) शोकगत विवश एवं असहाय परिस्थितियाँ

रौद्र (क्रोध) प्रतिक्रिया के रूप में (विवशतागत)

वीर (उत्साह) पराभव एवं पराजयगत परिस्थितियाँ

भयानक (भय) स्मृतिगत रूप में

वीभत्स (ग्लानि) आत्मग्लानि के रूप में।

अद्भुत (विस्मय) सृष्टि व्यापार वैचित्य।

शान्त (निर्वेद आध्यात्मिक शोक।

परिशिष्ट—घ

शोक का प्रदर्शन

शोक

करुण रस का प्रदर्शन

आध्यात्मिक शोक

आध्यात्मिक शोकाभिभूत ईसा

([illegible] हिन्दुस्तान के सौजन्य से)

खण्ड—ख

मध्ययुगीन हिन्दी-रामकाव्य

में

करुणारस

: १ :

मध्ययुगीन हिन्दी-रामकाव्य को पूर्वपीठिका

मध्ययुगीन हिन्दी रामकाव्य की पूर्वपीठिका के अन्तर्गत संस्कृत-साहित्य, अपभ्रंश-साहित्य तथा हिन्दी का चारणकाल मुख्यरूप से उल्लेखनीय हैं जिनके संदर्भ में करुणरस पर विचार कर लेने से करुणरस की मूलधारा के उद्गम का भी उद्घाटन हो सकेगा। मध्ययुगीन हिन्दी-रामकाव्य की करुणाधारा के श्रोत का उसकी पूर्वपीठिका में अवलोकन कर लेने से हिन्दी रामकाव्य के करुणरस के प्रसंगों को समझने में सुविधा होगी क्योंकि हिन्दी-रामकाव्य की अभिव्यक्ति का आधार उस की पृष्ठभूमि ही है। अतएव यहाँ संस्कृत साहित्यगत रामकथा एवं अपभ्रंश-साहित्य गत रामकथा में तथा चारणकाल में प्रकट करुणरस का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

संस्कृत-साहित्य की रामकथा में करुणरस

संस्कृत साहित्य के प्रायः काव्यों का आधार रामकथा रही है जिनमें वाल्मीकि रामायण तथा उसके ही आधार पर रचित अध्यात्म-रामायण और नाटकों में उत्तर-रामचरित विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। वाल्मीकि रामायण रामकथा का प्रथम महाकाव्य है जिसमें रामकथा का विस्तृत विवेचन हुआ है तथा रामकथा के सभी तत्वों पर विस्तार से विचार किया गया है। रामकथा का कोई ऐसा प्रसंग अछूता अथवा अविकसित नहीं छूटा जिस पर आगे आने वाले कवियों की यश-प्राप्त करने की कामना सिद्ध हो सकती।

महर्षि वाल्मीकि की प्रेरणा का मूल आधार करुणा है जो पशु-पक्षियों तक के लिए उन्मुक्त रही है। शोक ने श्लोक की रचना की और करुणा ने महर्षि को कवि बना दिया, उनको करुणा की प्रतिमूर्ति कहें तो अत्युक्ति न होगी। उनकी करुण-प्रकृति के अनुकूल ही उनको काव्य-सृजन के लिए उपयुक्त कथानक मिला। रामकथा के प्रथम कथाकार महर्षि वाल्मीकि ने उसमें यथाशक्ति और यथासंभव करुणा भरदी। उनके शोक में रामकथा मूलतः शोककुला एवं शोकमूला बन गई।

वाल्मीकि के राम, राम पहले तथा भगवान् बाद में है। इसीलिए उनके मानस में मानवहृदय की उन सहज अनुभूतियों के दर्शन होते हैं जो जन-साधारण की अति सामान्य पारिवारिक समस्याओं के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं। माता कौशल्या को महाराज दशरथ से उचित सम्मान प्राप्त नहीं होता, यह राम को भली-भाँति विदित है। राजमहल में सौतीली माता कैकेयी का विशेष प्रभाव है यह भी वह भली-भाँति जानते हैं। इसीलिए बनवास के समय उनके निवेदन में इन तथ्यों की ओर स्पष्ट संकेत मिलते हैं। कहना न होगा कि इस रूप में वाल्मीकि रामायण जन-मानस के अति समीप है।

हिन्दी साहित्यगत रामकथा में प्रमुखतः इष्टनाश अथवा प्रियबन्धुबान्धव के वियोग का ही वर्णन हुआ है। संस्कृत-साहित्य मे भी करुणरस के इतर प्रसंगों का वर्णन नाममात्र में ही हुआ है। भारतीय आत्मा ने भौतिकता की कभी चिन्ता नहीं की है। इसलिए धननाश आदि के प्रसंग प्रायः अछूते ही रहे हैं। यहाँ इस प्रकरण में प्रियबन्धुबान्धव के वियोग तक ही अध्ययन को सीमित रखा गया है जिससे हिन्दी साहित्यगत रामकथा के समान प्रसंगों पर संस्कृत रामकथागत करुणरस की पृष्ठभूमि में अपेक्षित प्रकाश पड़ सके।

वाल्मीकि रामायण के प्रियबन्धुबान्धव-वियोग एवं इष्ट-नाश के प्रसंगों को निम्नलिखित रूप में रखा जा सकता है—

१. राम-वनवास प्रसंग तथा दशरथ-मरण।
२. सीताहरण तथा रामविलाप।
३. अशोकवन स्थित सीता की करुणदशा।
४. माया के बने हुए राम के कटे सिर को देखकर सीता का विलाप।
५. माया-सीता के वध पर राम का दुःख एवं शोक।
६. लक्ष्मण शक्ति।
७. सीता-निर्वासन।

विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति—

१. बालि-वध।
२. कुंभकरण-मेघनाद वध पर रावण-विलाप।
३. रावण-वध पर विभीषण तथा मंदोदरी का विलाप।

वाल्मीकि रामायण में करुणरस की अभिव्यक्ति

रामवनवास प्रसंग—रामवनवास-प्रसंग की मुख्य घटना दशरथ-मरण है। वियोग की यह आत्यांतिक दशा असाधारण है। इसीलिए कवि को इस तथ्य की विभिन्न रूपों में व्याख्या तथा पुष्टि करनी पड़ी है। यह व्याख्या शास्त्रीय-विवेचन नहीं है। मनोवैज्ञानिक तत्वों का संकलन तथा संघटन है जिनके फलस्वरूप अप्रत्यक्ष

रूप में दशरथ-मरण की असाधारण घटना स्वाभाविक प्रतीत होने लगती है। बात यह है वाल्मीकि रामायण में रामकथा के करुण प्रसंगों की पहले-पहल अभिव्यक्ति हुई। इसलिए राम-वियोग में दशरथ मरण को स्वाभाविक एवं सहज सिद्ध करने के लिए कवि को विशेष प्रयत्न करना पड़ा। दशरथ की शोकानुभूति के क्रमिक विकास, आशा-निराशागत भावों के उत्थानपतन तथा वेदना के विकसित असह्यरूप में अंधशाप की स्मृति के अन्तर्गत जीवनीशक्ति के ह्रास के लिए घातक संवेदनों की योजना करके कवि इस प्रसंग को स्वाभाविकता प्रदान करता है। इस प्रकार सामाजिक को यह प्रसंग स्वाभाविक ही नहीं लगता प्रत्युत उसके मानस में इस प्रकार की मृत्यु के भी संस्कार बन जाते हैं जिसके फलस्वरूप आने वाले रामकथा के कलाकारों को इस प्रसंग पर इतना परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं रहती।

कैकेयी के वरदान को सुनकर तरुणीवशगत वृद्ध महाराज जो अनुनय-विनय करते है उसमें उनकी विवशता, शारीरिक शिथिलता तथा जीवन-शक्ति की क्षीणता के प्रति कवि प्रथम ही संकेत कर देता है जो इस प्रसंग की पृष्ठभूमि बन जाती है।

महाराज दशरथ की व्यथा का निम्नलिखित चार स्थितियों में अध्ययन कर सकते हैं—

१—कैकेयी से वरदान का श्रवण, राम का बुलाया जाना तथा बनवास के लिए कहना।

२—राम का वनवास की तैयारी करके माता कौशल्या सहित महाराज के पास आना तथा प्रस्थान।

३—सुमंत्र का राम को पहुँचाकर वापिस आना तथा माता कौशल्या की कटूक्तियाँ।

४—अंधशाप का स्मरण तथा निधन।

महाराज दशरथ की व्यथा की प्रथम स्थिति—महाराज दशरथ की अनुनय-विनय के अन्तर्गत निम्नलिखित तथ्यों का प्रकटीकरण हुआ[1]।

अ—वह (महाराज) वृद्ध है, उनको जीवन की आशा नहीं रही है तथा उनकी दशा शोचनीय है।

आ—वह कैकेयी के वश में है उसके सामने गिड़गिड़ाते तथा हाथ-पैर जोड़ते हैं और अपने आपको परम विवश अनुभव करते हैं। राम के प्रति उनका अगाध प्रेम

१. "मम वृद्धस्य कैकेयि गतान्तस्य तपस्विनः।
दीनं लालप्यमानस्य कारुण्यं कर्तुमर्हसि॥" —अयो० १२/३४
"अञ्जलिं कुर्मि कैकेयि पादौ चापि स्पृशामि ते।
शरणं भव रामस्य माधर्मो मामिह स्पृशेत्।"—अयो० १२/३६
"इति दुःखाधिसन्तप्तं विलपन्तमचेतनम्।
घूर्णमानं महाराजं शोकेन समभिप्लुतम्॥" —अयो० १२/३७

है किन्तु प्रतिज्ञाभंग के प्रति वह परमभीरु भी हैं।

इ—उनकी शारीरिक दशा अति क्षीण है, इसलिए वह अचेत हो जाते हैं।

उपर्युक्त वर्णन महाराज की शोकानुभूति की पृष्ठभूमि है। इसकी पुष्टि महाराज के शब्दों में पुनः होती है जब वह कैकेयी से यह निश्चय कराते हैं कि वह वास्तव में ही ऐसा वरदान माँग रही है अथवा केवल हँसी कर रही है। कैकेयी अपने निश्चय को पुनः प्रकट करती है और साथ में शपथ खाकर अपने भयंकर निश्चय को कठोर वास्तविकता के रूप में प्रकट करती है। तब तो महाराज दशरथ अपनी असहायावस्था में बिलख उटते हैं और उनकी अति करुणापूर्ण दशा का कवि मार्मिक शब्दों में चित्रण करता है[1]—

अ—शोक की गंभीरता में वाणी मूक हो गई और उनके मुख से केवल "हा राम! हा राम" शब्द निकले।

आ—उनकी दशा ऐसी हो गई जैसे—

(१) पागल हो गए हों और इसलिए नष्टचित्त हों।
(२) सन्निपातादि रोगों से ग्रस्त हों।
(३) मंत्रमुग्ध सर्प की तरह हततेज हों।

इ—महाराज दशरथ विषम वेदना के कारण विलाप करने लगे। निरसहाय प्राणी की भाँति उनकी दृष्टि भी आकाश की ओर लग गई।

ई—वह सोचने लगे कि दुःख सहने के अयोग्य श्रीराम के दुःख को देखने से पूर्व हम मर जाते तो स्वर्ग में हमको सुख मिलता। वह रात्रि उनके लिए काल-रात्रि बन गई। यह सोचकर वह कहने लगे कि हम इस निशा का प्रभात नहीं चाहते।

इस समय राम को बुलाया गया। महाराज दशरथ वेदना तथा आत्मग्लानि से पीड़ित थे अतएव वह राम को देखने का साहस न कर सके न वह कुछ बोल ही सके। अश्रुपूर्ण-नेत्र महाराज दशरथ के मुख से केवल "राम" शब्द निकल[2]। कवि ने मानस की सूक्ष्म अनुभूतियों की ओर संकेत करते हुए इस प्रसंग को मर्मस्पर्शी बना

१. "स देव्या व्यवसायं च घोरं च शपथं कृतम्।
ध्यात्वा रामेति निःश्वस्यच्छिन्नस्तरुरिवापतत्॥" —अयो० १२/५४
"नष्टचित्तो यथोन्मत्तो विपरीतो यथाऽतुरः।
हततेजा यथा सर्पो बभूव जगतीपतिः॥"—अयो० १२/५५
"यदि दुःखमकृत्वाद्य मम संक्रमणं भवेत्।
अदुःखार्हस्य रामस्य ततः सुखमवाप्नुयाम्॥"—अयो० १३/१२
"विललापार्तवद्दुःखं गगनासक्तलोचनः।
न प्रभातं तवेच्छामि निशे नक्षत्र भूषणे॥"—अयो० १३/१७

२. 'रामेत्युक्त्वा च वचनं वाष्पपर्याकुलेक्षणः।
शशाक नृपतिर्दीनो नेक्षितुं नाभिभाषितुम्॥'—अयो० १८/३

दिया है। महाराज के अनुभावों का वर्णन करके कवि ने अप्रत्यक्षरूप से इस प्रसंग की गंभीरता पर प्रकाश डाला है[१]।

महाराज की सारी इन्द्रियाँ विकल थीं, शोकसंताप के कारण बार-बार दीर्घ निश्वास छोड़ रहे थे। नीची गर्दन किए आँसू बहा रहे थे।

यहाँ हृदय को कचोटनेवाला एक प्रसंग और उल्लेखनीय है। राम कैकेयी से पूछते हैं कि यह तो बताइए कि महाराज इस प्रकार नीची गर्दन किए आँसू क्यों बहा रहे हैं। इसके उत्तर में कैकेयी कहती हैं—"हे राम, जबतक तुम वन को प्रस्थान न करोगे तबतक महाराज ऐसे ही बैठे रहेगे, न स्नान करेंगे न भोजन करेंगे।" इस उत्तर से स्पष्ट है कि कैकेयी से अधिक रामवनवास के लिए महाराज की सहमति एवं इच्छा ही नहीं प्रत्युत वह इसके लिए कृतनिश्चय भी हैं और जब तक यह कार्य नहीं हो जाता तबतक वह इसी प्रकार सत्याग्रह किए बैठे रहेंगे। महाराज दशरथ के समान भुक्त भोगी ही इस उत्तर की कटुता का अनुभव कर सकते हैं। वह निष्पाप तथा निरीह और उनके मत्थे उन्हीं के सामने मढ़ा जाय यह घोर पाप एवं कलंक, विशेषकर उस समय जब वह अपनी दीन दशा एवं मानसिक असह्य वेदना के कारण इसका विरोध करने में भी असमर्थ हों और उनकी मौन उनकी सहमति को ही प्रकट कर सकती हो। महाराज दशरथ इस हृदयविदारक उत्तर को सुनकर अतएव "हा धिक" कहकर दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए मूर्च्छित होकर पलंग पर गिर पड़े। कवि ने अपनी कलाकुशलता के बल पर ही महाराज को कैकेयी के इस जाल से मुक्त करा दिया। इस एक शब्द "हा धिक्" से ही स्थिति स्पष्ट हो गई[२]।

इसी क्रम में इस व्यथा का एक और रूप प्रकट होता है जब श्रीराम कैकेयी से कहते हैं कि ऐसा करना कि भरत अच्छी तरह राज्य करें और पिता की भली-भाँति सेवाशुश्रूषा करें क्योंकि पुत्र के लिए यही सनातन धर्म है। महाराज दशरथ के मानस की कल्पना कीजिए, वह राम को वनवास दे रहे हैं और राम वन जाते हुए भी उन (पिता जी) की कुशलक्षेम एवं सेवाशुश्रूषा के लिए लालायित एवं प्रयत्नशील हैं। इसीलिए इस स्थिति में महाराज कुछ बोल तो न सके किन्तु ढाड़ मारकर रोने लगे[३]।

---

१. 'इन्द्रियैरप्रहृष्टैस्तं शोकसन्तापकर्शितम्।
निःश्वसन्तं महाराजं व्यथिताकुलचेतसम्॥'—अयो० १८/५
'तदाश्वासय हीमं त्वं किन्विदं यन्महीपतिः।
वसुधासक्तनयनो वसुधासक्तनयनो मन्दमश्रूणिमुञ्चति॥'—अयो० १९/९

२. धिक्कष्टमिति निश्वस्य राजा शोकपरिप्लुतः।
मूर्छितो न्यपतत्तस्मिन्पर्यङ्के हेमभूषिते॥'—अयो० १९/१७

३. 'भरत : पालयेद्राज्यं शुश्रूषेच्च पितुर्यथा।
तथा भवत्या कर्तव्यं स हि धर्मः सनातनः —अयो० १९/२६
'स रामस्य वचः श्रुत्वा भृशं दुःखहतः पिता।
शोकादशक्नुवन्पास्पे प्ररुरोदे महास्वनम॥' —अयो० १९/२७

महाराज दशरथ की व्यथा की द्वितीय स्थिति—व्यथा की द्वितीय स्थिति की पृष्ठभूमि में माता कौशल्या का शोक मर्मस्पर्शी रूप में प्रकट होता है जब वह सुनती हैं कि राम को राजतिलक के स्थान में वनवास की आज्ञा दी गई है। यहाँ सौतेली माता तथा सौतिया-डाह के प्रसंग विशेष रूप से अवलोकनीय हैं जिनके संदर्भ में माता कौशल्या का शोक पारावारिक कटुता एवं विषमता के कारण मर्मभेदी वास्तविकता का उद्घाटन करता है।

माता कौशल्या को जब श्रीराम ने अपने वनवास की सूचना दी तो वह इस दुःखद समाचार को सुनकर यकायक भूमि पर गिर पड़ीं[1]। यह अनुभाव स्वाभाविक प्रतीत होता है जब हम देखते हैं कि माता कौशल्या की आशा, प्रयत्न, हर्ष, उल्लास एवं उत्साह के विपरीत उनको घोर निराशा का समाचार सुनने को मिला। कहाँ वह राजतिलक की तैयारी कर रहीं थीं और राह देख रहीं थीं कि वह आज अपने पुत्र को राजसिंहासन पर सुशोभित देखेंगी और कहाँ उनको सुनने को मिला कि उन का यशस्वी पुत्र वन को जा रहा है क्योंकि उसको दण्डित व्यक्ति की भाँति वनवास की राजकीय आज्ञा दी गई है।

माता कौशल्या का शोक आत्मग्लानि तथा भविष्य की कटु परिस्थितियों की चिन्ता में प्रकट होता है[2]।

(१) मैं निपुत्री होती तो एक दुःख पुत्र न होने का ही होता किन्तु इस प्रकार की घोर व्यथा तो न सहनी पड़ती।

(२) पति का प्रेम मिला नहीं, जीवन के दुःखों का अन्त दिखाई दे रहा था किन्तु वह स्वप्न ही रहा।

(३) अब तो सौतों की सेवा करनी पड़ेगी और इतने पर भी कैकेयी की दासी के बराबर भी तो पूछ न होगी।

माता कौशल्या फलस्वरूप मृत्यु की कामना करती हैं और मृत्यु न मिलने पर आत्मग्लानि से कातर होकर कह उठती हैं—मैं समझती हूँ कि मृत्यु मुझे भूल गई है

---

१. 'पपात सहसा देवी देवतेव दिवश्च्युता।
तामदुःखोचितां दृष्ट्वा पतितां कदलीमिव॥'—अयो० २०/३३

२. 'न स्म दुःखमतो भूयः पश्येयमहमप्रजाः।
एक एव हि वन्ध्यायाः शोको भवति मानसः॥'—अयो० २०/३७
"न दृष्टपूर्वं कल्याणं सुखं व पतिपौरुषे॥"—अयो० २०/३८
"अहं श्रोष्ये सपत्नीनामवराणां वरा सती।
अतो दुःखतरं किं नु प्रमदानां भविष्यति॥"—अयो० २०/४०
"परिवारेण कैकेय्याः समा वाप्यथवा वरा।"—अयो० २०/४३

यमराज के यहाँ भी मेरे लिए स्थान नहीं है[1]।

माता कौशल्या की स्थिति तथा उनके भविष्य के संबंध में राम से कुछ छिपा न था। अब माता द्वारा स्पष्ट कहने पर उनको इसकी चिन्ता होने लगी। उन्होंने इसीलिए महाराज से बार-बार माता कौशल्या का ध्यान रखने की प्रार्थना की।[2]

आप पूज्य हैं, माता कौशल्या का आप ध्यान रखें। उसका उचित सम्मान तथा सत्कार करें जिससे पुत्रवियोग का कष्ट उसको न हो और वह पुत्रवियोग में जीवित रह सके।

महाराज दशरथ बहुपत्नी प्रथा के दोषों को समझते थे और अपने घर में उत्पन्न विषम परिस्थिति का अनुभव भी करते थे। राम की प्रार्थना ने मानों उनके सामने घर की शोचनीय स्थिति का प्रकटीकरण करके मुँह पर तमाचा-सा मार दिया और वह अपनी विवशता में तिलमिला उठे। वह राम के इन वचनों को सुनकर मूर्च्छित हो गए। राम की ओर देखने अथवा राम से कुछ कहने का उनको साहस न हुआ। कवि ने इस रूप में महाराज दशरथ की अति स्वाभाविक मानसिक दशा का चित्रण किया है। वेदना का संतोष पूर्वकर्म के विधान अथवा भाग्यवाद में होता है। महाराज दशरथ भी इस असह्य पीड़ा में यही सोचने लगे कि निश्चय ही हमने पूर्वजन्म में बहुत-सी गौओं के बछड़े उनसे अलग कर दिए हैं अथवा बहुत से प्राणियों का वध किया है जिसके फलस्वरूप हमको यह घोर यातना सहनी पड़ रही है।[3]

राम वन को चले तो उनके साथ अयोध्या के नर-नारी भी चल दिए। श्रीराम के रथ के पीछे क्या बालक, क्या बूढ़े और क्या युवक सभी दौड़ने लगे। राजभवन से महाराज दशरथ अपनी रानियों सहित यह कहते हुए पैदल ही दौड़ पड़े—"मैं अपने लाड़लों को देखूंगा'।'[4]

---

१. "स्थिरं तु हृदयं मन्ये ममेदं यन्न दीर्यते ॥" —अयो० २०/४६
"ममैव नूनं मरणं न विद्यते।
न चावकाशोस्ति यमक्षये मम ॥" —अयो० २०/५०

२. पुत्रशोकं यथानर्च्छे-त्वया पूज्येन पूजिता।
मां हि सञ्चिन्तयन्ती सा त्वयि जीवेतपस्विनी ॥—अयो० ३८।१७

३. नैनं दुःखेन सन्तप्तः प्रत्यवैक्षत राघवम्।
न चैनमभिसम्प्रेक्ष्य प्रत्यभाषत दुर्मनाः ॥ —अयो० ३६।२
मन्ये खलु मया पूर्वं विवत्सा बहवः कृताः।
प्राणिनों हिंसिता वापि तस्मादिदमुपस्थितम् ॥—अयो० ३६।४

४. अथ राजा वृतः स्त्रीभिर्दीनाभिर्दीनचेतनः।
निर्जगाम प्रियं पुत्रं द्रक्ष्यामीति ब्रुवन्गृहात् ॥—अयो० ४०/२८

उधर माता कौशल्या रथ के पीछे दौड़ रही थीं तथा "हा राम, हा सीता हा लक्ष्मण" कह कर चिल्ला रही थीं[1]।

अयोध्या के सारे नगरवासी राम के प्रयाण के समय हाहाकार करते हुए किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। महाराज नगरवासियों को अति दुःखी देखकर जड़ से कटे हुए पेड़ की भाँति भूमि पर गिर पड़े[2]।

रामवियोग का व्यापक प्रभाव—रामवियोग का व्यापक प्रभाव चराचर जगत में दिखलाई दे रहा है। संक्षेप में निम्नलिखित रूप में उसका अवलोकन किया जा सकता है—[3]

१—उस दिन न तो किसी ब्रह्मचारी ने अग्निहोत्र किया न किसी गृहस्थ के घर चूल्हा ही जला।

२—हाथियों ने अपनी झूलें गिरा दीं, गौओं ने बछड़े-बछियों को दूध न पिलाया।

३—माताएँ अपने बड़े पुत्रों को देखकर आनन्दित न हुईं।

४—तेज वायु चलने लगी, आकाश मेघाच्छादित हो गया, नगर में भूकम्प आ गया।

५—दशों दिशाओं में अंधकार छा गया।

६—राह चलते मनुष्यों के नेत्रों से आँसू बह रहे थे।

महाराज दशरथ की शोचनीय दशा—महाराज दशरथ राम के रथ पर दृष्टि लगाए हुए उसको एक टक देख रहे थे। उन्होने उस ओर से उस समय तक आँख न फेरीं जबतक रथ ओझल न हो गया किन्तु रथ के ओझल होते ही वह परम निराश

---

१. तथा रुदन्ती कौसल्यां रथं तपनुधावतीम्।
क्रोशन्तीं रामराममेति हा सीते लक्ष्मणेति च ॥—अयो० ४०/४४

२. दृष्ट्वा तु नृपतिः श्रीमानेकचित्तगतं पुरम्।
निपपातैव दुःखेन हृतमूल इव द्रुमः ॥—अयो० ४०/३६

३. नाग्निहोत्राण्यहूयन्त नापचन्गृहमेधिनः।
अकुर्वन्न प्रजाः कार्यं सूर्यश्चान्तरधीयत !!—अयो० ४१/६
व्यसृजन्कवलान्नागा गावो वत्सान्नपाययन्।
पुत्रं प्रथमजं लब्ध्वा जननी नाभ्यनन्दत ॥"—अयो० ४१/१०
कालिकानिलवेगेन महोदधिरिवोत्थितः।
रामेः वनं प्रव्रजिते नगरं प्रचचाल ततः॥"—अयो० ४१/१३
"दिशः पर्याकुलःसर्वानि स्तमिरेणेव संवृताः।" —अयो० ४१/१८
बाष्पपर्याकुलमुखो राजमार्गगतो जनः।"—अयो० ४१/१७

हो गये और अति आर्त्त और विकल होकर भूमि पर गिर पड़े। उनकी इस व्यथा में राम सीता लक्ष्मण के वन के कष्टों के चित्र उनके मानस में सजीव हो उठे। वह सोचने लगे[1]—

१—हमारे पुत्र यहाँ चन्दनचर्चित तकियों एवं गद्दों पर सुख से सोते थे, वन में वे किसी वृक्ष के नीचे लकड़ी का तकिया लगा कर सोवेंगें।

२—महाबाहु श्रीराम को वन में लोग अनाथों की भाँति घूमता देखेंगें।

३—सुख भोगने योग्य सीता के पैरों में काँटे चुभेंगे।

४—राजमहल के सुखों से वन के कष्टों की तुलना करके महाराज अति विकल हो उठे। उनको राम का अभाव खटकने लगा और प्रलाप करते हुए हाथ ऊपर को उठा कर वह चिल्लाते हुए बोले—"हे बेटा राम! तुम हमें छोड़े जाते हो[2]।"

महाराज दशरथ की दशा इस प्रलाप के पश्चात् अति शोचनीय हो गयी। उन की दृष्टि जाती रही। वह कौशल्या से कहने लगे कि मुझे स्पर्श कर तथा मार्ग प्रदर्शन कर। कवि ने कहा कि महाराज की दृष्टि राम के साथ चली गई और लौटी नहीं किन्तु अति विलाप, टकटकी लगाकर घण्टों एक दिशा में देखते रहने का भी तो यही प्रभाव होता है। इस तथ्यनिरुपण में वह सौन्दर्य कहाँ जो कवि की कल्पना में प्रसूत हुआ है—"रामं मे ऽनुगता दृष्टिरद्यापि न निवर्तते; न त्वा पश्यामि कौसल्ये साधु मां पाणिना स्पृश"

---

१. "न पश्यति रजोऽप्यस्य यदा रामस्य भूमिपः।
तदाऽऽर्तश्च विषण्णश्च पपात धरणीतले॥"—अयो० ४२/३

२. "यः सुखेषूपधानेषु शेतेचन्दनरूषितः।
वीज्यमानो महार्हाभिः स्त्रीभिर्मम सुतोत्तमः॥"—अयो० ४२/१५
"स नूनं क्वचिदेवाद्य वृक्षमूलमुपाश्रितः।
काष्ठं वा यदि वाऽश्मानमुपधाय शयिष्यते॥—अयो० ४२/१६
"राममुत्थाय गच्छन्तं लोकनाथमनाथवत्"—अयो० ४२/१८
सा नूनं जनकस्येष्टा सुता सुखसदोचिता।
कण्टकाक्रमणाक्रान्ता वनमद्य गमिष्यति॥—अयो० ४२/१९

३. तच्चा दृष्ट्वा महाराजो भुजमुद्यम्य वीर्यवान्।
उच्चैः स्वरेण चुक्रोश हा राघव जहासि माम्॥"—अयो० ४२/३१

महाराज दशरथ की व्यथा की तृतीय स्थिति—महाराज दशरथ को अभी एक आशा लग रही थी । सुमंत्र राम सीता लक्ष्मण को रथ में बैठाकर वन में पहुँचाने गए थे । महाराज ने इच्छा प्रकट की थी कि वन में घुमाकर लौटा लायें । सुमंत्र को भी विश्वास था कि महाराज की आर्त्त दशा तथा नगर निवासियों के विषमवियोग को ध्यान में रखते हुए श्रीराम वन में घूम कर वापिस आजावेंगे । महाराज दशरथ सुमंत्र की राह देख रहे थे और उधर सुमंत्र विफलमनोरथ होकर विलख रहे थे । सुमंत्र की निराशा का प्रारम्भ उस समय हुआ जब राम ने साथ में आए हुए पुरवासियों को त्याग दिया । राम सोते हुए पुरवासियों को छोड़ कर सुमंत्र को जगाकर मार्ग को छिपाते हुए वन की ओर चल दिए और इधर पुरवासी बिलखते हुए रह गए ।

तमसा नदी के किनारे पर राम के द्वारा परित्यक्त पुरवासियों की **वेदना इन शब्दों में प्रकट हुई**—तो अब हम यहीं प्राण दे देंगें या हिमालय पर जाकर बर्फ में गलकर मर जावेंगें ।[1] विषादयुक्त तथा अत्यंत दुःखी होने के कारण पुरवासी मृत्यु की कामना कर रहे थे । उनके मन में यह भी विचार आ रहा था कि जब हमारी यह दशा है तो महाराज दशरथ तो निश्चय ही राम के वियोग में प्राण दे देंगें[2] ।

सुमंत्र की अनुनय—विनय विफल हुई तथा राम वन से वापिस न लौटे तब सुमंत्र बहुत उदास और शोकाकुल हो कर अयोध्या वापिस आए । अयोध्या को "शून्या मिव निःशब्दा" देख कर वह समझ गए कि पुरी रामवियोग में दुखी तथा शोकाकुल थी— "रामसन्तापदुःखेन दग्धा शोकाग्निना पुरी।" राजमार्ग से जब वह महाराज दशरथ के भवन को जा रहे थे तो राम विरह में शोकाकुल पुर-नर-नारियों के हृदय विदारक विलाप को सुनकर अति व्यथित हो गए और उन्होंने अपना मुँह हाथों से ढक लिया। बड़ी शीघ्रता के साथ वह महाराज के भवन की ओर बढ़ चले[3] ।

सुमंत्र के साथ राम के वापिस जाने की आशा केवल महाराज दशरथ को ही नहीं थी प्रत्युत अयोध्या के समस्त नर-नारियों को ही यह आशा थी और वे सब सुमंत्र के आने की राह देख रहे थे । जब उन्होंने सुमंत्र को अकेला ही आते हुए देखा तो उनकी आशा घोर एवं कष्टकर निराशा में परिणत हो गई तथा चारों ओर हा-हाकार होने लगा । छज्जों, अटारियों तथा भवनों में जो स्त्रियाँ बैठी थीं वे सुमंत्र को

---

१. इहैव निधनं यामो महाप्रस्थानमेव वा ।
रामेण रहितानां हि किमर्थं जीवितं हि न । - अयो० ४७/७

२. तेषामेवं विषण्णानां पीड़ितानामतीव च ।
बाष्पविप्लुतनेत्राणा सशोकानां मुमूर्षया ।।—अयो० ४८/१
"न हि प्रव्रजिते रामे जीविष्यति महीपतिः"—अयो० ४८/२६

३. स राजमार्गमध्येन सुमंत्रः पिहिताननः ।
यत्र राजा दशरथस्तदेवोपययौ गृहम् ।। —अयो० ५७/१६

अकेला देख कर अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करने लगीं। विलाप के साथ उनके हृदयोद्गार भी अस्पष्ट शब्दों में प्रकट हुए[१]।

कवि ने उपर्युक्त वर्णन के द्वारा महाराज की व्यथा की तृतीय स्थिति की गंभीरता पर प्रकाश डाला है। सामाजिक सहज ही सोच सकता है कि जब पुर के नर-नारियों की निराशाजनति यह दशा है तो महाराज की क्या दशा होगी जिसका जीवन ही राम के आधीन है।

सुमंत्र ने राम का संदेश महाराज को सुनाया तथा वनावास के लिए उनका दृढ़ निश्चय बताया तो महाराज शोक के कारण अति विकल होकर मूर्च्छित हो गए और भूमि पर गिर पड़े। मूर्च्छित तो वह बार-बार होते थे किन्तु इस प्रसंग में उनकी मूर्छा चिन्ताजनक बन गई। उनकी आशा, जिसके सहारे वह जबतक जीवित थे तथा राम के वापिस आने के स्वप्न देख रहे थे, सहसा निराशा में परिवर्तित हो गई और वह परम निराश एवं असहाय होगये। ऐसी स्थिति में मूर्च्छित होना निश्चय ही चिन्ता का विषय था। राजपरिवार को आशंका हो उठी कि कहीं महाराज का निधन तो नहीं हो गया। इस तथ्य का संकेत कवि ने निम्नलिखित वर्णन में किया है—

उस समय महाराज को पथ्वी पर मूर्च्छित पड़ा देख कर रनिवास की सब रानियाँ बड़ी दुःखी हुई तथा बाँहें उठा-उठाकर विलाप करने लगी[२]।

उस समय का दृश्य भी ऐसा ही कारुणिक बन गया। एक ओर महाराज मूर्छित पड़े थे और दूसरी ओर महारानी कौशल्या विलाप कर रही थीं। इस कारण महाराज के निधन की आशंका स्वाभाविक बन गई और महाराज की अन्य रानियाँ ऊँचे स्वर से रोने लगीं और रनिवास में इस प्रकार के घोर विलाप को सुनकर नगर निवासी रोने लगे[३]।

कहना न होगा कि इस प्रसंग में कवि ने आगे आने वाली वास्तविक मृत्यु का संकेत कर दिया है और सामाजिक को इसके लिए तैयार भी कर दिया है। कवि ने करुणा के अन्तर्गत प्रकट सहानुभूति का अति स्वाभाविक वर्णन उपर्युक्त प्रसंग में

---

१. हर्म्यैर्विमानैः प्रासादैरवेक्ष्याय समागतम्।
हाहाकारकृता नार्यो रामादर्शनकर्शिता ॥ —अयो० ५७/१८
आयतैर्विमलैर्नेत्रैरश्रुवेगपरिप्लुतैः।
अन्योन्यमभिवीक्षन्तेऽव्यक्तमार्ततराः स्त्रियः ॥" —अयो० ५७/१९

२. ततोऽन्तःपुरमाविद्धं मूर्छिते पृथ्वीपतौ।
उद्घृत्य बाहू चुक्रोश नृपतौ पतिते क्षितौ ॥ —अयो० ५७/२७

३. एवं विलपन्तीं दृष्ट्वा कौसल्यां पतितां भुवि।
पतिं चावेक्ष्य ताः सर्वाः सुस्वरं रुरुदुः स्त्रियः ॥—अयो० ५७/३३
ततस्तमन्तःपुरनादमुत्थितं, समीक्ष्य वृद्धास्तरुणाश्च मानवाः।
स्त्रियश्च सर्वा रुरुदुः समन्ततः ....॥"— अयो० ५७/३४

किया है। एक को रोता देखकर दूसरे के नयनों में अश्रुओं का आ जाना स्वाभाविक है। इस लक्ष्य की ओर कवि ने विशेष ध्यान दिया है। कौशल्या को देखकर अन्य रानियों का रोना तथा उनको रोता देखकर नगरवासियों का रोना इस मनोवैज्ञानिक तथ्य की अति सुन्दर अभिव्यक्ति है।

मूर्छा से चेतन के पश्चात् महाराज को अपने वनवासी पुत्रों एवं पुत्रबधू की चिन्ता पुनः हो उठी। वह उनके कष्टों का विचार कर अति दुःखी होने लगे। उन्होंने सुमंत्र से यही पूछा कि वह किस प्रकार वन के कष्टों को सहते होंगे। षट्रसों से युक्त स्वादिष्ट भोजन करने वाले वे राजकुमार किस प्रकार वन के कंद-मूल खाकर रहते होंगे, किस प्रकार कोमल गद्दों पर सोने वाले वे कोमल शरीर वाले मेरे पुत्र व पुत्रवधू भूमि पर कुश आदि बिछाकर सोते होंगे, श्रेष्ठ सवारियों में चलने वाले वे सुकुमार किस प्रकार सुकुमारी, दुखिया सीता को साथ लेकर पैदल चलते होंगे[1]। उपर्युक्त कष्टों की स्मृति महाराज की वेदना तथा अनिष्ट की आशंका को बल देने के लिए पूर्ण समर्थ हुई।

इसके साथ श्रीराम के संदेश को सुमंत्र ने सुनाया। यह संदेश तथा इसके साथ राम और सीता की वेदना का वर्णन महाराज दशरथ के लिए अति कष्टकर सिद्ध हुआ। वह असह्य वेदना के कारण तड़पने लगे। कवि ने योजना ही ऐसे मर्मस्पर्शी प्रसंग की की। राम के संदेश में महाराज दशरथ के परिवार की विषमता का वह कटु सत्य था जिसको सुनकर महाराज का तिलमिला उठना स्वाभाविक था। सुमंत्र ने बताया कि राम ने भरत के लिए अति दुःखी होकर कहला भेजा था कि वह माता कौशल्या को अपनी माँ के समान ही समझे और इस संदेश के साथ वह बहुत रोए। उनको रोता देखकर सीता जिस पर इस प्रकार की विपत्ति प्रथम बार ही पड़ी थी, कुछ बोल न सकी, प्रत्युत अति कष्ट के साथ विलख उठी[2]। पति के अश्रुपूर्ण मुख को देख सीता का मुख सूख गया था और वह मेरी ओर देखकर सहसा आँसू बहाने लगी थी। इस स्थल पर भी कवि ने करुण के सहानुभूतिगत प्रभाव का सुन्दर चित्रण किया है। महाराज दशरथ की वेदना वैसे ही असह्य थी। इस संदेश के द्वारा उनकी मानसिक पीड़ा अति कष्टकर बन गई। उनकी यह कमजोरी उनके सामने आई कि वह कैकेयी-वशगत हैं, जिसके कारण अन्य बड़ी रानियों की चिन्ता उनको नहीं रही

---

१. सुकुमार्या तपस्विन्या सुमंत्रः सह सीतया।
राजपुत्रौ कथं पादैरवरुह्य रथाद्गतौ।।—अयो० ५८/६
"आसितं शयितं भुक्तं सूत रामस्य कीर्तय।"—अयो० ५८/१२

२. अब्रवीच्चापि मां भूयो भृशमश्रूणि वर्तयन्।
मातेव मम माता ते द्रष्टव्या पुत्रगर्धिनी।।—अयो० ५८/२४
अदृष्टपूर्वव्यसना राजपुत्री यशस्विनी।
तेन दुःखेन रुदती नैव मां किञ्चिदब्रवीत्।।—अयो० ५८/३५

हैं तथा वे रानियाँ कैकेयी की वशगता हैं, और इसके साथ ही यह विचार भी उनके मन में आया कि यह सब अनीति उनकी इसी कमजोरी के कारण हुई है। वास्तव में वही इस सब के लिए दोषी है। वह तड़फ उठे और अति विवश होकर प्रलाप करने लगे—हे राम, हे लक्ष्मण, हे वैदेही तपस्विनी तुम लोग नहीं जानते कि मैं अपने किए का फल भोग रहा हूँ, तुम सबके होते हुए भी अनाथ की भाँति मर रहा हूँ[1]।

वेदना चाहे जैसी असह्य हो, किन्तु मृत्यु का कारण होने के लिए तो उसे अत्यन्त घातक बनना पड़ेगा। इसीलिए कवि ने इस प्रसंग में एक और कष्टकर चोट महाराज के हृदय पर की। कौशल्या ने जब राम के संदेश को सुना तो उनका मातृ-स्नेह सहज ही मुखरित हो उठा। वह 'ओ मेरे लाडले, ओ मेरे 'राम आदि' कहकर विलाप करने लगीं। भरत के लिए प्रेषित राम के संदेश से अविश्वास स्थापित हो चुका था। इसलिए महाराज दशरथ से यह भी कह बैठीं कि यदि वनवास की १४ वर्ष की अवधि को पूरा करके राम वापिस आए तो मुझे विश्वास नहीं कि भरत राम को राज्य तथा कोष वापिस दे देंगे।[2] इसके साथ उन्होंने राम की अनिष्ट की आशंका को भयंकर रूप धारण किए हुए देखा और उसका मूलकारण देखा महाराज की कमजोरी को। अतएव उन्होंने और भी जो जी में आया कह डाला।

इस प्रकार यह प्रसंग अति कटु और असह्य बन गया। महाराज सहज ही अति व्याकुल होकर संज्ञाशून्य हो गए।[3]

महाराज दशरथ की व्यथा की चतुर्थ स्थिति—महाराज की चेतना के साथ महाराज को अंधशाप की स्मृति हो आई और वह अपनी मृत्यु अवश्यम्भावी समझकर अति दीन और कातर हो उठे। महारानी कौशल्या के कठोर वचन कटु सत्य थे। अतएव अपनी दीनता और विवशता प्रकट करते हुए महाराज ने महारानी कौशल्या जी से क्षमा-याचना की—

हे देवी, मैं तेरे हाथ जोड़ता हूँ, विनती करता हूँ, मुझ जैसे अति दुःखी व्यक्ति से ऐसे कठोर वचन न कहो। देवी मुझे क्षमा करो। तुम तो अपने शत्रुओं तक पर दया करती हो, मेरे ऊपर दया करो।[4]

---

१. हा राम रामानुज हा हा वैदेहि तपस्विनि।
ना मां जानीत दुःखेन म्रियमाणमनाथवत्॥—अयो० ५९/२७

२. "न चैवं देवी विरराम कूजितात् प्रियेति पुत्रेति च राघवेति च॥—अयो० ६०/२३
"यदि पंचदशे वर्षे राघवः पुनरेष्यति।
जह्याद्राज्यं च कोशं च भरतो नोपभुज्यते॥—अयो० ६१/११

३. "इमां गिरं दारुणशब्दसंश्रितां निशम्य राजाऽपि मुमोह दुःखितः॥"—अयो० ६१/२

४. "प्रसादये त्वां कौशल्ये रचितोऽयं मयाऽञ्जलिः।
वत्सला चानृशंसा च त्वं हि नित्यं परेष्वपि॥—अयो० ६२/७
"नार्हसे विप्रियं वक्तुं दुःखितापि सुदुःखितम्॥"—अयो० ६२/९

इस चोट के साथ अंधशाप का स्मरण हो आया तथा महाराज दशरथ अति विकल हो उठे। यह विकलता ठीक उसी प्रकार की थी जिस प्रकार प्राण निकलते समय शरीर का अंग-अंग तड़फ उठा है। अंधशाप की कथा उनकी आंखों के सामने नाचने लगी जिसकी पुनरावृत्ति होने जा रही थी। आज उनको स्वयं अंधतापस का अभिनय करना था। उनकी आत्मा इस बात को समझ रही थी और इसीलिए अंध-शाप की कथा के चित्रों को वह स्पष्ट देख रही थी और अति मार्मिक शब्दों में वर्णन कर रही थी—

वे दोनों (अंधतापसयुग्म्) पुत्र के पास जाकर उसके मृत शरीर को हाथों से टटोल कर उससे लिपट गए और श्रवण के पिता कहने लगे—हे पुत्र, तूने न तो आज मुझको प्रणाम किया और न मुझसे कोई बातचीत ही की, तू भूमि पर क्यों पड़ा है, क्या तू मुझसे रूठ गया है ?[1]

इस स्मृति के साथ महाराज ने अनुभव किया कि उनके शरीर से प्राण निकल गए हैं जैसे दीपक का तेल समाप्त होकर वह निस्तेज हो गया हो। असह्य शोक उनके जीवन को उसी प्रकार नष्ट करने लगा जिस प्रकार नदी की वेगवती धारा नदी के कगारों को नष्ट कर देती है।[2]

जीवन-नाश के इन अन्तिम क्षणों में प्रयाणतत्पर प्राणों के साथ महाराज का करुण प्रलाप प्रकट हुआ—हे पिता के प्यारे, हे मेरे नाथ, हे मेरे बेटे, तुम कहाँ गए ? हा, कौशल्या तपस्विनी, हा सुमित्रा, हा क्रूर कुलघातिनि कैकेयी, ·· इस प्रकार राममाता कौशल्या तथा सुमित्रा के सान्निध्य में विलाप करते हुए महाराज दशरथ ने प्राण त्याग दिए।[3]

महाराज दशरथ के निधन पर शोक—आश्रय की दृष्टि से महाराज दशरथ

---

१. तौ पुत्रमात्मानः स्पृष्ट्वा तमासाद्य तपस्विनी।
निपेततुः शरीरेऽस्य पिता चास्येदमब्रवीत् ॥—अयो० ६४/३०
नाभिवादयसे माऽद्य न च मामभिभाषसे।
किन्तु शेषेऽद्य भूमौ त्वं वत्स किं कुपितो ह्यसि ॥—अयो० ६४/३१

२. क्षीणस्नेहस्य दीपस्य संसक्ता रश्मयो यथा।
अयमात्मभवः शोको मामनाथमचेतसम् ॥—अयो० ६४/७५
संसादयति वेगेन यथाकूलं नदीरयः।

३ हा राघव महाबाहो हा ममायासनाशन ॥—अयो० ६४/७६
हा पितृप्रिय मे नाथ हाऽद्य क्वासि गतः सुत !
हा कौसल्ये विनश्यामि हा सुमित्रे तपस्विनि !
हा नृशंसे ममामित्रे कैकेयि कुलपांसिनि ॥—अयो० ६४/७७
इति रामस्य मातुश्च सुमित्रायाश्चसन्निधौ।
राजा दशरथः शोचञ्जीवितान्तमुपागमत् ॥—अयो० ६४/७८

के निधन पर कवि ने तीन बार शोक का वर्णन किया है—

(i) मृत्यु के समय राजमहल तथा नगर में व्याप्त शोक जिसके आश्रय राजमहल की विकल रानियाँ तथा सेवकगण और नगर के निवासी थे।

(ii) भरत के ननिहाल से लौटकर आने पर भरत द्वारा विलाप तथा शोक, महाराज के अन्त्येष्टि के समय प्रियबन्धुबान्धव का विलाप तथा शोक।

(iii) वन में भरत से महाराज दशरथ के मरण का समाचार पाकर श्रीराम द्वारा विलाप तथा शोक।

महाराज की मृत्यु के समय कवि ने शोक के सूक्ष्म बाह्याभिव्यंजकों की योजना की है। महाराज की अब तक सामान्य दशा यह थी कि वह बार-बार मूर्च्छित होते और प्रलाप करने लगते थे। इस प्रकार उनकी मृत्यु के समय उनकी मृत्यु का विश्वास न होना तथा मृत्यु की संपुष्टि के लिए स्पर्शादि का आश्रय लेना स्वाभाविक था।

महारानी कौशल्या तथा सुमित्रा ने महाराज दशरथ को देखा तथा स्पर्श किया और फिर (निश्चय हो जाने के पश्चात् कि वास्तव में मृत्यु हो गई) "हा नाथ" कहकर चिल्लाने लगीं और अति प्रलाप करती हुई पछाड़ खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं[1]।

महाराज की अन्य रानियाँ कैकेयी के साथ विलाप करती हुई महाराज के पास दौड़ी आईं और शोक से संतप्त होने के कारण मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं[2]।

रानियों के साथ अन्यान्य व्यक्तियों के घोर विलाप तथा क्रन्दन के कारण महाराज दशरथ के राजभवन के विशेष वातावरण का कवि ने वर्णन किया।

कवि ने गिने-चुने शब्दों में बताया "राजमहल भाग्यहीन-सा लग रहा था" इस स्वरूप की व्याख्या करते हुए कवि ने बताया कि उस समय महाराज दशरथ का राजभवन त्रस्त, विकल और व्यग्रजनों से आकुल, उनके महाचीत्कारों से व्याप्त और परिताप से संतप्त बन्धुजनों से परिपूर्ण, दीन, विपन्न तथा अति करुणापूर्ण हो गया था[3]।

रानियों के शोक का वर्णन करते हुए कवि ने उनके निम्नलिखित सूक्ष्म

---

१. कौशल्या च सुमित्रा च दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च पार्थिवम्।
हा नाथेति परिक्रुश्य पेततुर्धरणीतले ॥—अयो० ६५/२२

२. ततः सर्वा नरेन्द्रस्य कैकेयीप्रमुखाः स्त्रियः।
रुदन्त्यः शोकसन्तप्ता निपेतुर्धरणीतले ॥—अयो० ६५/२५

३ तत्समुत्रस्तसम्भ्रान्तं पर्युत्सुकजनाकुलम्।
सर्वतस्तुमुलाक्रन्दं परितापार्तबान्धवम् ॥—अयो० ६५/२७
सद्यो निपतितानन्दं दीनक्लदवर्शनम्।
बभूव नरदेवस्य सद्म दिष्टान्तमीयुषः ॥—अयो० ६५/२८

व्यापारों का उल्लेख किया है। कवि का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन यहाँ विशेष रूप से अवलोकनीय है—

अ—महादु:खी हो अत्यन्त करुणापूर्ण स्वर में रोती हुई महाराज की भुजाओं को पकड़कर अनाथ का भाँति विलाप कर रही थीं।

आ—जब महाराज के शव को तेल के कढ़ाव में रखा गया तो वे "हा महाराज मर गए" कहकर विलाप करने लगीं।

इ—अपनी बाँहों को उठाकर, आँखों से आँसू बहाते हुए विलाप कर रही थीं।

ई—उनके प्रलाप में ये शब्द मुखरित हो रहे थे—"प्रियवादी राम से पृथक् करके महाराज आप हमें छोड़कर कहाँ जाते हैं ?"[1]

शोक में दो तथ्यों का कवि ने विशेष रूप से उल्लेख किया है—

(i) मृत्यु की अनुभूति की वास्तविकता का प्रकटीकरण उसी समय होता है जिस समय शव को स्थानान्तर करते हैं या अन्त्येष्टि के लिए चिता पर रखते हैं।

(ii) आश्रय को आलंबन का अभाव खटकता है जो बार-बार उसके शोक को उद्दीप्त करता तथा बल देता है। "महाराज आप हमें छोडकर कहाँ जाते हैं", इसी प्रकार के शब्द है।

भरत का शोक—भरत की शोकानुभूति में भी उपर्युक्त तथ्यों का विशेष उल्लेख हुआ है। भरत की दशा का वर्णन करते हुए कवि उनके "पपात सहसा भूमौ" की ओर विशेषरूप से ध्यान आकृष्ट करता है। भरत के लिए यह सूचना अप्रत्याशित थी और विशेषकर उस समय जब कि उन्हें महाराज के संबंध में कोई चिन्ताजनक समाचार भी प्राप्त नही हुआ था न उनके पीछे की कुचक्रगत घटनाओं का ही उनको ज्ञान था जिसके मूल में यद्यपि उनकी माता का ही हाथ था। भरत की निष्कपटता तथा निर्दोषता सिद्ध करने के लिए भी कवि द्वारा इस प्रकार का वर्णन आवश्यक था।

भरत ने भूमि पर गिरते समय दोनों हाथ पृथ्वी पर पटक कर कहा—"हाय मैं मारा गया" प्रलाप करते हुए वह महाराज के वात्सल्य का स्मरण करने लगे—"हा, महाराज का वह सुखद हाथ कहाँ गया जो मेरे धूलधूसरित शरीर की धूल बार

---

१. भृशं रुदन्त्य: करुणं सुदु:खिता:।
प्रगृह्य बाहू व्यलपन्ननाथवत् ।।—अयो० ६५/२६
"तैलद्रोण्यां तु सचिवै: शायितं तं नराधिपम्।
हा मृतोऽयमिति ज्ञात्वा स्त्रियस्ता: पर्यदेवयन् ।।—अयो० ६६/१६
"बाहूनुर्धम्य कृपणा नेत्रप्रस्रवणैर्मुखै:।
रुदन्त्य: शोकसन्तप्ता: कृपणं पर्यदेवयन् ।।—अयो० ६६/१७
"हा महाराज रामेण सततं प्रियवादिना।
विहीन: सत्यसन्धेन किमर्थ विजहासि न: ।।—अयो० ६६/१८

बार झाड़ता था[1] ।"

महाराज दशरथ की अन्त्येष्टि—अन्त्येष्टि के तीन अंगों का वर्णन कवि ने किया है—

१—शव का चिता पर रखा जाना

२—चिता का जलना

३—फूलों का चुनना

शव को चिता पर रखते समय प्रियबन्धुबान्धवों को वास्तव में आलम्बन के नाश का अनुभव होता है। इसीलिए इस समय की वेदना अति करुणापूर्ण होती है। अभावानुभूति प्रत्यक्ष एवं साकार हो कर आश्रय को विपन्न तथा विकल बना देती है।

महाराज के शव को विविध रत्नों से जटित शय्या पर लिटाकर भरत अति दुःखी होकर महाराज के लिए विलाप करने लगे। माता कौशल्या विलाप करती हुई कहने लगीं—"हे महाराज, क्लिष्ट कार्यों को भी करने वाले पुरुषसिंह श्रीराम से विहीन करके मुझ दुःखिया को छोडकर आप कहाँ जाते हैं।"[2]

जलती हुई चिता की प्रदक्षिणा की जाती थी। शोकाभिभूत आश्रय को अपना सम्मान प्रकट करने का यह अन्तिम अवसर होता है। भारी हृदय लेकर आश्रय यह परिक्रमा देता तथा शोक को सह्य बनाने का उपक्रम करता है। घोर विलाप और अति विकलता का यह दृश्य हृदयविदारक होता है। इसीलिए कवि को इस स्थल पर अपनी मूल करुणानुभूति की स्मृति हो आई।

ऋत्विजों ने और कौशल्यादि रानियों ने अत्यन्त शोक संतप्त होकर महाराज की जलती हुई चिता की प्रदक्षिणा की। उस समय के विलाप-कलाप को सुनकर ऐसा प्रतीत होता था मानो क्रौंच पक्षी की मादाएँ रो रही हों।[3]

---

१. 'पपात सहसा भूमौ पितृशोकबलार्दितः।"—अयो० ७२/१६
हा हतोऽस्मीति कृपणां दीनां वाचमुदीरयन्।
निपपात महाबाहुर्बाहू विशिष्य वीर्यवान् ॥—अयो० ७२/१७
"क्व स पाणिः सुखस्पर्शस्तातस्याक्लिष्टकर्मणः।
येन मां रजसा ध्वस्तमभीक्ष्णं परिमार्जति ॥—अयो० ७२/३१

२. संवेश्य शयने चाग्र्ये नानारत्नपरिष्कृते।
ततो दशरथं पुत्रो विललाप सुदुःखितः ॥—अयो० ७६/५
क्व यास्यसि महाराज हित्वेमं दुःखितं जनम्।
हीनं पुरुषसिंहेन रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥—अयो० ७६/७

३. प्रसव्यं चापि तं चक्रुर्ऋत्विजोऽग्निचितं नृपम्।
स्त्रियश्च शोकसंतप्ताः कौसल्या प्रमुखास्तदा ॥—अयो० ७६/२०
क्रौञ्चीनामिव नारीणां निनादस्तत्र शुश्रुवे।
आर्तानां करुणं काले क्रोशन्तीनां सहस्रशः ॥—अयो० ७६/२१

भरत फूल चुनने के लिए श्मसान में गए और पिता के शरीर की श्वेत रंग की राख को देखकर अति विकल हो उठे, उनका शोक निम्नलिखित प्रलाप में मुखरित हो उठा और इसके साथ वह असह्य वेदना के कारण मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े।

हे पिता, जिन बड़े भाई श्रीराम के भरोसे से आपने मुझे छोड़ा था उनको वन में भेजकर आपने मुझको अनाथ की भाँति त्याग दिया है।

जिन माता कौशल्या के पुत्र को बनवास दिया गया उन दुखिनी माता को छोड़ कर हे तात तुम कहाँ चले गये।

श्रीराम का महाराज के निधन पर शोक—भरत श्रीराम को वापिस लौटाने के लिए वन को गए। भरत से श्रीराम को महाराज के निधन का दुःखद समाचार प्राप्त हुआ जिसको सुनकर श्रीराम अचेत हो गए। पिता के निधन का यह दारुण समाचार श्रीराम जैसे धीर और वीर पुरुष के लिए भी असह्य सिद्ध हुआ। जन-साधारण की भाँति श्रीराम की आत्मा विलख उठी। शोकानुभूति का मार्मिक अंग परिताप है। श्रीराम को यही परिताप था कि मेरे वियोगजनित शोक के कारण तो पिता की मृत्यु हुई और मैं उनका अन्तिम संस्कार भी न कर सका। मेरा तो जीवन ही निरर्थक रहा।[1]

शोक प्रियजनों का आलंबन चाहता है और उनके सान्निध्य में द्विगुणित वेदनायुक्त बन जाता है। श्रीराम ने सामने सीता और लक्ष्मण को देखा जिनको अभी तक पिता के निधन का समाचार नहीं मिला था, तो चिल्लाकर कहने लगे— 'सीते, तुम्हारे ससुर मर गए, लक्ष्मण पितृहीन हो गए, श्रीराम पिता को तिलांजली देने नदी किनारे गए। वहाँ से लौटते समय पिता का अभाव श्रीराम के मानस में वेदना का कारण बन रहा था। अपनी कुटी पर उन्होंने भरत और लक्ष्मण को देखा और उन दोनों को भुजाओं से थाम कर श्रीराम रोने लगे। उस समय चारों राजकुमार तथा सीताजी घोर विलाप करने लगीं। ऐसा लगता था मानो सिंह दहाड़ रहे हों जिसके फलस्वरूप पर्वत गूँजने लगा हो।[2]

---

१. तां श्रुत्वा करुणां वाचं पितुर्मरणसंहिताम्।
राघवो भरतेनोक्तां बभूव गतचेतनः॥—अयो० १०२/१
किन्नु तस्य मया कार्यं दुर्जातेन महात्मनः।
यो मृतो मम शोकेन मया चापि न संस्कृतः॥—अयो० १०२/६

२. सीते मृतस्ते श्वशुरः पित्रा हीनोऽसि लक्ष्मण।
भरतो दुःखमाचष्टे सवर्गतं पृथवीपतिम्॥—अयो० १०२/१५
ततः पर्णकुटीद्वारमासाद्य जगतीपतिः।
परिजग्राह बाहुभ्यामुभौ भरतलक्ष्मणौ॥—अयो० १०२/३२
तेषां तु रुदतां शब्दात्प्रतिश्रुत्कोऽभवद्गिरौ।
भ्रातॄणां सह वैदेह्या सिंहानामिव नर्दताम्॥—अयो० १०२/३३

भरत की दारुण वेदना तथा मन की कचोट—कैकयी ने राम को वनवास तथा भरत के लिए अयोध्या का राज्य माँगा था। अतएव भरत की सहमति की शंका स्वाभाविक थी क्योंकि उनकी माता द्वारा याचित वरदान में उनकी हितसाधना थी। उनकी अनुपस्थिति में यह सब कार्य हुआ था। इसलिए भरत को अपनी स्थिति के स्पष्टीकरण का कोई अवसर नहीं मिला था। वह माता के मत से सहमत न थे, इसका वह वरदान याचना के समय विरोध भी नहीं कर सके थे। अनएव उनके क्या विचार हैं यह जानने के लिए सबको उत्सुकता भी थी। यह उत्सुकता संभावना का रूप ले चुकी थी, यथा यही सब लोग सोचते थे कि भरत की इच्छा के अनुकूल ही यह कुचक्र रचा गया होगा। कवि ने इस संभावना का परिपुष्ट रूप माता कौशल्या की कटूक्तियों में प्रकट किया।

कौशल्या को दुःखी और विपन्न देखकर दोनों भाई, भरत और शत्रुघ्न अत्यन्त दुःखी होकर कौशल्या से लिपटकर रोने लगे। कौशल्या ने इन दोनों भाइयों के विलखते हुए हृदयों पर अति दारुण चोट की जब उन्होंने ताना मारते हुए कहा—तुम्हारी राज्य पाने की लालसा थी, वह तुम्हारी क्रूरकर्मा मां ने पूरी कर दी। तुम्हारे लिए तुम्हारी मां ने केवल राज्य ही नहीं प्रत्युत राम को वनवास दिलाकर निष्कंटक राज्य प्राप्त करा दिया है।[1]

किसी निर्दोष व्यक्ति को ऐसे घोर दुष्टकर्म का दोषी बताया जाय तो उसकी क्या दशा हो सकती है, इसका अनुमान कोई भुक्तभोगी ही लगा सकता है। भरत मन-वचन कर्म से श्रीराम के भक्त थे। और उनके अहित की कभी कामना नहीं कर सकते थे। जब उन्होंने माता कौशल्या के मुख से ऐसे वचन सुने तो वह अवाक् रह गए। उनकी असह्य वेदना का अनुमान लगाने के लिए कवि ने एक अन्य वेदना का उदाहरण देते हुए कहा "भरत को उसी प्रकार अपार कष्ट हुआ जिस प्रकार घाव में सुई चुभोने से होता है।'[2]

अपनी विवशता तथा असहायावस्था में भरत कातर हो उठे। उनको इस दोष से मुक्ति का कोई मार्ग दिखलाई नहीं दे रहा था। वह किन शब्दों में अपनी सफाई दें, जिससे उनका विश्वास किया जा सके। भरत के लिए यह एक कठिन समस्या बन गई।

आत्मग्लानि, असह्य वेदना तथा दारुण पीड़ा और शोक ने भरत को आहत कर दिया, वह शपथ खाकर अपनी निर्दोषता प्रकट करने लगे। वह उन दुर्गतियों की

१. ततः शत्रुघ्नभरतौ कौसल्यां प्रेक्ष्य दुःखितौ।
पर्यष्वजेतां दुःखार्तां पतितां नष्टचेतनाम्॥—अयो० ७५/६
"इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकण्टकम्।
सम्प्राप्तं बत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा॥—अयो० ७५/११

२. इत्यादि बहुभिवाक्यैः क्रूरैः सम्भर्त्सितोऽनघः।
विव्यथे भरतस्तीव्रं व्रणे तुद्येव सूचिता॥—अयो० ७५/१७

कामना करने लगे जो अन्याय पापों के करने से पापी मनुष्यों को प्राप्त होती हैं। इन शब्दों में भरत का हृदय उमड़ पड़ा। वह एक के बाद दूसरी पापगति की कामना करते हुए अनेक पापगतियों का वर्णन कर गए। संक्षेप में यह पापगतियाँ तथा उनके कारण अथवा उनके मूलकर्म जिनके करने से यह गतियाँ मिलती हैं, निम्नलिखित हैं[1]।

१—पढ़े शास्त्र को भूलना।
२—नीच-जाति का सेवक बनना।
३—सूर्य की ओर मुख करके मलमूत्र त्यागने का पाप।
४—सोती गाय को लात मारने का पाप।
५—बड़ा काम करा लेने पर वेतन न देने का पाप।
६—पुत्रवत प्रजापालक राजा से विरोध करने का पाप।
७—छठा अंश लेकर भी रक्षा न करने वाले राजा को लगने वाला पाप।
८—ऋतिवजों को दक्षिणा देने की प्रतिज्ञा कर पीछे दक्षिणा न देने का पाप।
९—युद्ध क्षेत्र से भागनेवालों का पाप।
१०—गुरु से उपदिष्ट रहस्यपूर्ण वेदान्त आदि शास्त्र का भूल जाना।
११—श्रीराम का राज्याभिषेक न देखे (मरजाय)।
१२—देवता, पितृ, अतिथि को बिना निवेदन किए खीर, तिल, चावल, माँस आदि खाने वाले को जो पाप होता है।
१३—गुरु को देखकर खड़े न होनेवाले को जो पाप होता है।
१४—गुरु को प्रणाम न करनेवाले को जो पाप होता है।
१५—गौ को पैर से छूने से जो पाप लगता है।
१६—गुरुनिन्दा का पाप।
१७—मित्रद्रोह का पाप।
१८—विश्वासघात करने का पाप।
१९—उपकार न करनेवाले, सबसे त्यक्त, निर्लज्ज, सबसे वैर करने वाले को जो पाप होता है।
२०—स्वयं अच्छे पदार्थ खाने तथा अपने आश्रितों को कदन्न खिलाने का पाप।
२१—समान कुल की पत्नी न मिलना।
२ —सन्ततिहीन रहना।
२३—अग्निहोत्र आदि धार्मिक कृत्य किए बिना ही मृत्यु होना।
२४—अपनी संतति को बिना देखे दुःखी होना और पूर्ण आयु का प्राप्त न होना।
२५—राजा, स्त्री, बालक, वृद्ध का वध करने का पाप।
२६—निरपराध स्वामिभक्त सेवक को त्यागने का पाप।
२७—मांस, शहद, मद्य, लाख, लोहा और विष के व्यापार करने का पाप।
२८—युद्ध से भागते हुए (मारने) या भागते हुए शत्रु को मारने का पाप।

भरत इन पापों एवं दुर्गतियों का उल्लेख करते हुए कामना करते हैं कि यदि श्रीराम वनवास में मेरी सहमति हो तो मुझे यह गति तथा यह पाप लगें। उनका मन विकल तथा अति दुःखी है। इसलिए वह पुनः इन्हीं बातों को दुहराते हुए कहते हैं।

इस बार की इस पुनरावृत्ति में वह अपनी माता की ओर भी संकेत करते हैं। वह कहते हैं जिसकी सम्मति से श्रीराम वन गए हों वह—

१—चिथड़े लपेटे, मुर्दे की खोपड़ी हाथ में लिए द्वार-द्वार भीख माँगता फिरे।
२—मद्य, जूआ, मैथुन में आसक्त रहे और काम-क्रोध के वशीभूत होकर निरादृत हो।
३—अधर्म करे और कुपात्र को दान दे।
४—उसकी गाढ़ी कमाई का धन चोर ले जावें।
५—वह प्रातः सायं सोये।
६—वह घर में आग लगाने वाला, गुरुस्त्रीगामी तथा मित्र द्रोही हो।
७—देवता, पितर, माता-पिता की सेवा एवं श्राद्ध आदि से विरत रहे।
८—उसकी कीर्ति नष्ट हो, वह सत्कर्मों से भ्रष्ट हो।
९—माता की सेवा से वह विमुख हो।
१०—वह बहुसन्ततिवाला होकर दरिद्र हो, ज्वर से पीड़ित हो।
११—धनवान होकर भी दीन याचक को निराश लौटावे।
१२—वह कपटप्रिय, चुगलखोर, अधर्मी हो।
१३—वह ऋतुस्नाता पतिव्रता पत्नी की इच्छापूर्ति न करे।
१४—वह परस्त्री से रति करे।
१५—वह ब्राह्मण होकर अपने पुत्रों का पालन न कर सके और भूखों मर जाय।
१६—वह पानी में विष मिलाने या विष देकर मारने का घोर पाप करे।
१७—उसकी सब इन्द्रियाँ कलुषित हों।
१८—वह ब्राह्मण के प्राप्त सत्कार में बाधक हो।
१९—वह छोटे बछड़े वाली गाय का दूध दुहे।
२०—वह जल रहते प्यासे को पानी न दे।
२१—वह मध्यस्थ होकर पक्षपाती बने और पाप करे।

इस प्रकार माता कौशल्या के सामने अपनी सफाई देते हुए भरत अति आर्त्त हो गए और विकल होकर भूमि पर गिर पड़े। माता कौशल्या को भरत की निष्कपटता तथा निर्दोषता का विश्वास हुआ और वह अति दुःखी हुई। वह श्रीराम के वनवास से पहले से ही दुःखी थीं। अब भरत की आत्मग्लानि से तो उनको और भी दुःख हुआ। वह व्यर्थ ही भरत जैसे राम के परम भक्त भाई को दोष दे रही थीं; यह सोचकर उनको मार्मिक क्लेश हुआ[२]। यह क्लेश अति वेदनामय तथा पीड़ाजनक

१. अयोध्या सं० ७५ के २१ से ६५ तक के श्लोक अवलोकनीय हैं।

२. विहीनां पतिपुत्राभ्यां कौसल्यां पार्थिवात्मजः।
एवमाश्वासयन्नेव दुःखार्तो निपपात ह ॥—अयो० ७५/५९
मम दुःखमिदं पुत्र भूयः समुपजायते।
शपथैः शपमानो हि प्राणानुपरुणत्सि मे ॥—अयो० ७५/६१

होता है, यह भुक्तभोगी व्यक्ति भलीभाँति जानते है, दोषारोपण मिथ्या सिद्ध होने पर दोषारोपण करने वाले व्यक्ति को एक विशेष खिसियानपन तो होता ही है किन्तु दूसरा व्यक्ति अपना सुहृद तथा अपना शुभचिन्तक सिद्ध हुआ तब तो हृदय विदीर्ण हो उठता है माता कौशल्या की वेदना इसी प्रकार की थी।

भरत का क्षोभ—भरत ने वन में भगवान् की कुश-शय्या देखी तो उनकी आत्मग्लानि पुनः सजग हो उठी। महाराज राम वन में इस प्रकार के कष्ट सहें यह सब उन्हीं के कारण हुआ। जो कोमल गद्दों पर सोथे थे आज भूमि पर कुशशय्या पर सोते हैं, भरत आत्मग्लानि में सिहर उठे और बोले, "हा, मैं तो जीते जी मर गया। मै बड़ा दुष्ट हूँ। मेरे ही कारण सीता सहित श्रीराम को वन में कुशय्या पर सोना पड़ रहा है। मेरे ही पीछे भगवान् राम को यह कष्ट भोगने पड़ रहे हैं। मुझ जैसे लोक-निंदित तथा नृशंस के जीवन को धिक्कार है"। इस आत्मग्लानि के साथ भरत के वाह्य व्यंजकों का भी वर्णन कवि ने किया है। भरत का मुख पसीने से तर हो रहा था[1]। स्वेद का शोक के बाह्यव्यंजक के रूप में अध्ययन कवि के सूक्ष्म निरीक्षण को प्रकट करता है।

भरत अयोध्या लौटकर आए और उन्होंने अयोध्या की शून्यता को देखा तथा राजमहल को महाराज से शून्य देखा। शून्यता अथवा अभावगत परिस्थितियों के अन्तर्गत शोक की अनुभूति मूल अनुभूति से कहीं अधिक दारुण होती है। मूल अनुभूति के अन्तर्गत मृत-शरीर यद्यपि शोक का कारण होता है किन्तु यह शोक उस समय तक दारुण नहीं होता जब तक शरीर को अग्निदाह द्वारा नष्ट नहीं कर दिया जाता। आश्रय की मानसिक स्थिति मोहग्रस्त की जैसी रहती है और शव के नाश से पूर्व तक वह ऐसे स्वप्न देखा करता है कि उसका आलंबन जीवित हो जायगा। कुछ उदाहरण ऐसे देखे भी गए हैं कि मृतव्यक्ति पुनः जीवित हो उठता है। इस प्रकार के उदाहरण भी आश्रय के इन स्वप्नों का एक आधार हो सकते हैं किन्तु मुख्यतः यह मानस की अपनी प्रवृत्ति होती है कि वह निराश में आशा का स्वप्न देखा करता है, चमत्कार की कल्पना किया करता है। शून्यता या अभाव की परिस्थिति में कोई आधार नहीं रहता तथा अभाव अथवा शून्यता स्वयं उद्दीपन का काम करने लगती है। इस रूप में शोक की अनुभूति विशेष रूप से वेदनामय बन जाती है। करुण की इस प्रकार की अनुभूति को रस की दृष्टि से उत्कृष्टता प्रदान की जा सकती है। इसी कारण प्रायः कलाकारों की दृष्टि इस ओर गई है।

---

१. "हा हतोऽस्मि नृशंसोऽहं यत्सभार्यः कृते मम।
ईदृशीं राघवः शय्यामधिशेते ह्यनाथवत्॥"—अयो० ८८/१७
"मन्निमितमिदं दुःखं प्राप्तो रामः सुखोचितः।
धिग्जीवितं नृशंसस्य मम लोकविगर्हितम्॥"—अयो० ९९/३६
"इत्येवं विलपन्दीनः प्रस्विन्नमुखपङ्कजः।"—अयो० ९९/३७

अयोध्या की शून्यता का दृश्य उपस्थित करते हुए कवि कहता है—

अयोध्या के राजमार्ग—सुनसान थे।

अयोध्या के बाजार बन्द थे।

अयोध्या डरावनी थी, जैसे वर्षाकाल में मेघों से व्याप्त, चन्द्रमा तथा तारों से रहित अँधेरी रात होती है।[1]

भरत राजमहल में घुसे और महाराज दशरथ के निवास-स्थान को शून्य देखा। उस शून्यता को देख कर वह अति दुःखी हुए और फूट-फूट कर रोने लगे। उनके दुःख तथा अभावगत वेदना का अनुमान लगाने के लिए कवि ने एक समान अनुभूति का उदाहरण दिया है कि भरत को उसी प्रकार अत्यन्त दुःख हुआ जिस प्रकार देवासुर संग्राम में सूर्य के अभाव को देखकर देवता लोग दुःखी हूए थे।[2]

सीताहरण—सीताहरण प्रसंग के अन्तर्गत सीता तथा राम के वियोग का वर्णन हुआ है। यह प्रसंग सीता का पता लगने से पूर्व तक करुण की निराशा तथा निरपेक्षता के अन्तर्गत आता है। सीता को विश्वास नहीं कि किस प्रकार उसके हरण की सूचना राम तक पहुँच सकेगी। उधर राम को विश्वास नहीं कि सीता मिल सकेगी क्योंकि वह समझते थे कि सीता को राक्षस मार कर खा गए होंगे। इस सम्बन्ध में राम का निश्चय इन शब्दों से प्रकट है—"सुव्यक्तं राक्षसैः सीता भक्षिता का हुआऽपि वा।"

सीताहरण प्रसंग में एक विशेषता है कि सीताराम का विरह चराचर जगत की सहानुभूति का अपेक्षी है, निर्जन वन में उनका कौन था, यह बात तो है ही किन्तु अपनी भाव भूमि को चराचर जगत के लिए उन्मुक्त कर देना भी तो हर एक का काम नहीं है। ऐसा तो राम जैसे आदर्श चरित्रों से ही संभव है। कवि की तह योजना निश्चय ही आध्यात्मिक जगत की अभूतपूर्व झांकी है जिसका उल्लेख गोस्वामीजी ने भी किया—"सियाराम मय सब जग जानी।"

निर्जन वन में सीता अपने हरण की सूचना राम तक पहुँचाने के लिए वन-देवता, वृक्षों, पर्वतों तथा पक्षियों को सम्बोधित करती हैं और उनसे ही कहती है कि वह श्रीराम को सूचना दे दें कि रावण सीता को हर कर ले गया।

"क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः" [3]

"प्रियां यदि विजानीषे निःशकं कथयस्वमे।"

---

१. संमूढनिगमां स्तब्धां संक्षिप्तविपणापणाम्।
प्रच्छन्नशशिनक्षत्रां द्यामिवाम्बुधरैर्वृताम्॥—अयो० ११४/१३

२. तदा तदन्तः पुरमुज्झितप्रभं
सुरैसिरौत्सृष्टमभास्करं दिनम्।
निरीक्ष्य सर्वं तु विविक्तमात्मवान्
मुमोच बाष्पं भरतः सुदुःखितः॥—अयो० ११४/२८

३. अरण्य०—४६/३१

उधर श्रीराल कदम्ब, विल्व, अर्जुन, कुंकम, तिलक, अशोक, ताल, जामुन, आम, साखू, कटहत, अनार मोलसिरी आदि वृक्ष, मृग, गजेन्द्र, शार्दूल आदि बन पशु तथा पक्षियों से पूछते हैं।

राम का विरहजनित शोक—निम्नलिखित रूप में वर्णन प्रकट हुआ है [1]—

बाह्यव्यंजक—संतप्त होने के कारण कृशाग, निस्संज्ञ, निश्चेष्ट, आर्त्त और दीन, गरम और लम्बी साँस लेते हुए।

विरहोक्तियाँ—सीता के बिना मैं जीवित नहीं रह सकता। "हा प्रिये" कहकर तथा गद्-गद् होकर उच्चस्वर से विलाप करने लगे, हे विशालाक्षी, यह तेरी पर्ण कुटी सूनी पड़ी है, तू शीघ्र प्रकट हो, देखो, यह मृगझुण्ड आँखों में आँसू भरे हुए मानो कह रहा है कि सीता को राक्षसों ने खा लिया।

हे मेरी पूज्ये, हे पतिव्रते, हे वरवर्णिनि, तू कहाँ गई ?"

हे लक्ष्मण, मैं सीता के बिना मर जाऊँगा, तुम वापिस अयोध्या चले जाओ। मेरे तथा सीता के विना[2] का हाल विवरण सहित माता को सुना देना और भरत से कहना कि वही राज्य करें।

आत्मग्लानि—मेरा बड़ा खोटा भाग्य है जिसके कारण राज्य से हाथ धोए, बन में वास करना पड़ा, सीता का हरण हुआ और जटायु का मरण हुआ। यह दुर्भाग्य (निश्चय ही बड़ा भयंकर है) चाहे तो स्वयं अग्नि को भी भस्म कर सकता है।

---

१. अरण्य काण्ड ६०/१६

२. सन्तप्तो ह्यवसन्नाङ्गो गतबुद्धिर्विचेतनः।
निषसादातुरो दीनो निःश्वस्यायतमायतम् ॥—अरण्य० ६१/२१
"सीतया रहितोऽयं वै न हि जीवामि लक्ष्मण।
वृतं शोकेन महता सीताहरणजेन माम् ॥—अरण्य० ६१/६"
बहुलं स तु निःश्वस्थ रामो राजीवलोचनः।
हा प्रियेति विचुक्रोश बहुलो वाष्पगद्गदः ॥—अरण्य० ६१/३०"
"आगच्छ त्वं विशालाक्षि शून्योऽयमुटजस्तव।
सुव्यक्तं राक्षसैः सीता भक्षिता वा हृताऽपि वा ॥"—अरण्य० ६२/८
"न हि सा विलपन्तं मामुपसंप्रैति लक्ष्मण ॥—अरण्य० ६२/६"
'शसन्तीव हि वैदेहीं भक्षितां रजनीचरैः।
। ममार्ये यातासि हा साध्वि वरवर्णिनि ॥—अरण्य० ६२/१०"
"सीतायाश्च विनाशोऽयं मम चासिन्नकर्शनं।
विस्तरेण जनन्या मे विनिवेद्यस्त्वयाऽवेत् ॥"—अरण्य० ६ /२०
"राज्याद्भ्रंशो वने वासः सीतानाश द्विजो हतः।
ईदृशीयं ममालक्ष्मीर्निदहेदपि पावकम् ॥—अरण्य० ६७/२४"

अशोकवनस्थिति सीता की करुणापूर्ण दशा—सीता की खोज में हनुमान अशोक वाटिका में पहुँचते हैं तथा वहाँ सीता को अति दुःखी तथा व्यथित देखते हैं। सीता की करुणापूर्ण दशा का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि हनुमान उनको इस दशा में देखकर स्वयं अति दुःखी होते हैं और रोने लगते हैं। हनुमान के मानस में प्रकट करुणा निम्नलिखित रूप में प्रकट होती है।[१]

अ--श्रीराम-पत्नी ऐसे कष्ट सहे, निश्चय ही कालगति विकट है।

आ—काले केशवाली, कमलनयनी तथा सर्वथा सुख भोगने योग्य इस जानकी को दुःखी देखकर मेरा भी कलेजा असह्य दुःख के कारण फटा जाता है।

कवि ने इस प्रसंग में सीता की व्यथा का वर्णन प्रत्यक्षदर्शी पात्र के मुख से कराकर जहाँ परिस्थिति की गंभीरता का परिचय दिया है वहाँ सीता को मौन रखकर उनकी गंभीर वेदना तथा भारतीय नारी की विशेष विरह-भावना पर भी प्रकाश डाला है। वे वेदना के मुखरित होने के स्थान में बाह्याभिव्यंजकों द्वारा बरबस प्रकट होने को संगत समझती हैं जिसमें उनकी विवशता निहित रहती है।

माया के बने हुए राम के कटे सिर को देखकर सीता का विलाप—रावण सीता को विभिन्न प्रकार की यातनाएँ दे रहा था। इनमें सबसे अधिक कष्टकर तथा भयानक यातना प्रस्तुत प्रसंग में प्रकट हुई है। रावण ने माया-रचित राम के कटे हुए सिर को सीता के सामने लाकर रख दिया और बताया कि प्रहस्त ने सोते में राम का सिर काट डाला। जिस राम के लिए वह रोती तथा जिसके विरह में विकल होती थी, वह राम अब इस संसार में नहीं रहा।

सीता को पहले-पहल तो विश्वास नहीं हुआ ; इसीलिए सीता ने राम के धनुष कुण्डल, नेत्र, आदि रंग ध्यान से देखे तथा और भी अनेक प्रकार से जाँच की। किन्तु मायाजनित सिर इस कौशल से बनाया गया था कि सीता को शका करने के लिए कोई आधार न मिला और उनको यह निश्चय हो गया कि वास्तव में रावण ने राम का ही सिर कटवा लिया है। इस हृदय विदारक अनुभूति के निश्चय के साथ ही उनको राम बनवास के मूल कारण का कष्टकर स्मरण हो आया। कैकेयी की कुत्सित नीति आज सफल हो गई। अतएव कुररी इव शोक से विकल सीता के प्रथम प्रथम यही शब्द निकल पड़े—

"सकामा भव कैकेयी हतोऽयं कुलनंदनः।"[२]

---

१. "स मुहूर्तमिव ध्यात्वा बाष्पपर्याकुलेक्षणः।
सीतामाश्रत्य तेजस्वी हनुमान्विललाप ह ।।—सुन्दर काण्ड १६/२
इमामसितकेशान्तां शतपत्रनिभेक्षणाम्।
सुखार्हां दुःखितां दृष्ट्वा ममापि व्यथितं मनः ।।—सुन्दर का० १८/२८

२. युद्ध का०—३२/४

सीता की शोकानुभूति निम्नलिखित रूप में आगे प्रकट हुई—[1]

राम के प्रति—१. तुम्हारे मरने से मैं विधवा हो गई।

२. तुम तो मेरा उद्धार करने के लिए उद्यत हुए थे 'अब मेरा क्या होगा' तुम तो चल बसे।

३. हे राघव, ज्योतिष जानने वाले भविष्यवक्ताओं के वचन मिथ्या निकले, आप दीर्घायु न हुए, अल्पायु में ही कालकवलित हो गए।

वेदना—१. हाय! कालरात्रि ने मुझ से मेरे कमल लोचन को बरबस छीन लिया।

२. तुम मुझे क्यों नहीं देखते, मुझ से क्यों नहीं बोलते।

३. तुम्हारे सुन्दर शरीर को मांस-भक्षी गिद्ध आदि नौच रहे होंगे।

४. हम तीन वनवासियों में से अब केवल एक लक्ष्मण अयोध्या लौट सकेंगे

माता कौशल्या की वेदना की अनुभूति—१. जब अकेले लक्ष्मण अयोध्या लौटेंगें तो निश्चय ही माता कौशल्या का हृदय फट जायगा और वह मर जॉयगी। यह असह्य शोक उनके लिए घातक सिद्ध होगा। बिना वछड़े की गौ की तरह वह निर्वत्सला हो गई।

आत्मग्लानि- १. मुझ अभागिनी के कारण ही तुम्हारा सोते में वध हुआ।

२. मुझ कुलकलंकिनी के साथ विवाह करके तुम से बड़ी भूल हुई, मेरे कारण तुम्हारी मृत्यु हुई।

३. निश्चय ही पूर्व जन्म में मैने किसी के कन्यादान में वाधा डाली है जिसके फलस्वरूप इस जन्म में मुझे यह घोर दण्ड मिला है।

४. रावण, तू बड़ी कृपा करे यदि मुझको भी मार कर राम के ऊपर डाल दे।

५. मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रहना चाहती हूँ। मैं पति की अनुगामिनी होऊँगी।

कवि-कथन—पति के कंठ, सिर और धनुष को वारबार देख कर विशालनयना सीता अति दुःखी होकर विलाप कर रही थी।

---

१. देखिए युद्ध काण्ड ३२/३ के ३४ तक—तथा निम्नलिखित विशेष रूप से—
यो हि मामुद्यतस्त्रातुं सोऽपि त्वं विनिपातितः।"—युद्ध का० ३२/११
वत्सेनेव यथा धेनुर्विवत्सा वत्सला कृता।"—युद्ध का० ३२/१२
किं मां न प्रेक्षसे राजन् किं मां न प्रतिभाषसे।"—युद्ध का० ३२/२०
साधु पातय मां क्षिप्रं रामस्योपरि रावण॥"—युद्ध का० ३२/३१
मुहूर्तमपि नेच्छामि जीवितुं पापजीविता।"—युद्ध का० ३२/३३
इति सा दुःखसन्तप्ता विललापायतेक्षणा।
भर्तुः शिरोधनु तत्र समीक्ष्य च पुनः पुनः॥"—युद्ध का० ३२/३४

इसी प्रकार का एक-दूसरा प्रसंग और आया है। इन्द्रजीत ने युद्ध में राम लक्ष्मण दोनों भाइयों को विषधर सर्पतुल्य बाणों से बाँध लिया। दोनों वीरों के अंगों से झरने की तरह रक्त बह रहा था तथा वे दोनों बाणशय्या पर पड़े हुए थे। इसी भीषण दृश्य को सीता को दिखलाने की रावण ने योजना की और उसने सीता को पुष्पक विमान पर बिठाकर यह दृश्य दिखलाया—

सीता इस दृश्य को देखकर अति दुःखी हुईं और विलाप करने लगीं। सीता के शोक के अन्तर्गत निम्नलिखित तथ्यों का उल्लेख हुआ [1]—

१. सब सामुद्रिक झूठे निकले, श्रीराम को वह दीर्घायु बतलाते थे किन्तु वह अल्पायु में ही कालकवलित हो गए।

२. मुझे शुभ लक्षणों वाली सधवा तथा चक्रवर्ती की पत्नी बतलाया था किन्तु मैं भी आज विधवा हो गई। जिन बुरे लक्षणों के होने से स्त्रियाँ विधवा हो जाती हैं उनके न होते हुए भी मैं हतभाग्य सिद्ध हुई।

३. मुझे सबसे अधिक चिन्ता अपनी सास, माता कौशल्या की है जो नित्य यही सोचती होंगी कि राम सीता और लक्ष्मण वनवास की अवधि समाप्त कर वापिस आते होंगे। वह हम लोगों को देखने के लिए लालायित होंगी।

कहना न होगा कि उपर्युक्त दोनों प्रसंग करुणरस की कष्टकर वेदना को प्रस्तुत करने तथा सीता की यातना को अति दारुण रूप में प्रकट करने के लिए प्रस्तुत किए गए हैं। करुण का यह रूप सामाजिक के लिए क्षोभपूर्ण बन जाता है। इसीलिए संभवतः इस प्रकार के प्रसंगों की योजना से गोस्वामी तुलसीदास ने अपने आप को विरत रखा है।

यह तो हुई सीता को घोर यातना देने की बात। इसी प्रकार की यातना की योजना राम के लिए भी की गई।

माया सीता के वध पर राम का शोक—हनुमान से सीता-वध का समाचार पाकर श्रीराम असह्य शोक से व्यथित होकर मूर्च्छित हो गए और पृथ्वी पर छिन्न-मूलतरु के समान गिरे पड़े। उस समय अत्यन्त दुःखी लक्ष्मण ने दोनों भुजाओं में

---

१. "भर्तारं निहतं दृष्ट्वा लक्ष्मणं न महाबलम्।
विललाप भृशं सीता करुणं शोककर्शिता॥—युद्ध० ४८/१
तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः।"—युद्ध० ४८/२
वैधव्यं यान्ति यैर्नार्यो लक्षणैर्भाग्यदुर्लभाः।
नात्मनस्तानि पश्यामि पश्यन्तीऽहतलक्षणा॥"—युद्ध० ४८/७
साऽनुचिन्तयते नित्यं समाप्तव्रतमागतम्।
कदा द्रक्ष्यामि सीता च लक्ष्मणं च सराघवम्॥"—युद्ध० ४८/२१

श्रीराम को रोक लिया और गले लगाकर उनको समझाने लगे[1]।

लक्ष्मण-शक्ति—लक्ष्मण की मूर्च्छा तथा लक्ष्मण-शक्ति दोनों प्रसंगों के अन्तर्गत श्रीराम की करुणा मुखरित हो उठी है। अतएव इन दोनों ही प्रसंगों पर वहाँ दृष्टिपात किया जा रहा है।[2]

लक्ष्मण-मूर्च्छा—राम और लक्ष्मण दोनों ही युद्ध में मूर्च्छित हो गए थे। राम मूर्च्छा से पहले जगे। उन्होंने लक्ष्मण को मूर्च्छित देखा।

राम लक्ष्मण को रुधिर से रंजित, दीन बदन और दुःखी देख कर अति दुःखी हुए और शोक के कारण रोने लगे। वह कहने लगे कि—

आत्मग्लानि—१. मैं अब स्वयं जीवित रह कर क्या करूँगा।

२. यदि सुमित्रानंदन का देहावसान हो गया तो मैं भी इन वानरों के सामने अपने प्राण दे दूँगा।

३. मुझ पापी को धिक्कार है कि जिसके कारण लक्ष्मण शरशय्या पर मृतक के समान पड़े हैं।

प्रियजनों की तुलना—१. सीता जैसी स्त्री खोजने पर भले ही मिल जाय किन्तु लक्ष्मण जैसा भाई, सहायक, वीर, योद्धा नहीं मिलेगा।

३. जब लक्ष्मण ही युद्ध में अचेत पड़े हैं तो मैं सीता को ही लेकर क्या करूँगा।

वेदना तथा विरक्ति—१. यदि लक्ष्मण की मृत्यु हो गई और मुझे लक्ष्मण के बिना ही अयोध्या लौटना पड़ा तो मैं बिना बछड़े की गौ के समान काँपती तथा कुररी के सामने विलाप करती हुई सुमित्रा को किस प्रकार धीरज बँधाऊँगा।

२. विभीषण को लंका का राज्य देने को कहा था, वह न दे पाया।

३. भाग्य की रेखा नहीं मेटी जा सकती। अतएव क्या करूँ अब मैं सब को बिदा देता हूँ जिसकी जहाँ इच्छा हो वहाँ चला जाय।

अन्य पात्रों पर प्रभाव—१. राम के ऐसे दुःख एवं निराशापूर्ण वचनों को सुन कर वानर रो पड़े।

२. विभीषण ने जल लेकर दोनों वीर राजकुमारों की आँखें धोई और वह स्वयं विलाप करने लगे। उनको यही सोच थी कि जिन राजकुमारों के बलबूते पर मैंने अपने मान सम्मान को प्राप्त करने की आशा लगा रखी थी, वे दोनों शरीर त्यागने के लिए पृथ्वी पर पड़े हैं।

---

१. "तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवः शोकमूर्च्छितः।
निपपात तदा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः॥—युद्ध० ८३/१०
तं लक्ष्मणोऽथ बाहुभ्यां परिष्वज्य सुदुःखितः।
उवाच रामयस्वस्थ वाक्यं हेत्वर्थसंयुतम्॥—युद्ध० ८३/१३

२. देखिए—युद्ध काण्ड—४९/४, ५, ६, ७, १२, २२, २८, ३० व ५०/१४, १८

लक्ष्मण-शक्ति—रावण के कठोर आघात से लक्ष्मण का मर्मस्थल बुरी तरह विदीर्ण हो गया वह वेदना से अति व्याकुल हुए बुरी तरह कराह रहे थे। जब श्रीराम ने उनको इस दशा में देखा तो वह अत्यन्त दुःखी हुए और शोक से कातर हो उठे। वह अति व्यथित होकर विलाप करने लगे।[1] वह कहने लगे कि—

(नितांत विरक्ति एवं उदासीनता) १. मुझे न अब युद्ध ही से कोई प्रयोजन है न सीता से और न अब मैं अधिक जीवित ही रहना चाहता हूँ।

२. मैं अयोध्या का राज्य लेकर या जीकर ही क्या करूँगा।

३. देश-देश में स्त्री और भाई मिल सकते हैं किन्तु सहोदर भ्राता कहीं पर भी नहीं मिलेगा।

इन दोनों प्रसंगों में यह विशेषरूप से अवलोकनीय है कि श्रीराम को इन स्थलों पर सीता की बरबस स्मृति हो आई है और उनके मानव में यह भाव बार-बार आता है कि कहीं ऐसा न हो कि स्त्री के लिए प्रियबन्धु का विनाश हो जाय। यदि ऐसा हो गया तो संसार क्या कहेगा ? लोक मर्यादा के प्रभाव में ही राम ऐसा सोचते हैं, यह स्पष्ट है।

सीता-निर्वासन—अपवाद के भय से सीता को निर्वासित किया गया तथा लक्ष्मण को इस कार्य के लिए सीता के साथ भेजा गया। सीता से कहा गया कि वन देखने की उनकी इच्छा थी, अतएव वन दिखाने के लिए उनको वन में ले जाया जा रहा है। सीता ने प्रसन्नता पूर्वक वन जाने की तैयारी की और लक्ष्मण के साथ वन को चल दीं। जब गंगा के तीर पहुँचे तो स्वयं लक्ष्मण अपने कार्य की गुरुता से कातर हो उठे और वह बड़े जोर से रोने लगे। उनकी ग्लानि एवं वेदना इन शब्दों में फूट पड़ी—

"श्रेयो हि मरणं मेऽद्य मृत्युर्वायत्परं भवेत्" और अपनी विवशता का निवेदन करते हुए लक्ष्मण अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।[2]

---

१. "परं विषादमापन्नो विललापाकुलेन्द्रियः।
न हि युद्धेन मे कार्यं नैव प्राणैर्न सीतया ॥—युद्ध० १०२/१०
"भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा लक्ष्मणं रणपांसुषु।
किं मे राज्येन किं प्राणैर्युद्धे कार्यं न विद्यते ॥—युद्ध० १०२/११
"देशे-देशे कलत्राणि देशेदेशे च बान्धवाः।"—युद्ध० १०२/१२
"तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्रातासहोदरः।"—युद्ध० १०२/१३

२. 'प्रसीद च न मे पापं कर्तुमर्हसि शोभने।
इत्यञ्जलिकृतो भूमौ निपपात स लक्ष्मणः ॥ उत्तर० ४७/६

लक्ष्मण ने जब वस्तुस्थिति का ज्ञान कराया तो सीता अति व्याकुल हुईं और वह भी एक क्षण को अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। वह लक्ष्मण से दीन वचनों में अपनी वेदना प्रकट करती हुई बोलीं।[1]

१. मेरा तो शरीर ही विधि ने दुःख सहने के लिए बनाया है।

२. महादुःखी मैं किसके सम्मुख अपना दुःख रोऊँगी।

३. जब मुनि मेरे परित्याग का कारण जानना चाहेंगे तो मैं क्या उत्तर दूँगी ?

४. हे लक्ष्मण ! सब को सिर झुकाकर मेरा प्रणाम कहना और वही करो जैसी आज्ञा हुई है जिससे पुरवासियों का अपवाद छूट जाय।

५. रही मैं सो मेरी गति तो मेरा पति ही है। पति ही नारी के लिए भाई, देवता और गुरु होता है।

६. किन्तु यह और देखते जाओ कि मैं गर्भिणी हूँ।

लक्ष्मण सीता जी के उपर्युक्त निवेदन को सुनकर परम दुःखी हुए और उच्च स्वर से विलाप करते हुए बिना कुछ कहे ही विदा हुए। वह वापिस जाते हुए बार बार अनाथ की भाँति बैठी हुई सीता को देखते जाते थे।

सीता की उपर्युक्त उक्तियों में कितनी विवशता, वेदना तथा व्यंग्य भरा है यह रेखांकित स्थलों को पुनः देखने से स्पष्ट हो जायगा। महर्षि की करुणा यहाँ सीता के रूप में मानो साकार हो गई है और लोक मर्यादा के नाम पर किए गए इस कृत्य के लिए प्रश्न बन गई है। जिसका समाधान सहज संभव नहीं है।

---

१. "मामिकेयं तनुर्नूनं सृष्टा दुःखाय लक्ष्मण।"—उत्तर० ४८/३
"आख्यास्यमि च कस्याहं दुःखं दुःखपरायणा।"—उत्तर० ४८/६
"किंनु वक्ष्यामि मुनिषु कर्म चासत्कृतं प्रभो।
कस्मिन् वा कारणे त्यक्ता राघवेण महात्मना॥"—उत्तर० ४८/७
"यथाज्ञं कुरु सौमित्रे त्यज्य मां दुःखभागिनीम्।"—उत्तर० ४८/६
शिरसामिनतो ब्रूयाः सर्वासामेव लक्ष्मण।"
यथापवादः पौराणां तथैव रघुनन्दन।
पतिर्हि देवता भार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः॥"—उत्तर० ४८/१७
"निरीक्ष्य माम् गच्छ त्वमृतुकालातिवर्तिनीम्।
एवं ब्रुवन्त्यां सीतायां लक्ष्मणो दीनचेतनः॥—उत्तर० ४८/१६
"संमूढ़ इव दुःखेन रथमध्यारुहद्द्रुम्।
मुहुर्मुहुः परावृत्य दृष्ट्वा सीतामनाथवत्॥—उत्तर० ४८/२४

विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति

१. बालिवध का तारा-विलाप[1]

वाह्याभिव्यंजक—१. अपना सिर और छाती पीटने लगी।
२. पति को मरा देखकर विकल और उद्विग्न हो भूमि पर गिर पड़ी।
३. कुररी की तरह रोती हुई (तारा)....
४. बालि से लिपट गई।
५. करुणाजनक रूप से रोती हुई अपने पति के समीप बैठ गई, अन्न जल त्याग कर प्राण त्याग का निश्चय किया।

कातरता तथा आर्त निवेदन—१. बेटा ! अपने धर्मवत्सल पिता के अन्तिम दर्शन कर लो।
२. हे नाथ ? अपने पुत्र को ढाढस बँधाओ और मुझसे जो कुछ कहना हो कहो।
३. अपने पुत्र का मस्तक सूँघ लो क्योंकि अब तो तुम सदा के लिए जा रहे हो।
४. मैं खड़ी रो रही हूँ मुझ से बोलते क्यों नहीं ?
५. देखो मैं पुत्र सहित तुम्हारे पास बैठी हूँ।
६. जिस बाण से मेरे प्रिय को मारा है उसी से मुझे मार डालो जिससे मैं उनके पास पहुँच जाऊँ क्योंकि मेरे बिना वह प्रसन्न न रह सकेंगे।

---

१. "शिरश्चोरश्क बाहुभ्यां दुःखेन समभिघ्नती।" —कि० १६/२०
तामवेक्ष्य तु सुग्रीवः क्रोशन्तीं कुररीमिव।"—कि० १६/२८
"समीक्ष्य व्यथिता भूमौ सम्भ्रांता निपपातह।"—कि० १६/२७
"सा समासाद्य भर्तारं पर्यष्वजत भामिनी।"—कि० २०/२
"तथा तु तारा करुणं रुदन्ती भर्तुः समीपे सह वानरीभिः।
व्यवस्यत प्रायमुपोपवेष्टुमनिन्द्यवर्णा भुवि यत्र बाली॥—कि० २०/२६
"कुरुष्व पितरं पुत्र सुदृष्टं धर्मवत्सलम्।
दुर्लभं दर्शनं वत्स तव तस्य भविष्यति॥"—कि० २०/१७
"समाश्वासय पुत्रं त्वं सन्देशं सन्दिशस्व च।
मूर्घ्नि चैनं समाधाय प्रवासं प्रस्थितो ह्यसि॥"—कि० २०/१८
"किं मामेवं विलपतीं प्रेम्णा त्वं नाभिभाषसे" —कि० २०/२१
येनैकबाणेन हतः प्रियो मे तेनैव मां त्वं जहि सायकेन।
हता गमिष्यामि समीपमस्य न मामृते राम रमेत बाली॥"—कि० २४/३३

बालि वध पर सुग्रीव का विलाप

परम आत्मग्लनि—१. मेरी ऐसी दुष्ट बुद्धि हो गई जिससे मैंने ऐसा प्राणघातक कार्य किया।
२. मैंने अपने कुल का नाश किया है, मैं अब अधिक जीने योग्य नहीं हूँ।

श्रीराम का प्रभाव—सुग्रीव के अत्यन्त आर्त्त निवेदन को सुनकर श्रीराम जी के नेत्रों में आँसू भर आए और एक मुहूर्त के लिए वह उदास हो गए।

कुंभकरण और मेघनाद वध पर रावण-विलाप[1] —

अनुभाव—१. शोकसंतप्त रावण मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।
२. अति दीन होकर रावण विलाप करने लगा।
(गुणकथन) ३. हे वीर ! हे शत्रुदर्प हन्ता ! महाबली ! तुम मुझको छोड़कर मेरा तथा बन्धुबान्धवों का काँटा निकाले बिना ही यमलोक चल दिए।
(विरक्ति) ४. अब मुझे राज्य से कोई प्रयोजन नहीं है और सीता का भी क्या करूँगा।
५. कुंभकरण के बिना मैं जीवित नहीं रहना चाहता।
६. मेरा जीवन व्यर्थ है, मेरा मरना ही इस समय कल्याणकर है।
७. मैं आज ही उस देश को जाऊँगा जहाँ मेरा भाई गया है।
(परिताप) ८. मैंने जो अपने धार्मिक भाई विभीषण को निकाल दिया, निश्चय उस दुष्कर्म का यह शोकजनक परिणाम मुझे प्राप्त हुआ है।

मेघनाद वध—

(गुणकथन) १. पुत्र शोक से अति दीन तथा व्याकुल रावण विलाप करने लगा, हे राक्षसचमूअध्यक्ष ! महारथी ! मेरे वत्स !

---

१. "कुलस्य हन्तारमजीवनर्हि।" —कि० २४/२३
" श्रुत्वा वचो बाल्यनुजस्य तस्य।
सञ्जातवाष्पः परवीरहन्ता रामो मुहूर्तं विमना बभूव॥ —कि० २४/२४

२. "रावणः शोकसंतप्तो मुमोह च पपात च"—युद्ध० ६८/७
"त्वं मां विहाय वै वैवाद्यातोऽसि यमसादनम्।
मम शल्यमनुद्धृत्य बान्धवानां महाबल॥" - युद्ध० ६८/११
"राज्येन नास्ति मे कार्यं किं करिष्यामि सीतया।"—६८/१७
"कुंभकर्ण विहीनस्य जीविते नास्ति मे रतिः।"—युद्ध० ६८/१८
"ननु मे मरणं श्रेयो न चेदं व्यर्थजीवितम्।
अद्यैव तं गमिष्यामि देशं यत्रानुजो मम॥—युद्ध० ८६/१९
"तस्यायं कर्मणः प्राप्तो विपाको मम शोकदः।
यत्मया धार्मिकः श्रीमान् स निरस्तो विभीषणः॥" —युद्ध० ६८/२३

२. तुम तो काल को भी अपने बाणों से छिन्नभिन्न कर सकते थे, तुम किस प्रकार लक्ष्मण के वशवर्ती हो गए। तुमने इन्द्र को जीत लिया था।

(आर्त्त निवेदन) १. हे परंतप! तुम लंका के यौवराज्य को, लंका को, राक्षसों को मुझे, अपनी माता तथा स्त्री को छोड़कर कहाँ चले गए?

२. मेरे मरने पर तुमको मेरा प्रेतकार्य करना चाहिए था किन्तु यह तो सब उलटा ही हो रहा है, मुझे तेरा प्रेतकार्य करना होगा।

२. तुम राम सुग्रीव के जीवित रहते हुए और मेरा काँटा बिना निकाले हुए कहाँ चले गए?

(शून्यता का अनुभाव)—एक इन्द्रजीत के बिना तीनों लोक और सारी पृथ्वी मुझे शून्य प्रतीत हो रही है[1]।

रावणवध पर विभीषण विलाप[2]

गुणकथन—१. हे वीर! हे विख्यात पराक्रमी! हे सुशिक्षित! हे नीति चतुर तुम उत्तम सेज पर सोनेवाले आज भूमि पर क्यों सो रहे हो।

२. बाजूबन्दों से शोभित दोनों लंबी भुजाएँ चेष्टाहीन फैली हुई हैं।

३. सूर्य की तरह चमकीला मुकुट अलग पड़ा है।

अनुभाव ४. तुम्हारे मरने से सेना का संग्रह नष्ट हो गया, वीरों का आश्रय समाप्त हो गया।

५. तुम्हारे जैसे श्रेष्ठ वीर के मरने से सूर्य पृथ्वी पर गिर पड़ा, चन्द्रमा अन्धकार में डूब गया, अग्नि-ज्वाला शान्त हो गई, उत्साह निराधार हो गया—

रूपक ६. राम पवन और रावण रूपी वृक्ष का पतन।

७. राम सिंह और रावणरूपी मदमस्त हाथी का विनाश।

रावण की स्त्रियों का विलाप[3]

बाह्याभिव्यंजक—१. वे सब 'आर्यपुत्र, हा नाथ' कहकर चिल्लातीं समरभूमि में जाकर गिर पड़ीं जहाँ रक्त की कीच हो रही थी और जो कबंधों से परिपूर्ण थी।

२. वे कटी हुई वनलता के समान गिर पड़ीं।

३. उनमें से कोई उससे लिपट गई, कोई उसके पैरों से लिपट गई और कोई उसके कण्ठ को पकड़ कर रोने लगीं।

४. किसी ने उसके सिर को अपनी गोद में रख लिया और उसको

---

१. देखिए युद्ध—काण्ड ९३ ६, ७, १२, १३, १४, १५

२. देखिए युद्ध—काण्ड ११२/१,२,३,४,७,८।

३. देखिए युद्ध—काण्ड ११३/४,७,८,१०,२६।

देख-देखकर आँसू बहाने लगीं।

५. वे कुररी पक्षी की भाँति रोने लगीं।

महारानी मंदोदरी का विलाप[1]

गुणकथन—१. तुम्हारे क्रोध के सामने इन्द्र भी काँपता था, ऋषि, ब्राह्मण, गंधर्व दसों दिशाओं में भाग जाते थे।

२. विश्वास नहीं होता कि एक मनुष्य ने तुमको मार डाला, निश्चय ही वह मनुष्य नहीं, या तो वह स्वयं काल है अथवा यमराज है।

आलोचना—अरे दुर्मति, तुमने अरुन्धती और रोहिणी से भी बढ़कर मान्य सीता को हरा, यह तुमने बड़ा ही बुरा किया।

स्मरण[2]—१. कैलाश, मन्दराचल, मेरु, चैत्ररथ वन तथा देवताओं के समस्त उद्यानों में मैं तुम्हारे साथ विहार करती थी।

२. इन्द्रजीत के मारे जाने पर मेरे हृदय पर बड़ा आघात हुआ था किन्तु आज तो मेरी मृत्यु ही हो गई।

आर्त्तनिवेदन और वेदना[3]—१. आज तो तुमने बड़ी लम्बी और दुर्गम यात्रा का मार्ग पकड़ा है, मुझ दुःखार्त्ता को भी अपने साथ ले चलिए। मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकती।

२. मुझ दुःखी, दीन और विलाप करती हुई, मंदभागिनी से बोलते क्यों नहीं ? मुझे छोड़कर क्यों जाते हो ?

ग्लानि—उस हृदय को धिक्कार है जो तुम्हारे शोक में फटकर हजारों टुकड़े नहीं हो जाता।

---

१. देखिए युद्ध ११४/२–१३, २१,

२. देखिए युद्ध ११४।३२,५८,

३. "प्रपन्नो दीर्घम् ध्वानं राजन्नद्य सुदुर्गमम्।
नय मामपि दुःखार्ता न जीविष्ये त्वया बिना ॥ —युद्ध० ११४/६०
"कस्मात्त्वं मां विहायेहे कृपणां गन्तुमिच्छसि।
दीनां विलपितैर्मन्दां किंवा नाभिभाषसे ॥ —युद्ध० ११४/६१
"धिगस्तु हृदयं यस्या ममेदं न सहस्रधा।
त्वयि पंचत्वमापन्ने फलते शोकपीड़ितम् ॥ —युद्ध० ११४/८६
इत्येवं विलपन्त्येव वाष्प व्याकुललोचना।
स्नेहावस्कन्नहृदया देवी मोहमुपागमत् ॥ —युद्ध० ११४/८७
"इत्येवमुच्यमाना सा सशब्दं प्ररुरोद ह।
स्नापयन्ती त्वभिमुखौ स्तनावस्राम्बुविस्रवैः ॥ —युद्ध० ११४/६१
"मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ॥—युद्ध० ११२/२६

बाह्याभिव्यंजक—१. इस प्रकार विलाप करती तथा अश्रु बहाती हुई मंदोदरी स्नेह के कारण व्यथित हृदय होकर मूर्च्छित हो गई।
२. अश्रुधारा से अपने स्तनों को भिगोती हुई वह जोर से रोने लगी।

श्रीराम की सहानुभूति—

श्रीराम ने विभीषण से कहा—मरने तक ही वैर करना चाहिए। मेरा प्रयोजन पूरा हुआ, अब तो जैसा तुम्हारा भाई वैसा मेरा भाई, इसलिए अब इसका यथोचित संस्कार करो।

विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति के अन्तर्गत उद्धृत उपर्युक्त प्रसंगों का अवलोकन करने से स्पष्ट हो जाता है कि महर्षि वाल्मीकि की दृष्टि में जहाँ तक करुण रस का संबंध है पक्ष और विपक्ष का कोई अन्तर नहीं है। जिन शब्दों एवं पदों का प्रयोग उन्होंने पक्ष की करुणानुभूति को प्रकट करने के लिए किया है उन्हीं का प्रयोग तथा उतने ही विस्तार से उन्होंने विपक्ष का वर्णन किया है।

वाल्मीकि रामायण के उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित परिणाम निकाले जा सकते हैं—

वस्तुगत—१. कवि ने रामकथा का विस्तार के साथ वर्णन किया है। ऐसा ज्ञात होता है कि कवि को तत्कालीन समाज में लोककथाओं के रूप में प्रचलित प्रचुर सामग्री प्राप्त हुई है जिसका कवि ने सफल प्रयोग किया है!

२. कवि प्रथम रामकथाकार एवं प्रथम महाकाव्यकार माना जाता है। इस लिए उसका प्रयास, वस्तु एवं अभिव्यक्ति दोनों दृष्टियों से उदाहरण तथा कतिपय रूपों में आदर्श है!

३. कथा में एक शीर्ष के अन्तर्गत विभिन्न उपशीर्षों की योजना की गई है जिससे करुणप्रसंग प्रभावशाली बन गये है। (दशरथ के लिए विभिन्न उपशीर्षों के अन्तर्गत बार-बार शोक का उद्रेक किया गया है!)

४. कवि का दृष्टिकोण "वीर के वृत्त" का वर्णन है। इस कारण वस्तु के लौकिक रूप की ओर कवि की दृष्टि प्रतिलक्षित होती है जिसके अन्तर्गत भगवान् के नर रूप की वास्तविकता अवलोकनीय है!

५. कवि की कृति का प्रेरणास्रोत करुणरस है। इसलिए "वीर वृत" में भी करुण की प्रमुखता है। कथावस्तु इसलिए करुणकथा बन गई है, यह कहना अत्युक्ति न होगा।

अभिव्यक्तिगत—१. शोक की संभव सभी स्थितियों, परिस्थितियों तथा अनुभूतियों का कवि ने वर्णन किया है।

२. शोक की मार्मिकता के प्रसंग में कवि ने ऐसे स्थलों की भी योजना की है जहाँ अभिव्यक्ति में भय और त्रास का सम्मिश्रण हो गया है।

३. "कुररी और क्रौंच मादा का विलाप" कवि की मूल शोकानुभूति के आधार होते हैं ! इसलिए करुणप्रसंगों में मार्मिकता का उद्घाटन कवि इन विलापों की उपमा देकर करता है।

४. कवि की दृष्टि अनुभावों एवं बाह्य-व्यंजकों की ओर रही है। शोक के लिए अपेक्षित सभी अनुभाव एवं बाह्य-व्यंजक कवि की कृति में उपलब्ध हैं।

५. आत्मग्लानि, परिताप, वियोगजन्य परिस्थितियों का कवि ने मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है :

६. शोक की अनुभूति को मर्मभेदी रूप देने के लिए कवि ने व्यंग्य एवं कटु उक्तियों का सहारा लिया है।

७. विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति का पक्ष की शोकानुभूति के समान कवि ने सोत्साह वर्णन किया है।

८. अन्त्येष्टि की विभिन्न स्थितियों का वर्णन करते हुए इष्टनाश के अभाव की उत्तरोत्तर विकसित करुणानुभूति का दिग्दर्शन कराया गया है। (चिता पर रखना, जलती चिता की परिक्रमा, फूल चुनना आदि रूपों में नष्ट इष्ट की विभिन्न स्थितियाँ तथा तज्जन्य शोक)।

९. परिताप की अभिव्यक्ति के अन्तर्गत कवि ने एक लम्बी सूची पापगतियों एवं दुर्गतियों की दी है जो शोकजन्य ग्लानि के साथ तत्कालीन समाज की दशा पर भी प्रकाश डालती हैं।

१०. शोकानुभूति के अन्तर्गत अपने प्रियजनों में से एक को दूसरे के नाश का कारण मानकर अप्रिय निन्दा की गई है (लक्ष्मण शक्ति प्रसंग में सीता की उपेक्षा तथा नारीमात्र की अवहेलना।)

११. कर्तव्यपरायणता तथा मर्यादा के साथ लोकनिन्दा एवं लोकापवाद से मुक्ति के प्रसंगों में अभिव्यक्ति का विकास हुआ है।

१२. करुणानुभूति में आश्रय की नितांत विवशता, असहायावस्था तथा आदर्शों के अन्तर्गत परवशता का उद्घाटन कम स्थलों पर हुआ है। केवल राम इस प्रकार की अनुभूति का उद्घाटन करते हैं। अन्य पात्र कटूक्तियों के द्वारा करुणरस की सहज अनुभूति में बाधा उपस्थित कर देते हैं !

१३. वियोगदशा में चराचर जगत से सहानुभूति प्रकट की गई है तथा उप-मानों का मानवीकरण किया गया है।

१४. शोक की चरम अभिव्यक्ति आत्मघात के प्रयत्न एवं मृत्यु की याचना में प्रकट हुई है।

अध्यात्म रामायण में करुणरस

ब्राह्माण्ड पुराण के उत्तरखण्ड में अध्यात्म रामायण दी हुई है। संस्कृत साहित्यगत रामकथा में अध्यात्म रामायण का अपना महत्त्व है। वाल्मीकि रामायण

में जैसा कि दिखा चुके हैं रामकथा का सविस्तार विवेचन हो चुका है और कथा की पूर्णता के साथ कोई प्रसंग ऐसा नहीं छूटा है जिस पर किसी को कुछ नवीन मत प्रकट करने का अवसर प्राप्त हो सके। फिर भी, अध्यात्म रामायण की अभिव्यक्ति एवं दृष्टिगत अपनी विशेषता है जिसका अध्ययन मध्ययुगीन हिन्दी रामकाव्य की पूर्वपीठिका में अपेक्षित है।

अभिव्यक्ति का सोदाहरण विवेचन आगे किया जायगा। यहाँ अध्यात्म रामायण के दृष्टिकोण पर दो शब्द आवश्यक हैं। अध्यात्म रामायण तथा वाल्मीकि रामायण की दृष्टिकोणगत विशेषता ही वस्तुतः दोनों कृतियों के पृथक् विवेचन का आधार है। अध्यात्म रामायण के राम यद्यपि अपने आपको "संसारिणा अस्माकं विषयासक्त चेतना नितरां" कहकर नर ही नहीं अपितु घोर कामी नर की श्रेणी में रखते हैं किन्तु वास्तव में वह संसारी नहीं प्रत्युत संसारी-संसार के आदिकारण स्वरूपा माया के पति हैं, भगवान् हैं। स्थल-स्थल पर उनके भगवत्स्वरूप के दर्शन होते हैं। जहाँ कहीं भ्रम की संभावना हो सकती है वहाँ कवि पहले से ही भगवल्लीला का निर्देश कर देता है। इस प्रकार राम भगवान् ही बने रहते हैं। उनके नर रूप का किंचित् भी आभास नहीं हो पाता। पाठक भूलकर भी यह नहीं सोच पाता कि राम भगवान् के साथ-साथ नर भी हैं। इसके विपरीत वाल्मीकि रामायण में राम, राम पहले तथा भगवान् बाद को हैं। कथा के प्रवाह में विभोर पाठक मानवोचित अनुभूतियों में जहाँ-तहाँ राम को भगवान् के रूप में देखकर एक क्षण को स्तम्भित रह जाता है—'अरे, यह तो भगवान् के चरित का गान है' और झट हाथ जोड़ लेता है। इस प्रकार इन दोनों कृतियों के दृष्टिकोण में विशेष अन्तर होने के कारण करुणरस की अभिव्यक्ति में भी विशेष अन्तर आ गया है। एक ओर जहाँ वाल्मीकि रामायण में करुणरस का प्रबल प्रवाह पाठक को आनंदविभोर कर देता है वहाँ दूसरी ओर अध्यात्म रामायण में वैसी ही सामग्री के संदर्भ में रस-परिपाक संभव नहीं हो पाता। कवि की योजना इस प्रकार की है कि पाठक शोकाभिभूत राम को देखकर भी रस का आनंद नहीं ले पाता क्योंकि ऐसे प्रसंगों से पूर्व ही कवि भगवान् राम से (या वह स्वयं(यह निर्देश कराकर कि इस प्रकार की लीला की जा रही है, सारे रहस्य को खोल देता है और ऐसा अनुभव होने लगता है जैसे नाटक देखते हुए बीच-बीच में कोई टोकता जाय कि यह सब नाटक है, सत्य नहीं और इस प्रकार दर्शक को आश्रय के साथ तादात्म्य का अवसर ही न मिलने दे।

अध्यात्म रामायणगत करुणरस के प्रसंगों की अभिव्यक्ति पर विचार करने से पूर्व उपर्युक्त टिप्पणी तथ्यों को अपने मूल रूप में समझने में सहायता देगी तथा करुण रस के स्वरूप का यथातथ्य ज्ञान हो सकेगा। अध्यात्म रामायण में रामकथा के निम्नलिखित करुण प्रसंग आए है जिन पर आगे विवेचन किया जायगा।

२—**रामवनगमन** (क) दशरथ का शोक :

(ख) भरत का शोक ।
(ग) रनिवास का शोक ।

२—**रामवनवास** (क) गुह का शोक राम को कुशशय्या पर सोता देखकर ।
(ख) राम का शोक—महाराज दशरथ के निधन के समाचार को पाकर; सीता हरण पर ।

३—**लक्ष्मण शक्ति**—राम का शोक ।

४—तिरस्कार एवं परित्याग जन्य सीता का शोक ।

५—राम का शोक सीता के पृथ्वी-प्रवेश के प्रसंग में ।

विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति—

१. बालिवध पर तारा का शोक ।
२. कुंभकर्ण और मेघनाद वध पर रावण का शोक ।
३. रावण वध पर मंदोदरी का शोक ।

रामवनगमन—महाराज दशरथ का शोक इस प्रसंग में विशेष रूप से उल्लेखनीय है । महाराज दशरथ के शोक में शोकसंतप्त मानव के दर्शन होते हैं । उनके शोक की तीन स्थितियाँ हैं—

प्रथम स्थिति—महाराज कैकेयी के मान की सूचना पाते हैं और अविलंब कैकेयी के पास उपस्थित होते हैं । कैकेयी कठोरता की साकार मूर्ति बनकर महाराज की घोर यातना का कारण बन जाती है । कैकेयी के रोमांचकारी कठोर वचनों को सुनकर उनको महान् कष्ट होता है और वह शोक से कातर हो उठते हैं । इस प्रसंग में महाराज के अनुभावों के द्वारा कवि ने शोक का वर्णन किया है—वज्राहत पर्वत/मृतक-के समान पृथ्वी पर गिर पड़े ।

श्रुत्वैतद्दारुणं वाक्यं······१. निपपात महीपालो वज्राहत इवाचलः ।
(अयो० ३/२३)

२. मूर्च्छितः पतितो भूमौ विसंज्ञो मृतको यथा !
(अयो० ३/३३)

द्वितीय स्थिति—राम सीता और लक्ष्मण वन जाने के लिए महाराज की सेवा में उपस्थित हुए और वल्कल वस्त्र पहन कर वन को चलने लगे । उनको देखकर महाराज दुःख से दुःखी होकर भूमि पर गिर पड़े और रोने लगे । जब रथ जिसमें राम वन जा रहे थे ओझल हो गया तो महाराज मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े ।

राममालोक्य सीतां चैव लक्ष्मणम् ··१. दुःखान्निपतितो भूमौ रुरोदाश्रुपरिप्लुतः ।
(अयो० ५/४२)

रामे दूरं गते······················२. राजा मूर्च्छित : प्रापद्भुवि ।
(अयो० ५/४६)

तृतीय स्थिति—सुमंत्र राम को वन पहुँचाकर वापिस आते हैं और महाराज को

समाचार सुनाते हैं और राम का संदेश निवेदन करते हैं—

१—महाराज को आशा थी कि रामलक्ष्मण सीता ने कठोर शब्द कहे होंगे—

कुत्र त्यक्तस्त्वया रामः किं मां पापिनमब्रवीत् । (अयो० ७/४)

सीता वा लक्ष्मणो वापि निर्दयं मां किमब्रवीत् ॥

किन्तु राम का संदेश उसी प्रकार परम आज्ञाकारी पुत्र का निवेदन था—

सुमंत्र ब्रूहि राजानं शोकस्तेऽस्तु न मत्कृते ।

साकेतादधिकं सौख्यं विपिने नो भविष्यति ॥ (अयो० ७/१०)

यही नहीं राम को महाराज की कुशलक्षेम की चिन्ता भी थी जो इन शब्दों में प्रकट हुई—'आश्वासयतु राजानं वृद्धं शोकपरिप्लुतम् ।' (अयो० ७/११)

इस प्रसंग में करुणरस की मनोविज्ञानाश्रित सुन्दर अनुभूति अवलोकनीय है। हमसे अपराध बन जाय और उसके विरोध में हमारा प्रिय हमको डाटफटकार दे, बुरा-भला कहले तो चित्त को संतोष हो जाता है। इसके स्थान पर यदि हमारा प्रिय उदारता पूर्वक क्षमा करके उल्टा हमारी सुख सुविधा के लिए चिन्तित हो तो उसका इस प्रकार का व्यवहार बडा मर्मस्पर्शी बन जाता है। दशरथ की दशा ऐसी ही थी। वह तो चाहते थे और उन्होंने कहा भी था—"स्त्रीजितं भ्रान्तहृदयमुन्मार्गपरिवर्तिनम् ।

निगृह्य मां गृहाणेदं राज्यं पापं न तद्भवेत् ॥"

(अयो० ३/६६)

किन्तु ऐसा न हुआ और जो कुछ हुआ वह उनके लिए राम की शालीनता के संदर्भ में मन को कचोटने वाला वन गया।

२—इस ग्लानि एवं परिताप में महाराज दशरथ अति दुःखी ही थे कि इसी समय महारानी कौशल्या ने हृदयविदारक व्यंग्य कस दिया जो निश्चय ही ऐसा लगा जैसे किसी ने घाव में अग्नि का स्पर्श कर दिया हो—"अपने आप यह सब करके अब आप रोते क्यों हैं ?" कृत्वा त्वमेव तत्सर्वमिदानीं किं नु रोदिषि । (अयो० ७।१७)

३. इसी प्रसंग में श्रवण के अंधे माता-पिता का शाप भी स्मरण हो आया और महाराज परम विकल हो गए।

महाराज दशरथ राम के वियोग में इस प्रकार उपर्युक्त तीन दारुण स्थितियों में उत्तरोत्तर शोकाक्रान्त होते हुए मरणासन्न स्थिति को प्राप्त हुए और प्राण त्याग स्वर्ग सिधारे—"हा राम पुत्र हा सीते हा लक्ष्मण गुणाकर ।

त्वद्वियोगादहं प्राप्तो मृत्युं कैकेयिसम्भवम् !! (अयो० ७।४७)

भरत का शोक—१. पिता की मृत्यु का समाचार पाकर भरत "हा तात, हा तात मुझे दुःखसागर में छोड़कर आप कहाँ चले गए" कहते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े।

तच्छ्रुत्वा निपपातोर्व्यां भरतः शोकविह्वलः ।

हा तात क्व गतोऽसि त्वं त्यक्त्वा मां वजिनार्णवे ॥ (अयो० ७/६६)

२. रामसीतालक्ष्मण के वनवास के समाचार को सुनकर उनका शोक क्रोध में परिणत हो जाता है और वह मां को बुरा भला कहने लगते हैं, ग्लानि से कातर हो उठते है और विष खा लेने या अग्नि प्रवेश की सोचते हैं—

"अहमग्निं प्रवेक्ष्यामि विषं वा भक्ष्याम्यहम् ।" (अयो० ६/८०)

३. भरत माता कौशल्या के यहाँ पहुँचे। उनको देखकर माता कौशल्या फूट-फूटकर रोने लगी। उधर भरत भी उनके चरणों में पड़ कर रोने लगे।

"सापि तं भरतं दृष्ट्वा मुक्तकण्ठा रुरोद ह ।" (अयो० ७/८२)

"पादयोः पतितस्तस्या भरतोऽपि तदारुदत् ।" (वही ८३)

माता कौशल्या को बहुत विलाप करता हुआ देख कर भरत ने उनके सामने अपनी स्थिति स्पष्ट की और निम्नलिखित शपथ लीं—यदि मैं माता कैकेयी के मत में होऊँ तो—

१. मुझे सौ ब्रह्म हत्याओं का पाप लगे।

२. अरुंधती सहित श्री वशिष्ठ जी को खड्ग से वध करने का जो पाप हो वह सारा पाप मुझे लगे।

(देखिए—अयो० ६/८७, ८८, ८९)

रनिवास का शोक—रनिवास की रानियों के लिए रामवनगमन प्रसंग में कई अवसर शोक के प्रकट हुए। इन अवसरों पर कवि ने रनिवास के शोक का प्रकटीकरण निम्नलिखित रूप में किया—

१. महाराज को मूर्च्छित देख कर रनिवास की सारी रानियाँ रोने लगी।

राजानं मूर्च्छितं दृष्ट्वा चुक्रुशुः सर्वयोषितः। (अयो० ३/५३)

२. कैकेयी ने सीता को वल्कल वस्त्र दिए किन्तु वह उनको पहनना नहीं जानती थीं। वह उनको लेकर लज्जा सहित राम की ओर देखने लगीं। राम ने उन वस्त्रों को सीता के वस्त्रों पर लपेट दिया और इस प्रकार उनका पहनना बतलाया। इस मर्मस्पर्शी दृश्य को देख कर रनिवास की समस्त स्त्रियां रोने लगीं।

"...सीता तन्न विजानती हस्ते गृहीत्वा रामस्य लज्जया मुखमैक्षत।
रामो गृहीत्वा तच्चीरमंशुके पर्यवेष्टयत् ॥
तद् दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वे राजदाराः समन्ततः।"

(अयो० ७/३६, ३७/३८)

कहना न होगा कि कवि ने इस स्थल पर करुणरस की जो योजना की है वह उसकी मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म दृष्टि पर आधारित है। ऐसे सरल, निरीह, अबोध तथा सुशील पात्रों को इस प्रकार यातना का शिकार होते हुए देखकर किस का हृदय न फूट पड़ेगा।

३. महाराज दशरथ के निधन पर कौशल्या, सुमित्रा तथा अन्यान्य रानियाँ छाती पीटकर रोने लगीं।

कौशल्या च सुमित्रा च तथान्या राजयोषितः।
चुक्रुशुश्च विलेपुश्च उरस्ताडनपूर्वकम्। (अयो० ७/४८, ४६)

२. **रामवनवास**—राम को विपन्नावस्था में देख कर गुह का संवेदनाजन्य शोक—

राम को कुश और पत्तों की साथरी पर सोता देखकर गुह को बड़ा दुःख हुआ और आँखों में आँसू भर कर वह विधाता के विधान पर टिप्पणी करने लगा और कैकेयी और मंथरा को कोसने लगा। सुप्तं रामं समालोक्य सोऽश्रुपरिप्लुतः।
लक्ष्मणं प्राह विनयाद् भ्रातः पश्यसि राघवम्॥
शयानं कुशपत्रौघसंस्तरे सीतया सह।
यः शेते स्वर्णपर्यङ्के स्वास्तीर्णे भवनोत्तमे॥ (अयो०६/१,२)

महाराज दशरथ के निधन का समाचार पाकर राम सीता और लक्ष्मण अति दुःखी हुए उनके शोक की अभिव्यक्ति निम्नलिखित रूप में हुई है—

१. राम और लक्ष्मण—इन शूल के समान वचनों को सुनकर "हाय, हम मारे गए" इस प्रकार रोते हुए भूमि पर गिर पड़े।

२. समस्त माताएँ तथा अन्य उपस्थित लोग भी रोने लगे। (संवेदनाजन्य रूप)

३. श्रीराम बराबर यह कहने लगे—'हे तात, आप मुझे छोड़कर चले गए। मैं अनाथ हो गया। मुझे अब कौन प्यार करेगा ?"

राम के साथ सीता और लक्ष्मण भी बहुत विलाप करने लगे।

श्रुत्वा तत्कर्णशूलाभं···"हा हतोऽस्मीति पतितो रुदन् रामः सलक्ष्मणः।
ततोऽनुरुरुदुः सर्वा मातरश्च तथापरे।
हा तात मां परित्यज्य क्व गतोऽसि घृणाकर।
अनाथोऽस्मि महाबाहो मां को वा लालयेदितः॥"
(अयो० ६/१४, १५, १६)

सीताहरण—सीताहरण प्रसंग से पूर्व राम-सीता को एकान्त में लीला का सारा रहस्य बता देते हैं—"रावण तुम्हारे पास भिक्षु का रूप धर कर आएगा। तुम अपने समान रूपवाली अपनी छाया कुटी में छोड़कर अग्नि में प्रवेश कर जाओ।" इसके पश्चात् मायामृग को देख कर हँसती हुई सीता उस मृग को प्राप्त करने का आग्रह करती हैं। इस प्रकार उपर्युक्त पृष्ठ भूमि में सीताहरण पर राम का निम्नलिखित विरह विकल स्वरूप रस की अनुभूति नहीं करा पाता क्योंकि इस शोक प्रदर्शन से पूर्व भी राम यह बता देते हैं कि" ···शोचामि प्राकृतो यथा · "

"हा प्रिये क्व गतासि त्वं नासि पूर्ववदाश्रमे। (अर० ८/१६)
अथवा मद्विमोहार्थ लीलया क्व विलीयसे। (अर० ८/१६)
मृगाश्च पक्षिणो वृक्षा दर्शयन्तु मम प्रियाम्। (अर० ८/१७)

मम जायेति सीतेति विललापातिदुःखितः ।। (अर० ८/२०)

लक्ष्मण शक्ति—लक्ष्मण शक्ति के प्रसंग में राम की शोकानुभूति का कवि संकेत मात्र उल्लेख करता है—

रामोऽपि लक्ष्मणं दृष्ट्वा मूर्च्छितं पतितं भुवि । (युद्ध ६/३१)
मानुषत्वमुपाश्रित्य लीलानुशुशोच ह । (वही/३३)

सीता का शोक—१. रावणवध के पश्चात् सीता राम के पास लाई गई । सीता के चरित्र को शंका की दृष्टि से देखते हुए राम ने न कहने योग्य बहुत सी बातें कहीं ।

"अवाच्यवादान्बहुशः प्राह तां रघुनन्दनः ।"

इस प्रसंग में करुणरस की अनुभूति संभव थी किन्तु कवि ने उसकी योजना नहीं की । सीता को प्रत्युत संतोष हुआ और उनमें अद्‌भुत साहस का संचार हुआ । वह अपनी पवित्रता का विश्वास कराने के लिए सहर्ष अग्नि में प्रवेश कर गई ।

२. दूसरा प्रसंग लोकापवाद के भय से सीता का निर्वासन है । इस प्रसंग की पृष्ठ भूमि में भी राम सीता को सारा रहस्य निम्नलिखित शब्दों में प्रकट कर देते हैं—

"कल्पयित्वा मिषं देवि लोकवादंत्वदाश्रयम् । (उत्तर/४, ४१)
त्यजामि त्वां वने लोकवादाद्‌भीत इवापरः ।। (उत्तर/४, ४२)

यह सारा प्रसंग बैकुण्ठ जाने से संबन्धित है जिसमें भगवान् राम और सीता की सहमति ही नहीं प्रत्युत रहस्यमयी योजना भी सम्मिलित है । इसीलिए इस प्रसंग में संकेत मात्र उल्लेख से ही काम चल गया है । लक्ष्मण जब सीता को वन में छोड़ कर आते हैं तो केवल निम्नलिखित अभिव्यक्ति से इस प्रसंग की कारुणिक प्रवृत्ति की ओर कवि संकेत करता है—

लोकापवादभीत्या त्वां त्यक्तवान् राघवो वने । (उ० /४/५८)
इत्युक्त्वा लक्ष्मणः शीघ्रं गतवान् रामसन्निधिम् ।
सीतापि दुःखसन्तप्ता विललापातिमुग्धवत् ।।" (उ० ४/५६, ६०)

सीता का पृथ्वी-प्रवेश—सीता जी अपने सतीत्व और पातिव्रत का उच्चतम आदर्श उपस्थित करती हुई पृथ्वी में प्रवेश कर गईं । इस अवसर पर राम के शोक की चर्चा मात्र की गई है क्योंकि कवि के दृष्टिकोण के अनुकूल भगवान् राम की पूर्व निश्चित योजना के अनुसार ही यह सब हो रहा है । इसीलिए भगवान् के शोक का उल्लेख करते हुए कवि यह कहना नहीं भूलता—

रामस्तु सर्वं ज्ञात्वैव भविष्यत्कार्यगौरवम्" । इसके साथ—

राम के शोक का वर्णन निम्नलिखित शब्दों में समाप्त कर दिया जाता है—

"अजानन्निव दुःखेन शुशोच जनकात्मजाम् ।"

विपक्षीपात्रों की शोकानुभूति—बालिवध पर तारा के शोक में करुणरस की विभिन्न स्थितियाँ प्रकट हुई हैं—

तारा के शोकगत अनुभव—१. शोक से मूर्च्छित होगई । (निहितं बालिनं

श्रुत्वा तारा शोकविमूर्च्छिता (कि० ३/४)

२. सिर तथा छाती को हाथों से पीटने लगी। (अताडयत्स्वपाणिभ्यां शिरो वक्षश्च भूरिषः (कि० ३/६)

३. रोती हुई, बाल बिखरे हुए। (रुदती मुक्तमूर्धजा—कि० ३/६)

४. रोती हुई बालि के पैरों पर गिर पड़ी। (रुदती नाथनाथेति पतिता तस्य पादयोः (कि० ३/७)

तारा की शोकागत मार्मिक उक्तियाँ—१. जिस बाण से बाली को मारा है उसी से मुझे मार डालिए। (राम मां जहि बाणेन येन वाली हतस्त्वया कि० ३/८)

२. वे मेरी बाट देख रहे होंगे, मेरे बिना उनको स्वर्ग में भी चैन न होगा। पत्नी-वियोग का दुःख तो आपने अनुभव किया है। (स्वगऽपि न सुखं तस्य मां विना रघुनन्दन पत्नीवियोगजं दुःखमनुभूतं त्वयानघ।—कि० ३/६, १०)

तारा की शोकगत व्यंग्योक्तियाँ—१. बाली के पास मुझे पहुँचाकर आपको स्त्रीदान का फल मिलेगा। (वालिने मां प्रयच्छाशुपत्नीदानफलं भवेत्—की० ३/१०)

२. सुग्रीव से—अब तुम रुमा के साथ निष्कंटक राज्य भोगो। (रुमया सार्धं मुङ्क्ष्व—कि० ३/११)

रावण का शोक—कुम्भकर्ण-वध के अप्रत्याशित समाचार को पाकर रावण मूर्च्छित हो कर पृथ्वी पर गिर पड़ा और संज्ञाप्राप्त करके विलाप करने लगा। रावण के शोक का इससे अधिक वर्णन न कर कवि ने मेघनाद को ला उपस्थित किया और शत्रुओं के संहार का विश्वास दिलाकर शोक-शमन किया।[1]

मेगनाद वध—मेघनाद वध के समाचार को पाकर रावण अति शोकाकुल होगया उसके शोक की निम्नलिखित तीन स्थितियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं—

१. अनुभावगत स्थिति—मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और अति दीन हो कर विलाप करने लगा। (रावणः पतितो भूमौ मूर्च्छितः पुनरुत्थितः। विललापाति-दिनात्मा पुत्रशोकेन रावणः। —युद्ध० ६/५६)

२. **पुत्र के गुणकर्म का स्मरण एवं कथन**—आज इन्द्रजीत को मारा गया सुन कर सारे देवता, लोकपाल, महर्षिगण सुख से सोयेंगे। इस प्रकार पुत्र के शोक में भाँति-भाँति विलाप करने लगा—

"अद्य देवगणाः सर्वे लोकपाला महर्षयः।
हतमिन्द्रजितं ज्ञात्वा सुखं स्वप्स्यन्त निर्भयाः।
इत्यादि बहुशः तुत्रलालसो विललाप ह। युद्ध० —६/६०, ६१)

३. **शोक की क्रोध में परिणति—अ**—अति क्रुद्ध होकर अपने शत्रुओं को

---

१. भ्रातरं निहतं श्रुत्वा…रावणःशोकसन्तप्तो मूर्च्छितः पतितो भूमावुत्थाय विललाप ह।" —युद्ध० ८/५३, ५४

नष्ट करने की इच्छा से राक्षसों से विचार करने लगा। (देखिए—युद्ध० ६/६२)

आ—शोक और क्रोध से विकल हो सीता को मारने के लिए दौड़ा। (देखिए-युद्ध ६/६:)

रावण वध पर मंदोदरी का शोक—रावण वध पर मंदोदरी और विभीषण के शोक का कवि द्वारा कथनमात्र है। इस प्रसंग की अभिव्यक्ति के लिए कवि उदासीन प्रतीत होता है जो कथा के चरम लक्ष्य की दृष्टि से स्वाभाविक है। निम्नलिखित टिप्पणी इस प्रसंग के सम्बन्ध में रामायण में दी गई है।

रावण को भूमि पर पड़ा देखकर मंदोदरी आदि समस्त स्त्रियाँ उसके पास आईं और उसके सामने गिर पड़ीं तथा शोक से विलाप करने लगीं। विभीषण भी शोकाकुल हो गए और आर्त्त भाव से रावण के सामने गिर पड़े और बहुत प्रकार से विलाप करने लगे।

"दृष्ट्वा रावणं पतितं भुवि···मंदोदरीमुखाः सर्वाः स्त्रियो···पतिता रावणस्याग्रे शोचन्त्यः पर्यदेवयन्।

विभीषणः शुशेचार्तः शोकेन महतावृतः

पतितो रावणस्याग्रे बहुधा पर्यदेवयत्॥" —(युद्ध० १२/४, ५, ६,)

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर हम सहज ही निम्नलिखित परिणामों पर पहुँच जाते हैं—

वस्तुगत—१. यद्यपि इस कृति में रामकथागत करुणरस के प्रायः सभी अंगों को प्रश्रय दिया गया है किन्तु कवि का विशेष दृष्टिकोण प्रायः स्थलों पर रसनिष्पति में बाधक सिद्ध हुआ है। सीता-निर्वासन प्रसंग को भी कथावस्तु में रखा है।

२. सहानुभूतिजन्य शोक के एक दो प्रसंगों की नई उद्भावना की है। (गुह भगवान् को कुश शय्या पर सोता देखकर दुःखी होता है।)

३. कथा का विस्तार अपेक्षाकृत संक्षिप्त हो गया है। बाल्मीकि की रामायण में कथा का जो विस्तर दृष्टिगोचर होता है अध्यात्म रामायण में न तो वह विस्तार है न करुण रस की मार्मिक एवं दारुण अनुभूति को प्रकट करने के लिए बाल्मीकि की कथा के समान, प्रसंगों में भय और त्रास की योजना की गई है। दशरथ मरण प्रसंग में शोक की सांघातिक स्थिति के लिए आयोजित स्थितियों में कमी की गई है, भरत के परिताप के अन्तर्गत एक पूरी सूची के स्थान में गिनीचुनी पाप गतियों का उल्लेख किया गया है, लक्ष्मण मूर्च्छा के दो प्रसंग में से शक्ति के प्रसंग को ही प्रश्रय दिया गया है।

४. करुणरस के कतिपय नए प्रसंगों की उद्भावना भी की गई है। (कैकेयी का सीता को वल्कल वस्त्र देना।)

५. अप्रिय प्रसंगों को संकेत रूप में चलता कर दिया गया है। लंका से आई हुई सीता का (रामद्वारा) निन्दा प्रसंग।

अभिव्यक्तिगत—१. प्रायः स्थलों पर करुण की अभिव्यक्ति में कवि के दृष्टि-कोण के कारण बाधा उपस्थित हुई है।

२. "भूमि पतन" अनुभाव का कवि ने प्रायः प्रयोग किया है। इसके साथ मूर्च्छा, सिर छाती पीटना, केश खुले हुए होना आदि का भी उल्लेख हुआ है।

३. सहानुभूतिगत करुणानुभूति को प्रश्रय दिया गया है। करुण की मार्मिक अभिव्यक्ति के स्थलों पर सहानुभूतिगत शोक की प्रायः व्यवस्था की गई है।

४. इष्टनाशगत प्रसंगों में आलंबन का अभाव, आश्रय की असहायावस्था, अनाथदशा, विवशता एवं विकलता का प्रायः उल्लेख हुआ है।

५. विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति के प्रति कवि ने पक्ष के समान ही सहानुभूति प्रकट की है। इन प्रसंगों में व्यंग्य-उक्तियों तथा निराशाजन्य उदासीनता का विशेष उल्लेख हुआ है।

६. एक-दो स्थलों पर शोक की परिणति रोष में दिखलाई गई है।

भवभूति संस्कृत साहित्य के महान कलाकार हैं। उनके तीन नाटक प्रसिद्ध हैं—महावीरचरित्र, मालती माधव तथा उत्तररामचरित। इनमें उत्तररामचरित करुणरस की एक अनुपम कृति है। करुणरस की इससे सुन्दर और प्रिय कृति साहित्य में कभी संभव न हो सकी।

भवभूति के अनुसार करुणरस ही एक मात्र रस है। जिस प्रकार समुद्र का जल कभी भंवर कभी बुद्बुद और कभी तरंगों का रूप धारण कर लेता है किन्तु वास्तव में है सब जल ही उसी प्रकार निमित्त भेद से किंवा रस सामग्री की विभिन्नता से एक ही करुणरस अन्य रसों के रूप में प्रकट होता है।"[1]

एको रसः करुण एव—उत्तर रामचरित में भवभूति ने "एकोरसः करुणएव" सिद्धान्त की प्रतिष्ठा एवं सम्पुष्टि की है। इस नाटक में कवि ने करुणरस की व्यापकता का विशेषरूप से दिग्दर्शन कराया है। शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार नाटक का मुख्य रस श्रृंगार या वीर होना चाहिए किन्तु भवभूति ने इस रुढ़ि के प्रतिकूल प्रगति का अनुसरण किया।

इस शास्त्रीय मर्यादा को दृष्टिगत रखते हुए भवभूति में श्रृंगार और वीर रस का मुख्य रूप से तथा अन्य रसों का गौणरूप से करुणरस में पर्यवसान दिखलाकर शास्त्रीय रूढ़ि का खण्डन किया। उनकी दृष्टि सभी रसों पर थी। इसलिए उन्होंने प्रत्येक रस को करुणरस के व्यापक क्षेत्र में लाने का प्रयत्न किया जिसमें उनको पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

इस नाटक में प्रारम्भ से अन्त तक सामाजिक की वही दशा रहती है जो जल-

---

१. "एकोरसः करुण एव निमित्तभेदाद्भिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान्विकारानम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम्"
पाठा०—तु तत्समग्रम् (उ० रा०–३/४७)

पूरितघट को सिर पर रखकर पनघट से जाती हुई नागरी की रहती है। जिस प्रकार वह अपनी सखियों से खेलती तथा इठलाती हुई जाती है किन्तु घट संतुलन की सुरति से वह क्षणभर को भी विरत नहीं होती, उसी प्रकार इस नाटक का सामाजिक शृंगार, हास्य, वीर, भयानक, वीभत्स, रौद्र, अद्‌भुत तथा शान्त आदि सभी रसों का रसास्वादन करता है किन्तु उसकी सुरति शोकस्थायी में ही लगी रहती है। कवि की यह अलौकिक योजना वस्तुतः धन्य है। यहाँ संक्षेप में पूरे नाटक पर इस दृष्टिकोण से दृष्टिपात कर लेना आवश्यक होगा जिससे उपर्युक्त कथन की विवेचना संभव हो सके।

प्रथम अंक में संभोग शृङ्गार तथा हास्य की मृदु रेखा के दर्शन होते है। देवीजी के अन्यमनस्क भाव की शान्ति के लिए महाराज उन्हें चित्र-दर्शन कराते हैं। रामायण के पात्रों का लक्ष्मण परिचय देते है। उर्मिला के अवसर पर वह मौन हो जाते है। अविलम्ब देवीजी शिष्टहास की एक रेखा खींच देती हैं—"वत्स इयमप्यपरा का" भाभी देवर का यह परिहास कितना प्रिय एवं सरल है, यह यहाँ विशेषरूप से अवलोकनीय है। यह हासपरिहास कितना करुणापूर्ण है इसका अनुमान उस स्मृतिगत विरह-वेदना से लगाया जा सकता है जिसके अन्तर्गत राम सीता हरण चित्र को देखकर विह्वल तथा कातर हो उठते हैं। लक्ष्मण उनकी दशा को ताड़ जाते हैं।

"आपका अश्रु प्रवाह मोतियों की टूटी लड़ी की भाँति अनेक धाराओ में टपटप गिरता हुआ पृथ्वी पर पहुंच कर बिखर रहा है। बरबस दबाए जाने पर भी आपके हृदय का यह भरा हुआ उद्‌बेग आपके फड़कते हुए ओठों तथा नासापुटों द्वारा दूसरों को सहज ही सूचित हो रहा है।"[1]

इसके पश्चात् संभोग शृंगार का प्रगाढ़ प्रसंग आता है। सीता जी पति की भुजा पर सिर रखकर सो जाती है। राम अपने प्रणय को मुखरित करने लगते है—

" यह गृहलक्ष्मी ऐसी है जैसे नेत्रों के लिए अमृत की सलाई हो। इसके शरीर को स्पर्श करके चन्दन की भाँति शीतलता अनुभव होती है।"[2]

किन्तु इस प्रणय-प्रसंग में कितनी वेदना भरी है इसका अनुमान कर्तव्यपरायण राम के निम्नलिखित चीत्कार से लगाया जा सकता है—

"ओ भोली रानी, तू मुझको छोड़ दे। मैं पापी चान्डाल हूँ। तू चन्दन के धोखे विषवृक्ष की शाखा से लिपट गई है।"[3]

---

१. अयं ते वाष्पैं घस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो
विसर्पन्धाराभिर्लुठति धरणीं जर्जरकणः।
निरुद्धोऽपत्यावेगः स्फुरदधरनासापुट तया
परेषामुन्नेयो भवति च भराघ्मात हृदयः"—उ०रा० १/-६

२. "इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो
रसावस्याः स्पर्शी वपुषि बहुलश्चन्दनरसः।"—उ०रा० १/३८

३. "अपूर्वकर्मचण्डालमयि मुग्धे विमुञ्च माम्
श्रिताऽसि चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाकं विषद्रुमम्।"—उ०रा० १ ४६

कर्त्तव्याहृत राम के प्रणयबलिदान की यह अति करुणापूर्ण आत्मग्लानि है। इस स्थल पर राम के साथ सामाजिक की रतिस्थायी की प्याली टूट जाती है जो अभी तो भर भी नहीं पायी थी।

दूसरे अंक की प्रस्तावना बारह वर्ष के पश्चात् की गई है। इस दीर्घ अवधि में राम तथा सीता ने किस प्रकार अपनी विरह-वेदना को सहा होगा। यह कल्पना ही स्वयं अति वेदनापूर्ण है। एक प्रजापालन तथा कर्त्तव्य भार से जीवित है तो बेचारी दूसरी पुत्र धरोहर के नाते येनकेन प्रकारेण जीवन नौका खे रही है।

इस अंक के प्रारम्भ में सीता के कष्टों का अन्य पुरुष द्वारा वर्णन कराया गया है जिसके द्वारा सामाजिक की करुणानुभूति के लिए मानो एक पृष्ठभूमि प्रस्तुत हो जाती है।

इस अंक में बन की गम्भीरता, हिंसक पशुओं का शोर, साँप के स्वेद का गिरगिट द्वारा पान आदि भयानक दृश्य भी उपस्थित होते हैं जो भयानक रस की योजना करते है। राम इन दृश्यों के सम्बन्ध में टिप्पणी देते हुए कहते हैं "किमतः परं भयानकं स्यात्," भयानक रस की यह योजना सीता के कष्टों को अति वेदनापूर्ण बना देती है। पग-पग पर सामाजिक सीता की करुणादशा पर विकल हो जाती है।

तृतीय अंक में राम दण्डकारण्य में शाम्बूक वध के लिए जाते हैं। वासन्ती उनको अतीत की वेदनापूर्ण स्मृतियाँ दिलाकर करुणरस के मार्मिक चित्र उपस्थित करती है। विरह के दिनों में राम इन स्मृतियों के अन्तराल में अति कातर हो जाते हैं।

एक सुकुमार स्मृति की योजना यहाँ अवलोकनीय है।

"हे देव, देखिए यह वही लताकुंज है जिसके द्वार पर खड़े-खड़े आप सीता की बाट जोह रहे थे और सीता गोदावरी के तट पर देर तक हंसों के साथ क्रीड़ा करती हुई मनोविनोद कर रही थीं। थोड़ी देर पश्चात जब लौटकर सीता ने आप को कुछ उदास देखा तो अत्यन्त कातर भाव से उन्होंने कमल की कलियों के समान अपनी अंगुलियों को जोड़ कर विलम्ब के लिए क्षमा याचना करते हुए आपको प्रणाम किया था।[1]"

इस मार्मिक प्रसंग की दारुण अनुभूति राम के लिए असह्य हो गई होगी, यह निश्चित है।

इसी अंक में कवि ने छाया सीता की एक मनोवैज्ञानिक योजना की है। सीता अदृष्य हैं तथा इसी रूप में वह नियोजित सम्पूर्ण कार्यो को करती हैं। इस योजना

---

१. अस्मिन्नेव लतागृहे त्वमभवस्तन्मार्गदत्तेक्षणः
सा हंसैः कृत कौतुका चिरमभूदगोदावरी सैकते।
आयन्त्या परिदुर्मनायितमिव त्वां वीक्ष्य बद्धस्तया
कातर्यादरविनदकुड्मलनिभो मुगधः प्रणामांजलिः॥ —उ० रा० ३।३७

द्वारा राम और सीता की आत्यंतिक विरहानुभूति का उद्घाटन सम्भव हो सका है। विषम विरह से संतप्त सीता राम के उत्कृष्ट पत्नी-प्रेम के दर्शन भी करती हैं जिसका उनको गर्व है।

इस अंक को विरह व्यथा का संघात कहना चाहिए जिसके अन्तर्गत मूर्च्छा तथा अचेतन दशा किंचित काल के लिए पात्रों एवं सामाजिक के हित में पटाक्षेप का काम करती हैं। हृदय के मार्मिक भावों के आधार पर प्रेयसी को मूर्तिमान देखना, प्रबल अश्रुप्रवाह से प्रेम को सींचना तथा कर्त्तव्य की विवशता के समक्ष व्यक्तित्व की मर्मस्पर्शी वेदना, इस अंक की विशेषताएँ हैं जिनके फलस्वरूप इस अंक में करुणरस का चरमोत्कर्ष संभव हो सका है।

सीता की मनोदशा का एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन इस प्रसंग में अवलोकनीय है—

तमसा कहती हैं—"हे बेटी इस समय तुम्हारा हृदय पुनः समागम की आशा न रह जाने से उपेक्षामय, अकारण परित्याग से विषादपूर्ण, दीर्घ वियोग में अचानक भेंट हो जाने से नितान्त स्तब्ध, राम के सहज सौजन्य से प्रसन्न, प्रिय के विलापों के कारण अत्यन्त शोकाकुल तथा निरतिशय प्रेम के कारण सर्वथा द्रवीभूत सा हो रहा है।"[1]

इसी अंक में रावणजटायुस्मृति-प्रसंग में वीभत्स रस का प्रकटीकरण हुआ है। खच्चर की हड्डियाँ पड़ी दिखलाई दे रही हैं। यह वीभत्स की संकेतमात्र योजना कही जा सकती है। एक क्षण को वीभत्स की ओर उन्मुख सामाजिक पुनः करुण रस की धारा में अवगाहन करने लगता है।

चतुर्थ अंक में सीता को मृत मानकर जननी कौशल्या तथा जनक विलाप करते है। लव का सम्पर्क उनकी व्यथा को और भी गंभीर बना देता है। भाँति-भाँति की मर्मस्पर्शी कल्पनाएँ उनके मानस में (सीता के सम्वन्ध में) उठती हैं जिनको कवि स्वयं पाठकों के लिए छोड़ देता है।

इसी अंक में दो तपसी बालकों का संक्षिप्त प्रसंग विष्कम्भक के अन्तर्गत प्रहसन की योजना करता है। यह प्रहसन भी अपनी पृथक् सत्ता न रखते हुए नाटक की मूल धारा में ही विलीन दृष्टिगोचर होता है।

वीर रस का प्रकटीकरण भी इस अंक में लव के वीरोचित उद्गारों में हुआ है। वह कहते हैं—

"दो दाँतों के समान अति घोर धनुष्टंकार हो रही है, जिह्वा के समान चाप से

---

१. तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशाद्
वियोगे दीर्घेऽस्मिञ्झटिति घटनोत्तम्भितमिव
प्रसन्नं सौजन्याद्दयितकरुणैर्गाढकरुणं
द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन्क्षण इव। —उ० रा० ३/१३

ज्या लग रही है। संसार को भक्षण करने के लिए जब काल अपना मुख खोलता है आज मेरी यह सेना उसी काल की छवि धारण किए हुए है।"[1] कहना न होगा कि यह वीर गर्वोक्ति भ्रातृ-द्रोह की दृष्टि से अति करुणापूर्ण है।

पाँचवे अंक में वीर और रौद्र रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है किन्तु चन्द्रकेतु तथा लव दोनों भाइयों का एक दूसरे को न पहिचानते हुए युद्ध करना ही सामाजिक की अनुभूति के लिए कितना वेदनाजनक है, यह स्पष्ट है।

षष्ठ अंक के अन्तर्गत श्री रामचन्द्र जी विमान से उतर कर लव और चन्द्रकेतु के युद्ध को शान्त कराते हैं। वीर एवं रौद्र दोनों रसों का करुण में पर्यवसान हो जाता है जब राम अपने पुत्रों को न पहिचानते हुए स्वाभाविक स्नेह के फलस्वरूप दोनों को हृदय से लगा लेते हैं। उनकी मुखछवि में सीता सौन्दर्य की अनुकृति, जृम्भक शस्त्र की सहज सिद्धि तथा इन बालकों की स्वाभाविक शालीनता राम के उद्वेग का कारण बन जाती हैं। वह सीता की गर्भभारालसा अवस्था का स्मरण कर अति कातर तथा इन बालकों का परिचय प्राप्त करने के लिए अति आतुर हो जाते हैं।

सप्तम अंक में गर्भांक नाटक की योजना नाटक को सुखान्त बनाने का कवि का सफल प्रयास है। इस गर्भांक नाटक के प्रारम्भ में ही घोषित कर दिया जाता है कि यह अद्भुत एवं करुण रस का नाटक है। सीता का मिलन एक अद्भुत रहस्य है जो इस सुखान्त योजना में भी अति मार्मिक एवं करुणापूर्ण बन जाता है। इस नाटक को देखते हुए राम की दशा गंभीर शोक एवं आत्म ग्लानि के कारण अति चिन्ताजनक हो जाती है। सीता के स्पर्श द्वारा उनकी प्राण रक्षा की जाती है तथा इस प्रकार राम सीता का मिलन होता है।[2] यह मिलन स्पष्टतया करुण के चरमोत्कर्ष के रूप में प्रकट होकर रस की उत्कृष्ट अभिव्यंजना करने में सफल होता है।

इस प्रकार भवभूति अपनी कला-कुशलता द्वारा रसऐक्य की प्रतिष्ठा तथा सम्पुष्टि करते हैं। उनके इस प्रयास के लिए करुण रस निश्चित रूप से उपयुक्त रस सिद्ध हुआ जिसमें अन्य सब रसों का समावेश संभव हो सका।

नाटक की दृष्टि से पात्रगत घटनाएँ न्यून तथा अपर्याप्त प्रतीत होती हैं किन्तु अन्तर्द्वन्द्वों के सफल चित्रण की दृष्टि से नाटक मनोविज्ञान की सिद्धान्त पुस्तिका कहा

---

१. ज्या जिह्वा वलयितोत्कटकोटि दंष्ट्र
मुद्भूरिघोर घनघर्घर घोषमेतत्
ग्रास प्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्रजृम्भाविडम्बि विकटोदरमस्तु चापम्"।
—उ० रा० ४/२९

२. क्या ही अच्छा होता यदि कवि सीता-मिलन की सुखद योजना को स्थायी रूप देता। सीता के पृथ्वी-प्रवेश प्रसंग को कथा वस्तु से निकाल कर सीता को जीवित रहने देता तथा संभोग शृंगार के सुन्दर चित्र प्रस्तुत कर के नाटक को वास्तव में सुखान्त बना देता है।

जा सकता है, रसऐक्य की प्रतिष्ठा एवं सम्पुष्टि जिसका उद्देश्य है।

संस्कृत साहित्य के प्रमुख रामकथाकारों के करुण प्रसंगों का अध्ययन कर लेने के पश्चात् सहज ही निम्नलिखित परिणामों पर पहुँच सकते है—

दृष्टिकोणगत—१. भगवान् राम के नर और नारायण दोनों रूपों के प्रति कवियों की श्रद्धा प्रकट हुई है। वाल्मीकि नर रूप की प्रतिष्ठा करते हैं तो अध्यात्म रामायण में भगवान् के नारायण रूप की ही प्रमुखता है। साथ ही बाल्मीकि ने लोक-मर्यादा तथा लोकलाज को कथावस्तु का फल रखा है तो लोकनिन्दा और लोकपवाद के क्रोड़ में भवभूति की नारी भावना समाज के लिए प्रश्न बन जाती है। सीता निर्वासन एक कर्त्तव्य-आहत पति का अतिकार्य है जिसका समाधान कठिन हो जाता है।

विषयगत—१. वाल्मीकि ने कथा का सविस्तर वर्णन किया है। उनके सफल प्रयास ने अन्य कवियों की यशलालसा के लिए अवसर छोड़े है। इसीलिए अन्य कृतियों में कथा का स्वरूप संक्षिप्त प्राप्त होता है अथवा मूल कथा के उत्तरांश पर ही कार्य किया गया है।

२. इष्टनाश अथवा प्रियवियोग ही करुणरस के मुख्य आलंबन रहे हैं।

३. विपक्षी पात्रों के साथ आदि कवि की पूर्ण सहानुभूति रही है। उनकी शोकानुभूति का भी समकक्ष रूप में विस्तार सहित वर्णन किया गया है।

४. कथा वस्तु में करुणरस के प्रसंगों की विभिन्न स्थितियाँ प्रकट की गई हैं जिनके संदर्भ में करुण की चरम अभिव्यक्ति मरण की सकारणता सिद्ध हो जाती है। बाल्मीकि ने विशेष रूप से यह प्रयत्न किया है तथा महारांज दशरथ की मृत्यु के लिए विभिन्न स्थितियों की योजना की है।

५. बाल्मीकि कथावस्तु में करुणरस के ऐसे प्रसंग भी आ गये हैं जिनमें त्रास और भय की योजना हुई है। ऐसे प्रसंगों का अनुकरण हिन्दी-काव्यों में नहीं हुआ है।

अभिव्यक्तिगत—१. करुणरस के प्रसंगो में ऊहात्मक कटूक्तियों के स्थान में सहज एवं स्वाभाविक भावों, उक्तियों तथा व्यंग्य एवं कटूक्तियों का भी सहारा लिया गया है। अभिव्यक्ति प्रत्येक स्थल पर अति मार्मिक बन पड़ी है।

२. प्रियवियोग के अन्तर्गत चराचर जगत् से सहानुभूति प्रकट की गई है मानवीकरण का प्रयोग हुआ है। भवभूति की छाया सीता मानवीकरण तथा कल्पना, की अद्वितीय रचना है।

३. शोकानुभूति के विश्लेषण तथा विकास की ओर विशेष ध्यान दिया गया है तथा मनोविज्ञान के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्वों का उद्घाटन किया गया है, आत्मग्लानि, परिताप, एवं आत्मनिन्दा के प्रसंग मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित होने के कारण अति मर्मस्पर्शी बन गये हैं।

४. महर्षि बाल्मीकि की करुणा की मार्मिक अनुभूति का प्रतीक "कुररी का विलाप" है। अध्यात्म में "भूमिपतन" तथा भवभूमि के 'उत्तर रामचरित' में भाव संघातों की योजना विशेष रूप से अवलोकनीय है।

५. इष्टनाश के साथ भविष्य की चिन्ता, आश्रम की असहायावस्था तथा यथा-स्थान आलंबन की महत्ता के समक्ष अन्य इष्टजनों की लघुता तथा उनकी उपेक्षा प्रकट हुई है।

अपभ्रंश साहित्यगत रामकथा में करुणरस की परम्परा

अपभ्रंश साहित्य के अन्तर्गत स्वयंभू कवि के 'पउमचरिउ' में रामकथा का वर्णन हुआ है। यह एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। करुणरस की परम्पराओं के विश्लेषण की दृष्टि से यह ग्रन्थ और भी महत्वपूर्ण है। हिन्दी रामकथागत करुणरस की प्रायः परम्पराओं का मूलस्रोत संस्कृत रामकथा तथा अपभ्रंश रामकथा में खोजना असंगत न होगा। इसी दृष्टि से यहाँ अपभ्रंश साहित्यगत रामकथा की पात्रगत एवं वर्णनगत (करुणरस की) परम्पराओं का अध्ययन किया जा रहा है।

पात्रगत परम्परा—पात्रगत परम्परा के अन्तर्गत शोकानुभूति का निम्नलिखित दो रूपों में प्रकाशन हुआ है—

अ—आलंबन की क्षति का प्रभाव।

आ—आलंबन के लिये आश्रयादि की शोकानुभूति।

आलंबन की क्षति के प्रभाव के अन्तर्गत निम्नलिखित चार तथ्यों पर विशेष प्रकाश पड़ता है।

अ—अपार दुःख के कारण प्रकृति के सहज व्यापारों की सहेतुक कल्पना।

आ—आलंबन की क्षतिपूर्ति का असंभव समझा जाना।

इ—आलंबन की क्षति के दुःख का आत्यंतिक रूप में प्रकाशन।

ई—आलंबन से संबन्धित सभी वस्तुओं को विनष्टप्राय समझना।

अपारदुःख के कारण प्रकृति के सहज व्यापारों की सहेतुक कल्पना—मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस प्रकार की कल्पना अति स्वाभाविक है, मानवमानस अपने भावों के अनुकूल शेष प्रकृति को रंगने में सदा से सिद्धहस्त है। इस काल में भी यह प्रवृति काव्य का विशेष अंग बनी हुई थी।

आलंबन की क्षति के कारण ही—

"णं सखर बहु अंसु जलोल्लिय"—मानों सरोवर अश्रुजल पूरित है।

"णं उण्हविय दवग्गि विऊएँ"—मानों उषा वियोग की दावाग्नि है।

"णं अप्थविउ दिवायर दुक्खें"—मानो दिवाकर (इस महान दुःख के कारण ही) अस्त हो चला है।

लक्ष्मण शक्ति पर भरत का निम्नलिखित विलाप भी अति व्यापक रूप में प्रकट हुआ है—

---

१. राहुल सांकृत्यायन की "हिन्दी काव्यधारा" किताबमहल प्रकाशन के आधार पर।

"दुक्खा उरु धाहा वणह लग्गु । पुण्णक्खइ हरि' व मुयंतु सग्गु ।
घत्ता ! हा पइ सोमिति ! मरंतएण, मरइ णिरुत्तउ दासरहि ।
भत्तार-विहूणिय णारि जिह, अज्जु शणाहीहूय महि ॥
हा भायर ! एक्कसि देहि वाय । हा पइ विणु जइसिरि-विहव जाय ।
हा भायर ! महु सिरि पडिय गयणु ।
हा हियउ फुट्टु दक्खहि वयणु ।
हा भायर ! महुयर-महुर-वाणि ! महु णिवडिऊ-सि दाहिणउ पाणि ।
हा ! किं समुद्दु जल-णिवहु खुट्टु । हा! किह दिट्ठु कुम्भकडाहु फुट्टु
हा ! किह सुरवइ लच्छिएँ विमुक्कु । हा ! किह जमरायहोमरणु ढुक्कु ।
हा ! किह दिणयरु कर-णियरु चत्तु । हा ! किह अणंघु दोहगघु पत्तु ।
हा ! चंचल हूयउ केम मेरु हा । केम जाउ णिद्धणु कुवेरु ।
धत्ता । हा ! णिब्बिसु किह धरणेंदु थिउ, णिप्पहु ससि-सिहि सीयलउ ।
टलटलि हुई केम महि, केम समीरणु णिब्वलउ ॥

—(पउमचरिउ, रामायण) ६९/१०—११

आलंबन की क्षतिपूर्ति का असंभव समझा जाना—विशेष कर सहोदर भ्रात की क्षतिपूर्ति असंभव समझी गई । स्त्री पुत्रादि के मरने पर दूसरा विवाह हो जाने अथवा दूसरे पुत्र के जन्म लेने से क्षतिपूर्ति संभव समझी गई । भाई की क्षतिपूर्ति की असंभावना के सम्बन्ध में लक्ष्मण-शक्ति का उदाहरण यहाँ लिया जा सकता है ।

"लब्भइ रयणायरें रयण-खाणि ।
लब्भइ कोइल-कुले यहुर-वाणि ।
लब्भइ चंदणु-सिरि मलय-सिंगे ।
लब्भइ सुहवत्तणु जुवइ अंगें ।
गय-मोत्तिउ सिंघलदीवें मणि,
वइ रागरहो वज्ज पउरु ।
आयइ सव्वइ लब्भंति जइ,
णवर ण लब्भइ भाइवरु ॥"

—(पउमचरिउ रामायण) ६९/१०—१२

आलंबन की क्षति के दुःख का आत्यंतिक रूप में प्रकाशन—विवश एवं असहाय परिस्थितियों के अन्तर्गत आलंबन की क्षति के दुःख का आत्यंतिक रूप में प्रकाशन अति स्वाभाविक है । इष्ट नाश के भी दारुण अन्य दुःख मानव ने सहे हों किन्तु तत्कालीन परिस्थिति में उसको वह दुःख महान प्रतीत होता है । इसका मुल्य कारण यही है कि उस समय उसके पास तुलनात्मक अनुभूति का कोई स्थूल आधार नहीं होता । वह आत्यंतिक एवं एकांतिक रूप में एक अनुभूति से प्रभावित रहता है । अतएव उसको उससे अधिक दारुण दुःख की कल्पना ही नहीं हो पाती ।

आलंबन की क्षतिगत दुःख एवं शोक को आत्यंतिक रूप में प्रकट करने के लिए अन्य दारुण अतियों की कल्पना की गई और उन सब को वर्तमान दुःख से कम प्रभावशाली बताया गया। भाई के दुःख को अत्यन्त असह्य प्रकट करते हुए कहा गया—चाहे दूसरे राजा का शासन हो जाय, चाहे कालकूट विष-भक्षण करना पड़े, चाहे वज्रासन पर सिर रखना पड़े—चाहे नरक का दुःख भी आ जाय किन्तु भाई के वियोग-दुःख के समान ये दुःख नहीं हो सकते।

आलंबन से संबंधित सभी वस्तुओं को विनष्टप्रायः समझना—आलंबन पर आश्रित एवं आधारित होने के कारण आलंबन से संबंधित सभी वस्तुओं को आलंबन-क्षति के समय विनष्टप्रायः समझना अति स्वाभाविक है। रावणमृत्यु पर विभीषण-प्रलाप में इस प्रवृति के दर्शन होते हैं।

विभीषण कहता है, "तुम अस्त नहीं हुए प्रत्युत सारा वंश अस्त हो गया, तुम नहीं जीवित थे प्रत्युत त्रिभुवन जीवित था, तुम नहीं मरे बंदीजन मर गए, तुम्हारा मुकुट भंग नहीं हुआ प्रत्युत गिरि कंदरा भंग हो गई। तुम्हारी दृष्टि नष्ट नहीं हुई प्रत्युत लंकापुरी नष्ट हो गई, तुम्हारी वाणी नष्ट नहीं हुई प्रत्युत मंदोदरी नष्ट हो गई, तुम्हारा हार नहीं टूटा प्रत्युत तारागण टूट गए, तुम्हारा हृदय नहीं बिंधा प्रत्युत आकाश बिंध गया, तुम्हारी आयु समाप्त नही हुई प्रत्युत समुद्र समाप्त हो गया।"[1]

आलंबन के लिए अन्य पात्रों की शोकानुभूति—निम्न रूपों में प्रकट हुई है—

अ—पात्र की अनुभावदशागत।

आ—पात्र की अनुभूति-गांभीर्य के अन्तर्गत प्रकृति में मानवीकरण की प्रवृति।

इ—आलंबन की क्षति में आलम्बन के अभाव की अनुभूति।

ई—आलम्बन के गुणकथन द्वारा शोक प्रकाशन।

पात्र की अनुभावदशागत—पात्र की अनुभावदशागत शोकानुभूति के अन्तर्गत प्रायः कवियों की रुचि स्वाभाविकता की ओर रही है। शोकानुभूति प्रकट करने के लिए एक दो स्थलों पर एक विशेष अनुभाव "एक हाथ उठाना" का वर्णन हुआ है।

लक्ष्मण शक्ति का समाचार प्राप्त कर अयोध्या के अन्तःपुर के भृत्यगण हाथ उठाकर रो रहे है ! रावण मृत्यु पर मन्दोदरी भी हाथ उठाकर दहाड़ मारती हुई वर्णन की गई है।

---

१. "रुअइविहीसणु सोयक्कमियउ। तुहु ण' त्थमिउ वंसु अत्थमियउ।
तुहु ण जिऊसि सयलु जिउ तिहुयणु। तुहु ण मुऊसि मुयउ वंदिज्जणु।
दिट्ठ ण णट्ठ णट्ठ लंकाउरि। वयण ण णट्ठ णट्ठ मन्दोयरि।
हारु ण तुट्टु तुट्टु तारायणु। हियण ण भिण्णु भिण्णु गयणंगणु।
....
नीय ण आणिय आणिय जमउरि। हरि-वश कुद्ध कुद्ध णं केसरि।"
—(पउमचरिउ रामायण) ७६/३

यद्यपि शोकप्रदर्शन की यह प्रथा इस समय दिखलाई नहीं देती किन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह अस्वाभाविक भी प्रतीत नहीं होती। आर्तक्रन्दन के समय अचेतन वासना के फलस्वरूप सहायतार्थ पुकारने के लिए हाथ का उठ जाना स्वाभाविक है।

अश्रु मोचन—अनुभावदशागत प्रसंग में अश्रुमोचन विशेष महत्वपूर्ण माना गया है। इसका प्रायः स्थलों पर विस्तृत वर्णन हुआ है। शोकसंतप्त प्रत्येक पात्र का पृथक्-पृथक् अश्रु मोचन दिखलाया गया है। इस रीति से अवश्य ही करुणरस की अभिव्यक्ति में मार्मिकता तथा गम्भीरता आ जाती है। संभवतः इसी दृष्टि से इस रीति का अनुसरण निम्नलिखित प्रसंगों में किया गया है—

"अन्तःपुर के भृत्यु रो रहे हैं, सुमित्रा रो रही है, कौशल्या रो रही हैं आदि आदि···"[1]

अश्रु मोचन तथा विलाप के साथ मूर्च्छा का प्रसंग आ जाता है। निम्नलिखित प्रसंग उदाहरणस्वरूप यहाँ देखे जा सकते हैं—

"मंदोदरी दशानन की अवस्था देखकर "हा हा स्वामी" कहती हुई पृथ्वी पर निश्चेत होकर गिर पड़ी।"

"रामलक्षण के वनगमन समाचार को सुनकर दशरथ वज्राहत के समान मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।"

"लक्ष्मण के शोक से संतप्त रघुनन्दन मूर्च्छित हो गए।"

विलाप और मूर्च्छा के अतिरिक्त शोकसंतप्त स्त्री का खुले केश होना, शरीर की अस्तव्यस्त दशा, उद्भ्रान्त होकर गिरना, वैधव्य के फलस्वरूप नूपुर-हार का छिपाना, चंदनादिक का मिटाना, वियोग में दीर्घ श्वासप्रश्वास लेना, काँपना, ऊँगली चटकाना, सिर कूटना, छाती पीटना, बाल नोंचना आदि आदि अनुभावों का वर्णन हुआ है। उदाहरणस्वरूप यहाँ एक दो प्रसंग देख लेना उचित होगा।

वनवास प्रसंग में राममाता खुले केश वर्णन की गई हैं। रावणमृत्यु पर मंदोदरी के केश खुले हैं।[2] शरीर अस्तव्यस्त है, हड़बड़ाती हुई, उद्भ्रांत गिरती पड़ती, हाथ उठा

---

१. "रोवइ मिच्चयणु समुद्द-हत्थु। णं कमल-संडु हिम-पवण-घत्थु।
····················
रोवइ अवरा इव रामजणणि। केक्कय दाइय तरु-मूल-खणणि।
रोवइ सुप्पह विच्छाय जाय। रोवइ सुमित्त सोमित्ति-माय।
हा पुत पुत! केत्तहि गउसि। किह सत्तिएँ वच्छत्थले हउसि।"
—पउमचरिउ रामायण—६९/१३

२. "मोक्कल—केस विसंठुल-गत्तउ। विहडप्फडु णिवडंतु'ट्ठंतउ।
उद्ध-हत्थु उद्धाहावंतउ। अंसु-जलेण वसुह सिंचंतउ।
णेऊर-हार-डोर गुप्पंतउ। चंदण-छड-कछ में खुप्पंतउ।
पीण-पऊहर-भारक्कंतउ। कज्जल-जल-मल मइलिज्जंतउ।"
—पउमचारिउ रामायण ७६/४-५

कर दहाड़ मारती हुई, आँसुओं को बहाती तथा वसुंधरा को सींचती हुई, नूपुरहार छिपाती हुई, चंदनादि को मिटाती हुई, पुष्ट पयोधरों के भार से दबी हुई, कज्जल-मिश्रित मलिन अश्रुजल से मलिन छवि हुई शोक प्रकट कर रही है।

इस वर्णन में कवि का सूक्ष्म निरीक्षण विशेषरूप से अवलोकनीय है। चन्दनादि लेपों का मिटाना, नूपुर आदि आभूषणों का छिपाना तत्कालीन समाज में विधवा के लिए अनुपालनीय था—यह स्पष्ट है।

सन्देशरासक के अन्तर्गत एक नायिका का वियोग वर्णन भी इसीप्रकार अनुभावों से भरपूर है।

"वह दीर्घ श्वासप्रश्वास ले रही है। वह सलिलसम्भववदनी हो गई है, उँगलियों को चटका रही है, कदली जैसे वायु से काँपती है उसी प्रकार काँप रही है।"

अनुभूति की गंभीरता में प्रकृति में मानवीकरण की प्रवृति तथा प्रकृति के रूपों में आलंबन की भ्रांति—मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह प्रवृति अति स्वाभाविक है। करुणरस के अन्तर्गत चेतन-अचेतन का यह अभेद रस की गंभीरता तथा प्रभावशीलता का द्योतक कहा जा सकता है। इष्ट के सम्पर्क में आने वाली वस्तुएँ उसके अभाव में बोलती हुई सी प्रतीत होती है। जिन स्थानों पर वह उठा बैठा करता था वह स्थान उसकी स्मृति दिलाने में सजीव दिखलाई देते हैं। इन स्थानों पर प्रिय का आभास स्वाभाविकरूप में प्रतीत होता है।

सीताहरण से अवसर पर राम की शोकानुभूति के अन्तर्गत यह प्रवृति निम्न रूप में देखी जा सकती है—

राम कहीं कमल को देखते हैं तो कमलनयना को समझ लेते हैं; कहीं अशोक की लता को हिलता हुआ देखकर उनको ऐसा प्रतीत होता है मानो सीता की बाँह हिल रही हो (अथवा कवि को कहना चाहिए था—मानों सीता बुला रही है) इसी प्रसंग में राम का यह रूप तुलसी की कला में भी प्रकट हुआ है तथा इस प्रकार इस परम्परा का परिपालन आगे भी प्रगतिशील रहा।

आलम्बन की क्षति में आलम्बन के अभाव की अनुभूति—स्वार्थ के वन्धनों के अन्तर्गत आलम्बन का अभाव शोकानुभूति को दारुण बना देता है। 'उसके अभाव में उसके बिना कैसे काम चलेगा'—इस प्रकार की स्वाभाविक चिन्ता मानस को घेर लेती है तथा उसका अभाव शोक को द्विगुणित दारुण बना देता है—

मंदोदरी विलाप[1] के अन्तर्गत यह प्रवृत्ति प्रतिलक्षित हुई हैं—

"तुम्हारे बिना अब समरतूर्य कौन बजावेगा, तुम्हारे बिना मन्त्रशक्ति का कौन आराधन करेगा, तुम्हारे बिना तलवार कौन धारण करेगा, तुम्हारे बिना कौन कुबेर का भंजन करेगा, तुम्हारे बिना तीनों लोक किसके वश में होंगे, तुम्हारे बिना मुझे पुष्पक विमान पर बैठाकर मरु शिखर पर स्थिति जैन मंदिर के हाथ जोड़ने का अवसर कौन दिलावेगा, · ···मैं तुम्हारा आलिगन स्मरण करती हूँ,····· शयनभवन के नखक्षत स्मरण करती हूँ।"

आलम्बन के गुणकथन द्वारा शोक प्रकाशन—इस रीति का इस काल में विशेष प्रचार था। किन्हीं अंशों में यह प्रवृत्ति मनोवैज्ञानिक भी है। यकायक किसी अशुभ समाचार को सुनकर मनुष्य स्तम्भित हो जाता है तथा इस समाचार की पुष्टि के लिए पर्याय गुणों का वर्णन करते हुए तथ्यातथ्य का निराकरण करता है। गुणकथन की एक लम्बी सूची इस वैज्ञानिक तथ्य की ओर एक संकेत समझी जा सकती है।

लक्ष्मण शक्ति पर राम, भरत, सुमित्रा सभी विलाप करते हैं तथा प्रत्येक विलाप में गुणकथन की यह प्रवृत्ति प्रतिलक्षित होती है। रावण मृत्यु पर मंदोदरी विलाप तथा कुम्भकरण मृत्यु पर रावण विलाप में भी यह प्रवृत्ति प्रकट हुई है। यहाँ एक दो उदाहरण प्रस्तुत कर देना उचित होगा।

लक्ष्मण-शक्ति पर राम-विलाप

"हा लक्खण-कुमार ! एक्कोयर ।
हा भछिय उविंद दामोदर ।
हा माहव ! महुमह महुसूयण ।
हा हरि - कण्ह - विण्हु - पारायणं ।
हा केसव ! अनंत - लच्छी-हर ।
हा गोविंद ! जणछण - महिहर ।।"

---

१. रोवइ लंकापुर-परमेसरि। हा रावण ! तिहुयण-जण-केसरि।
पइ विणु समर तूरु-कहों वज्जइ। पइ विणु वालकील कहों छज्जइ।
पइ विणु णावगह-एक्कीकरणउ। को परिहेसइ कंठाहरणउ ।
पइ विणु को विज्जा आराहइ। पइं विणु चंद-हासु को साहइ।
को गंधव्व-वापि आडोहइ। कण्णहों छवि-सहासु संखोहइ।
पइ विणु को कुवेरु भंजेसइ। तिजग-विहुसणु कहों बसे होसइ -
घत्ता। सामिय पइं भविएण विणु, पुप्फविमाणे चडेंवि गुरुभत्तिएँ।
मेरु-सिहरें जिण-मंदिरइँ, को मइ णेसइ वंदण-हत्तिए ।।
सयण-भवणें णहणियर-वियारणु। सुमरमि लीला-पंकय-ताडणु ।।
पउमचरिउ—रामा० ७६/८,६/१०

"हा अरि - दमरण ! मडप्फर - भंजरण ।
हा जिय - पोम सोम - मरण - रंजरण ।
....

हा खर - दूसरण - वलमुसुमूररण !
हा सुग्गीव - मरणोरह - पूरण !
हा हा मोडिसिला - संचालरण !
हा हा मयर - हरो उत्तारण ॥"
(रामायरण—६७/२, ३)

कुम्भकररण-मृत्यु पर रावरण-विलाप

"हा कुम्भयण्ण ! एक्कोयर। हा हा मय-मारिच्च-सहोयर ।
हा इंदह हा तोयदवाहरण। हा जमहट अरिणट्ठिय-साहरण ।"
(रामायरण—६७/६)

वर्णनगत् परम्परा के अन्तर्गत निम्न प्रवृत्तियाँ विशेषरूप से प्रतिलक्षित होती हैं—

अ—वर्णनविशदता की ओर प्रायः कवियों की रुचि रही है। शोकानुभूति के अन्तर्गत यदि आलंबन की क्षति का प्रभाव दिखलाया गया तो एक लम्बी सूची दे दी गई। इसी प्रकार यदि आलम्बन के अभाव में आलम्बन से संबंधित वस्तुओं की नष्टप्राय दशा का वर्णन किया गया तो एक दूसरी सूची प्रस्तुत कर दी गई।

आ—वर्णन में स्वाभाविकता तथा सरलता की ओर कवि की दृष्टि रही। यद्यपि इन कवियों का ध्यान मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की ओर न था तथापि इनके सरल एवं स्वाभाविक वर्णन मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित हैं।

इ—शोकाभिव्यंजना के अन्तर्गत विशेषकर विरह का ही वर्णन हुआ है तथा विरहवेदना के अन्तर्गत आध्यात्मिक विरह के प्रसंग प्रायः प्रत्येक कवि के वर्णन में मिलते हैं। तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों के अन्तर्गत रहस्यानुभूति का विशेषरूप में उद्घाटन हुआ है।

ई—शोकानुभूति के क्रमिक विकास की ओर एक दो स्थलों पर संकेत हुआ है।

अन्य प्रसंग—दरिद्रता, दुर्भिक्ष आदि ऐसे प्रसंग हैं जिन पर कवियों ने इतिवृतिरूप में प्रकाश डाला है। किसी प्रसंग में भी शोकानुभूति की अभिव्यंजना सम्भव न हो सकी।

उपर्युक्त संक्षिप्त परिचय के आधार पर कहा जा सकता है कि अपभ्रंश साहित्य में करुणरस के सभी रूपों की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। करुणरस के सभी आलम्बनों की ओर कवियों का ध्यान गया था। इस सम्बन्ध में एक रेखाचित्र निम्न रूप में दिया जा सकता है—

अपभ्रंश साहित्यगत करुणरस की परम्पराओं का विश्लेषण—

शोकानुभूति

पात्रगत—१—आलंबन के प्रभावगत् ।
- अ—प्रकृति के सहज व्यापारों में सहेतुक कल्पना ।
- आ—क्षतिपूर्ति असंभव ।
- इ—क्षति का दुःख आत्यंतिक ।
- ई—आलम्बन से संबंधित सभी वस्तुएँ नष्टप्राय ।

२—आलंबन के लिए अनुभूति ।
- अ—अनुभावगत ।
- आ—प्रकृति में मानवीकरण ।
- इ—अभावानुभूति ।
- ई—गुणकथन ।

वर्णनगत—विशदता, स्वाभाविकता, शोकानुभूति का विकास, रहस्य भावना ।

अन्य प्रसंग—दरिद्रता, दुर्भिक्ष ।

चारण काल में करुणरस

वीरगाथा या चारण काल जैसा कि इस काल के नाम से प्रकट है, वीर गाथाओं एवं वीर रस की अभिव्यक्ति के लिए प्रसिद्ध है । आजकल की मृगया की भांति उन दिनों युद्ध वीरों के मनोरंजन का ही विषय था । युयुत्सा जीवन की आदर्श कामना समझी जाती थी । यद्यपि युद्ध की विभीषिका के फलस्वरूप इस काल में रौद्र की प्रतिक्रिया के रूप में करुण के लिए बहुत क्षेत्र उपलब्ध था किन्तु जनकवि के अभाव में उन कारुणिक दृश्यों को देखने का अवकाश राजकवि को न था । राजकवि का कर्तव्य प्रजारंजन न होकर प्रजापालक का रंजन था । अतएव वे विजय के साथ हर्ष-उल्लास प्रदर्शित करते रहे । अशोक की भाँति युद्ध की विभीषिका, हताहतों के करुण चीत्कार, अनाथ अबलाओं और बिलखते दुधमुँहे बच्चों की मर्मभेदी पुकारों को सुनकर उनका भी हृदय द्रवित हो सकता था, किन्तु ऐसा न हुआ ।

यही क्यों, स्वयं आश्रयदाता राजाओं की पराजय एवं यातना में भी ये राज-कवि करुण के गीत न गा सके । पृथ्वीराज के कारावास-जीवन को दिवास्वप्नों में अथवा भूतकालीन वैभव के पुनराख्यान में चित्रित करना ही श्रेयस्कर समझा गया । करुण की अभिव्यक्ति के साथ आश्रयदाताओं के दुर्बल पक्ष का उद्घाटन होता जिसको चित्रित करने का किसी कवि में साहस न था ।

इस प्रकार वीरगाथा काल में करुणरस के अनुकूल मृत्यु एवं अनिष्ट की परिस्थितियाँ एवं वातावरण के होते हुए भी करुणरस के प्रति कम ध्यान दिया गया प्रायः प्रसंग ऊर्जस्वीकृत होकर करुणरस के क्षेत्र से दूर जा पड़े । फलस्वरूप कहीं-कहीं

रसाभास के रूप में अथवा आभास-मात्र रूप में करुण के दर्शन हो सके जो करुण की मूलधारा में न तो उल्लेखनीय हैं न कोई योग ही देते हैं।

रामकथा की पृष्ठभूमि में करुणरस—वाल्मीकि रामायण के प्रारम्भ में बालकाण्ड के अन्तर्गत राम-कथा तथा राम-काव्य के सृजन की प्रेरणा महर्षि वाल्मीकि को निम्नलिखित प्रसंग में प्राप्त होती है। महर्षि गंगा स्नान के लिये जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने देखा कि उनके सामने ही क्रौंच-युग्म में से नर क्रौंच को किसी बधिक ने बाण से मार डाला। उस क्रौंच पक्षी की मादा अपने नर को रक्त से सना हुआ देख तथा पृथ्वी पर छटपटाते देख कर करुण स्वर से विलाप करने लगी। वह क्रौंची उस लाल चोटी वाले काममत और संभोग के लिए पर फैलाए हुए नर से विहीन हो गई। इस दृश्य को देखकर धर्मात्मा महर्षि को अति करुणा आई और उसके मुख से निम्नलिखित शब्द फूट पड़े मानो उनका शोक ही श्लोक बन गया हो।[1]

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।"

स्वस्थ होकर महर्षि ने अपने शिष्यों से कहा—यह श्लोक हमारे शोक के कारण मुखरित हुआ है। इसमें चार पद हैं, प्रत्येक पाद में समान अक्षर हैं। वीणा पर भी यह गाया जा सकता है। अतएव यह हमारे यश का कारण हो।[2]

इसके पश्चात महर्षि के आश्रम में ब्रह्मा जी आए। ब्रह्मा जी को सम्मानपूर्वक बिठा कर महर्षि ने आसन ग्रहण किया। उस समय भी महर्षि को वही प्रसंग—दुष्ट बहेलिए ने काम संमोहित पक्षी का वध कर डाला। वह उस दृश्य को याद कर उस श्लोक को "मा निषाद······काममोहितम्" बार-बार कहने लगे। वाल्मीकि जी को इस प्रकार चिन्तित तथा शोकसंतप्त देखकर ब्रह्माजी ने हँस कर उनसे कहा—आपको चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। मेरी इच्छा से ही आपका शोक श्लोक

---

१. तस्मातु मिथुनादेकं पुमांसं पापनिश्चयः।
जघान वैरनिलया निषादस्तस्य पश्यतः॥ —बाल० २/१०
तं शोणितपरीतागं वेष्टमानं महीतले।
भार्या तु निहतं दृष्ट्वा रुरावा करुणां गिरम॥—बाल० २/११
वियुक्ता पतिना तेन द्विजेन सहचारिणा।
ताम्रशीर्षेण मत्तेन पत्रिणा सहितेन वै॥—बाल० २/१२
तथा तु तं द्विजं दृष्ट्वा निषादेन निपातितम्।
ऋषेर्धर्मात्मनस्तस्य कारुण्यं समपद्यत:॥—बाल० २/१३

२. पादबद्धोऽक्षरशमस्तन्त्रीलय समन्वितः।
शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा॥—बाल० २/१८

के रूप में मुखरित हुआ था। अब अमरलोको में धर्मात्मा, गुणवान, तथा बुद्धिमान श्री रामचन्द्र जी के चरित्र का उसी रूप में वर्णन करें, जिस रूप में नारद जी के मुँह से मौखिक रूप में आप सुन चुके हैं।[1]

इसके पश्चात् मन में प्रभु का ध्यान करते हुए महर्षि ने सोचा कि इसी प्रकार के श्लोकों में मैं सम्पूर्ण रामकथा लिखूँ तथा राम-काव्य की रचना करूँ।

"सोऽनुव्याहरणाद्भूयः शोकः श्लोकत्वमागतः
तस्य बुद्धिरियं जाता वाल्मीकेर्भावितात्मनः
कृत्स्नंरामायणं काव्यामिदृशैः करवाण्यहम्"।—(बाल २/४१)

उपर्युक्त कथा से स्पष्ट है कि राम-कथा की मूल प्रेरणा करुण रस के प्रसंग से ही प्राप्त हुई है। वाल्मीकि रामायण में इस प्रेरणा के प्रत्यक्ष दर्शन किए जा सकते हैं। कवि की आत्मा करुण स्थलों पर द्रवीभूत हो जाती है। उसकी लेखनी सूक्ष्म अन्तर्वृत्तियों, अनुभावों तथा बाह्याभिव्यंजकों का अलौकिक सृजन करने लगती है। यही क्यों कवि की करुणरस प्रियता के कारण एक प्रसंग से कवि का परितोष नहीं होता। प्रकारान्तर से उसी प्रसंग को पुनः लेते तथा उसका वर्णन करते हैं। यह अवश्य है कि कवि की उत्कृष्ट कला और कल्पना के अन्तर्गत ऐसे प्रसंग अपनी निजी मौलिकता रखते हैं तथा पुनरावृति नहीं कहे जा सकते। कतिपय ऐसे प्रसंगों की योजना भी कवि ने की है जिनके अन्तर्गत करुण की कटु एवं कसकर अनुभूति का प्रकटीकरण हुआ है। कहना न होगा कि आदर्शपात्रों को जो कवि की इस योजना का शिकार होना पड़ा है—उदाहरण स्वरूप 'मायारचित कटे हुए राम के सिर का सीता को दिखलाया जाना' तथा 'माया रचित रणक्षेत्र में हनुमान की उपस्थिति में मेघनाद द्वारा वध किया जाना' ले सकते हैं। इन प्रसंगों से यह अवश्य है कि करुणरसानुभूति में मार्मिकता आ गई है और इस प्रकार ये प्रसंग कवि की कला और कल्पना के

१. तद्गतेनैव मनसा वाल्मीकिर्ध्यानमास्थितः।
पापात्मना कृतं कष्टं वैरग्रहणबुद्धिना ॥—बाल० २/२८
यस्तादृशं चारुखं क्रौंचंहन्यादकारणात्।
शोचन्नेव मुहुः क्रौंचीमुप श्लोकमिमं पुनः ॥—बाल०२/२९
जगावन्तर्गतमना भूत्वा शोकपरायणः।
तमुवाच ततो ब्रह्मा प्रहस्य मुनिपुङ्गवम् ॥—बाल० २/३०
श्लोक एव त्वया बद्धोनाम कार्या विचारणा।
मच्छन्दादेव ते ब्रह्म-प्रवृत्तेयं सरस्वती ॥—बाल० २/३१
रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम।
धर्माष्मनो गुणवतो लोके रामस्य धीमतः ॥—बाल०२/३२
वृत्तं कथय वीरस्य तथा ते नारदाच्छ्रुतम्।
रहस्यं च प्रकाशं च यद्वृत्तं तस्य धीमतः ॥—बाल० २/३३

उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

हिन्दी-साहित्य में राम-कथा जिन परिस्थितियों में प्रकट हुई उनका अवलोकन कर लेना यहाँ आवश्यक होगा। कवि की तत्कालीन परिस्थितियों उनके काव्य सृजन का आधार होती हैं जिनको दूसरे शब्दों में कहा गया है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। अतएव कवि की तत्कालीन परिस्थितयों के विवेचन के अभाव में उसके काव्य की मूल भावना से अवगत होना ही असंभव है। इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य में राम-कथा के कवियों के काव्य का अवलोकन अपेक्षित है।

इस युग की राजनीतिक विषमताओं के कारण समाज की अति शोचनीय दशा हो चुकी थी। कवि अथवा किसी देश-प्रेमी के लिए यह असंभव था कि वह खुलकर कुछ कह सके। इसलिए प्रतीक-प्रणाली का अवलंबन किया गया तथा राजनीतिक विषमतागत विषम यातना को "कलिकाल" का नाम दिया गया।

हिन्दी का उद्गम जैन-ग्रन्थों, नाथ संप्रदाय की अनुभूतियों तथा चारणकालीन प्रशस्तियों से आरम्भ हुआ है। इसलिए इस काल की धार्मिक-चेतना मध्य युग में भी प्रगतिशील रही। युग-वेदना के साथ इस धार्मिक-चेतना का समन्वय हुआ तथा "कलिकाल" राजनीतिक विषमता के साथ धार्मिक चिन्तन का भी प्रतीक बन गया।

राजनीतिक दासता तथा धार्मिक अत्याचारों ने जन चेतना को छिन्नप्राय करके जन-जन में निराशा की भावना भर दी। इस काल की निराशा वेदना के रूप में कवियों के हृदयों में झंकृत हो उठी। सूर, तुलसी तथा केशव—तीनों कवियों द्वारा प्रस्तुत रामकथा में वेदना को ही वाणी मिली। रामकथा का रूप भी इसी-लिए आंशिक रूप में परिवर्तित हुआ। वाल्मीकि के राम का उद्देश्य अपयश को दूर करना है।

"यां त्वं विरहिता नीता चलचित्तेन रक्षसा,
दैव सम्पादितो दोषो मानुषेण मयाजितः।"
"सम्प्राप्तमवमानं यस्तेजसा न प्रमार्जति,
कस्तस्य पुरुषार्थोऽस्ति पुरुषस्याल्पतेजसः।"
"रक्षता तु मया वृतमपवादं च सर्वशः
प्रख्यातस्यात्मवंशस्य न्यङ्ग च परिरक्षता ॥"

और हिन्दी कवियों के राम का उद्देश्य था रावण-वध।[1] इसीलिए इन कवियों ने वाल्मीकि की उपर्युक्त मूल भावना को संकेत-मात्र रूप में चलता कर दिया और उसकी सकारणता दिखाने का प्रयत्न नहीं किया।

---

१. "निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाई पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥" —अरण्य काण्ड ६

"देखत दरस राम मुख मोरयौ ।"

"कहे कछुक दुर्बादा ।"

साथ ही केशव के विभीषण के साथ तत्कालीन जन-जीवन की यही पुकार थी। रावण के अत्याचारों से मरे जा रहे हैं, शीघ्र उद्धार कीजिए, अपनी शरण में लीजिए—

"दीनदयाल कहावत केशव हौं अति दीन दशा गह्यो गाढ़ो ।
रावण के अघ ओघ समुद्र में बूड़त हौं बर ही गहि काढ़ो ।।"

यह ठीक है कि वाल्मीकि रामायण आधार-ग्रन्थ के रूप में इन कवियों को सुलभ था और उसके आधार पर उनको करुण रस की अनुभूति को ही प्रश्रय देना चाहिए था किन्तु यहाँ यह नहीं भूल जाना चाहिए कि इन राष्ट्र कवियों के लिए राम कथा का ग्रहण कोई विवशता न थी। यदि थी तो वह थी जन-जन की माँग के रूप में। दूसरा उपभोग पक्ष समान रूप से प्रभावशाली था किन्तु युग-प्रवंतक तथा हिन्दी कथा के प्रमुख कवि को वह प्रभावित न कर सका। परम्परा अथवा परिपाटी के लिए निर्वाह के लिए यदि उन्होंने उस क्षेत्र में भी अपनी लेखनी को कष्ट दिया तो इस से उनकी मूल भावना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मध्य युग के अन्य कलाकारों के दृष्टिकोणों पर यहाँ संक्षेप में दृष्टिपात कर लेने से जन-वेदना के स्वरूप का स्पष्टीकरण हो जायगा।

जनवेदना के कारण ही धार्मिक चेतना का मूलदृष्टिकोण ही इस काल में परिवर्तित हो गया। कवि ने योग साधना के स्थान पर चिरन्तन विरह की अलौकिक साधना का श्रीगणेश किया। कवि ने विरह-वेदना को अपनाया तथा विप्रलंभ की सापेक्ष विरह-वेदना को विरह दृष्टि देकर निरपेक्ष रूप दे दिया। ये भक्त विरह के लिए विरह को चाहने लगे तथा इस विरह को उन्होंने विश्वव्यापक एवं चिरन्तन रूप में प्रतिष्ठित किया। भगवान ने भक्त के इस दृष्टिकोण की पहचान का भक्त की इच्छा-पूर्ति करते हुए भक्तों को चिरन्तन विरह की योजना कर दी।

भगवान—"प्यारी, मैं निठुर नहीं हूँ। मैं तो अपने प्रेमिन को बिना मोल को दास हूँ। परन्तु **मोहि निहचे है** (कि) कै हमारे प्रेमिन को हम सों हूँ हमारो विरह प्यारो है। **ताहि सो मैं हूँ बचाय जाऊँ हूँ।**"

—(च०ना०-पृष्ठ ११५, सं० ४८)

इस चिरन्तन विरह के दर्शन होते हैं कबीर, सूर तथा मीरा में। तुलसीदास जी भी एक स्थल पर इस दृष्टिकोण की ओर संकेत करते हुए विश्वव्यापी विरह का विनयपत्रिका में उल्लेख करते हैं—

"बिछुरे रबि ससि मन, नैनन तें पावत दुख बहुतेरो ।
भ्रमत स्नमित-निसि-दिवस गगन महँ, तहँ रिपु राहु बड़ेरो ।
जद्यपि अति पुनीत सुर-सरिता, तिहुँ पुर सुजत घनेरो ।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित बहिबो ताहू केरो ।।"

विद्यापति के विरह का दृष्टिकोण भी चिरन्तन विरह है किन्तु उसकी सम्यक् अभिव्यक्ति संभव न हो सकी। कवि "निराशा" से घबड़ा जाता है तथा अविलम्ब आशा की किरण देकर करुण रस के प्रसंग को विप्रलंभ का रूप दे देता है —

"मनइ विद्यापति सुन बर जौवति
अब नहिं होइ निरासे
से व्रजनन्दन हृदयअनंदन
झटति मिलब तुअ पासे।"

तुलसी ने अपनी वेदना को मर्यादा के अन्तर्गत रखना उचित समझा। इसलिए विनय-पत्रिका में "विश्वव्यापी विरह" की ओर संकेत करके अपनी वेदना को आध्यात्मिक शोक के द्वारा आर्तनिवेदन तथा आर्त प्रार्थना के अन्तर्गत प्रकट किया।

इस विरह का प्रारम्भ बिना परिचय के कैसे हो सकता है। इस तथ्य को ये कलाकार जानते थे। इसीलिए विरह को आधार बनाने के लिए कहीं केवल ऊहा की वस्तु न बन जाय इस भय से किसी प्रकार दिव्य क्षणों में उन्होंने संभोग का आभास प्राप्त कर लिया और उसके पश्चात् चिरन्तन रूप में विरह साधना चलने लगी।

विद्यापति की राधा संभोग में ही वियोग के अंकुर देखती है—

"एकहि वचन विच मेल रे
हँसि पहु उतरो न देल रे।"

कबीर के "घर आए राजा राम भरतार" किन्तु इस की पुनरावृति न हो सकी कबीर की विरहिणी आत्मा सदा यही पुकारती रही—

"बासुरि सुख ना रैणि सुख, ना सुख सपने माँहि ;
कबीर बिछुट्या राम सूं, ना सुख धूप न छाँह।"

सूर ने "हाथ छुड़ाकर" जाने पर हृदय की दृढ़ता का भरोसा किया तथा उस हृदय में भर लिया चिरन्तन गोपी-विरह।

मीरा को "सुपणे में परण गया" फिर उसके दर्शन कभी न हुए। जन्मजन्मान्तर की विरहिणी मीरा इस जन्म में भी चिरन्तन विरह को ही भोगती रहीं।

इस विरह वेदना के साथ इष्ट के मिलन की अनिश्चितता में पूरे प्रसंग को करुण के समीप ला रखा। इष्ट इस जन्म में मिलेगा या नहीं। मिलेगा तो किस प्रकार एवं किस रूप में आदि जिज्ञासाएँ कभी शान्त न हो सकीं।

साथ ही इन कवियों की मिलन की कोई लालसा भी प्रतीत नहीं होती। इन भक्त कवियों ने जब कभी कोई याचना की तो वह मिलन की याचना न थी जैसी कि विप्रलंभ शृंगार में होती है। प्रत्युत उन्होंने ऐसे अवसरों पर भव-दुख-निवृति के लिए ही याचना की।

"कखन हरब दुख मोर, हे भोलानाथ"
"ऐसा कोई ना मिलै, हम को दै उपदेश।

भौ सागर में डूबता, कर गहि काढ़ै केस ।"

"मीरा दासी राम भरोसे, जम का फंद निवार।"

"या भव में मैं बहु दुख पायो, संसा सोग निवार ।"

"मीरा के प्रभु गिरधर नागर, आवागमन निवार।"

मीरा के इस "संसार सोग" से निश्चय ही आध्यात्मिक शोक का आशय है जिसको तुलसीदास जी ने अति मार्मिक रूप में अनुभव किया तथा अति वेदना के कारण त्राहि-त्राहि पुकार उठे—

"पाहि पाहि राम पाहि, रामभद्र रामचन्द्र ।"

आलंबन की विभिन्नता—इन भक्त कवियों ने इष्ट को प्रियतम कहा तथा इस प्रियतम शब्द से विप्रलंभन की संभावना की जा सकती है। अतः इसका भी स्पष्टीकरण यहाँ आवश्यक है ।

यह ठीक है कि इन कवियों ने "हरि मोर पीव" तथा "सुपणे में परण गया जगदीश" कहा किन्तु यह "पीव" संसारी प्रियतम न था। तथा यह विवाह सांसारिक विवाह न था। ये शब्द अति व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किए गए थे और इनका अर्थ था · "रक्षक, उद्धारक" इसलिए उस परम इष्ट को प्रियतम कहा जा सकता था, पिता कहा जा सकता था, माता कहा जा सकता था तथा यही नहीं सांसारिक प्रत्येक संबंध उससे जोड़ा जा सकता था। इसलिए कबीर एक स्थल पर कहते हैं "हरि मोर पीव मैं हरि की बहुरिया" तथा दूसरे स्थल पर कहते हैं—

"बाप राम सुनि बिनती मोरी।"

तथा

"हरिजननी मैं बालक तोरा ।"

अतः स्पष्ट है कि भक्त और भगवान का संबंध विप्रलंभगत प्रेमी-प्रेमिका के सम्बन्ध से भिन्न था।

साथ ही यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि भक्ति के इस दृष्टिकोण के साथ प्रेममार्गी कवियों का एक दूसरा दृष्टिकोण भी इस समय चल रहा था जिसके अन्तर्गत केवल प्रेमी-प्रेमिका के संबंध का ही निर्वाह हुआ हैं।

जायसी के नागमती विरह तथा पद्मावती रत्नसेन के विरह को यहाँ उदाहरणस्वरूप लिया जा सकता है। इस विरह में वही जान है जो भक्त कवियों के विरह में है। विरह की विश्वव्यापकता भी उसी रूप में है किन्तु इस विरह का दृष्टिकोण सापेक्ष है। यह प्रिय प्रियतमा का विरह है जो प्रत्येक रूप में प्रियप्रियतम ही हैं तथा उनको एक दूसरे के मिलने की आशा है। मिलन ही इन वियोगियों का अभीष्ट है। यह अवश्य है कि स्थान-स्थान पर करुण की सीमा का स्पर्श करता चलता है।[1]

---

१. "ना हौं सरग क चाहौ राजू। ना मोहिं नरक सेति किछु काजू।
चाहौ ओहिकर दरसन पावा। जेइ मोहि आनि प्रेम पथ लावा ॥"

उधर इन भक्त कवियों को पहिले तो कुछ अभीष्ट ही नहीं है। वह तो विरह के लिए विरह ही चाहते हैं। भक्ति के लिए ही भक्ति कर रहे हैं। यदि कभी कुछ अभीष्ट है तो भव-दु:ख-मुक्ति जिसके अन्तस् में तत्कालीन विषय परिस्थियोंगत समाज की यातनामुक्ति भी निहित है। आर्त एवं त्रसित जीव प्रभु से रक्षा याचना करता है जिसको भव रौद्र की प्रतिक्रिया (करुण) कहा जा सकता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि रामकथा के कवियों के साथ मध्ययुगीन अन्य कवियों का काव्य भी जन-वेदना तथा अत्याचारों से प्रपीड़ित मानस की करुणपुकार से विशेष रूप से प्रभावित हुआ है और इस रूप में करुण और विप्रलंभ के उस रूप को प्रश्रय मिला है। विप्रलंभ अपेक्षाकृत निराशा तथा निरपेक्षता के संदर्भ में करुण के समीप है। यही कारण है कि रामकथा में रामसीता का विप्रलंभ करुण का आस्वादन कराता है। ऐसा अनुभव नहीं हो पाता कि राम अपनी प्रेयसी को बंधनमुक्त कराने के प्रयत्न में हैं अथवा रामसीता एक दूसरे के विरह में प्रेमी-प्रेमिका के रूप में विकल हैं। प्रत्युत ऐसा लगता है कि सीता के रूप में जनजीवन अथवा भारतमाता बंधनग्रस्त तथा अति दु:खी है और उसके उद्धार का प्रयत्न जननायक राम कर रहे हैं। उनका विरह 'हाथ पर पर हाथ रखकर आहें भरने में' व्यतीत नहीं हो रहा प्रत्युत वह प्रयत्नपक्ष की उस सफल साधना में सतत संलग्न है जिसके द्वारा प्रपीड़न तथा अत्याचार का विनाश होगा। इस तथ्य की ओर आचार्य शुक्ल ने निम्नलिखित शब्दों में हमारा ध्यान आकृष्ट किया है।

"भावों की छानबीन करने पर मंगल का विधान करने वाले दो भाव ठहरते हैं—करुणा और प्रेम। करुणा की गति रक्षा की ओर होती है और प्रेम की रंजन की ओर। लोक में प्रथमसाध्य रक्षा है। रंजन का अवसर उसके पीछे आता हैं। अतः साधनावस्था या प्रयत्नपक्ष को लेकर चलने वाले काव्यों का बीजभाव करुणा ही ठहरता है। इसीसे शायद अपने दो नाटकों में रामचरित को लेकर चलने वाले महाकवि भवभूति ने "करुणा" को ही एकमात्र रस कह दिया। रामायण का बीजभाव करुणा है जिसका संकेत क्रौंच को मारने वाले निशाद के प्रति वाल्मीकि के मुख से निकले वचन द्वारा आरम्भ ही में मिलता है। उसके उपरान्त भी बालकाण्ड के पन्द्रहवें सर्ग में इसका आभास दिया गया हैं, जहाँ देवताओं ने ब्रह्मा से रावण द्वारा पीड़ित लोक की दारुण दशा का निवेदन किया है। उक्त आदिकाव्य के भीतर लोक-मंगल की शक्ति के उदय का आभास ताड़का और मारीच के दमन के प्रसंग में ही मिल जाता है। पंचवटी से वह शक्ति जोर पकड़ती दिखाई देती है। सीता-हरण होने पर उसमें आत्मगौरव और दाम्पत्य प्रेम की प्रेरणा का भी योग हो जाता है। ध्यान देने की बात यह है कि इस आत्मगौरव और दाम्पत्य प्रेम की प्रेरणा बीच से प्रकट होकर उस विराट मंगलोन्मुखी गति में समन्वित हो जाती है। यदि राक्षसराज पर चढ़ाई करने का मूल कारण केवल आत्मगौरव या दामपत्य प्रेम होता तो राम के कालाग्नि-

सहश्य क्रोध में काव्य का यह लोकोत्तर सौन्दर्य न होता। काव्य का उत्कर्ष केवल प्रेमभाव की कोमल व्यंजना में ही नहीं माना जा सकता जैसाकि टालस्टाय के अनुयायी या कुछ कलावादी कहते हैं। क्रोध आदि उग्र और प्रचण्ड भावों के विधान में भी, यदि उनकी तह में करुणा-भाव अव्यक्त रूप में स्थित हो, पूर्ण सौन्दर्य का साक्षात्कार होता है।"

—(चिंतामणि—इंडियन प्रेस ५६, पृष्ठ २२३/२२४)

रामकथा को काव्य के क्षेत्र में प्रश्रय दिए जाने के संबंध में तत्कालीन-परिस्थितियाँ अधिकांश में उत्तरदायी थीं जिनका विवेचन किया जा चुका है। अब यहाँ यह देखना अभीष्ट है कि हिन्दी साहित्यगत रामकथा की पृष्ठभूमि में करुणरस का क्या स्वरूप रहा।

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि में दो महान विभूतियों 'राम' और 'कृष्ण' को साहित्यिक प्रेरणा का मूल आधार कहा जा सकता है। इन दोनों विभूतियों के विभिन्न स्वरूप थे—

(१) जन-जीवन करुणा के प्रतीक।
(२) जन-जीवन के उल्लास के प्रतीक।

हिन्दी साहित्य में भारतीय संस्कृति की समन्वय-प्रवृत्ति के दर्शन जहाँ अन्यान्य रूपों में हुए हैं वहाँ इन दोनों विभूतियों के विभिन्न स्वरूपों के समन्वय में भी यह विशेषता देखी जा सकती है। जनजीवन के दो विभिन्न पक्षों पर इनका अमिट प्रभाव पड़ा। राम के साथ जनजीवन राक्षसों के अत्याचारों से मुक्ति पाने के लिए चिन्तित था तो कृष्ण के साथ वह निश्चिन्त एवं अशोक हो रास के आनन्द-उल्लास में आत्म-विभोर था। सूक्ष्म निरीक्षण से किन्तु यह स्पष्ट हो जाता है कि दूसरे रूप के आनन्द और उल्लास के गर्भ में भी सजल नेत्र तथा तप्त बाहों को प्रश्रय दिया गया था। कृष्ण-गोपी-विरह की ही प्रधानता थी जिसका विवेचन किया जा चुका है और कहना न होगा कि इसी समान आधार पर इन दो विरोधी स्वरूपों का समन्वय संभव हो सका।

यह अवश्य है कि रामकथा में भावी प्रबल है तो कृष्ण-कथा में भावी का सृजन एक अंश तक स्वयं किया गया है। राम के लिए पितृ-आज्ञा तथा वचन-पालन-गत विवशता थी तो कृष्ण के लिए मथुरा जाने का निमन्त्रण स्वीकार कर लेना शिष्टा-चार मात्र था। कंस के निमन्त्रण को अस्वीकार किया जा सकता था किन्तु राम के लिए ऐसा कोई विकल्प न था। इसीलिए राम के प्रति उमड़ती एवं उद्वेलित जन-भावराशि विवशता के कारण असहाय, दीन तथा अति दुःखी थी और इसी कारण रामकथा जनमानस के अधिक समीप रही तथा उतका प्रभाव सदा के लिए अमिट हा गया। कृष्णकाव्य किसी भी रूप में रामकथा से कम न होते हुए भी जनमानस की वह समीपता न पा सका। रामायण के अनुरूप कृष्णायन की भी रचना हुई किन्तु

रामायण रामायण ही रही। इन दोनों स्वरूपों के इस अन्तर के अन्तर्गत ही राम-कथा की पृष्ठभूमि में करुण रस की महत्ता निहित है।

रामकथा का आधार मूलरूप में वाल्मीकि रामायण में सुलभ था जिसकी ओर हिन्दी के कवियों ने कृतज्ञता प्रकाशित की है।

तुलसी—"यद् रामायणे निगदितं ।"

केशव—"वाल्मीकि मुनि स्वप्न महँ दीन्हो दर्शन चारु।"

यही नहीं उन्होंने रामकथा का निम्नलिखिन शब्दों में वही प्रभाव बताया है जो प्रभाव हेगल ने चरित्र-निर्माण के लिए करुण का बताया था। "शोक अपने ठोस रूप में मानव चरित्र है।"

"विधि निषेधमय कलिमल हरनी, करम-कथा रविनंदनि बरनी।
हरि हर कथा विराजति बेनी, सुनत सकल मुद मंगल देनी॥"
"तिन के गुण कहिहौं सब सुख लहिहौ पाप पुरातन भागै॥"

कहना न होगा कि हिन्दी के कवि शोक के चरित्र-निर्माण सम्बन्धी प्रभाव से सुपरिचित थे। इसीलिए रामकथा का प्रभाव बतलाते हुए उन्होंने "कलिमल हरनी", "पापपुरातन भागै" गुणों की ओर ही प्रमुखरूप से संकेत किया।

अस्तु कहा जा सकता है कि रामकथा की पृष्ठभूमि में करुणरस की प्रमुख रूप से व्यापकता रही। कथा को आगे बढ़ाने, उसमें मोड़ देने तथा उचित प्रवाह लाने के लिए करुण रस का सफल प्रयोग हुआ। करुणरस यद्यपि मुख्यतः अव्यक्त रूप से दुष्टों के विनाशक भगवान के मंगलमय क्रोध का आधार था तथापि व्यक्तरूप में भी मूल कथा से किसी भी रूप में पीछे न रहा। मूलकथा-रावणवध है तो उसके दोनों किनारों पर करुणरस की धारा प्रवाहित है—एक किनारे पर है दशरथ-मरण तथा सीताहरण (जहाँ तक सीता का पता नहीं चलता तथा राम सोचते हैं कि उसको किसी राक्षस ने मार डाला) तो दूसरे किनारे पर है सीता-बनवास। इन द्रवभूति किनारों के बीच में बहती है मूलकथा की वेगवती धारा जिसका नियंत्रण इन्हीं किनारों के हाथ में है।

: २ :

मध्ययुगीन हिन्दी-रामकाव्य में जीवन-दर्शन

जीवन-दर्शन तथा साहित्य—साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज की गतिविधि की स्पष्ट छाया साहित्य की अभिव्यक्ति के अन्तर्गत प्रकट होती है। व्यष्टि रूप में जीवन की प्रत्येक दशा पर साहित्य प्रकाश डालता है। जीवन की आस्थाएँ एवं विश्वास, क्षोभ एवं ग्लानि आदि का यथातथ्य निरुपण करने के साथ साहित्य जीवन को विशिष्ट आदर्शों की ओर भी उन्मुख करता है। अतः जीवन-दर्शन के अन्तर्गन्त जीवन के यथार्थ एवं आदर्श दोनों ही रूपों का समावेश होता है।

मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य ने समाज के लिए यथार्थ एवं आदर्श दोनों रूपों की योजना कर आलोचक एवं सुधारक दोनों व्यक्तित्वों का प्रकटीकरण किया। यथार्थ के अन्तर्गत समाज में व्याप्त अव्यवस्था एवं वितण्डावाद की ओर साहित्य ने शिव का तीसरा नेत्र खोला तो आदर्श के अन्तर्गत मर्यादापुरुषोत्तम का आदर्शचरित्र परमत्रय में प्रतिष्ठित कर 'अवश्यमेव अनुकरणीयं' सिद्ध कर दिया।

मध्ययुगीन राजनीतिक परिस्थितियों के अन्तर्गत जीवन का आनन्दवादी दृष्टि-कोण दुःखवाद की ओर उन्मुख हो उठा था। उठकर सँभलने के स्थान में कलपने तथा कोसने की प्रवृत्ति प्रतिलक्षित हो उठी थी। परिस्थितिगत विवशता एवं असहायावस्था के कारण उत्थान का अवसर संभव न था। अतः दैन्य एवं आर्त्त प्रार्थना के दर्शन साहित्य में संभव हुए। युग की प्रगति का विकास आत्म-विश्वासी साधक के स्थान पर आत्म-अविश्वासी दीन भक्त में प्रतिलक्षित हुआ। समष्टि रूप में शोकानुभूति के सभी संभव प्रसंगों तक कवियों की दृष्टि गई तथा व्यष्टि रूप में जन्म, शैशव, यौवन, वार्द्धक्य तथा मरण प्रत्येक दशा की दुःखानुभूति की ओर संकेत हुआ।

वर्णाश्रम व्यवस्था का विकास—मानव-जीवन में दुःख-निवृत्ति के प्रयास मानव जन्म से ही प्रारम्भ होते हैं। सुख एवं सुविधापूर्वक जीवन-यापन के विभिन्न साधन समाज की आस्था और विश्वासों के रूप में प्रकट होते हैं जो समय-समय पर परिवर्तित तथा संशोधित होते रहते हैं। इन परिवर्तनों के अन्तर्गत दुःख-निवृत्ति की

मूल भावना प्रगतिशील रहती है जो आज भी उसी रूप में प्रगतिशील देखी जा सकती है।

मानव-जीवन के प्रारम्भ में जीवन की आवश्यकताएँ संख्या मे परिमित होते हुए भी वैयक्तिक साधनों के लिए अलभ्य सिद्ध हुई। एक व्यक्ति के लिए उनका जुटाना कठिन था। साथ ही अपरिचित वातावरण में जीवन-रक्षा तथा जीवन-यापन की मूल आवश्यकताएँ आदि मानव के लिए दुरुह समस्याएँ थीं जिनको हल करने के लिए जन-समूह का दो वर्गों में विभाजित किया जाना आवश्यक समझा गया। इन प्राथमिक आवश्यकताओं के आधार पर क्षत्रिय और वैश्य दो वर्गों की उद्‌भावना हुई। कालांतर में सेवा और ज्ञानार्जन की आवश्यकताओं ने शूद्र तथा ब्राह्मण वर्णों की संभावना कर चार वर्णों की प्रतिष्ठा की। ज्ञान-विज्ञान के अधिष्ठाता ब्राह्मण आगे चलकर समाज में महत्ता प्राप्त कर समाज के नेता बन गए।[१]

हिन्दी-साहित्य में वर्णाश्रम व्यवस्था के विकास एवं प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में कोई विवेचन नहीं हुआ। साहित्य के प्रादुर्भाव से शताब्दियों पूर्व वर्णाश्रम व्यवस्था की पूर्ण प्रतिष्ठा हो चुकी थी। इसलिए इस समय साहित्य में इनके विवेचन की कोई आवश्यकता भी न समझी गई। साहित्य को इस काल में वर्ण व्यवस्था के विकृत रूप के ही दर्शन हुए जिसके प्रति साहित्य ने क्षोभ प्रकट किया।

---

१. शास्त्रीय विश्वासों के अनुकूल वर्ण-व्यवस्था विकास का परिणाम नहीं है। सृष्टि का प्रारम्भ ही वर्ण-व्यवस्था से होता है।

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्‌बाहू राजन्यः कृतः।
उरु तदस्य यद्‌वैश्यः पद्‌भ्यां शूद्रो अजायतः।"—ऋग ८/१०/६०
शुक्ल यजु ३१/१

विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, बाहुओं से क्षत्रिय, उरु से वैश्य तथा चरणों से शूद्र उत्पन्न हुए।

इसी प्रकार ब्राह्मणों के सम्बन्ध में शास्त्रीय विचार विकासवाद के अनुकूल नहीं है—

"जन्मनैवः महाभागो ब्राह्मणो नाम जायते।
नमस्यः सर्वभूतानामतिथिः प्रसृताग्रभुक्॥"—महा० भा० अनु० पर्व ३५/१

हे महाभाग, जन्म के द्वारा ही ब्राह्मण होता है। ब्राह्मण कुल में जन्म लेने के कारण ही वह समस्त प्राणियों के लिए नमस्य-नमस्कार करने योग्य और अतिथि रूप में स्वपक्व अन्न का सर्वप्रथम भोक्ता बनता है।

"ब्राह्मणः संभवाच्चैव देवानामपि देवतम्।"—व्यास संहिता ४/४६
ब्राह्मण जन्म से ही देवताओं के भी पूज्य हैं।

वर्णाश्रम व्यवस्था का विकृत रूप--परिस्थितियों वश आश्रम व्यवस्था से वानप्रस्थ तथा सन्यास दोनों आश्रमों का लोप हो गया। गृहस्थाश्रमगत् ममता, मोह तथा आर्थिक संकट ने एक बड़ी संख्या में गृहस्थों को वानप्रस्थ एवं सन्यास आश्रम में जाने से रोक दिया। साथ ही वर्ण व्यवस्था भी धीरे-धीरे रूढ़िगत हो चली। गुण कर्म के स्थान में जन्मना व्यवस्था व्यवहार्य हुई। कालान्तर में यह जन्मना विधान अति कठोर हो गया। एक वर्ण से दूसरे वर्ण में परिवर्तन के अवसरों की असंभावना के साथ सामाजिक सम्बन्ध भी वर्ण तक सीमित हो गए। शूद्र अब अछूत बन गए। मंदिरों में प्रवेश वर्जित होने के साथ-साथ विशिष्ट राजमार्गों पर भी आने-जाने की उनको आज्ञा न रही। रूढ़ि की विरोधिनी प्रतिक्रिया मध्ययुगीन साहित्य की रचना के समय प्रकट हुई। शूद्र स्पष्ट रूप से वर्ण व्यवस्था का विरोध करने लगे। कवि ने इस प्रतिक्रिया को कलियुग का प्रभाव बतलाया तथा इसके प्रति निम्नलिखित शब्दों में आन्तरिक क्षोभ प्रगट किया।।

"न वर्ण धर्म रहा न चारों आश्रम रहे। सब स्त्री-पुरुष वेद के विरोधी हो गए। ब्राह्मण वेदों को बेचने वाले हैं तथा राजा-प्रजा के शोषक हैं।"[1]

"जिसको जो अच्छा लगा उसी को उसने प्रशस्त मार्ग समझा। जो व्यर्थ बकवास करने लगा वह पण्डित समझा गया। जो मिथ्याडंबर करता है तथा दम्भ में रत है उसको सब लोग संत कहने लगे।"[2]

"जो दूसरों का धन हरण कर सकता है वही बुद्धिमान कहलाया। जो दम्भ करता है वह बड़ा आचारी तथा जो झूठ बोलता तथा उपहास करना जानता है वह गुणवान समझा गया।"[3]

"शूद्र ब्राह्मणों से विवाद करने लगे कि हम क्या तुमसे कुछ कम हैं? जो ब्रह्म को जानता है वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है।"[4]

"तेली, कुम्हार, चांडाल, भील, कोल तथा कलवार आदि जो नीच वर्ण हैं, स्त्री के मरने पर अथवा गृहसम्पति के नाश होने पर सिर मुड़ाकर सन्यासी

---

१. वरन धर्म नहिं आश्रम चारी, श्रुति विरोध रत सब नर नारी।
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन, कोउ नहिं मान निगम अनुसासन।।

२. मारग सोइ जा कहूँ जोई भावा, पंडित सोइ जो गाल बजावा।
मिथ्यारंभ दम्भ रत जोई, ताकहूँ संत कहइ सब कोई।।

३. सोइ सयान जो परधन हारी, जो कर दम्भ सो बड़ आचारी।
जो कह झूंठ मसखरी जाना, कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना।।

४. बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम ते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो विप्रवर आँखि दिखावहिं डाटि।।

—(रामचरितमानस, उतरकाण्ड ९९)

हो गए।"[१]

"शूद्र नाना प्रकार के जप, तप और व्रत करते थे। ऊँचे आसन पर बैठकर पुराण सुनाते है। सब मनुष्य मनमाना आचरण कर रहे हैं। अपार अनीति व्याप्त हो रही है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।"[२]

आश्रम का आदर्श—कवि प्रत्येक आश्रम के लिए अपेक्षित विशेषता पर प्रकाश डालता है तथा उसके अभाव को देखकर क्षुब्ध हो उठता है। वेद ब्राह्मण की शोभा हैं। इसलिए वेदविहीन विप्र जो अपना धर्म-कर्म छोड़कर विषयरत है, शोचनीय है। नीति-निपुणता तथा प्रजावत्सलता राजा की शोभा है। अत. वह राजा शोचनीय है जो नीति नहीं जानता तथा जिसको प्रजा प्रिय नहीं है। धनवान वैश्य कृपणतावश अतिथिसत्कार तथा शिवभक्ति से विरत रहे तो वह अपनी मर्यादा से च्युत होने के कारण शोचनीय है। सेवा एवं निस्वार्थ सेवा शूद्र का धर्म है। अतएव यदि शूद्र ब्राह्मणों का अपमान करने वाला, अधिक बोलने वाला तथा मान-वड़ाई चाहने वाला है तो वह शूद्र भी पथ-भ्रष्ट है तथा वह भी शोचनीय है। स्त्री को पति अनुकूल रहना चाहिए अतएव कुटिल,कलहप्रिय तथा स्वेच्छा से विचरण करने वाली पतिवंचक नारी भी शोचनीय है।" व्रतपते व्रतं चरिष्यामि" ब्रह्मचारी का आदर्श है। अतः व्रत से विरति तथा गुरु-आज्ञा-प्रतिकूलता ब्रह्मचारी के लिए शोक का कारण है।[३]

गृहस्थाश्रम में कर्म-मार्ग का अनुसरण श्रेयस्कर है। अतः मोहवश कर्म-मार्ग से विरत गृहस्थ शोचनीय है। वह संन्यासी भी शोचनीय है जो ज्ञान वैराग्य विहीन है और सांसारिक प्रपंचों मे लीन है। वानप्रस्थ आश्रम तपश्चर्या के लिए है। यदि इस आश्रम में भी भोग भले लगते है तो ऐसे वानप्रस्थ-मार्ग से पतित होने के कारण शोचनीय है।

---

१. "जे वरनाधम तेलि कुम्हारा, स्वपच किरात कोल कलवारा।
नार मुई घर संपति नासी, मूड़ मुड़ाइ होहिं सन्यासी॥
२. सूद्र करहिं जप तप व्रत नाना, बैठि बरासन कहहिं पुराना।
सब नर कल्पित करहिं अचारा, जाइ न बरनि अनीत अपारा॥
—(उ० काण्ड, ९९)

३. सोचिअ विप्र जो वेद विहीना, तजि निज धरमु विषय लवलीना।
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना, जेहि न प्रजा प्रियप्रान समाना।
सोचिअ वयसु कृपन धनवानू, जो न अतिथि सिव भगति सुजानू।
सोचिअ सूद्र विप्र अवमानी, मुखर मानप्रिय ग्यानगुमानी।
सोचिअ पुनि पति वंचक नारी, कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी।
सोचिअ वटु निज व्रतु परिहरई, जो नहिं गुरु आयुस अनुसरई॥
—(अयो० काण्ड, १७ ?)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि वर्णाश्रम व्यवस्था कवि का आदर्श है तथा व्यवस्था के अनुकूल आदर्शो के प्रति समाज की उदासीनता कवि को असह्य है। लोकमंगल की कामना से प्रेरित होकर ही कवि ने समाज की इस उदासीनता के प्रति अपना क्षोभ प्रकट किया है।

धर्म की द्वन्द्वात्मक प्रवृत्ति—"दुःख की निवृत्ति की खोज से ही धर्म उत्पन्न होते हैं"—किन्तु वाह्य कर्मकाण्ड के आधार पर धर्म स्वयं दुःखमूलक भी बन जाते है। धार्मिक द्वन्द्व तथा धार्मिक अत्याचार विश्व के धार्मिक इतिहास की मुख्य रूप-रेखा हैं जिन्होंने समय समय पर विश्वराजनीति को भी प्रगति दी है। मध्ययुग में इस्लाम तथा हिन्दू दो प्रतिद्वन्दी धर्म तथा शैव एवं वैष्णव एक ही धर्म के दो प्रति-द्वन्द्वी सम्प्रदाय थे। इन द्वन्द्वों की ओर साहित्य की दृष्टि गई तथा धर्म के नाम पर प्रचलित इस अज्ञानता पर साहित्य को अति क्षोभ हुआ। कवि ने एक ओर अभय दण्ड हाथ में लेकर विरोधमूलक कर्मकाण्ड की कटु आलोचना की तो दूसरी ओर एक सम्प्रदाय को दूसरे का पोषक सिद्ध करके भेदभित्ति को चकनाचूर कर डाला।

कर्मकाण्डगत क्षोभ—रामकथा के कलाकारों के साथ कबीर ने भी कर्मकाण्ड पर क्षोभ प्रकट किया है। प्रस्तुत प्रसंग में कबीर के क्षोभ का स्वरूप देख लेना असंगत न होगा। माला लेकर नाम जपने पर कवि को दुःख हुआ। कैसी बिडम्बना है यह? दिखावा तो हो रहा है धर्म का, किन्तु मन न जाने कहाँ-कहाँ प्रपंचों में घूमता है।[1]

संन्यासी का वेश धारण करना सहज है किन्तु उसका निभाना कठिन है। साधु ऐसी वाणी बोले जिससे सुनने वाले आहत हो उठें तो वह साधुना किस काम की?[2] पाषाण पूजा तथा मसजिद की नमाज दोनों ही व्यर्थ हैं। कवि को इस प्रकार की पूजा तथा नमाज पर दुःख होता है। क्षुब्ध होकर वह डपटने लगता है। "घर की चक्की क्यों नहीं पूजते जो आटा तो पीस देती है। क्या खुदा बहरा है जो मुल्ला बाँग दे रहा है।"[3]

---

१. माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माँहि।
मनुवाँ तो दहुँ दिस फिरै, यह तौ सुमिरन नाहि॥

२. साधु भया तो क्या भया, बोलै नाहिं बिचारि।
हतै पराई आतमा, जीभ बाँधि तरवार॥"

३. पाहन पूजे हर मिलै तो मैं पूजूँ पहार।
ताते यह चाकी भली पीस खाय संसार।
काँकर पाथर जोर कै मसजिद लई चिनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय। —कबीर

साथ ही कवि को "मूंड मुडाकर" संन्यासी होना भी रुचिकर नहीं लगता। उसे इन संन्यासियों की अज्ञानता पर क्षोभ होता है। बेचारे बालों ने क्या बिगाड़ा है जो उनको "मुंड़वा" दिया। विकार परिपूर्ण तो मन है। इसका कोई उपचार क्यों नहीं करते?[1]

हिन्दुओं की छूआछूत एवं दुराचार तथा मुसलमानों का मांसाहार एवं भाई-बहिन का बिवाह सम्बन्ध कवि के क्षोभ का कारण बनता है तथा दोनों की अज्ञानता पर प्रकाश डालते हुए वह कह उठता है—

"अरे इन दोउन राह न पाई।"

साम्प्रदायिक ऐक्य की समस्या शैव और वैष्णवों के विरोध के लिए हल की जानी आवश्यक थी। अतएव कवि ने राम-भक्ति प्राप्त करने के लिए शिव-भक्ति अपेक्षित निर्धारित की। राम "शम्भु थापना" कर शिव महिमा के साथ शैव एवं वैष्णवों की एकता की स्थापना करते हैं।

केशवदास जी ने भी रामचन्द्रिका में इस प्रसंग को इसी रूप में रखकर साम्प्रदायिक एकता का प्रयत्न किया है—

"उरते शिव मूरति श्रीपति लीन्हीं।
शुभ सेतु के मूल अधिष्ठित कीन्हीं॥
इनको दरसै परसै पग जोई।
भवसागर को तरि पार सो होई॥"

धार्मिक एकता का अभिन्न रूप—धार्मिक एकता का अभिन्न रूप साहित्य की अपूर्व कल्पना में प्रस्फुटित हुआ जिसके अन्तर्गत विधर्मी शासकों का पूर्व जन्म में हिन्दू होना अथवा एक ही ज्योति से उद्‌भूत होने के कारण हिन्दू शासकों से संबंधित होना सिद्ध किया गया। प्रस्तुत प्रसंग में प्राचीन काव्य के उपलब्ध उदाहरण देख

---

१. "केसन कहा बिगारिया जो मूँडौ सौ बार।
मन को क्यों नहिं मूँडिये, जामैं विषै विकार॥"
—(कबीर-ग्रन्थावली)

"हिन्दू अपनी करै बड़ाई गागर छूवन न देई।
वेस्या के पाँइन तर सोवै यह देखौ हिंदुआई।
....
खाला केरी बेटी ब्याहैं घरहि मैं करैं सगाई।"
—(कबीर-ग्रन्थावली)

लेना अपेक्षित होगा। कवि की करुणा द्रवित हो उठी जब उसने देखा कि धर्मी और विधर्मी का प्रश्न कितना घातक सिद्ध हो रहा है। मानव ऐक्य के लिए उसकी आत्मा विह्वल हो उठी। उसकी इस अन्तर्वेदना ने ही इन अलौकिक कल्पनाओं को जन्म दिया। विरोधी पक्ष के दो चरित्रों की ओर कवियों की दृष्टि विशेष रूप से गई—
१. मुहम्मद गौरी और २. अलाउद्दीन।

इन दोनों चरित्रों के सम्बन्ध में साहित्य की अलौकिक कल्पना निम्नलिखित रूप में प्रकट हुई—

मुहम्मद गौरी के सम्बन्ध में वीरभद्र ने कवि चन्द्र से यह रहस्य प्रकट किया—

"..... शहाबुद्दीन गौरी, राजा पृथ्वीराज और तुम (चन्द) तीनों एक ज्योति के अंश हो और अन्त में तुम तीनों को एक ही साथ उस ज्योति में लीन होना है।"[१]

हम्मीर के शीश ने भी अलाउद्दीन को इन्हीं तथ्यों की ओर संकेत किया जिन के अनुसार अलाउद्दीन ने सेतुबंधु रामेश्वर की पूजा की तथा समुद्र में कूदकर शरीर त्याग किया। स्वर्ग में जाकर शाह और हम्मीर एक दूसरे से मिले और हर्षित हुए। हम्मीर के शीश ने "हम तुम सु एक जानो न और" तथ्य का उद्घाटन कर धार्मिक ऐक्य ही नही प्रत्युत मानव-ऐक्य का पाठ पढ़ाया।

धर्म के मूल रूप—साहित्य ने धर्म का मूल रूप सरलतापूर्वक खोज निकाला। कर्म काण्डगत धर्म, धर्म नहीं हो सकता यह निषेधात्मक रूप में सिद्ध किया गया। विधि के रूप में गुणकथन, आर्त्त प्रार्थना, प्रेमानुरक्ति तथा नामसाधना आदि का विधान किया गया। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से गुणकथन तथा लीलागान तदाकार वृत्ति के सृष्टा हो सकते है। संभवतः भक्त कवियों की दृष्टि इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य की ओर इस साधना के अन्तर्गत रही। इसीलिए साधना की एक अवधि के पश्चात् अपने व्यवहार एवं सदाचार पर सिंहावलोकन करने का अवकाश निकालने की भक्त की

१. रासोसार, पृष्ठ ४३४/४

मध्ययुगीन प्रमुख शासक अकबर महान के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की एक कथा प्रचलित है जिसका समावेश किसी प्रकार साहित्य में न हो सका।

"पूर्व जन्म में अकबर मुकुन्द ब्रह्मचारी थे। प्रयाग में रहते थे। यमुना के दक्षिणी किनारे पर आधुनिक किले के सामने उनका निवास था। आज भी इस स्थान को मुकुन्द ब्रह्मचारी का टीला कहते हैं। मुकुन्द ब्रह्मचारी दुग्धाधारी थे। एक बार बिना छाने हुए ही ब्रह्मचारी जी गाय का दूध पी गए। इस दूध में गाय का बाल था। गाय के बाल का भक्षण गाय माँस भक्षण के समान पापपूर्ण होता है। अतः इस परिताप के कारण आत्महत्या कर ब्रह्मचारी जी ने प्राण त्याग किए तथा दूसरे जन्म में वह अकबर हुए।"

—अमृतबाजार पत्रिका, १९/१/५३ (अंग्रेजी)

लालसा बनी रही। संक्षेपतः यह कहा जा सकता है कि धर्म के बाह्य रूप को आन्तरिक साधना के लिए स्थान रिक्त करना पड़ा।

आन्तरिक साधना के अन्तर्गत कवि की दृष्टि "भगत मन कुटिलाई" की ओर रही जिसकी विस्तृत व्याख्या मानस रोगी के अन्तर्गत हुई। धर्म का मूलरूप बाह्य नहीं अन्तरिक है—इस भावना को लेकर मानसिक उदात्त वृत्तियों को प्राप्त करने की स्वाभाविक लालसा भक्त को हो उठी। इस लालसा की अपूर्ति भक्त के शोक का कारण बनी। कवि ने आलंकारिक रूप में अपनी वेदना को चित्रित करने का प्रयत्न किया। शारीरिक रोगगत स्थूल वेदना के आधार पर मानस रोगों की सूक्ष्म एवं गम्भीर वेदना निम्नलिखित शब्दों में प्रकट की गई—

"... सब रोगों की जड़ मोह (अज्ञान) है जिससे बहुत से शूल उत्पन्न होते है। काम वात है, लोभ बढ़ा हुआ कफ है और क्रोध पित्त है जो सदा छाती जलाते रहते हैं। यदि कहीं यह तीनों भाई प्रीति करलें तो दुःखदायी सन्निपात रोग उत्पन्न होता है। कठिनता से पूर्ण होने वाले विषयों के मनोरथ ही सब शूल हैं। वे अपार हैं। उनके नाम कौन जानता है।"[1]

ममता दाद है, ईर्ष्या खुजली है, हर्ष-विषाद गले के रोग हैं, पर सुख को देखकर उत्पन्न जलन क्षय है, दुष्टता और मन की कुटिलता ही कोढ़ है।[2]

अहंकार अत्यंत दुःखदायी डमरू रोग है। दम्भ, कपट, मद और मान नहरुआ रोग हैं। तृष्णा बृहद् उदर वृद्धि है। तीन प्रकार की प्रबल इच्छाएँ (पुत्र, धन, मान) प्रबल तिजारी है। मत्सर और अविवेक दो प्रकार के ज्वर हैं। इस प्रकार अनेक रोग है जिन्हें कहाँ तक कहा जाय।[3]

इस प्रकार कवि ने शारीरिक रोगों की पीड़ायुक्त अनुभूति के उदाहरणों द्वारा मानसिक रोगों की परम वेदनामय अनुभूति का स्पष्टीकरण कर धर्म के दुःखात्मक पक्ष के दर्शन कराए हैं। "कबहुं मन विश्राम न मान्यो" कहकर कवि ने साधन-

---

१. "मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह तें पुनि उपजहिं बहु सूला।।
काम वात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा।।
प्रीति करहिं जौ तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई।।
विषम मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना।।"
—(मानस, उ० का०)

२. "ममता दादु कंडु इरषाई, हरष विषाद गरह बहुताई।
पर सुख देखि जरन सोई छई, कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई।।"

३. "अहंकार अति दुखद डमरुआ, दंभ कपट मद मान नेहरुआ।
तृष्णा उदर वृद्धि अति भारी, त्रिविधि ईषना तरुव तिजारी।
जुग विधि ज्वर मत्सर अविवेका, कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका।"
—(मानस, उ० का०)

विफलता की ओर संकेत किया है जिसके द्वारा साधक की विवशता एवं कातरता प्रकट हो रही है।

आचार्य केशवदास जी ने भी जीवन को दुःखपूर्ण देखा तथा संसार को सुख रहित बताया। उन्होंने जीवन के प्रत्येक पहलू को देखा और उसको दुःखपूर्ण ही पाया—

अ—सबसे बड़ा दुःख तो जन्म-मरण का है। यह चक्र चलता ही रहता है।

आ—जन्म लेते हुए—गर्भ में कष्ट सहते हैं और बड़े कष्ट से गर्भ से बाहर आते हैं। तब शरीर सम्बन्धी व्यवहारों में पड़कर अन्त में कष्ट सहते हैं।

इ—बचपन में भली-बुरी वस्तु को नहीं जानता तथा सब कुछ मुँह में रख लेता है।[1]

ई—बचपन में माता-पिता से बड़े दुःख पाते हैं। शिक्षण में गुरु जी से दुःखित होते हैं।

उ—जवानी में संशय रूपी चिंता चित्त को चबाती है। क्रोध रूपी सर्प त्वचा को चबाता है। मनुष्य काम रूपी समुद्र की तरंगों में चंचल और यौवन बल में मदहोश रहता है।

---

१. "सुमति महामुनि सुनिये, जग महँ सुक्ख न गनिये।
मरणहिं जीव न तजहीं, मरि-मरि जन्म न भजहीं॥"—रा० च० २४/१
"उदरनि जीव परत है, बहु दुःख सों निसरत हैं।
अंतहु पीर अनतही, तन उपचार सहित ही॥"—रा० च० २४/२
"पोच भली न कछू जिय जानै, लै सब वस्तुन आनन आन।"—(रा० च०)
"हैं पितु मातन तें दुख भारे, श्रीगुरु ते अति होत दुखारे।"—रा० च० २४/४
"जारति चित चिता दुचिताई, दीह त्वचा अहि कोप चवाई।
काम समुद्र झकोरनि भूल्यो, यौवन चोर महामद भूल्यो॥"—रा० च० २४/५
"बंक हियेन प्रभा सँरसी सी, कर्दम काम कछू परसी सी।
कामिनि काम की डोरि ग्रसीसी, मीन मनुष्यन की बनसी सी॥"—रा०च० २४/७
"खैंचत लोभ दसौ दिसि को गहि मोह महा इत फाँसिहि डारे।
ऊँचेते गर्व गिरावत, क्रोधहु जीवहि लूहर लावत भारे।
ऐसे में कोढ़ की खाज ज्यों केशव मारत कामहु बाण निनारे।
मारत पाँच करे पँचकूटहि कासों कहै जगजीव बिचारे॥"—रा०च० २४/८
"कँपै उर बानि डंगै बर डीठि त्वचा ति कुचै सकुचै मति लेली।
नवै नवग्रीव थकै गति केशव बालकतें संग ही संग खेली।
लिये सब आधिन व्याधिन संग जरा जब आवै ज्वरा की सहेली।
भगै सब देह दशा, जिय साथ रहै दुरिदौरि दुराशा अकेली॥"
—(रा० च० २४/११)

ऊ—स्त्रियों की कुटिलता वंशी के काँटे के समान है, उनके हृदय की गुप्त कामेच्छा मांस का चारा है। स्त्री ही डोरी के समान है, कामदेव शिकारी है जो मनुष्य रूपी मीनों को फँसाकर मारता है।

ए—महा मोहरूपी गले में फाँसी है, उसको लोभ दसों दिशाओं में खींचता है, गर्व नीचे गिरा देता है। क्रोध जीव को जलते अंगारों में जलाता है, इस पर भी कोढ़ की खाज की तरह कामदेव पाँचों कामबाणों को एक साथ मारता है। बेचारा जीव अपना दुःख किससे कहे ?

ऐ—वृद्धावस्था में वाणी काँपने लगती है, दृष्टि डगमगा जाती है, त्वचा शिथिल होकर सिकुड़ जाती है, बुद्धि मंद पड़ जाती है, गर्दन झुक जाती है, जीने की दुराशामात्र शेष रह जाती है।

जीवन के दुःखपूर्ण पक्ष की ओर साहित्य की दृष्टि रही। इसलिए साधना क्षेत्र में दुःखत्राण की आवश्यकता प्रतीत हुई तथा गुरुभक्ति आध्यात्मिक क्षेत्र का त्राण सिद्ध हुई। "गुरू बिन होई न ग्यान" कहकर साधना-क्षेत्र में गुरू की अनिवार्यता पर जोर दिया गया। गुरू रूप माध्यम की अनिवार्यता के लिए मध्ययुगीन सभी कलाकार एकमत रहे। साधन विफलता क्रियात्मक रूप में संभावित त्रुटियाँ साधनागत निराशा आदि के समय गुरू-शरण आर्त्त प्राणी के लिए संतोष और शान्ति की योजना कर सकी।

गुरू-महत्ता के साथ गुरूपद की प्राप्ति भी महत्वपूर्ण बन गई तथा सच्चे गुरूओं के स्थान पर "गुरूडम" का प्रचार हो चला। इस अनाचार को देखकर कवि अति क्षुब्ध हो उठा। पदलोलुपता ने गुरू को गुरूडम के लिए विवश किया तो ऐसे ही शिष्यों के भी दर्शन होने लगे। शिष्य और गुरू में बहरे और अंधे का बानिक बन गया। एक (शिष्य) उपदेश नहीं सुनता और दूसरा (गुरू) देखता नहीं—उसे ज्ञानदृष्टि प्राप्त नहीं।

कवि ने गुरूडम से दुखित होकर सिद्धान्तरूप में घोषित किया कि जो गुरू शिष्य का धन हरण करता है पर शोक नहीं हरता वह घोर नरक में पड़ता है। अन्त में गुरूडम गुरू महिमा को लेकर ही विलीन हुई। धार्मिक क्षेत्र में यह एक क्रान्ति कही जा सकती है जिसने मूल भावना के उपदेश रूप को विडम्बना के आवर्तन में आमूल नष्ट कर डाला।

धार्मिक विधि से त्राण—धार्मिक विधि से त्राण पाने की लालसा ने भक्ति मार्ग में सरलतम साधना की खोज की। नारदजी ने प्रतिनिधित्व किया—

"राम सकल नामन ते अधिका,
होउ नाथ अघ खग गन बधिका।"

---

१. "गुरू सिष बधिर अंध का लेखा, एक न सुनइ एक नहीं देखा।"
हरइ सिष्य धन सोक न हरई, सो गुर घोर नरक महँ परई॥"—उ०क० ९९

इस वरदान को प्राप्त कर आसन, प्राणायाम, समाधि आदि-आदि कष्टकर धार्मिक विधियों से भक्त को त्राण मिला। "भाव कुभाव अनख आलसहू, राम जपत मंगल दस दिसिहू'—कहकर तो मानों भक्तों को सब प्रकार की छूट दे दी गई। जिस प्रकार मंदिर में घंटा बजाने तथा दर्शनमात्र से देवता की प्रसन्नता संभव हो सकी ठीक उसी प्रकार "राम राम कहि जे जमुहाहीं, तिन्हहिं न पाप पुँज समुहाहीं" पाप-मुक्ति के लिए सरलतम साधन सिद्ध हुआ। दुःखी एवं आर्त्त भक्त के लिए त्राणकर्ता नाम की परम प्रभावशीलता भी प्रकट हुई जब कवि ने राम की व्यापक महिमा की प्रतिष्ठा करते हुए दुःख निवृत्ति के लिए एक बार राम नाम लेना पर्याप्त बतलाया—

"बारक राम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ॥
जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा॥
अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरिनाम प्रभाऊ॥
कहाँ कहाँ लगि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुन गाई॥"

नैसर्गिक उत्सर्गों के समय "राम राम" कह लेने मात्र से साधनकार्य पूरा हुआ। धार्मिक विधिविधान के कष्टों के प्रति उदासीन जनरुचि ने ही कवि को धार्मिक साधना के अति सरल रूप के प्रकटीकरण के लिए विवश किया। इस साधना को कवि ने परम श्रेयस्कर भी सिद्ध किया—"नहिं कलि करम न भगति विवेकू, रामनाम अव-लंबन एकू।"

इस प्रकार नाम जप एवं नामस्मरण का युग धार्मिक क्षेत्र की नवीन अनुभूति के साथ प्रारम्भ हुआ जो अपनी सरलता के कारण सर्वप्रिय बन गया।

आचार्य केशवदास जी ने भी नाम महिमा की प्रतिष्ठा की। वशिष्ठजी "सब भाँति अशक्त" के लिए उपयुक्त साधन की जिज्ञासा करते हुए ब्रह्मा जी से पूछते हैं—

"चित माँझ जब आनि अरूझी।
बात तात पहँ मैं यह बूझी॥
योग याग करि जाहि न आवै।
स्नान दान विधि मर्म न पावै॥
है अशक्त सब भाँति बिचारो।
कौन भाँति प्रभु ताहि उधारो॥"

इसके उत्तर में ब्रह्मा जी ने नाम-महात्म्य की पुष्टि करते हुए कहा—

"जब सब वेद पुराण नसै हैं, जब तप तीरथ हू मिटि जैहैं।
द्विज सुरभी नहि कोउ बिचारै, तब जग केवल नाम उधारै॥"

मृत्यु समय प्रभु नाम-स्मरण पापविनाशक सिद्ध हो कर सहज ही स्वर्ग प्राप्त करा देता है, इस आस्था की ओर भी आचार्य जी ने निम्नलिखित शब्दों में संकेत किया—

"मरण काल कोऊ कहै, पापी होय पुनीत।
सुख ही हरिपुर जाइहै, सब जग गावैं गीत ॥"

—रा०च०२६/१०

साधु एवं असाधु का अन्तर भी आचार्य जी ने नाम-महात्म्य द्वारा निम्नलिखित रूप में प्रकट किया है—

"लेई जो कहिये साधु तेहि, जो न लेई सो बाम।
सब को साधन एक जग, राम तिहारो नाम ॥"

—रा० च० २५/४०

ब्राह्मण पूजा—मध्ययुग में ब्राह्मणों की दीन दशा पर कवि की करुणा जाग्रत हो उठी। अब तक वह समाज में पूज्य तथा सम्मानित था किन्तु तत्कालीन परिस्थितियों में वह गुणहीन ही नहीं अपितु शीलहीन भी हो गया। अतएव सम्मान के लिए अपेक्षित गुण शील के अभाव में उसके सम्मान की रक्षा कवि को करनी पड़ी। "पूजिन विप्र सील गुन हीना" कहकर कवि ने विप्रत्राण की सफल योजना की! इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिए कवि ने भिन्न-भिन्न अनुकूल प्रसंगों की योजना की। पुण्य करने के इच्छुक भक्तों को एकमात्र पुण्य का निर्देश किया गया—

"पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा, मनक्रमवचन विप्रपद पूजा।"

"भय बिन होई न प्रीति" के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के आधार पर कवि ने "जिमि द्विज द्रोह किए कुल नासा" का भयावना रूप भीरू-हृदय भक्तों के सम्मुख रखा। मर्यादा पुरुषोत्तम राम से इसकी सम्पुष्टि करा दी गई—"मोहि न सोहाई ब्रह्मकुल द्रोही।" अन्त में विप्र-पूजा द्वारा परम लाभ की भी योजना कवि ने की—

"मनक्रमवचन कपट तजि, जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत विरँचि सिव ताकें सब देव ॥"

कवि के प्रयास सफल हुए तथा विप्रपूजा के साथ ब्रह्मभोज की भी सामाजिक व्यवस्था अनिवार्य हो गई। जीवन के प्रत्येक शुभाशुभ कार्यों के अवसर पर ब्रह्मभोज अनिवार्य हुआ जिसके फलस्वरूप मृत्यु भी व्यय-भार से आक्रान्त होकर समाज के लिए अभिशाप बन गई। दरिद्रता के क्रोड़ में मरणासन्न प्रियजन की मृत्यु से भी आर्थिक संकट की संभावना होने लगी। मध्ययुगीन सरल हृदय कवि को संभवतः इस शोचनीय दशा की आशा न थी।

आचार्य केशवदास जी स्वयं सनाढ्यब्राह्मण थे। अतएव उन्होंने ब्राह्मणों में भी सनाढ्यों की पूजा का विधान रखा—

"सनाढ्य जाति सर्वदा! यथा पुनीत नर्मदा !!
भजैं सजै ते संपदा! विरुद्ध ते असंपदा ॥"—रा० च० ३४/५६
"सनाढ्य वृत्ति जो हरे। सदा समूल सो जरै ॥

अकाल मृत्यु सो मरै। अनेक नर्क सो परै ॥"—रा० च० ३४/५७

सनाढ्य पूजा का फल बताते हुए आचार्य जी ने कहा—

"सनाढ्य पूजा अघ ओघ हारी। अखंड आखंडन लोकधारी ॥

अशेष लोकावधि भूमिचारी। समूल नाशै नृप दोष कारी ॥"—रा० च० २१/२०

जीवन के दुःखवादी दृष्टिकोण ने दुःख-निवृत्ति के लिए एक परम शील एवं परम शक्तिवान साध्य की प्रतिष्ठा की। 'शरणागत-वत्सलता' साध्य का प्रमुख गुण बतलाया गया। कोई कैसा ही पापी क्यों न हो, भगवान् की शरण में आवे तो प्रभु उसको अविलम्ब अपना लेते है। यह विश्वास मध्ययुगीन कवि को शोकसंतप्त आध्यात्मिक पथ के पथिक के सम्मुख रखना पड़ा।

भक्त की जिज्ञासा हुई—किस पापी को अपनाया जा सकता है? कवि ने शंका का समाधान करते हुए कहा—जिसको करोड़ों विप्र-वध के पाप लगे हों अथवा जो चराचर द्रोही हो वह भी भगवान् की शरण में ले लिया जायगा। उसको भी भगवान् अविलम्ब अपना लेगे। इस प्रकार पापों की आत्यंतिक दशा में उद्धार की संभावना तथा प्रभु कृपा का विश्वास हुआ।[1]

'मानउँ एक भगति नर नाता' कह कर कवि ने वर्ण-व्यवस्था के भेदभाव को भी दूर किया। धार्मिक जगत में शूद्रों और स्त्रियों को धार्मिक कृत्यों के अधिकार न थे। इस भेदभाव के प्रति कवि की चेतना सजग हुई तथा उसे उपर्युक्त सिद्धान्त की प्रतिष्ठा करनी पड़ी। इस तथ्य के स्पष्टीकरण के लिए कवि ने दृढ़तापूर्वक कहा कि यदि अति नीच प्राणी भी भक्त है तो वह भगवान् को प्राणों से भी प्यारा है।

"भगतिवंत अति नीचउ प्रानी, मोहि प्रान प्रिय अस मम बानी।"

"दीनबन्धुत्व तथा दीन दयालुता" भगवान् का सहज "बाना" बताया गया जिससे दीनों को अपने दैन्य के कारण प्रभु शरणागति प्राप्त करने में कोई आशंका न रहे। बिना किसी निमित्त के सहज स्वभाववश ही दीनों पर भगवान् का दयालु होना बतलाया गया। "जिसके लिए कोई अन्य गति न हो वह केवल भगवान् को ही प्रिय लगता है," कवि का यह संदेश प्राणीमात्र में प्रभुभक्ति का संचार करने में समर्थ हुआ—

"एक बानि करुना निधान की,
सो प्रिय जाके गति न आन की।"

कवि ने प्रभु को परम सुन्दर, परम शक्तिवान तथा परम शीलवान प्रतिष्ठित कर परमाराध्य निश्चित किया। ऐसे परम उदार तथा दीनवत्सल भगवान् की शरण में जाकर शोकसंतप्त जीव का अविलम्ब उद्धार होना स्वाभाविक था। भगवान् के इस

---

१. जो नर होइ चराचर द्रोही, आवै सभय सरन तकि मोही।
तजि मद मोह कपट छल नाना, करउँ सद्य तेहि साधु समाना।
कोटि विप्र वध लागहिं जाहू, आए सरन तजउँ नहिं ताहू।
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं, जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

शील और स्वभाव से कवि ने सबको परिचित करा दिया। अब उनको कोई ऐसा कारण दिखलाई नहीं देता कि जीव ऐसे भगवान् की शरण में न जाय! यदि ऐसा कोई जीव कहीं हो सकता है तो उस पर गोस्वामी जी को निम्नलिखित शब्दों में क्रोध आता है—

"सुनि सीतापति सीलसुभाऊ
मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाऊ।"

समाज—गृह-व्यवस्था को सुव्यवस्थित तथा संयत करने की दृष्टि से कवि ने लोक धर्म की प्रतिष्ठा की। पिता, पुत्र, भ्राता, पत्नी, परिजन एवं पुरजन आदि प्रत्येक सदस्य के लिए आदर्श कर्त्तव्यों की प्रतिष्ठा की गई। पुत्र के लिए माता-पिता की आज्ञा-पालन के परम आदर्श का निर्वाह कितना कठोर एवं कष्टकर हो सकता है—यह कवि ने आदर्शपुत्र राम के चरित्र द्वारा दिखलाया। इसी प्रकार उन्होंने अन्य आदर्शों की प्रतिष्ठा रामकथा के विभिन्न चरित्रों के आदर्श चित्रण द्वारा की है। कोरे उपदेशों के स्थान में कवि का यह प्रयास विशेष सफल तथा स्तुत्य रहा है। समाज की सुव्यवस्था में कवि का महत्त्वपूर्ण योग है।

शोकानुभूति—शोकानुभूति के बाह्य व्यंजकों का दिग्दर्शन मूल प्रकरणों में किया गया है। यहाँ शोकानुभूतिगत सामाजिक विश्वास एवं आस्थाओं पर विचार किया जा रहा है—

अ—प्रियजन की मृत्यु का समाचार प्राप्त कर "निरंब व्रत" का संकेत साहित्य में हुआ। इसका दृढतापूर्वक पालन होता था। संभवतः दिवंगत आत्मा के लिए सम्मान प्रदर्शन का यह अपेक्षित साधन समझा जाता था। सिर के बाल भी मुँड़वा दिये जाते थे।[1]

(आ) प्रेतकर्म[2] का विवरण इस प्रकार है :—

---

१. मुडित केस-सीस, विह्वलदोउ, उमँगि कंठ लपटाने।

—सू० सा० ६/५२/४६६

२. आईने अकबरी में प्रेतकर्म का विस्तृत विवरण इस प्रकार दिया हुआ है—

"जब मनुष्य मरणासन्न होता था लोग उसे जमीन पर लिटाते थे, सिर के बाल बनाते थे, (सुहागिन स्त्री के बाल नहीं बनाए जाते थे) और उसे स्नान कराया जाता था। दान दिए जाते थे और ब्राह्मण आकर प्रार्थना करता था। गोबर से स्थान लीपा जाता था और कुछ कुश डालकर उसे पृथ्वी पर चित्त लिटा दिया जाता था। उसके पैर दक्षिण में और सिर उत्तर को होता था। जब वह मरने को होता था तो उसके मुख में गंगाजल और सोना अथवा अन्य जवाहारात डालते थे। गाय पुण्य की जाती थी और उसकी छाती पर तुलसी रखी जाती थी और सिर पर एक विशेष प्रकार की मिट्टी से तिलक लगाया जाता था। मृत्यु के बाद उसका छोटा पुत्र, भाई, शिष्य और अन्य मित्र अपनी डाढी और मूँछ बनवाते थे और कहीं-कहीं दस दिन तक नहीं बनवाते थे। मृत शरीर को किसी चादर या कपड़े से लपेटते थे। लाश को किसी नदी के किनारे ले जाते थे और एक चिता पलाश की लकड़ियों की बनाई जाती थी और लाश उसके ऊपर रखी जाती थी। मंत्र पढ़कर घी तथा स्वर्ण शरीर के रन्ध्रों में डाला जाता था। सबसे छोटा लड़का या सबसे छोटा भाई या सबसे बड़ा भाई दाहसंस्कार करता था।"—(आईने अकबरी भाग ३, पृष्ठ ३२२)

(१) शव को स्नान कराया जाता था—
"नृप तनु वेद विदित अन्हवाबा।"—(मानस २/१६९/१)

(२) शरीर के बंधन तोड़ दिए जाते थे—
"तोरि लियो कटिहू को डोरा···।"—(सूरसागर ३७)

(३) रस्सी से बाँधकर अर्थी बनाई जाती थी—
"प्रेत प्रेत तेरौ नाम परयौ, जब जेबरि बाँध निकारियौ॥"
—(सूरसागर ३३६)

(४) शव को सुगन्धित वस्तुओं के साथ जलाया जाता था—
"चंदन अगर भार बहु आये, अमित अनेक सुगंध सुहाये"
—(मानस १६९/२)

(५) शव को पिण्डदान दिया जाता था—
"तेहि कर-कमल कृपाल गीध कहै, पिंड देइ निज धाम दियौ।"
—(विनयपत्रिका १३८)

(६) कपालक्रिया की जाती थी—
"तेई लै खोपरी बाँस दै, सीस फोरि बिखरै दै।"

(इ) **दिवंगत आत्मा के लिए दशागात्र विधान** अपेक्षित था। दस दिनों तक 'दीपदान' तथा आत्म-शान्ति के कार्य होते रहते थे। 'त्रियोदशा' के स्थान पर 'एकादश' प्रचलित में था।[१]

(ई) **पति के साथ स्त्री का सती होना** प्रचलित था किन्तु सती होने के लिए उसको विवश नहीं किया जाता था। उसकी स्वेच्छा ही इस संबंध में मान्य थी। पुत्र-दर्शन की लालसा से दशरथ की रानियाँ सती होने से विरत हो जाती हैं।[२]

(३) **मृत शरीर** को चिता तक सजाकर विमान द्वारा ले जाया जाता था। विमान संभवतः पूर्ण आयुप्राप्त सुखसमृद्धिशाली व्यक्तियों के लिए ही बनाया जाता था।[४]

---

१. एहि विधि दाह क्रिया सब कीन्ही, विधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही।
सोधि सुमृत सब वेद पुराना, कीन्ह भरत दसगात विधाना॥

२. दिन दस लौं जलकुंभ साजि सुचि, दीप-दान करवायौ।
जानि एकादस विप्र बुलाए, भोजन बहुत करायौ॥—सू० सा० ९/५०/४९४

३. नृप तनु वेद विदित अन्हवावा, परम विचित्र विमानु बनावा।
गहि पद भरत मातु सब राखीं, रहीं रानि दरसन अभिलाषी॥
चंदन अगर सुगंध और घृत, विधि करि चिता बनायौ।
चले विमान संग गुरु-पुरजन, तापर नृप पौढ़ायौ॥

(ऊ) **दिवंगत आत्मा के लिए तर्पण** किया जाता था।[1]

(ए) **अपशकुन में आस्था** तत्कालीन समाज में अपशकुन में आस्था प्रचलित थी। शोकानुभूति के संबंध में काग का बुरे स्थान पर बैठकर बुरी भाँति काँव-काँव करना तथा गदहे और सियारों का विपरीत बोलना विशेष उल्लेखनीय है। साथ ही अवयवों के फड़कने के फलस्वरूप प्रचलित अपशकुनों की ओर भी कवियों का संकेत रहा।[2]

(ऐ) **भयानक स्वप्नों से अशुभ** एवं **अमंगल की अशंका**-संभव बनाई गई जिससे अनेक प्रकार की बुरी कल्पनाओं का मन में जाग्रत होना स्वाभाविक था।[3]

(ओ) **अशुभ की आशंका** —निम्नलिखित घटनाओं के कारण अशुभ की आशंका हो उठती थी--(अ) श्रवणफूल का खिसकना, (आ) अस्त्रशस्त्रों का हाथों से गिरना, (इ) योद्धाओं का रथ से गिरना, (ई) हाथी-घोड़ों का साथ छोड़कर चिंघाड़ते हुए भागना, (उ) स्यार, गीध, कौवे और गदहों का शब्द करना, (ऊ) कुत्तों का बहुत अधिक भोंकना, (ए) उल्लू का भयानक शब्द करना, (ऐ) गीधों का उड़ कर सिर पर बैठना।[4]

(औ) —**समाज में बहु विवाह की कुप्रथा** प्रचलित थी जिसके दुष्परिणाम का उद्घाटन राम-कथा द्वारा हुआ। दशरथ-मरण, राम-वनवास, सीताहरण, आदि आदि घटनाएं इस कुप्रथा के कारण ही संभव हुई। इसीलिए रामराज्य के अन्तर्गत कवि ने एक पत्नीव्रत की प्रतिष्ठा की।

नारी —नारी के गिने-चुने आदर्श चरित्रों के अतिरिक्त कवि ने नारी के प्रति प्रायः उदासीनता एवं उपेक्षा ही प्रकट की। साधना क्षेत्र में अपने संयम की दुर्बलता का आरोप नारी के चरित्र में करके नारी को साधना क्षेत्र के लिए सदा बाधक समझा गया। कहना न होगा कि नारी-जीवन को जीवन की वास्तविक दृष्टि से देखने का कवि को न अवकाश था और न कवि ने इसकी आवश्यकता ही समझी।

नारी-चरित्र के संबंध में अविश्वासी पुरुष ने नारी के लिए प्रयास निर्धारित किए वृद्ध, रोगी, जड़, निर्धन, अंधा, बधिर, क्रोधी, दीन, चोर, जुआरी, व्यभिचारी, अधम, अभागी, कुटिल, आदि कैसा ही दुर्गुणी पति क्यों न हो मनवचनकर्म से पत्नि को उसकी सेवा करनी चाहिए। उसको त्यागा नहीं जा सकता। पति अपमान करके

१. भस्म अंततिल-अंजलि दीन्हीं, देव विमान चढ़ाओ—॥ सू० सा० ९/५०/४८
२. "धरि चित धीर। गये तीर, शुचि हूवै शरीर। पितु तर्पि नीर।"
—(रा० १०/३२)
३. लंका-काण्ड—७८/८५
४. अनरथु अवध अरंभेउ जब ते, कुसुगुन होहिं भरत कहुँ तब ते।
देखहिं राति भयानक सपना, जागि करहि कटु कोटि कलपना॥"

घोर नरक भोगना पड़ेगा।[1]

अन्यत्र नारी के चरित्र में स्पष्ट शंका की गई। भाई, पिता, पुत्र अथवा किसी भी सुन्दर पुरुष को देखकर स्त्री विह्वल हो जाती है तथा अपने मन को नहीं रोक सकती। वह उसी प्रकार द्रवित हो उठती है जिस प्रकार सूर्य को देखकर सूर्य-मणि द्रवित हो जाती है। इस प्रकार नारी "सहज अपावनी" होती है। केवल पतिप्रेम से ही उसका उद्धार संभव है। यह अवश्य है कि नारी के संबंध में प्रस्तुत कथन तथा अन्य टिप्पणियाँ संस्कृत-साहित्य में पहले से ही उपलब्ध थीं तथा हिंदी के कलाकारों ने वहीं से यह सामग्री ली है। फिर भी, इस चयन में कवि की रुचि और सहमति का तो पता लगता ही है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने भी सती सीता से "कछुक दुर्बाद" कह डाले जिन्हें सुनकर जातुधानी तक विषाद करने लगीं। पुनश्च सीता का अग्नि में रखना भी सत्य का उद्घाटन करने में समर्थ है। आदर्श नारी चरित्रों के अन्तर्गत "सती का दुराउ"—"नारि सुभाउ प्रभाउ" के अन्तर्गत रखा गया। सती भी परिताप के फलस्वरूप नारी को "सहज जड़" तथा "अग्य" बताती हैं। कैकेयी के चरित्र से तो "नारी-विश्वास" ही जाता रहा। "नारि गति" जानना असंभव समझा गया। नारी अबला कही जाती है किन्तु वही सबला होकर क्या नहीं कर सकती। अतः कवि नारि से सदा सशंकित रहने की सलाह देता है।

लक्ष्मण-शक्ति के अवसर पर राम भी "नारि हानि विशेष छति नाहीं" कहकर नारी के सामाजिक महत्व को क्षतविक्षत कर डालते हैं। कवि ने कथावस्तु का मंगल-मय प्रशंसित भाग पुरुषपात्रों के लिए रखा है तो कलंकित तथा अपश्रुत भाग स्त्री पात्रों के सिर मढ़कर उन्हें प्रपंचात्मक जगत का कारण सिद्ध किया है। कवि के वैय-क्तिक क्षोभ एवं तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों ने नारी की सामाजिक स्थिति अति शोचनीय बना दी। कवि को पग-पग पर नारी-चरित्र के लिए उपालम्भ देने पड़े।

---

१. "वृद्ध रोगबस जड़ धन हीना, अंध बधिर क्रोधी अति दीना।
ऐसेहु पति कर किए अपमाना, नारि पाव जमपुर दुख नाना।—तुलसी
"नारी तजै न आपनो सपनेहू भरतार।
पंगु गुंग बौरा बधिर अंध अनाथ अपार।
बालक पंहु कुरुप सदा कुवचन जड़ जोगी।
कलही कोही, भीरू चोर जुआरी व्यभिचारी।
अधम अभागी कुटिल कुमति पति तजै न नारी॥"—केशव
यही नहीं—"नारि न तजहि मरे भरतारहिं, ता संग सहहि धनंजय झारहिं।"

२. "भ्राता पिता पुत्र उरगारी, पुरुष मनोहर निरखत नारी।
होइ विकल सक मनहिं न रोकी, जिमि रवि मनि द्रव रविहि विलोकी।"
"एकइ धर्म एक व्रत नेमा, काम वचन मन पतिपद प्रेमा।"

क्षुब्ध होकर दोषों का उद्घाटन करना पड़ा तथा क्रुद्ध होकर दण्ड की व्यवस्था करनी पड़ी—

"ढ़ोल गँवार शूद्र पशु नारी ; ये सब ताड़न के अधिकारी ।"

आचार्य केशवदास जी ने पतिव्रत धर्म की मर्यादा का भी निर्देश किया है। सब कुछ साधन ही क्या, जीवन की नितान्त आवश्यकताओं से भी उसको वंचित रखने का विधान किया गया है। उसकी तपस्या का कारुणिक दृश्य निम्नलिखित शब्दों में यहाँ अवलोकनीय है—

"गान बिन मान बिन हास बिन जीवही,
तात नहिं खाय जल सीत नहिं पीवही ।
तेल तजि खेल तजि खाट तजि सोवही,
सीत जल न्हाय नहिं उष्ण जल जोवही ।
खाय मधुरान्न नहिं पाँय पनही धरै,
काय मन वाच सब धर्म करिवो करै ।
कृच्छ उपवास सब इन्द्रियन जीतही,
पुत्र सिख लीन तन जौं लगि अतीतहीं ॥"

दुष्ट मित्र के प्रति क्षोभ—कवि ने समाज में सन्मित्र के आदर्श की आवश्यकता अनुभव की। राम-सुग्रीव मैत्री में मित्रता के आदर्श की स्थापना की गई। दुष्ट मित्रों पर भी कवि की दृष्टि गई। उनके सम्बन्ध में कवि का क्षोभ निम्नलिखित रूप में प्रकट हुआ—

जो मित्र के दुःख में दुःखी नहीं होता उसको देखना भारी पाप है। अपना महान दुःख धूल के समान अल्प तथा मित्र के धूल के समान अल्प दुःख को पर्वत के समान महान समझना सन्मित्र का धर्म है। जिनको ऐसी बुद्धि सहज ही प्राप्त नहीं है वह दुष्ट क्यों मित्रता करते हैं। जो मित्र मित्र के सामने बना-बना कर मीठी बातें करते हैं तथा उसके पीछे उसका बुरा चाहते हैं तथा जिनके मन में कुटिलता है ऐसे कपटी मित्रों के परित्याग में ही भलाई है। कपटी मित्र शूल के समान पीड़ा देने वाला होता है।[1]

राजा का आदर्श—विदेशी सत्ता के अत्याचारों में सिसकती हुई प्रजा की मूक आह कवि के कानों में पड़ी, प्रजा के दुःख को दूर करने के लिए राजा उदासीन थे, अपने राज-वैभव तथा भोग-लिप्सा में राजाओं को प्रजा के दुःख की चिन्ता ही किस प्रकार हो सकती थी! कवि ने राजा के आदर्श की प्रतिष्ठा की। राम आदर्श

१. "जे न मित्र दुख होहिं दुखारी । तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी ॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना । मित्रक दुख रज मेरु समाना ॥
जिन्ह के अस मति सहज न आई । ते सठ कत हठि करत मिताई ॥
आगे कह मृदु वचन बनाई । पाछें अनहित मन कटुलाई ॥
जाकर चित अहि गति सम भाई । अस कुमित्र परिहरेंहि भलाई ॥"

के रूप में समाज के सामने रखे गए, साथ ही तत्कालीन परिस्थितयों पर भी कवि ने प्रकाश डाला—जिस राजा के राज्य में प्रजा दुखी रहती है, वह राजा अवश्य ही नरक का अधिकारी होता है, इस संकेत में प्रजा को सुख एवं शान्ति न मिल सकी किन्तु यह स्पष्ट है कि प्रतीकार भावना के अन्तर्गत उसकी वेदना सह्य हो गई, उसे विश्वास हो गया कि उसके दुःखों के फलस्वरूप राजा को यहाँ नहीं तो मरने के पश्चात् अवश्य दण्ड भोगना पड़ेगा। शताब्दियों से पदाक्रान्त समाज इससे अधिक और सोच ही क्या सकता था। प्रत्यक्ष विरोध करने का न उसमें साहस था न शक्ति।

आचार्य केशवदास जी ने इस तथ्य को दूसरे दृष्टिकोण से देखा है। उन्होंने "राजश्री" को दुखमूल बतलाया। उसको प्राप्त कर "कहि को न नरकहिं जाय" परिणाम निश्चित किया। आचार्य जी ने आगे बताया कि राजश्री धर्म, वीरता, विनय, सत्यता, शील, आचार, वेदपुराण विचार आदि को कुछ नहीं गिनती।[1] इस प्रकार विदेशी सत्ता के अत्याचारों के प्रति उदासीनता को प्रकट कर कवि ने जन क्षोभ को एक मोड़ दिया। वह यह समझने लगे कि राजश्री में अवगुण तो होते ही हैं।

शूद्रों का स्थान—धार्मिक क्षेत्र में वर्ण-भेद के संबन्ध में प्रायः भक्त कवियों की उदार वृत्ति रही। भगवद् भक्ति में "एक भगति कर नाता" मानकर वर्ण-भेद के लिए कोई स्थान नहीं रखा। पौराणिक कथाओं की भी सृष्टि हुई जिनके अन्तर्गत दिखलाया गया कि शूद्रवर्ण के भक्तों को भी भगवान् ने गले से लगा लिया तथा शरणागति प्रदान की किन्तु समाज में व्यवस्था की दृष्टि से कवि को शूद्रों का विद्रोह तथा विरोध श्रेयस्कर प्रतीत नहीं हुआ। इसीलिए "ताड़न के अधिकारी" कह कर समाज के कठोर नियंत्रण में रखने की कवि ने आवश्यकता समझी।

दर्शन—मध्ययुगीन साहित्य में भिन्न-भिन्न दार्शनिक विचारों के विवेचन का साथ जीवन के दुःखात्मक पक्ष को सह्य बनाने की दृष्टि से दार्शनिक सरल आस्थाओं की प्रतिष्ठा की। जनसाधारण की दार्शनिक टिप्पणियों का श्रीगणेश सम्भवतः इसी युग से हुआ। गूढ़ तात्विक विवेचन का साधारण जन समाज के पास न अवसर था न इतना बुद्धि-कौशल। अपनी असहायावस्था, निराशा, विवशता तथा वेदना में जन-समूह कहीं नष्ट न हो जाय इस भय से रक्षा योजना के लिए साहित्य ने सहज एवं सरल आस्थाओं को जन्म दिया।

कर्त्तव्याकर्त्तव्य के निश्चय के असमंजस में कर्ता जो कुछ उलटा सीधा निश्चय करले उसीमें उसको अपना क्षेम समझना चाहिए, इस प्रकार से मुक्ति दिलाते हुए कवि ने कहा—

---

१. "धर्म वीरता सत्य शील आचार।
राजश्री न गनै कछू, वेद पुराण विचार॥"—(रामचन्द्रिका, पृष्ठ ४१)

"होइ है सोई जो राम रचि राखा ;
को करि तरक बढ़ावहिं साखा ।"

तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों में अभावगत क्षोभ प्रायः प्रतिलक्षित हुआ। भाग्यवाद के प्रश्रय में इस क्षोभ से मुक्ति का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया—

"सकल पदारथ हैं जग माहीं,
करम हीन नर पावत नाहीं ।"

जीवन के शोकपूर्ण अवसरों को विधि-निर्दिष्ट कहकर कवि ने दुःखनिवृत्ति की योजना की—

"सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ ।
हानि लाभ जीवन मरन, जस अपजस विधि हाथ ॥"

तथा

"उमा दारु जोषित की नाई । सबहिं नचावत राम गोसाई ॥"

"विधि के लिखे अंक निज भाला" जलते हुए कपाल से पढ़ लेने की कथा ने जीवन-दर्शन को एक विशेष दृष्टिकोण दिया। इस जन्म के सभावित कार्य पूर्व से ही विधि निर्धारित हैं। अपनी स्वेच्छा से कोई कार्य नहीं किया जा सकता। शुभाशुभ सभी कार्य विधिनिर्देश के अनुसार होते है। जिस प्रकार नट कठपुतली को जिस भाँति नचाना चाहता है वह नाचती है ठीक उसी प्रकार मनुष्य अपने आप में स्वतन्त्र नहीं है, विधि के अनुसार उसे भी नाचना पड़ता है। "विधि कर लिखा को मेटनहारा" इस चिन्तन का मूल आधार कहा जा सकता है।

अध्यात्म मार्ग में भी राम कृपा के बिना भक्ति रूपी मणि को कोई प्राप्त नहीं कर सकता। उस परम सत्ता को भी वही जान सकता है जिसको वह परम सत्ता अपने आप जताना चाहे। इस प्रकार सामाजिक वेदना, लौकिक दुःख एवं क्लेश तथा प्रभु भक्ति आदि सब कुछ पूर्व निर्धारित है तथा तदनुसार ही भोग्य हैं।[1]

जीवन के दुःखवादी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति मस्तमौला कबीर के काव्य में हुई। उन्होंने स्पष्ट रूप से निर्देश किया कि शरीरी कोई भी सुखी नहीं है—

"जो देखा सो दुखिया देखा,
तन धरि सुखिया कोई न देखा ।"

आचार्य केशवदास जी ने भी संसार को दुःख-मूल कहा है। जन्म-मरण संसार में सबसे बड़ा दुःख है। आचार्य जी इसकी ओर संकेत करते हुए कहते हैं—

"सुमति महामुनि सुनिये, जग मँह सुक्ख न गुनिये ।"

---

१. "सो मनि जदपि प्रगट जग अहई, राम कृपा बिन नहिं कोउ लहई ।
सोइ जानइ जेहि देहु जनाहि, जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ आइ ।
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई, राम कृपा बिन नहिं कोउ लहई ॥"

उपसंहार—उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर संक्षेपतः कहा जा सकता है कि मध्ययुगीन काव्य ने जीवन के दुःखवादी दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा की। दुःख एवं वेदना को सह्य बनाने के लिए पूर्व जन्म तथा विधि-विधान की ओर संकेत किया गया। कर्म-काण्ड के प्रति क्षोभ प्रकट किया गया। सहज वृत्ति एवं सरलता की ओर जनरुचि रही जिसके फलस्वरूप साधना को सरल ही नहीं प्रत्युत् सरलतम बनाया गया। जीवन में एक बार नाम-स्मरण ही उद्धार के लिए अलभ् समझा गया। नाम-स्मरण की व्यवस्था "भावकुभाव अनखआलसहू" में करके साधना को अति सरल बना दिया गया।

: ३ :

लोक-गीतों में करुण रस

लोक-साहित्य का रचनाकाल—सृष्टि की अनुभूति के साथ ही मानव-अभिव्यक्ति की उद्भावना हुई। लोक-साहित्य के रूप में मानव की अनुभूतियाँ मुखरित हो उठीं। यह इतनी चारु तथा प्रभावात्मक थीं कि लोक-गीतों की मौखिक परम्परा प्रचलित हो गई तथा यह प्रवृत्ति विश्वव्यापी रही।

शताब्दियों तक इस साहित्य की ओर शिक्षित समाज की दृष्टि ही नहीं गई। जब कभी इस साहित्य के श्रवण का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो इस अवसर को शिक्षित समाज ने अपना दुर्भाग्य ही समझा।

लोकगीत-साहित्य की सृष्टि, साहित्य की सृष्टि से बहुत पूर्व प्रारम्भ हो चुकी थी। सिजविक की खोज के आधार पर कहा जा सकता है कि लोक-गीत की सृष्टि यहाँ तक कि वर्णमाला की सृष्टि से भी पहले की है, वह अनुभूति का अंग है और निरक्षर जनता की सम्पत्ति है।

पुरातत्व प्रेमी विद्वानो ने इस साहित्य का संग्रह किया तथा इसको सदा के लिये लुप्त होने से बचा लिया।

लोक-साहित्य के पारावार से काव्य-साहित्य के लिये सदा अमूल्य सामग्री मिलती रही है। लोक की सरल एवं प्रिय कल्पना साहित्य के लिए सदा आकर्षण की वस्तु रही है।[1]

---

१. "देश के साधारण लोगों के अन्दर पहले-पहल कई भाव छोटे-छोटे काव्य बनकर चारों ओर एकत्रित होकर चक्कर लगाते रहते हैं; उसके बाद कोई कवि एक बड़े काव्य के सूत्र में बाँध कर उसे बृहद्रूप दे देता है। महादेव-पार्वती की कई कथाएँ जो किसी भी पुराण में नहीं हैं, राम और सीता की कई कहानियाँ जो मूल-रामायण में नहीं मिलतीं— ग्रामों के गायकों और कथक्कड़ों के मुखों से गाँवों के आँगनों में टूटे-फूटे छंदों और ग्राम्य भाषा के द्वारा न जाने कितने काल पर्यन्त प्रचारित होती रहीं हैं। भारत में, रामायण की रचना करते समय आदि-कवि बाल्मीकि को भी राम संबन्धी नाना लोक-गीतों का सहारा मिला होगा।"

—(साहित्य—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर १९२९, पृष्ठ ८८-८९)

लोक-गीत रचना—इन गीतों की मूल स्त्रैण प्रवृति के फलस्वरूप इन गीतों में विषयगत एक विशेषता आ गई है और वह है उनकी मार्मिक टेक। भावावेश की दशा में यह टेक अनायास ही मुखरित हो उठती होगी तथा इसके सहारे आगे गीत बुन लेना सरल रहा होगा। एक उदाहरण द्वारा इस कथन को यहाँ स्पष्ट कर देना उचित होगा।

विदा के समय लड़की के मुख से हठात् ये शब्द फूट पड़े—'बलमुआ नइहरवा छोड़ा दिया रे'। लड़की के यह उद्‌गार कितने सरल, स्वाभाविक तथा मार्मिक हैं। साढ़े तीन शब्दों की इस टेक में विदा होती हुई लड़की की विवशता, बालम के प्रति रति, परिवार से विदा होने का अपार दु:ख आदि सब कुछ कूट-कूट कर भरा है। इसकी मार्मिकता क्या खाली जा सकती थी। इसीलिए इसके सहारे अविलम्ब निम्न-लिखित गीत बुन लिया गया—

"बलमुआ नइहरवा छोड़ा दिया रे ।। टेक ।।
आमा छोड़ा दिया, बाबा छोड़ा दिया, चाचा छोड़ा दिया रे।
काका छोड़ा दिया, काकी छोड़ा दिया, भइया छोड़ा दिया रे ।।"

इस प्रकार के गीतों के साथ गीतों की रचना के अन्य रूप भी मिलते हैं किन्तु लोकगीत साहित्य के मूलगीत इसी रूप में रहे होंगे यह तथ्य सारपूर्ण प्रतीत होता है।

करूणरस के लोक-गीत

यहाँ करुणरस से संबंधित लोकगीतों का अध्ययन दो रूपों में किया जायगा—(क) सामान्य लोकगीत और (ख) रामकथा से सम्बन्धित लोकगीत।

(क) सामान्य लोक-गीत—समाज की दरद्रिता, विवश एवं असहायावस्था सामाजिक विषमतागत गीतों के आधार हैं। आर्थिक समस्याओं के अन्तर्गत जमींदारों के अत्याचार, साहूकारों की कठोरता, सामाजिक उत्सवों एवं धार्मिक कृत्यों पर अर्थ-संकट के कारण अन्यमनस्कता एवं विवशता आदि विषय रहे हैं। भारतीय आदर्शों के अनुकूल इन विषयों के सम्बन्ध में लोक की वाणी प्राय: मुखरित न हो सकी। इसीलिए इन विषयों से सम्बन्धित गीतों का प्राय: अभाव है सावन के गीत, सोहर के गीत, छठी बधाई आदि के गीत आनन्द एवं उल्लास के गीत, कहे जा सकते हैं। प्रसंगानुकूल इन गीतों को यहाँ छोड़ दिया गया है।

व्यवहारिक समस्याओं में लड़की की विदा, बहू के साथ सास-ससुर एवं जेठ-ननद आदि का कटु व्यवहार, निपुत्रत्त्व तथा वैधव्य आदि विषय आते है। इन विषयों से सम्बन्धित गीतों में समाज की वेदना मुखरित हो उठी हैं।

उपर्युक्त सामाजिक पृष्ठभूमि के आधार पर लोक-साहित्यगत करुण मनोभावों

की विवेचना दो स्थूल शीर्षकों के अन्तर्गत की जा सकती है—अ—नारी-जीवन सम्बन्धी और आ—अन्य।

नारी-जीवन सम्बन्धी लोकगीतों के द्वारा नारी-जीवन की वेदना का मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित किया गया है। नारी जीवन की प्रथम चिन्ता उस समय होती है जिस समय योग्य वर की खोज में पिता विदेश के लिए प्रयाण करना चाहते हैं। अपने भावी जीवन के सम्बन्ध में चिन्तित बालिका लोकलाज के अन्तराल में स्वयं ही निवेदन करने के लिए विवश हो जाती है। पिता रथ में जाने के लिए प्रस्तुत हैं। "बाई ने रथ थाम लियो।" पिता ने कहा, "बाई ए माँगण होय सो माँग, ओ रथ म्हारो हाँकण द्यो।"

आदर्श गाथाओं में पालितपोषित बालिका आदर्श पति तथा आदर्श सास, सुसर एवं देवर-जेठ की इच्छा प्रकट करती है—

"दादाजी, वर माँगू भगवान, देवर छोटो लिछमणजी;
दादाजी, सासू कौशल्या माय, ससुरो तो राजा जसरथजी।"

विवाह के पश्चात् विदा का मार्मिक दृश्य आता है। जिसके सम्बन्ध में अनेक करुणापूर्ण गीत प्राय: प्रत्येक भाषा के लोक-साहित्य में मिलते हैं। लड़की की विदा हो जाने से घर में एक विशेष सूनापन आ जाता है। अब लड़की की अनुपस्थिति में घर के कार्य किस प्रकार होंगे—इस प्रकार की विरहजन्य भावना स्वाभाविक है। "बाबा का बाग कौन सींचेगा, बाग में फूल फूले हैं उन्हें कौन तोड़ेगा, बाग में झूला पड़ा है उस पर कौन झूलेगा, आदि विरहगत जिज्ञासाएँ तथा घर में गुड़ियों का इधर-उधर पड़ा रहना, किसी सखी सहेली का घर न आना, माता का नीर बहाना आदि अति स्वाभाविक तथ्य विदा के गीतों में प्रकट हुए हैं। उदाहरणतया यहाँ विदा का एक गीत देख लेना आवश्यक होगा—

"हरिये वन री कोयली,
थारे बाबा साँ बाग लगायो ए बनड़ी थारे बिन कुण सींचेगा?
म्हारे हरिये बनरी कोयली।
थारे बागा में फुलड़ा फूल्या ए बनड़ी,
थारे बिना कुण तोड़ेगा? म्हारे हरिये ··
थारे बागा में हींडो घाल्यो ए बनड़ी,
थारे बिन कुण हींड़ेगो? म्हारे हरिये···
आँगणिये माँय थारो रोवत भतीजो
थारे बिन कुण खिलावेगो? म्हारे हरिये···
गुड़ियाँ पधरी थाली आले दिवाले,
देख र जी अकलावे ए म्हारे हरिये ··

सँग री सहेल्याँ थारी घर नहिं झाँकें,
बै देख दूराँ सें ही जावें ए म्हारे हरिए···
कोई य न अब म्हारे आँगरण खेले,
यो तो सूनो दरसावे ए म्हारे हरिये···
थारी माता को हिवड़ो उलकै,
बा तो नैरणा नीर बहावै ए म्हारे हरिये · ।"

उधर पति के साथ जाती हुई लड़की अपने पति से एक बार ऊँट को पीछे मोड़ने का आग्रह करती है। उसे अपने माता-पिता की 'घरणी' स्मृति हो रही है। पति आदर्श पाठ पढ़ाता है। तुम्हारे पिता का स्थान तुम्हारे ससुर लेंगे और तुम्हारी माँ के अभाव की पूर्ति तुम्हारी सास करेंगी। यह वियोगजन्य वेदना कितनी मार्मिक है इसका अनुमान मूल गीत से लगाया जा सकता है—

"एक बर करला थारा मारु जी पाछा जी मोड़,
राजीदा ढोला ओलूँ घरणी आवै म्हारा बाबों सांरी।
सुन्दर गोरी ओलूँ थारी परी रे निवार,
चंपक वरणी, बाबो सारी मोल सुसरो जी माँगसी।
एक बर करला ····
राजीदाँ डोला ओलूँ घरणी आवे म्हारी मायरी।
सुन्दर गोरी ओलूँ थारी परी रे निवार,
मिरगानै रणी माऊ जी री मोल सासूजी माँगसी।"

सास के अत्याचार—सास के अत्याचारों ने नारी के गार्हस्थिक जीवन को नरक बना दिया तथा प्रायः गृहिरणी गार्हस्थिक जीवन से भयभीत हो उठीं। गृहिरणी की स्थिति गृहलक्ष्मी के स्थान पर गृहदासी से भी शोचनीय हो गई। इन गीतों के अन्तर्गत इस दुःखमय जीवन की सत्यता का उद्घाटन किया गया है। इन गीतों की मार्मिक अनुभूति की तीव्रता तथा असाह्यावस्था का अनुमान पाठकों के शोक से लगाया जा सकता है। सास के अत्याचार सम्बन्धी लोक गीतों को पढ़कर शोकानुभूति के कारण डा० भगवानदास की वही दशा हो गई जो आज से शताब्दियों पूर्व आदि कवि बाल्मीकि की क्रौंच-वध के समय हुई थी। इस सम्बन्ध में उनकी टिप्पणी लोक गीतों की मार्मिकता का प्रमाण मानी जा सकती है—

"जब पहिले पहिल यह गीत सुने तब चित्त ऐसा व्याकुल हुआ कि किसी तरह शांत ही न हो। धीरे-धीरे उस व्याकुलता ने और उसके सान्त्वना के यत्न ने मिलकर मन में नीचे लिखे श्लोकों का रूप धारण किया उनको लिखा तब मन कुछ स्थिर हुआ :—

"अहह, वेद्मि यतोऽसि जनार्दनो, ननु जगज्जनकोऽपि भवन्भवान् !
स्रवति नाति पयो जननीस्तनाद्, यदि न रोदिति वेदनयाऽर्भकः।
परम नाटककृत्, करुणारतिर् भ्रशतरं ननु रौद्रमचीकरः,
उदयतेऽति विनाऽदयं अर्दनं, न ननु दीन जने दयनीयता।
अपि रसेषु रसः करुणो वरो, ह्यपि भवान् रसिकोऽसि रसेवरे,
अपि ततो जगतां जनकोऽपि सन्, भवसि निर्दय एव जनार्दनः।"

[हे भगवन् ! अब मुझे जान पड़ा कि आप क्यों समस्त जगत् के जनक पिता होकर, जन (नाम दैत्य के भी और मानव जनता) के (भी) अर्दन- करने वाले भी हो। जबतक बालक रोता नहीं तबतक जननी के स्तन से दूध नहीं बहता। हे परम कवि ! जगन्नाटककार ! भ्रशतरं करुणा का स्वाद लेने के लिए ही आप घोर रौद्र रचते हो, बिना दुर्बल को दारुण पीड़ा दिए, उनमें दयनीयता नहीं उत्पन्न होती ; इसीलिए जनता के जनक होते हुए भी जनार्दन हो जाते हो ; रसों में करुण रस श्रेष्ठ कहा है, और आप रसिकों में श्रेष्ठ हो।] —पुरुषार्थ, पृष्ठ १५५

डाक्टर साहेब को शोकसंतप्त करने वाले लोकगीत के अवलोकन की स्वाभाविक जिज्ञासा पाठक को होगी। अतएव अविकल रूप में यह गीत यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

"चन्दा सुरुज अस बहिनी संकल्प्यो हो ना
बहिनी जरि जरि मइली कोइलिया हो ना
....
कई मन कूटों भैया कई मन पीसीला हो ना
भइया कइरे मन रीन्हिला रसोइया हो ना
सासू खाँची भर बसना मँजावे ली हो ना
सबके खिआबौं भइया सबके पिआबौं हो ना
भैया बाँचि जाली पिछली टिकरिया हो ना
भैया ओहू में से ननद कलेउआ हो ना
भया ओहू में से गोरू चरउहबा हो ना
भैया ओहू में से कुकुरो बिलरिया हो ना
भैया ओहू में से देवरा कलेउवा हो ना
पहिरौं मैं भइया मोरे सबकर उतरवा हो ना
भइया सरी गली फटही लुगरिया हो ना
भइया ओहू में से ननदी आइनिया हो ना
भैया ओहू में से देवरा के भगवा हो ना
लोइवाजरे जइसे लोहरा दुकनिया हो ना
तोरी बहिनी जरे ससुरिया हो ना

ई दुख जनि कहो भइया भउजी क अँगवा हो ना
भउजी दुइ चारि घरे कहो अइहें हो ना
ई दुख जनि कहि भइया माई के अँगवा हो ना
माई छतिया बिहरि मरि जइहें हो ना
ई दुखबा मति कहो चाची के अँगवा हो ना
चाची झगड़ा लड़ैया ठेना मरिहें हो ना
ई दुख भइया जनि कहो बाबा के अँगवा हो ना
सभवा बइठि बाबा रोइहें हो ना
ई दुख जनि कहो भइया बहिनी के अँगवा हो ना
बहिनी हाल सुनि ससुराल न जाई हो ना
ई दुखवा कहहे भइया अगुआ के अगवाँ हो ना
भइया जे मोरी कइलन अगुवइया हो ना
ई दुख कहीह भइया बमना के अगवाँ हो ना
भइया जे मोर लगन विचरले हो ना
ई दुख भइया तू मन ही में गोइह हो ना
भइया करम लिखल तस भोगबि हो ना
सब दुख बँधिह भइया अपनी मोटरिया हो ना
भइया नदिया में दीह बहवाई हो ना
सभवा बइठल बाबा चितवै हो ना
आरे पूतबा आवे धिअवा आवे हो ना
जइसे उमड़े बाबा जमुना के पनिया हो ना
बाबा ओइसे रोवे मोरे बहिनियाँ हो ना
....

रोई-रोई माई हलिया पूछेली हो ना
पुतारोई रोई कहै कुसलतिया हो ना
सुखवा का कहौं मैया दुखवा का कहौं हो ना
भइया बहिनी लिलखे दुख लिखल हो ना
जो जनितो भैया अगुआ छल करिहें हो ना
अपनहिं घूमि घर खोजितों हो ना ।"

कहना न होगा कि उपर्युक्त गीत हिन्दू समाज में नारी जीवन की यातनाओं का जीता जागता उदाहरण है। घर के सब काम करना तथा खाने पीने के लिए सबसे पीछे बचा-खुचा मिलना जीवन की चेतना को आमूल नष्ट कर 'चाँद-सूरज' सी सुन्दर बहिन को कोयला जैसी काली बना ही देगा। उसके अन्तर का दाह उसे

जला कर भस्म कर देता तो क्या आश्चर्य ? इस पर भी परम सहनशीलता यह कि इन सब असह्य दुखों को प्रकट न करने की बहिन प्रार्थना करती है। उसे अपने दुःख से भी अधिक दुःख अपने मां, बाप, भाई-बहिन के लिए है। उसे विश्वास है कि उसके दुःखों को सुनकर माँ छाती पीटकर मर जायगी। पिता भरे समाज में रो पड़ेंगे तथा छोटी बहिन इन यातनाओं की बात सुनकर अपनी ससुराल न जायगी। भाभी और चाची कलह के समय ताने मारेंगी। कितनी हृदय विदारक व्यथा है। अपनी वेदना को प्रकट भी नहीं किया जा सकता। इससे भी अधिक व्यथापूर्ण है दरिद्रता के कारण विवशता जिसके अन्तर्गत भाई अपनी रोती हुई बहिन को ससुराल की यातनाओं में ही छोड़कर वापिस चला आता है। अगुआ और ब्राह्मणों द्वारा विवाह सम्बन्धों का तय करना कितना परितापपूर्ण सिद्ध हो सकता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण भाई-बहिन के घोर परिताप में देखा जा सकता है। भाग्य का लिखा समझ कर असह्य वेदना किसी प्रकार सह्य हो जाती है।

सास के अत्याचारों की सीमा का अतिक्रमण हो जाता है जब सास-बहू की अनबन बहू के बलिदान में समाप्त होती है। 'पपइयो" नाम से प्रसिद्ध गीत इस करुण कहानी का चित्रण करते हैं। पपीहे का बोलना प्रेमी हृदय की वेदना को प्रकट करता है। विदेश से लौटकर पति आता है। माँ से अपनी प्रियतमा के संबंध में पूछता है। माँ बहाने बना देती है। पति अन्त में अनुमान लगा लेता है कि उसकी प्रियतमा माँ की भेंट हो चुकी है। विकासोन्मुख वेदना तथा विकलता का आवेग निम्नलिखित गीत में देखा जा सकता है—

"माय, किथीये सैंणा री धीव। पपइयो बोल्यो खावड़ रे खेत में।
बेटा, ईंधण पांणी बहू उई।
बेटा, छोटोड़ो देवरियो साथ। पपइयो बोल्यो हरियाले खेत में।
माय, जल थल सब में ढूँढिया।
माय, नहीं रे सैंणा री धीव। पपइयो बोल्यो खावड़ रे खेत में।
बेटा, घट्टी रे पीसण बहू गई।
बेटा, छोटोडी नणदल साथ। पपइयो बोल्यो हरियाले खेत में।
माय, घर घर घट्टी में जोयी।
माय, नहीं रे सैंणा री धीव। पपइयो बोल्यो खावड़ रे खेत में।"

इसी प्रकार का एक गीत गुजराती के "रढ़ीयाली रात भाग १," गीत १८ पृष्ठ २७ के अन्तर्गत "नोदीठी" नाम से प्रकाशित हुआ है। इस गीत के अन्त में ताजे खून से सनी चूनरी, कोरी ओढ़नी तथा कोरी ढीकली का विवरण दिया गया है जो सम्पूर्ण रहस्य को प्रकट कर देता है तथा पति इनको देखकर फूट-फूट कर रोने लगता है

निपुत्रत्व—यह नारी जीवन का अभिशाप समझा जाता है। निपुत्रत्व के कारण नारी अपशकुन समझी जाती है। अन्य स्त्रियाँ उसको प्रातः देखना तक नहीं चाहतीं। सास-ननद आदि उसको "बाँझ" कह कर संबोधन करती हैं। ननद "भाभी" संबोधन करने में सकुचाती हैं। यह सब कटु व्यवहार बाँझ स्त्री को कितना हृदयविदारक लगता होगा इसका अनुमान उसकी आत्मघात की इच्छा से लगाया जा सकता है। दुःखातिरेक के कारण गंगा में डूब मरने की उसकी याचना अति मनोवैज्ञानिक है—

"गंगे एक लहरी हमें देउ तो जामें डूबि जैयौं,
अरे जामें डूबि जैयौं ···।"

देवी देवता भी बाँझ की भेंट लेना स्वीकार नहीं करते। अपनी विवशता तथा निराशा में वह कातर हो उठती है—

"और सबके डलियवा ए दीनानाथ, लिहलीं उठाई।
आरे बाँझ के डलियवा ए दीनानाथ, ठहरे तवाई॥"

उसकी पुत्र प्राप्ति याचना व्यर्थ सिद्ध हुई। वह बाँझ ही रही। कल्पना ने सहारा दिया और उसको पुत्र प्राप्त करने की युक्ति समझ में आई। अलौकिक कल्पना का यह चित्र साहित्य की उड़ान से दूर मानव की सहज अनुभूति का उद्घाटन करती है—

"आई धन तन मन मारि राजे मेरे पिछवारे बढ़ई .कौ
लाला तू मेरौ देवरु जेठु, राजे कहयौ मेरौ कीजिए।
काठ पुतर गढ़ि देउ सो बाइ लैकें उठिहौं, वाइ लैकें बैठिहौं
राजे न्हाय धोय भई ठाढ़ी तौ सुरजु मनामें रामु मना में।
राजे काठ पुतर जिउ डारौ तौ जाई लैकें उठिहौं—
जाइ लेकें सोमें।"

इसी प्रकार की भावना अन्यत्र एक पूर्वी गीत में प्रकट हुई है—

"मोरे पिछबरवा बढ़इया बेगि ही चलि आवहु हो।
बढ़ई गढ़ि देहू काठे के बलकवा मैं जिया बुझावउँ,
मन समुझावउँ हो॥"

किन्तु इन कल्पनाओं को चरितार्थ किए बिना किस प्रकार काम चल सकता था। अतएव इस काठ के बालक से बन्ध्या याचना करती है—

"काठे का बालक गढ़ि दिहलै अंगने धरी हि दिहलई हो।
बाबुल मोरे अँगने रोई न सुनावउ मैं बँझिन कहावउं हो॥"

किन्तु काठ के इस कठोर बालक को दया न आई। वह मौन ही रहता तब तक ठीक था। उस दुष्ट ने कटु सत्य का उद्घाटन कर व्यथिता की सुकुमार कल्पनाओं तथा उसके सुख स्वपनों को बुरी तरह कुचल डाला—

"दैव गढ़ल जो मैं होतेउँ तो रोइ सुनउतेउ हो।
रानी बढ़ई के गढ़ल होरिलवा रोवन नाहीं जानइ हो।"

सामाजिक जीवन की कटुता का यह काल्पनिक चित्र नारी-जीवन की यातना पर स्पष्ट प्रकाश डालता है। काठ के बालक के द्वारा कटु सत्य का उद्घाटन नारी की सरल एवं अबोध कल्पनाओं की ओर संकेत करता है जो नारीजगत के लिए अस्वाभाविक नहीं कही जा सकतीं।

आदर्श-चरित्र नारी की करुण कथा, भिन्न-भिन्न नामों से प्रायः प्रत्येक भाषा के लोकगीतों में मिलती है। विदेशी शासकों की अनीति पर प्रकाश डालते हुए ये गीत लोक आदर्श की करुण कहानी प्रस्तुत करते हैं—

"अपने ओसरे रे कुसुमा झारे लम्बी केसियारे ना।
रामा तुरुक नजरिया पड़ि गइले रेना।
... .
जैसिंह अपनी बहिनि हमका काहउ देना॥"

जयसिंह की बहिन कुसुमा पर मिर्जा तुर्क की दृष्टि पड़ जाती है तथा वह आसक्त हो जाता है। जयसिंह से अपनी बहिन देने के लिए कहता है। इस विषम परिस्थिति में जयसिंह किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो जाता है। स्वयं कुसुमा ही अपनी दूरदर्शिता का परिचय देती है।

'जो तुहूँ मिरजा रे हमहिं लोभानेउ रेना' प्रश्न के साथ कुसुमा अपनी इच्छा प्रकट कर देती है तथा भाई को मिरजा के बन्धन से मुक्त कराकर वह स्वयं पालकी में बैठकर मिरज़ा के साथ चल देती है। मार्ग में तालाब पड़ता है। पानी के पीने के लिए कुसुमा उतर पड़ती है।

"मिरजा बाबा क सगरवा दुर्लभ होइ हे रेना।
एक घोंट पीअली दूसर घोंट पीअली रे ना।"

पानी के तीसरे घूंट के साथ कुसुमा स्वयं ही सरोवर में कूद पड़ती है तथा मिरजा हाथ मलते रह जाते हैं।

"रामा तिसरे में भइली सरबोरवा रेना॥"

इस लोक गीत में इस प्रकार भारतीय नारी के आदर्श सतीत्व की प्रतिष्ठा तथा अनुपम आत्मबलिदान का आदर्श उपस्थित किया गया है। तत्कालीन परिस्थितियों में हिन्दू समाज के लिए यह त्याग जितना गर्व का कारण था उससे कहीं अधिक परिस्थितियों की विवशता के अन्तर्गत शोक एवं क्षोभ का मूल आधार था। धर्म अपघात की आशंका ही इस आत्मघात एवं आत्मबलिदान की मूल प्रेरणा रही हैं—यह स्पष्ट है।

वैधव्य—विधवा होना नारी जीवनकी परम शोकपूर्ण परिस्थिति है जिसके अन्तर्गत नारी जीवन की करुणाकथा का सजीव उदाहरण उपस्थित हुआ है। उसके जीवन से सुख आनन्द, उत्साह एवं उल्लास जैसी वस्तुएँ पूर्णरूपेण समाप्त हो जाती हैं। समाज का

अभिशाप बनकर वह येनकेनप्रकारेण अपना जीवन यापन करती है। यौवन की कामोत्तेजना उसके सात्विक जीवन में बवंडर खड़ा कर देती है जब उसका देवर उस से छेड़छाड़ प्रारम्भ कर देता है। सास-ससुर तथा परिवार के अन्यजन आदर्शों के संरक्षक रहते हैं। उधर छिटकी हुई चाँदनी तथा देवर की छेड़छाड़ होती है। इस आकर्षण तथा इन प्रतिबन्धों के बीच विवश एवं असहाय अबला का चीत्कार निकल उठता है—

"चननिया छटकी, मो का करौं राम
गंगा मोर मइया जमुनी मोर बहिनी
चाँद सुरज दूनों भइया···मो का करौ राम।"

उसकी यह वेदना करुण कराह के रूप में वायुमण्डल में व्याप्त हो जाती है। उसकी जिज्ञासा का समाधान समाज की आदर्श निष्ठा के अन्तर्गत कभी संभव न हुआ।

लोक की प्रार्थना—लोक की प्रार्थना पूर्णतया लौकिक है। लोक को आध्यात्मिक जिज्ञासा की न लालसा है न आवश्यकता। दैनिक जीवन की विषमताएँ ही लोक के मानसिक क्षोभ का कारण बनती हैं। समय समय पर पुत्र-स्वास्थ्य के लिए प्रार्थना करनी पड़ती है। ऐसे अवसरों पर लोक की करुणा मुखरित हो उठती है। संस्कृत के श्लोकों को देवी-देवता सुनें या न सुनें किन्तु लोक की यह अभिव्यक्ति अनसुनी नहीं रह सकती। अस्वस्थ बालक के लिए शीतला माता से प्रार्थना निम्नलिखित करुणापूर्ण गीत का विषय है। इसमें प्रार्थना की सरलता एवं मार्मिकता विशेष रूप से अवलोकनीय है—

"पटुका पसारि भीखि माँगेली बालकवा के माई,
हमरा के बालकवा की भीखि दीं।
मोरी दुलारी हो मइया,
हमरा के बालकवा की भीखि दीं।
मोरी मानावा राखनि मइया
हमरा के बालकवा की भीखि दीं।"

"पटुका पसारि" शब्दों के द्वारा लोकयाचना का सजीव चित्र उपस्थित किया गया है। इस चित्र पर कौन ऐसा निष्ठुर होगा जो दयाद्रवित न हो जाय ? ऐसे ही अनेक गीत लोक की कोमल भावनाओं के अन्तर्गत प्रकट हुए हैं जिनमें वेदना विवशता तथा आर्त्त प्रार्थना के चित्र साकार हो उठे हैं।

अन्य प्रसंगों के अन्तर्गत दो प्रमुख शीर्षों को लिया जा सकता है—अ—सामाजिक प्रसंग और आ—पौराणिक प्रसंग।

सामाजिक प्रसंगों के अन्तर्गत भात की करुणापूर्ण कथाएँ तथा दरिद्रतागत वर्णन आते हैं। भात की कथाओं में "नरसी का भात" एक प्रबंध गीत है। इसके

अन्तर्गत नरसी की भात देने की उत्कट लालसा तथा परिस्थितिगत कठिनाइयाँ कथा को अति मार्मिक एवं करुणापूर्ण बना देती हैं। यह प्रबंध गीत-लोक में प्रायः गाया जाता है। इस प्रबन्ध गीत से इतर भात के अन्य प्रसंग भी ऐसे हैं जिनके अन्तर्गत करुणा की मार्मिक अनुभूति प्रकट हुई है। ऐसा ही एक प्रसंग यहाँ उदाहरणस्वरूप दिया जा रहा है।

सहोदर भ्राता के अभाव में भात कौन दे—यह बहिन के लिए एक समस्या है। परिवार के अन्य भाई उसकी बात नहीं पूछते। उसका सहोदर भाई भूत-योनि में है। अन्त में बहिन भूतयोनिगत अपने भाई को खोज लेती है। बहिन के आग्रह को न टालते हुए भूत योनि का भाई भात देने के लिए तैयार हो जाता है। घर की दौरानी, जिठानी की ईर्ष्या बहिन के इस वैभव को नहीं देख सकती। बहिन को भात पहिनाते समय महुए की पटली रख दी जाती है और सामाजिक आस्थानुसार भूत योनि का भाई उस पटली में विलीन हो जाता है। इधर बहिन भात पहिनने तथा भाई से मिलने के लिए हाथ फैलाए अवाक् खड़ी रह जाती है। दौरानी जिठानी "भूत ने भात पहनाया" कहकर ताने मारती हैं। इस एक ही गीत में लोक की गार्हस्थिक ईर्ष्या, व्यथा एवं यातना सब कुछ भरी पड़ी हैं। गीत के मूलरूप का अनुशीलन करने से यह तथ्य स्पष्ट हो सकते हैं—

"ए बहिनि चली ए वीर कें,
और भले भले सगुन 'बिचारि'।
भातुजौ नौतूं अपने वीर के।"
....
"औरु मिलि गए जी बूआ के जाए वीर,
भैना हम तौ री अपनी के वीर,
अपनौ मैया कौ जायौ ढूँढ़लै।"
....
"भैना तिलु तिलु ढूँढ़ी गुजराति
सबरौ तौ ढूँढ़यौ मालुऔ
मेरी मैया के जाये ना मिले।"
....
"दारी सुरति लगाई मरघट घाट की,
और ढूँढ़तु डौलै अपनौ वीर।"
....
"भैया जौ कहूँ हौ तुम बैठिए
तौ भैना ऐ बोलु सुनाये।
भैया उतरि बिरछ ते आइए।"

"भैना नौति चौन आई बूआ जाए वीर कें,
ताई जाए वीर कें ?"
"भैया वे तौ री अपनी के वीर,
उलटी दई बगदाय ।"
"भैया मेरौ हियरा हिलोरे लै रह्यो,
और छतियनु परयौ ऐ पजारु ।"
....

"और भैनां नैं वैयां पसारिये
और वीरन गए ऐं समाय ।
रे भैया और जिठानी बोलैं बोलने
सोति भूतु पहरायौ तोय भातु ॥"

दरिद्रतागत वर्णन के अन्तर्गत घर की शोचनीय आर्थिक स्थिति पर पूर्ण प्रकाश डालने के साथ साथ सामाजिक विषमता तथा महाजन के ऋणचक्र पर, जिस से आजीवन छुटकारा पाना असंभव है, मार्मिक शब्दों में लोक के विचार प्रकट हुए हैं। लोक के लिए यह वर्णन कल्पना की वस्तु नहीं है प्रत्युत दैनिक कष्ट की वह वेदनापूर्ण अभिव्यक्ति है जिसके प्रकाशन के लिए वह विवश हो गया है। यद्यपि इन प्रसंगों में भारतीय आध्यात्मिक दृष्टि तथा धनसम्पति के प्रति उदासीनता संतप्त लोक की अनुभूति के सामने कठोर वास्तविकता के अंचल में क्षुब्ध हो गई है, यह स्पष्ट है तथापि ऐसे प्रसंगों पर गीतों का प्रायः अभाव रहा है तथा इनकी संख्या अति न्यून रही है। निम्नलिखित लोक गीत की सीधी-साधी अनुभूति पाठक को वास्तविकता का परिज्ञान करा सकती है—

"हे भोला बाबा केहन कयलौं दीन,
खेती पथारी भोला से हो लेला छीन।
भाई सहोदर से हो मे गेल भीन,
घर में न खरची बाहर न मिले रीन।
गाँव के मालिक न पड़ैं दइय नीन,
एके गो लोटा छलइ भाइ मेलइ तीन,
पनिया पिवइत काल होइय छिना छीन।
एके गौ बैल बच गेल महाजन लेलक रीन
कर कुटुम्ब सब मेलइ परमीन···॥"

गोपीचन्द राजा पर विपत्ति—एक प्रसिद्ध लोक-गाथा पौराणिक गाथाओं के अनेक प्रसंगों में से है जिसके अन्तर्गत आपत्ति काल की निराशा तथा परिवार के व्यक्तियों की उदासीनता आदि तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है। राजा गोपीचन्द रानी के आग्रह

पर अपनी ससुराल जाते है। ननद-भाभी के प्रश्नोत्तरों में ननद के प्रति भाभी की स्वाभाविक ईर्ष्या का प्रकटीकरण होता है। ननद को प्रश्रय न देने की भाभी की विवशता एक ओर सकारणता का अभिनय करती है तो दूसरी ओर भाभी की अनुदारता तथा उदासीनता पर विशेष प्रकाश भी डालती है। ननद को देखकर किवाड़ बन्द कर लेना, पानी भी न पिलाना, ननद को दिन काट लेने की याचना तथा प्रार्थना को ठुकरा देना आदि ऐसे तथ्य हैं जो आपत्ति के समय की विषम परिस्थितियों की वास्तविकता का भान कराते हैं।

निम्नलिखित गीत के अन्तर्गत लोक की विवशतागत इस अनुभूति के दर्शन किए जा सकते हैं—

गोपीचन्द राजा पर परली विपतिया रे,
विपति के मारल हरवा जोतें हो राम।
चलहू न पिया हो, हमरे नइहरवा, रे
चलु उहाँ विपत्ति गँवाई हो राम।
एक बन गइली दूसर बन गइली रे
बाँये दहिने बोलेला कगवा हो राम।
हमार कहनवा धनि तुहूँ नाहीं मन लू
आखिर असगुन भइल हो राम।
जब रानी गइली गाँव के गोइउवा,
भउजी हनेली बजर किवरिया हो राम।
खोलहू न भउजी चनन केवरिया रे,
बूंद एक पनिया पीअइतू हो राम।
हमरो घइलवा ननदी फूटि फाट गइले,
बूंद एक पनिया कैसे दीहौ हो राम।
खोलहू न भउजी चनन किवरिया,
रे फटही लुगरिया हमके दीहितू हो राम।
हमरी लुगरिया ननदी घइलवा पेटरिया रे
सावन भदौआ पोतन बनी हे राम।
आहि रे दइबा आहि हो विधाता,
हमरे करमवा का लिखल हो राम।
हमरो कहनवा धनि, तुहू नाहि मनलू,
विपती के परे अपन के हून हो राम।
चलहू न धनिया अपनहि देसवा रे
चरखा ले विपति गवाइ हो राम॥"

सर्पदंश-चिकित्सा में करुण रस

लोक द्वारा सर्प-देश चिकित्सा निम्नलिखित रूप में की जाती है:—

(१) केवल मन्त्रों के द्वारा।

(२) लोक-गीतों के द्वारा जिनके अन्त में कुछ मंत्रों का भी प्रयोग किया जाता है।[1]

लोक में प्रमुखतः दूसरी पद्धति ही अधिक प्रचलित है। यहाँ इसी पद्धति पर प्रकाश डाला जा रहा है। इस पद्धति में विभिन्न गीत गाए जाते हैं। उन गीतों के अन्त में मंत्रों का भी प्रयोग किया जाता है किन्तु मुख्य भाग गीतों का ही रहता है। इन गीतों एवं मंत्रों का अध्ययन करने से निम्नलिखित तत्वों का उद्घाटन होता है—

(अ) इन गीतों एवं मंत्रों का एक अंश मनोवैज्ञानिक संवेदन पर आधारित है जिसके अन्तर्गत दंशित व्यक्ति को संवेदन दिए जाते हैं कि विष भर रहा है, विष उतर रहा है' आदि।

(आ) नाद विज्ञान के प्रभाव को दृष्टिगत रखते हुए इन गीतों को एक विशेष लय के साथ विशेष वाद्य यंत्रों पर गाया जाता है।

(इ) करुण रस की मर्मस्पर्शी अनुभूति के प्रभाव को दृष्टिगत रखते हुए करुण रस की भाव-भूमि के सन्दर्भ में गीतों का निर्माण होता है तथा गाते हुए गीतों के करुणस्थलों की मार्मिकता पर बल तथा ममतामयी मर्मस्पर्शी अनुभूतियों की व्यंजना की जाती है।

प्राणशास्त्र के वेत्ता संवेदन की शक्ति के आधार पर ही रोगों की चिकित्सा करते हैं और सफलता प्राप्त करते हैं। लोक चिकित्सा में प्राणशास्त्र के ही संवेदनों का प्रयोग किया जाता है तथा प्रणशास्त्र की मर्यादा के अनुकूल यह ध्यान रखा जाता है कि संवेदना धनात्मक हों, ऋणात्मक न हों। संवेदनों से संबंधित अंश को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है दंशित व्यक्ति को धनात्मक संवेदन दिए गए हैं कि विष भर रहा है और वह स्वस्थ हो रहा है—

"पांइन से विष भरियन लागौ,
पीडिन पर बिसु आइगे,
पीडिन से बिसु भरियन लागौ-
जंघन बिसु आइगे,
जंघन से बिसु भरियन लागौ,
टुंडिन पै बिसु आइगे,

---

१. चिकित्सा अधिकारियों का कदाचित मत है कि लोक-सर्पदंश चिकित्सा विषहीन सर्पदंश की अधिक संख्या होने के कारण सफलता प्राप्त कर लेती है अन्यथा विषधर सर्पदंश के लिए वह उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती।

ढुंडिन में बिसु भरियन लागौ,
छतियन बिसु आइगे,
छतियन बिसु भरियन लागौ,
कंठन बिसु आइगे;
× × ×
भरियौ रे तू जार मेरे, भरियो रे तू पीर मेरे,
भरियौ अम्बर तारे,
हो चाँद सुरज बे दोऊ भरियौ,
भरियौ वासुक कारे,
बिसु तोइरे भराऊँ, बिसु तोइरे भराऊँ,
तोइ भरावें… ..।"

इन लोक-गीतों को भरनी (विष भरने के) गीत कहते हैं। लोक चिकित्सक के साज में निम्नलिखित वस्तुएँ होती हैं जो विशेष प्रकार के नादयन्त्र का निर्माण करती हैं।

काँसे की थाली जो एक बड़े मटके के मुँह के ऊपर उल्टी रखी जाती है। एक बड़ा मटका जिसको चपटा या गोल भी कहते हैं। एक ईडुरी का कूँढ़ी या कपड़े की बनी हुई गोलाकार आसनी पर रखा जा सकता है। एक हाथ में एक लकड़ी होती है जिससे थाली के किनारों पर आघात करते हैं, तथा दूसरे हाथ से थाली की पीठ पर थाप देते चलते हैं। एक पीढ़ा या नीची कुर्सी आवश्यक होती है जिस पर बैठ कर थाली बजाई जाती है। इस प्रकार इस विशेष वाद्य-यन्त्र का संयोजन होता है। और इसको थाली या ढाँक वजाना कहा जाता है। सर्पदंश से इतर गंडमाला जैसे अन्य विषैले रोगों में भी थाली बजाकर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया जाता है। दंशित व्यक्ति या रोगी को मटके के सामने एक आसन पर बिठा लेते हैं। उसको एक साफ सफेद चादर उढ़ा दी जाती है। धूपदीप तथा अग्यारीं[१] आदि के द्वारा वातावरण को शुद्ध कर लिया जाता है।

थाली की झन्कार सम्पूर्ण वातावरण को कम्पायमान कर देती है जिस के साथ गीतों की स्वर-लहरी गूँज उठती है। फलस्वरूप रोगी झूम उठता है और यह स्थिति बढ़कर ऐसी हो जाती है कि रोगी अपने सम्पूर्ण ऊर्ध्वांग को झुलाने लगता है। उसका सिर झूल-झूल पड़ता है और शरीर एक गोल चक्कर में झूम उठता है। इस दशा को 'सिर आना' कहा जाता है। विश्वास किया जाता है कि दंशक सर्प रोगी के सिर आ जाता है।

यह नाद का प्रभाव होता है जिसमें गीतों की कथावस्तु तथा भावों की मर्म-

---

१. 'अग्यारी' प्रदीप्त अँगार पर घी, लौंग आदि डालना, जिसे यज्ञ का लघु रूप कह सकते हैं।

स्पर्शी अनुभूति का अपना योगदान रहता है जिस पर आगे विचार किया जायगा। लोक चिकित्सक रोगी की इस स्थिति की उत्सुकता से बाट जोहते हैं। वह सिर आए हुए दंशक सर्प को समझा बुझा कर 'वाचा' में ले लेते हैं। अथवा उसकी कोई मांग पूरी करा लेते हैं तथा दंशित व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है।

इस चिकित्सा का तीसरा तत्व गीतों की कथा वस्तु एवं भाव-व्यंजना में प्रकट होता है। ये है गीतों की करुण कथाएँ और उनके रूप में करुण रस का चिकित्सा में प्रयोग।

चरित्र-निर्माण के लिए भारतीय ही नहीं पाश्चात विद्वान हेगल ने स्पष्ट शब्दों में करुण रस की महत्ता प्रकट करते हुए कहा है—मानव शोक में देवताओं की सृष्टि होती है तथा शोक अपने अधिक ठोस एवं क्रियात्मक रूप में मानव चरित्र है "मैं समझता हूँ लोक चिकित्सा के यह प्रयोग सिद्ध करते हैं कि करुण रस प्राण चिकित्सा का भी प्राण है जिसके स्वरूप की प्रतिष्ठा नाद विज्ञान की झंकार तथा मनोविज्ञान के संवेदनों की पृष्ठभूमि में होती है।

इन गीतों में से यहाँ दो गीतों के अंश उद्धृत किए जा रहे हैं। एक गीत तो प्रसिद्ध पौराणिक कथा 'सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र की कथा' पर आधारित है। दूसरा गीत लोक जीवन की अपनी कथा का उद्घाटन करता है। "श्रावण का महीना है। घर-घर झूले पड़े हुए हैं। एक ब्राह्मण के घर 'सोहगी' आई है। लड़की की माँ अपनी बेटी को कन्डे लेने के लिए भेजती है। बिटौरे में से कन्डे निकालते समय लड़की को काला नाग काट लेता है और इधर माता पुकारती ही रह जाती है।"

पहला गीत—रोहिताश्व को सर्प का काटना और रानी शैव्या का विलाप करना—

"भजि आयौ रे माली एक बागन पै,
भजि आयौ पै रानी पै छहियौ हो सा।
चौ भाई रानी करी पुकार,
जुवाब माली ने दीनौ।
आयु बाग के बीच जुल्म कारे नै कीनौ।

× × ×

रौसनि रौसनि फिरै कुंवर की करै लखाई,
डरौ रौस पै पायौ, औ ठाड़े तैं खाई है पछार,
मूड़ धरती पै दै मारौ।
अरे रानी अपनी बेटाए जगावै,
कोई रानी अपने बेटाए।
परि जागतु नानै हो।

का आजु समर सुत सोये,
तू अब की बोल सुनाये,
लाल का बिस में हो खोये,
× × ×

दूसरा गीत—ब्राह्मण के घर सोहगी—

सुहावनी रितु आई सावन की,
ओ घन बरसै ।
बरसै मेह मेह गए नगर नारे,
घर घर झूला परे हिंडौरे भारे,
ओ झूलैं नगर की नारि,
ये बिटियनु कौ त्यौहार,
सोहगी बामन कै आई, कै रितु आई सावन की ।
× × ×
अरे बड़ौ भात कौ हन्डा,
नेकि दौरि कै जाउ बिटौरा मांउ,
तनिक मोइ लाइदै कंडा, अरे खड़ी बाकी माता ए ।
× × ×
अरे पहुँची बिटौरा मांझ,
खयेला और चुटीला बेंदा दयेंलिलार,
बनी पूनौ कौ सौ चन्दा ।
औ अचक तारि लिये कंडा ।
जाय खाइगौ कारौ नाग
जहर कौ लग गयौ हो फंदा, ठाड़ी टेरे बाकी मात ए ।
× × ×
खायगौ करुआ नागु,
बीरन देउ बुलाय
अब तुम में नानै साझौ, बेटी जम फटिगे, आजु
ए बासुकि हौ कारौ, ठाड़ी टेरै बाकी मात ए ।"

इन गीतों की मर्मस्पर्शी अनुभूति का दंशित व्यक्ति के अंतस् पर प्रभाव पड़ता है तथा करुणाभिभूति मानस का स्वास्थ लाभ निश्चित हो जाता है । जब इन की मार्मिक शब्दावलि 'तू अब की बोल सुनाय' ओ तुम में नानै साझयौ, 'ठाड़ी टेरे बाकी माता ए' को नाद की झंकार में बार-बार गुँजा दिया जाता है । उस समयपर उपस्थित

जन समुदाय के नेत्रों से अनायास ही अश्रु-मोचन होने लगता है। इन गीतों में करुण रस की वही आत्यंतिक एवं हृदय विदीर्ण करने वाली अनुभूति भरी हुई है जिसके लिए कभी कहा गया था 'अपि ग्रावा रोदित्यापि दलित वज्रस्य हृदयम्' कहना न होगा कि लोक चिकित्सा की यह सामग्री अन्य दृष्टियों से इतर साहित्य की दृष्टि से भी संग्रहणीय है।

रामकथा से संबंधित लोकगीत

लोकसाहित्य में रामकथा—लोक-रामकथा अपनी विशेषताओं में लोक की निजी वस्तु है। वहाँ राम, सीता और लक्ष्मण तथा अन्यान्य मुख्य चरित्र उन विषमताओं में आबद्ध हैं जिनके कारण जन-जीवन सदा से दुःखी तथा विषण्ण है। सास के अत्याचार, भावज-ननद का आपस का द्वेष आदि ऐसी विषमताएँ हैं जो जन-जीवन की परिवारिक शान्ति को छिन्नप्राय किए रहती हैं। इनका सामान्य परिचय इससे पूर्व लोक साहित्य के अन्यान्य प्रसंगों में दिया जा चुका है। लोक-रामकथा के विवेच्य प्रसंग किसी भी प्रकार लोक-साहित्य के सामान्य प्रसंगों से भिन्न नहीं हैं। यदि सामान्य प्रसंगों में रामकथा के पात्रों के नाम जोड़ दिए जावें अथवा रामकथा के इन प्रसंगों से रामकथा के पात्रों के नाम हटा लिए जावें तो दोनों प्रसंगों की अभिव्यक्ति में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। लोक के लिए राम कोई आदर्श पुरुष नहीं हैं प्रत्युत अपने जैसे सामान्य व्यक्ति तथा अपनी जैसी गार्हस्थिक विषमताओं में फँसे हुए हैं किन्तु यह अवश्य है कि उनका नाम किसी प्रकार लोकविख्यात हो गया है। इसलिए उनके माध्यम से जो बात कही जायगी वह जन-मानस में सहज ही व्याप्त हो जावेगी।

यहाँ लोकगत रामकथा के कतिपय प्रसंगों को निम्नलिखित रूप में लेकर अपेक्षित प्रकाश डाला जायगा—

१ लोक की अनुपम कल्पना।

२. श्वसुरगृह के कष्ट एवं सास के अत्याचार।

३. वनवास के लिए प्रस्तुत राम को वन जाने की आज्ञा देने में माता कौशल्या की वेदना।

४. माता कौशल्या को वनवासी राम,सीता और लक्ष्मण की सुख-सुविधा की चिन्ता।

५. भावज-ननद का द्वेष एवं भावज को यातना।

६. लवकुश जन्म तथा लवकुश को देखकर राम की जिज्ञासा एवं आत्म-ग्लानि।

(१) **लोक की अनुपम कल्पना**—यद्यपि लोक-साहित्य प्रमुखतः भावना का क्षेत्र रहा है तथापि समय-समय पर ऐसी अनुपम कल्पनाओं का भी सृजन हुआ है जिनको देखकर लोक की विलक्षण कलाकुशलता का परिचय प्राप्त होता है। ऐसा ही एक प्रसंग यहाँ विशेषरूप से अवलोकनीय है—

राम की छटी है। हरिण के मांस की आवश्यकता है। हरिणी इसलिए उदास एवं अन्यमनस्क है। हरिण हरिणी की उदासी का कारण पूछता है। वह सब व्यथा उससे कह देती है। किन्तु क्या करें, दोनों विवश हैं। हरिण मारा जाता है। हरिणी कौशल्या रानी से खाल माँगती है जिसको किसी वृक्ष पर लटका कर वह हरिण की स्मृति बनाए रखे। किन्तु उसकी यह याचना भी स्वीकार नहीं होती। कौशल्या रानी उत्तर दे देती है—खाल की खंजड़ी बनेगी तथा उससे राम खेलेगा। जब जब खंजड़ी बजती है हरिणी उसके शब्द को सुनकर अपने हरिण के लिए शोक मनाती है।[1] इस प्रकार लोक ने पशु की मार्मिक शोकानुभूति के द्वारा इष्टनाश की विषम परिस्थिति तथा इष्टनाशजन्य मर्मस्पर्शी वेदना का अनुपम उद्घाटन इस लोकगीत द्वारा किया है। हरिणी के शोक के साथ जन-जन की शोकानुभूति क्रियाशील हो उठती है। मूल अभिव्यक्ति निम्नलिखित रूप में देखी जा सकती है—

"छापक पड़े छिउलिया त पतवन गहवर,
अरे रामा तेहि तर ठाड़ी हरिनियाँ तो मन अति अनमन।
चरत चरत हरिन बात हरिनी से पूछइ।
हरिनी की तोर चरहा झुरान कि पानी बिनु मुरझिउ,
हरिना आज राजा जी के छठी तुहैं मारि डारिहैं।
... ...
"मचिये बैठी कौसिल्या रानी हरिनी अरज करइ,
रानी मसवा त सिझहि रोसइया खलरिया हमें देतिउ।
पेड़वा से टंगति उखलरिया त हेरि फेरि देखितिउ,
रानी देखि देखि मन समुझाइ जनुक हरिना जीतइ।
जाहु, हरिनी घर अपने खलरिया नाही देवइ,
हरनी, खलरीक खँजड़ी मिढ़उवइ त राम मोर खेलिहँइ।
जब जब बाजइ खँजड़िया सबद सुनि अनकइ,
हरिनी ठाढ़ि ढ़ँकुलिया के नीचे हरिन क बिसूरह !!"

(२) **श्वसुर-गृह के कष्ट एवं सास के अत्याचार**—सीता जी पितृगृह एवं श्वसुर गृह की तुलना करती हुई श्वसुर-गृह की व्यथाओं की ओर संकेत करती हैं। उन

१. इस प्रसंग में यहाँ संस्कृत का एक श्लोक भी अवलोकनीय है—
आदाय मांसमखिलं स्तनवर्जमंगात्
मां मुंच ! वागुरिक ! याहि कुरु प्रसादम् !
अद्यापि घासकवल ग्रसनानभिज्ञो
मन्मार्गवीक्षण परस्तनयो मदीयः ॥
हे बधिक ! स्तनों को छोड़कर तू मेरे सारे शरीर का मांस लेकर मुझे छोड़ दे; मुझ पर इतनी कृपा कर ! मेरा छोटा शावक अभी तक घास खाना नहीं जानता। वह मेरी राह देख रहा होगा कि मैं आऊँ और वह स्तनपान करे।

व्यथाओं का क्या फल हुआ इसी का वह उल्लेख करती हैं और व्यथाओं का विवरण पाठक की कल्पना के लिए छोड़ देती हैं। उनका सुन्दर शरीर घर की कुढ़न और जलन से जलभुन कर काला हो गया। सीता की यह व्यथा प्रायः प्रत्येक नववधू की समस्या होती है। सास का कठोर नियंत्रण तथा ननद आदि के ताने नववधू के जीवन को व्यथापूर्ण बना देते हैं।

लोक का यह हृदयस्पर्शी गीत इस प्रकार है—

"जब हम रहे जनक घर राजा रे जनक घर।
सखिया सोने के सुपेलिया पछोरौं मैं मोतिया हलोरौं।
जब हम परली रामघर राजा दसरथ घर,
जरि वरि भइउं है कोइलिया त के भसम भयउं।"

उधर लोक की उर्मिला की व्यथा भी असाधारण है। उसको मानों सपरिश्रम कारावास का दण्ड दिया गया है। उसकी सास, ननद और जिठानी ने उसको पिसनहारी बना दिया है। उस बेचारी ने कभी चक्की नहीं चलाई। उससे भारी चक्की चलती नहीं। वह शारीरिक कष्ट के कारण रो रही है और बिलख रही है। लक्ष्मण को यह पता नहीं है कि उनके घर में इस प्रकार की विषमता का राज्य है। वह सहज स्वभाव से पूछते हैं कि यह कौन पिसनहारी रो रही है। अन्य स्त्रियाँ जब उनको बताती हैं कि तुम इतना भी नहीं जानते यह तो तुम्हारी ही गृहिणी उर्मिला रो रही है। लक्ष्मण उर्मिला के पास जाते हैं और अपने 'गमछे' से उसके आँसू पोंछते हैं।

गीत के अन्त में लक्ष्मण के पत्नी-स्नेह की सुन्दर झलक ने गीत की संपूर्ण व्यथा को सुखद मिलन में परिणत कर दिया है किन्तु इससे गीत में व्यक्त गार्हस्थिक विषमता के प्रकाश में आने में कोई बाधा नहीं पड़ती है।

मूल गीत की मर्मस्पर्शी शब्दावली एवं करुणाजनक स्वरलहरी यहाँ द्रष्टव्य है—

"केरे देले गोहुमां हो रामा, केरे देले चँगेरिया?
कउनी बइरिनिआ हो रामा, भेजल जँतसरिया?
सासु देले गोहुमां हो रामा, ननदी चँगेरिया।
गोतनी बइरिनिआ हो रामा, भेजल जँतसरिया।
जँतवो न चलई हो रामा, मकरी न डोलइ।
जाँता के घइले हो रामा, रोवइ जँतसरिया।
घोड़वा चढ़ल हो लछुमन, करइ पुछसरिआ—
केकरी तिरिअवा हो रामा, रोवइ जँतसरिया?
तोहूँ नएँ जानल हो लछुमन, तोहरे तिरिअवा?
जँतवा के दूखे हो रामा, रोवइ जँतसरिया।

बहिंआं पकरलन.लछुमन, जँधिया बइठओलन ।
अपने गँमछवे हो लछुमन । पौंछै नैना लोरवा ।।"

(३) **वनवास के लिए प्रस्तुत राम को वन जाने की आज्ञा देने में माता कौशल्या की वेदना**—माता कौशल्या का हृदय व्यथित हुआ जा रहा है। वह किस प्रकार राम,सीता और लक्ष्मण को वन जाने के लिए आज्ञा दें। राम-लक्ष्मण सीता तो उनको अपने कलेजे, पुतली और चूड़ियों के समान प्रिय और अभिन्न हैं, उनको वह वन जाने की आज्ञा किस प्रकार दे सकती हैं। वह अति दुःखी होकर यही कहती हैं कि कोई सोने की सलाई ले आओ जिससे इन आँखों को ऐसी आज्ञा देने से पूर्व फोड़ लूं और राम लक्ष्मण और सीता को वन जाता न देख सकूं। ऐसे वचन मैं किस प्रकार कहूँगी वह यही सोचती हैं और कह उठती हैं कि लाओ जलता अँगार ले आओ उसको मैं अपनी जिह्वा पर रख लूं जिससे ऐसे वचन कहने से पूर्व ही वह जल जाय।

लोक-कलाकार की मार्मिक अनुभूति एवं अनोखी कल्पना यहाँ गीत के मूल शब्दों में दृष्टव्य है—

"जौने राम दुधवा पिआयेंऊ घिऊ सेन अवटेउँ हो राम।
अरे मोरा भितरा से बिहरै करेजवा मैं कैसे बन भाखउँ हो राम।
राम तो मोर करेजवा लखन मोरी पुतरिव हो राम।
अरे रामा सीतारानी हाथे कर चुरिया तैं कैसे वन भाखउँ हो राम।
अरे लै आवा सोने के सरइया;
नयन दूनौं फोरउं, नयन दूनौं फोरउँ हो।
लावा जिभिया माँ धरौं हो अंगार,
वचन कैसे बोलिय, वचन कैसे बोलिय हो ।।"

(४) **माता कौशल्या को वनवासी रामसीता और लक्ष्मण की सुखसुविधा की चिन्ता**—प्रिय की सुखसुविधा के अनिश्चय के कारण प्रियवियोगजनित दुःख में करुणा उत्पन्न हो जाती है। प्रिय की सुखसुविधा के संबंध में आशंका बनी रहना स्वाभाविक है। फिर ऐसे प्रियजनों के लिए क्या कहा जाय जो वन को गये हों जहाँ सुखसुविधा के कोई साधन ही उपलब्ध नही हो सकते। इसलिए माता कौशल्या बार-बार अपने प्रिय पुत्रों तथा पुत्रवधू का स्मरण कर अश्रु बहाने लगती है। अब वह यह देखती हैं कि उनकी सुखसुविधा के संपूर्ण साधन तो अयोध्या में ही पड़े हैं तो उनको और भी कष्ट होने लगता है। उनको विश्वास नहीं होता कि उनके लाड़ले वन में सुरक्षित तथा सुखी होंगे। उनके अनिष्ट की आशंका उनको खाए जाती हैं। निम्न-लिखित लोकगीतों में माता कौशल्या के मानस का चित्र खींचा गया है। मनोभावों की स्वाभाविकता तथा मार्मिकता विशेषरूप से अवलोकनीय है।

कौशल्या का क्षोभ—यह लोक-गीत की अपनी निजी अभिव्यक्ति है। वर्षा ऋतु

में माँ का हृदय परम कातर हो उठता है जब वह सोचती हैं कि उनके पुत्र किसी वृक्ष के नीचे भीगते होंगे—

"सावन बरसे भादों गरजे, पवन बहे चउवाई।
कवन बिरिछ तर भीजत होइहैं, राम लखन सिया लाई।"

अपने पुत्रों की अनुपस्थिति में माँ का हृदय सर्वव्यापी सूनेपन का अनुभव करता है—

"राम बिना मोर सून अयोध्या, लछिमन बिनु ठकुराई,
सीता बिनु मोर सून रसोइया, के मोरा भोजन बनाई।"

इस सूनेपन की मार्मिक अनुभूति मनोवैज्ञानिक क्षेत्र की वस्तु है लोक जिसका अनायास ही प्रकटीकरण कर सका है।

मेघ से प्रार्थना

"भितराँ से निकसीं कउसिला नैनन नीर बहा।
रामा राम लखन सीता जोड़िया कवने बन होइहैं।
दैवा वोहि बन जाइ जनि बरिसहु जहाँ मोर लरकिन हो राम।
राम क भीजै मटुकवा लखन सिर पटुका हो राम।
मोरी सीता क भीजै सेंदुरवा लवटि घर आवउ हो राम।"

असुविधा की अशंका

"घर क जेवना राम घर ही छोड़तु है,
भूखन मरतु ह्वै है दोउ भाई।
लोटा और डोरी राम घर ही छोड़तु हैं,
प्यासन मरतु ह्वै हैं दोउ भाई।
तोसक तकिया रामा घर ही छोड़तु हैं,
नींदन मरतु ह्वै हैं दोउ भाई॥"

भावज-ननद द्वेष और भावज को यातना—भावज ननद का द्वेष अति प्रसिद्ध है। प्रायः ननद भावज को सुखी नहीं देख सकतीं। वह भावज के संबंध में भाई से कुछ न कुछ कहा ही करती हैं और उनके कान भरने का फल यह होता है कि भाई अपनी पत्नी से असंतुष्ट हो जाता है। ऐसे अवसर प्रायः आ जाते हैं जब पति असंतुष्ट होकर पत्नी को दण्ड भी देता है तथा अनेक प्रकार से उसको तंग कर उठता है। ननद मन ही मन ऐसे अवसरों की प्रतीक्षा करती है और वह इन अवसरों पर प्रसन्न होती है। लोक की यह भावना निम्नलिखित लोकगीत में प्रकट हुई है। सीता जी की ननद सीता जी से रावण का चित्र बनाने का आग्रह करती है और जब सीता रावण का चित्र बना देती है तो वह राम से शिकायत कर देती है कि देखो भइया, भाभी तो रावण का चित्र बनाती है। राम इस बात से अति असंतुष्ट हो जाते हैं और सीता को निर्वासित कर देते हैं। सीता-निर्वासन की यह लोक की अपनी कल्पना है जिसको

अभी तक कहीं साहित्य में प्रश्रय प्राप्त नहीं हुआ है । विवश सीता अयोध्या छोड़ती है । चलते समय वह लक्ष्मण तथा अन्य प्रियजनों के दर्शन करना चाहती है। यह भाव वास्तव में बड़ा ही करुणाजनक है । मूलगीत की सहज एवं स्वाभाविक शब्दावली में यह भाव अति मर्मस्पर्शी बन गया है—

ननद— "भौजी जौन रवन तुहें हरि लेगई उरेहि दिखावहु ।"
सीता— "जो मैं रवना उरेहौं उरेहि दिखावहु,
सुनि पैइहैं बिरन तोहार ते देसवा निकारहैं ।"

———

बहन— "भइया जौन रवन तोर बैरी त भौजी उरे हैं ।"
राम— सीता के देसवा निकारहु रवना उरेहैं ।"

चलते समय अन्तिम बार स्वजनों को जी भर देख कर रोने की इच्छा की अभिव्यक्ति निम्न गीत में हुई हैं—

"कहँवा गए लछमन देवरा त हमें न बतयउ ।
हिरदइया भर देखतेऊँ नजर भर रोउतेऊँ ।।"

लवकुश-जन्म तथा लवकुश को देखकर राम की जिज्ञासा एवं आत्मग्लानि

लवकुश का जन्म—लवकुश का जन्म वन में होता है । लोक की कल्पना में केवल एक ही पुत्र का जन्म कदाचित् मान्य है । इसीलिए लोकगीतों में केवल एक पुत्र के होने के संबंध में उल्लेख हुआ है । 'लवकुश' अतएव एक ही शब्द का द्योतक है ।

सीता जी को परिस्थितिगत क्षोभ हो रहा है जब वह देखती हैं कि पुत्र-जन्म जैसे परम हर्ष के अवसर पर कोई हर्ष मनानेवाला उसके पास नहीं। साथ ही राजपुत्र के लिए कोई व्यवस्था नहीं । वही कुश ओढ़ना और वही कुश बिछौना है। इस अभावानुभूति से वह क्षुब्ध होकर सोचने लगती है कि यदि कहीं अयोध्या में पुत्रजन्म होता तो कितनी खुशियाँ मनाई जातीं तथा कितने ठाठबाट से यह रहता । सीता की विवशता तथा असहायावस्था का करुणाजनक दृश्य इस लोकगीत की प्रथम पंक्ति से ही आँखों के सामने आ जाता है—

"तुम पूत भयहु विपति में बहुतै सासति में,
पूत कुसै ओढ़न कुस डासन वन फल भोजन ।
जो पूत होते अयोध्या में वही पुर पाटन,
राजा दसरथ पटना लुटौतें कौसल्या रानी अभरन ।"

पुत्र को देखकर राम की जिज्ञासा और आत्मग्लानि

राम सीता के पुत्र को देखते हैं और उसके सौन्दर्य आदि को देखकर चकित रह जाते हैं । उस बालक के संबंध में कुछ जानने की जिज्ञासा उनको सहज ही हो उठती है । उनके पूछने पर बालक जो उत्तर देता है उससे उनको निश्चय हो जाता है कि यह बालक तो उनका ही पुत्र है । विधि की इस विडम्बना पर उनको बड़ी

आत्मग्लानि होती है और वह अश्रु बहाने लगते हैं। बालसुलभ शब्दावली तथा उत्तर की सरलता लोक-गीत की अपनी विशेषता है जो लोकगीतों की शैली पर प्रकाश डालती है—

"केकर तू पुतवा नतिअवा केकर हौ मतिजवा।
लरिकौ कौनी मयरिया कै कोखिया जनमि जुड़वायउ।
बाप क नौवाँ न जानौं लखन के भतिजवा हो।
इम राजा जनक के हैं नतिया सीता कै दुलरुवा हो॥
....
रामा तरत तरर चुवै आँसु पटुकवान पोंछई।"

उपसंहार—लोकगीतों के उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

विषयगत—१. करुण प्रसंग प्रायः पारवारिक विषमतागत परिस्थितियों में प्रकट हुए हैं जो जन-जीवन के लिए क्षोभ के कारण हैं।

२. स्त्री वर्ग इन विषमताओं से क्षुब्ध रहता है। उनकी अपनी समस्याएँ हैं जिनका निराकरण नहीं होता। उनका जीवन प्रायः दुःख में ही कटता है।

३. पौराणिक कथाओं तथा रामकथा को लोक ने अपनी भावनाओं के रूप में डालकर प्रकट किया है। इन कथाओं के आदर्श चरित्र भी पारिवारिक विषमताओं में आबद्ध तथा उनके कारण विषण्ण दिखलाए गए हैं।

४. पौराणिक कथाओं तथा रामकथा के सम्बन्ध में लोक की अपनी जो मान्यताएँ हैं जिनमें से कतिपय अभी तक साहित्य में प्रश्रय नहीं पा सकी हैं जैसे रावण का चित्र बनाने के कारण सीता का निर्वासन।

५. लोक-गीतों के विषय मनुष्य समाज तक ही सीमित नहीं रहे है। उन में पशु-पक्षियों को समान अधिकार मिला है तथा वे मानव समाज के अभिन्न अंग के रूप में प्रकट हुए हैं।

६. कथानक सुस्पष्ट तथा प्रायः लघु होते हैं।

शैलीगत—१. करुणरस की विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार की शब्दावली तथा पदयोजना एवं गीत की स्वर-लहरी लोकगीतों की अपनी विशेषता है। इस दृष्टि से लोक कलाकार की सूझ बूझ स्तुत्य है।

२. कोमलकांत पदावली तथा सरल अभिव्यक्ति की ओर लोक-कलाकारों का विशेष स्थान है। गीत सहज ही फूट पड़ते हैं। इसलिए उनमें सरलता स्वाभाविकता तथा मर्म-स्पर्शिता सहज ही आ जाती है।

३. लोक के अपने प्रतीक हैं, जिनकेसहारे अभिव्यक्ति को सशक्त तथा प्रभावशाली बनाया जाता है।

४. गीतों की गेयता शैली का आधार है, इसलिए करुण रस की अभि-व्यक्ति का मर्मस्पर्शी स्वर-लहरी से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इस प्रकार के गीतों की शब्दावली अथवा भाषा से अपरि-चित होते हुए भी स्वरलहरी मात्र से गीत की करुण अभिव्यक्ति का अनुमान लग सकता है।

: ४ :

सूर की रामकथा में करुण रस

कवि का दृष्टिकोण—साहित्य के 'सूर्य' सूर हिन्दी-साहित्य के ही क्यों विश्व-साहित्य के उन गिनेचुने कलाकारों में से हैं जिनकी लेखनी से कविता सरसप्रवाह के रूप में प्रवाहित हुई तथा अबाधगति से बहती गई और एक दिन वह प्रवाह सागर बन गया। वह सागर जिसमें अगाध जल है तो अनन्त रत्नराशि भी पड़ी हैं जिनकी प्राप्ति के लिए जनमानस प्रयत्नशील है और जिनको प्राप्त कर अपने आप को धन्य समझता है। समझे भी क्यों न, उन रत्नों के मूल में है जनजीवन की करुणापूर्ण दशा जो कवि-हृदय सूर के लिए शोकजनक सिद्ध हुई थी, तथा जिसकी अभिव्यक्ति हुई निम्नलिखित दोहे में जो प्रमाणापेक्षी होते हुए भी कवि के कोमल एवं करुणापूर्ण मानस का दिग्दर्शन कराने में पूर्ण समर्थ है। ऐसा लगता है कि 'निबल' जनजीवन का हाथ छुड़ाकर समर्थ भगवान् चला गया हो और असहाय जन-मानस यातनाओं के भार में कराह रहा हो।

"हाथ छुड़ाए जात हौ निबल जानि के मोहि,
हिरदे ते जब जाहुगे मरद बदौंगो तोहि।"

जन-मानस में उस समर्थ शक्ति की स्थापना का प्रश्न आया तो स्वभावानुकूल सूर घिघियाने लगे।

आचार्य जी ने सूर की प्रतिज्ञा देखी और इन शब्दों में एक निश्चित मार्ग का निर्देश किया—

"जो सूर है के ऐसौ घिघियात काहे को है। कुछ भगवत्लीला वर्णन करि।"[1]

प्रयत्नपक्ष और उपभोगपक्ष अथवा साहित्य की साधनावस्था तथा सिद्धावस्था का संतुलन तब भी तुलसी सूर जैसे विश्वविश्रुत कलाकारों की दृष्टि में रहा। फल-स्वरूप तुलसी ने कृष्ण लीला को अछूता न छोड़ा तो सूर ने रामकथा के प्रति उदासीनता न दिखलाई। यह अवश्य है कि तुलसी की दृष्टि में साधनावस्था प्रमुख तथा

---

१. चौरासी वैष्णवों की वार्ता

सिद्धावस्था गौण थी तो सूर की दृष्टि में सिद्धावस्था प्रमुख तथा साधनावस्था गौण; किन्तु यह स्पष्ट है कि दोनों ही एकांगीपक्ष के पक्ष में न थे।

कहना न होगा कि सूर का मन जितना साहित्य की सिद्धावस्था के चित्रण में रमा उतना उसकी साधनावस्था में नहीं। यही कारण है कि रामकथा का प्रसंग एक स्कंध[1] में ही समाप्त कर दिया गया है जिसके कारण क्या अबाध गति से प्रवाहित नहीं हो सकी है। कहीं-कहीं तो अति संक्षिप्ति होने के कारण कथा का रूप सुग्राह्य नहीं रह सका है। फिर भी करुणरस के जिन स्थलों को सूर ने अंकित किया है उनमें करुणरस की श्रेष्ट अभिव्यक्ति संभव हुई है।

शैली—सूर सगुनपद गाने चले हैं। इसलिए रामकथा का यह सम्पूर्ण प्रसंग भी पदों में ही अवतरित हुआ है। साहित्य के साथ संगीत के मेल से सूर की कृति द्विगुणित प्रभावशाली बन गई है। और किसी रस के साथ संगीत आवश्यक रहे चाहे न रहे किन्तु शोक (रोना और गाना) के साथ तो उसका सहज सम्बन्ध है। शोक का रुदन गाने का रूप ले लेता है। यह शोक-प्रदर्शन में नित्यप्रति देखने में आता है।

अयोध्याकांड से लंकाकांड तक निम्नलिखित प्रकार के रागों में पदों की रचना हुई है—

राग	पदसंख्या	राग	पदसंख्या	राग	पदसंख्या
मारू	७७	बिलावल	३	गौरी	१
सारंग	२६	आसावरी	२	मलार	१
केदारौ	१३	रामकली	२	टोड़ी	१
कान्हरौ	१०	नट	२	बसंत	१
धनाश्री	१०	गूजरी	२	सोरठ	४

कुल संख्या—१५६ पद

सूर की पद-रचना अपनी सरसता, सरलता तथा भावानुभूति के लिए विशेष महत्व रखती है। गेय होने के साथ यह पद इतने सरल तथा मर्मस्पर्शी हैं कि पाठक के समक्ष अनायास ही अभिप्रेत वस्तु का बिम्ब खींच देते है। शैली के साथ भाषा का प्रसादगुण भावों की अभिव्यक्ति में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव स्थापित हो जाता है जिसमें सूर की महत्ता तथा श्रेष्ठता निहित है।

करुणरस के प्रसंगों की योजना—सूर के परंपरानुगत रूप में रामकथा का मूल आधार जयविजय की शापकथा को ही माना है किन्तु इस ओर कवि ने अपने पद में संकेत-मात्र ही किया है—

१. सूरसागर (ना०प्र० सभा संस्करण) नवम स्कंध ४६० से ६१६ तक के पद।

"जय अरु विजय पारषद दोई। विप्र-सराप असुर भए सोइ ॥
रावन कुंभकरन सोइ भए। राम जनम तिनकैं हित लए ॥"

इस प्रकार राम-जन्म का कारण सूर इसी शापकथा को मानते है। रामकथा के अन्तर्गत मुख्यतः "प्रिय-बन्धुवान्वव एवं पुत्रादि के वियोग एवं मरण" को सूर ने लिया है। जिसमें दशरथमरण, सीताहरण तथा लक्ष्मणशक्ति प्रसंग करुणरस की अभिव्यंजन की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

सूरसागर में करुणरस के प्रसंग

१ — राम-वनगमन	१. महाराज दशरथ का सोच, विलाप, पश्चाताप एवं मरण।
	२. भरत-विलाप।
	३. दशरथ-मरण के समाचार को पाकर रामसीता का विलाप।
२—सीता-हरण	१. राम-विलाप।
	२. अशोक वाटिका में सीता।
	३. सीता का परिताप।
३—लक्ष्मण-शक्ति	१. राम-विलाप।
	२. करुणमनोभाव-कौशल्या, सुमित्रा का विलाप और उत्साह।
४—सीता-राम मिलन	१. करुण का एक अप्रिय प्रसंग।
५—विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति	१. रावण-वध पर मंदोदरी और विभीषण का विलाप।
६—बन्धन	१. राम-लक्ष्मण का नागपाश-बंधन।
७—पराभव	१. रावण-पराभव।

करुणरस के प्रसंगों की अभिव्यक्ति—

रामवनवास-प्रसंग—महाराज दशरथ चारों पुत्रों का विवाह करके जनकपुर से अयोध्या लौटे। इस उल्लास और आनन्द में पितृ-हृदय की ललक और लालसा पूर्ण हुई। उनका उत्साह राम के राजतिलक के लिए सहज ही मुखरित हो उठा—

"अवधपुरी को राज रामदै, लीजै व्रत बनचारी।"

महारानी कैकेयी पास ही बैठी इस विचार को सुन रही थी। उन्होंने तुरन्त महाराज के उत्साह को भंग करके महाराज को आकाश से पृथ्वी पर ला पटका—

"यह सुनि बोली नारि कैकेई, अपनी बचन सँभारौ।
चौदह वर्ष रहैं बन राघव, छत्र भरत-सिर धारौ॥"

महाराज के मनोरथों तथा सुखद विचारों पर अप्रत्याशित प्रहार ने महाराज को हतबुद्धि बना दिया। उनसे "कछू कहत" न बना—

"यह सुनि नृपति भयौ अति व्याकुल, कहत कछू नहिं आई।"

महाराज दशरथ तथा महारानी कौशल्या कैकेयी द्वारा मांगे गए वचन के परिणाम को सोचकर विकल हो उठे और उनके नेत्रों से आँसू बहने लगे—

"महाराज दशरथ यों सोचत।
हा रघुनाथ, लछन, वैदेही, सुमरि नीर दृग मोचत॥"

तथा

"कौशल्या सुनि परम दीन ह्वै, नैन नीर ढरकाए।
विह्वल तन-मन, चकृत भई सो, यह प्रतच्छ सुपनाए॥"

कर्त्तव्य और प्रेम के द्वन्द्व में महाराज की दशा अति करुणापूर्ण हो गई। प्राणपण से वचन निर्वाह अथवा प्रेम के लिए बलिदान में से महाराज दशरथ ने वचन निर्व्राह को ही हृदय पर पत्थर रख कर चुना परन्तु पुत्र-वियोग की विषमवेदना से वह तिलमिला उठे। ऐसे अवसरों पर दैन्य तथा कल्पना जीवन का आधार बनती हैं। महाराज दशरथ एक ओर राम से जैसे अब वह उनके अतिथि हों, पराए हो गए हों, एक दिन रुकने के लिए अनुनय विनय करते हैं तो दूसरी ओर वचन वृथा होजाने की कल्पना भी उनके मन में उदय होती है कि चाहे वचन वृथा हो जाय पर राम रुक जाँय—

रघुनाथ प्यारे आज रहो (हो)।
चारि जाम विश्राम हमारै, छिन-छिन मीठे वचन कहौ (हो)।
वृथा होहु बर बचन हमारौ, कैकेई जीव क्लेस सहो (हो)।
.. ..

बिछुरन प्रान पयान करेंगे, रहौ आजु पुनि पंथ गहौ (हो)।

महाराज दशरथ अपने लाड़लो के विरही रूप की कल्पना करते हैं और असह्य वेदना के कारण बिलख उठते है। जिन राजकुमारों पर सम्पूर्ण राज-वैभव लुटाया जाता था वे ही राजकुमार आज विरक्त होकर सिर पर जटा धारण किए, समस्त देह में भस्म लगाए बिना पदत्रान के वन-वन मारे फिरेंगे। कंदमूल फल का भोजन करेंगे और पत्तों पर सोवेंगे। इन्हीं कष्टों को उनकी अनुगामिनी कोमलांगी जनकपुत्री भी सहेगी। उस भोली-भाली अबोध बाला पर महाराज की दृष्टि जम जाती है और उसको देखकर वह अति अधीर होकर विलख उठते हैं। इस कल्पना में

करुण की कैसी मर्मभेदी अनुभूति का विकास होता है यह पद की टेक के गिने-चुने शब्दों में प्रकट है—

"फिरि-फिरि नृपति चलावत बात ।"

दुःखों तथा कष्टों का एक घटाटोप होता है जो बरबस बार-बार आर्त्त एवं व्यथित व्यक्ति के समक्ष अपनी कटुता का अनुभव कराता रहता है । मनोविज्ञान का यह तथ्य कवि की दृष्टि में था, इसीलिए इतनी सुन्दर अभिव्यक्ति सम्भव हो सकी । कवि के मूल शब्दों में यह प्रसंग यहाँ अवलोकनीय है—

"फिर-फिरि नृपति चलावत बात ।
कहुरि सुमति कहा तोहिं पलटी, प्रान-जिवन कैसे बन जात ।
ह्वै विरक्त, सिर जटा धरैं, द्रुम-चर्म भस्म सब गात ।
हा हा राम, लछन अरु सीता, फल भोजन जु डसावैं पात ।
बिन रथरूढ़, दुसह दुख मारग, बिन पद-त्रान चलैं दोउ भ्रात ।
इहि विधि सोच करत अतिही नृप, जानकी ओर निरखि बिलखात ॥"

आखिर प्रयाण की वह अशुभ घड़ी आ ही गई और राम-सीता-लक्ष्मण वन को चल दिए । पुरजन यह समाचार पाकर विह्वल हो उठे । महाराज दशरथ 'ऊँचे चढ़ि लोचन भरि सुत-मुख' देखने लगे । उनकी दारुण व्यथा निम्नलिखित शब्दों में फूट पड़ी ।—

"रामचन्द्र से पुत्र बिना मैं भूँजब क्यों यह खेत ।"

पुत्र-वियोग की वेदना महाराज के लिए असह्य हो गई और वह 'तात-तात' कहते हुए अचेत होकर गिर पड़े—

"देखत गमन नैन भरि आए, गात गह्यौ ज्यों केत ।
तात-तात कहि बैन उचारत, ह्वै गए भूप अचेत ॥"

उधर कौशल्या पुकारती ही रह गई 'रामहि राखौ कोउ जाइ ।' दुःखी मानस मानो कल्पनाओं के सहारे ही जीवन को आगे बढ़ाता है । आशा की एक चिनगारी बुझकर दूसरी को जन्म दे देती है । इस प्रकार आशा निराशा में परिणित हो जाती है परन्तु उसके साथ दूसरी आशा उदय होती है । जब वह भी निराशा में परिणित होती है तो व्यथा असह्य होने के साथ-साथ घातक बन जाती है । इसे अन्तिम निराशा कह सकते हैं जो अपने पश्चात् किसी और आशा के अंकुर को जन्म नहीं देती । महाराज दशरथ की मृत्यु इसी प्रकार के सहज मानस व्यापार में हुई ।

महाराज की प्रथम आशा के दर्शन उनकी अनुनय-विनय तथा वचनवृथा होने

१. सूरदार ६/३८/४८२

की कल्पना में होते हैं। वह समझते हैं तथा आशा करते हैं कि राम उनकी अनुनय-विनय को मानकर रुक जायेंगे किन्तु ऐसा नहीं होता तथा महाराज की आशा निराशा में परिणित हो जाती है। इसके साथ ही महाराज को एक और उपाय सूझता है और इसके साथ दूसरी आशा का उदय होता है। सुमंत्र राम को रथ में बैठाकर वन ले जाँय तथा घुमाकर लौटा लावें। यह उपाय वचन-पालन का पूर्ण समाधान करता था। बनवास भोगकर वापिस आ गए और इसीलिए इसके साथ महाराज की आशा बलवती तथा विश्वास की ओर उन्मुख थी। वियोगी एवं शोक-कातर महाराज के प्राण इसी आशा पर टिके हुए थे। रथ के लौटने के साथ वह अपने लाड़लों के वापिस आने के सुख-स्वपन देख रहे थे किन्तु जब मन्त्री अकेला ही वापिस आया और महाराज को उसने समाचार दिया कि—

" ·····रघुवर (रथ) फेरि दियौ।
भुजा छुड़ाइ, तोरि तृण ज्यों हित, कियौ प्रभु निठुर हियौ।"

तब तो महाराज को घोर निराशा ने घेर लिया। वह अति व्याकुल हो कर बिलख उठे। उनकी असह्य वेदना घातक सिद्ध हुई। आशा और विश्वाश के प्रतिकूल इस प्रकार अप्रत्याशित घोर निराशा की प्राप्ति घातक बन जाती है। सूर ने इसी तथ्य को सम्भवतः दृष्टिगत रखते हुए और अधिक विवरण देने के स्थान में अविलंब महाराज के जीवन-त्याग की व्यवस्था करदी—

"यह सुनि भूप तुरत तन त्यागौ, बिछुरन ताप तयौ।"

सूर ने राम-विरह में संतप्त अयोध्या तथा पशु-पक्षी आदि की विरह-वेदना का वर्णन महाराज दशरथ के निधन के संदर्भ में ही किया है और इस प्रकार महाराज दशरथ के निधन को सकारणता भी प्रदान की—

"पसु-पंछी तृन-कन त्याग्यौ अरु बालक पियौ न पयौ।
सूरदास रघुपति के बिछुरैं, मिथ्या जन्म भयौ।"

तथा

"आजु अयोध्या जल नाहिं अँचवौं ···।"

भरत का शोक—भरत ननिहाल से वापिस आए। उन्होंने अयोध्यापुरी की दीन अवस्था देखी तो वह अनिष्ट की आशंका से काँप उठे। जब राजभवन में आकर उनको यह ज्ञात हुआ कि यह सब आपत्तियाँ उन्हीं के हित-साधन के कारण आई हैं। उनकी शुभ चिन्तक माता ने ही यह सब कुछ किया है। शोक और उसके साथ आत्म ग्लानि दोनों मर्मस्पर्शी भावों से भरत तथा शत्रुघ्न की दशा अति करुणापूर्ण हो गई। उनको दिखाई देने लगा कि वह इस काण्ड के हेतु हैं एतदर्थ वह अपराधी हैं। दोनों भाइयों की विषम वेदना का चित्रण कवि ने असह्य विकलता के द्वारा किया है। दोनों भाई अति व्याकुल होकर पृथ्वी पर इसी प्रकार तड़फड़ा रहे थे जैसे विषम विष को पीकर मनुष्य तड़फड़ाता है—

"मो अपराधी के हित कारन, तें रामहिं बनवास दियौ।

कौन काज यह राज हमारे इहिं पावक परि कौन जियौ ?
लोटत सूर धरनि दोउ बंधू, मनो तपत-विष विषम पियौ ।।"

भरत और शत्रुघ्न की यह वेदना प्रलाप के रूप में प्रकट होती है। स्थान की शून्यता प्रि के अभाव का स्मरण कराती है। वह स्थान जहाँ प्रिय जन उठते बैठते, खाते-पीते तथा जीवन के अन्य दैनिक कार्य करते थे। उसके अभाव में सूने दिखलाई देते हैं और यह शून्यता ही भावों के उद्दीपन का काम करती है। इस शून्यता को देखकर भावुक कवि हृदय किस प्रकार मौन रहता। सूर ने इस सूनेपन को ही भरत के प्रलाप का मुख्य आधार बनाया है।

सूर ने इस शून्यता का वर्णन करने के साथ ही मानस की विश्लेषणात्मक वृत्ति को भी अवसर के उपयुक्त क्रियाशील बना दिया। भरत का मानस शून्यता को जन्म देने वाली पुत्राहितसाधक माता के संकीर्ण विचारों, अपनी साध तथा विधि-विधान का सहज ही विश्लेषण करने लगता है। मानो इस प्रकार "शून्यता क्यों"—इस जिज्ञासा का मानस स्वयं ही समाधान करना चाहता। शून्यता की अनुभूति सहज जिज्ञासा से ही तो प्रारम्भ होती है। "राम जू कहाँ गए री माता"—कवि के मूल शब्दों में ही इस अभिव्यक्ति का अनुशीलन किया जा सकता है—

"रामजू कहाँ गए री माता ?
सूनौ भवन सिंहासन सूनौ, नाहीं दसरथ ताता।
धृग तब जन्म, जियन धृग तेरौ, कही कपट-मुख बाता।
सेवक राज, नाथ बन पठए, यह कब लिखी विधाता।
मुख अरविंद देखि हम जीवत, ज्यों चकोर ससि राता।
सूरदास श्री रामचंद्र बिनु कहा, अजोध्या नाता ।।"

दुःखी मानस की सहज कल्पना ने भरत को भी आशा दिलाई। उन्होंने सोचा यदि महाराज राम से वन जाकर साग्रह निवेदन किया जाय कि बहुत हो लिया अब आप चलिए तो संभव है वह वापिस आ जावें। माता कौशल्या की दीनदशा की सूचना जब उनको दी जायगी तो उतका हृदय भी द्रवीभूत हो जायगा और वह वन से वापिस आने के लिए सहमत हो जावेंगे। इस आशा को लेकर भरत वन को चल दिए। भगवान् राम के चरण हठपूर्वक पकड़ लिए और अयोध्या वापिस चलने के लिए अनुनय-विनय तथा अति आर्त्त निवेदन करने लगे—

"तुमहिं विमुख रघुनाथ, कौन बिधि जीवन कहा बनै।
चरन-सरोज बिना अवलोके, को सुख धरनि गनै।
हठ करि रहे, चरन नहिं छाँड़े, नाथ तजौ निठुराई।
परम दुःखी कौशल्या जननी, चलौ सदन रघुराई ।।"

दृढ़ प्रतिज्ञ राम को भरत की अनुनय-विनय तथा हठ अपने मार्ग से विचलित न कर सकीं। वह पिता-वचन पालन के लिए तत्पर रहे और भरत को निराशाजनक उत्तर मिला—

"चौदह बरष तात की आज्ञा, मोपै मेटि न जाई।"

भरत की निराशा, विवशता, विकलता, वेदना तथा व्यथा अनिर्वचनीय बन कर रह गई। एक शब्द से ही कवि ने इन मर्मस्पर्शी अनुभूतियों का समावेश कर दिया। विवशता दोनों ओर थी, अतएव संक्षिप्त रूप में ही इस प्रसंग का समाप्त करना उचित समझा गया। साथ ही प्रभु की 'पाँवरी की प्राप्ति' आंशिक संतोष का विषय भी थी—"सूर स्वामि की पाँवरि सिर धरि, भरत चले बिलखाई।"

महाराज दशरथ के मरण का समाचार पाकर रामसीता का शोक—भरत वन में भगवान् राम से मिले। भरत के "मुंडित केस-सीस" को देखकर भगवान् राम को अनिष्ट की आशंका हुई और वह उदास हो गए। भरत से जब उनको यह ज्ञात हुआ कि महाराज नहीं रहे तो वह और सीता दारुण दुःख के कारण अति विकल हो गए। शोक की असह्य वेदना के कारण वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। करुण रस की मार्मिक वेदना अभावगत परिताप तथा पश्चाताप में प्रकट होती है। रामसीता को भी यही सोचकर असह्य वेदना हो रही है कि अब पिता के दर्शन भी दुलर्भ हो गए—

"तात-मरन सुनि स्रवन कृपानिधि धरनि परे मुरझाइ।
मोह-मगन, लोचन जल-धारा, विपति न हृदय समाइ।
लोटति धरनि परी सुनि सीता, समुझति नहिं समुझाई।
दारुन दुःख दवारि ज्यों तृन-बन, नाहिंन बुझति बुझाई।
दुरलभ भयौ दरस दशरथ कौ, सो अपराध हमारे।
सूरदास स्वामी करुणामय, नैन न जात उधारे॥"

परिताप के अन्तर्गत दृष्टि अन्तर्मुखी हो जाती है। शोकसंतप्त प्राणी शोक का कारण अपने ही अपराधों को समझता तथा आत्मग्लानि में तड़प उठता है। महाराज दशरथ के मरण का कारण राम अपने ही अपराध को समझते हैं और इस प्रकार उनका परिताप आत्मग्लानि में परिणित हो जाता है। राम के शोक के साथ सीता का शोक द्विगुणित पीड़ायुत बन जाता है। इसीलिए जहाँ राम "धरनि परे मुरझाई" तो सीता "लोटति धरनि परी सुनि सीता, समुझति नहिं समुझाइ।" यहाँ रामसीता के शोक में कवि ने उस जनसामान्य अनुभूति का वर्णन किया है जो प्रत्येक दुःखी पुत्र के लिए स्वाभाविक है। मर्यादा अथवा आदर्श के अन्तर्गत इस शोकानुभूति को धैर्य-धारण के द्वारा अथवा शोक की सामान्य अभिव्यक्ति के द्वारा चलता नहीं कर दिया। इसी विशेषता के कारण यह अनुभूति विशेषरूप से मार्मिक बन गई है।

सीता-हरण पर रामविलाप—राक्षसों के विनाश के लिए भगवान् राम ने जो योजना बनाई उसमें सीता प्रमुख पात्री बनाई गई। उनके हरण तथा उनकी मुक्ति के प्रयत्नों में हुआ राक्षस-संहार तथा जनजीवन की राक्षसी यातनाओं से मुक्ति। इस योजना में कार्य करने के लिए एक छाया सीता की रचना की गई।

"जनक-तनया धरी अगिनि में, छाया रूप बनाइ।
यह न कोऊ भेद जानै, बिना श्री रघुराई ॥"

इस रहस्य को जानते हुए भी सीताहरण पर भगवान् राम ने किसी स्थल पर रस-निष्पत्ति में कोई बाधा उपस्थिति नहीं की।

सीता की खोज दो रूपों में हुई—

(१) सीता के संबंध में आशंका तथा कोई पता न लगने तक निराशा।

(२) सीता का पता लग जाने पर खोज के लिए प्रयत्न तथा मिलने की आशा।

प्रस्तुत विवेचन के अन्तर्गत प्रथमरूप ही अपेक्षित है। राम की असह्य विरह-वेदना के विश्लेषण के अन्तर्गत[1] वाणी और नेत्रों की दशा का अति सूक्ष्म निरीक्षण यहाँ विशेषरूप से द्रष्टव्य है—

वाणी—"कहि प्रिय नाम पुकारत।"
"हा सीता, सीता कहि।"

नेत्र—"चकित भए दिसि-विदिसि निहारत।"
"निरखत सून भवन।"
"जल भरि-भरि ढारत।"

परिस्थितिजनित आशंका के कारण चित्त की विकलता, व्यग्रता, अस्थिरता तथा तीव्र क्रियाशीलता का प्रादुर्भाव होता है जिसकी अभिव्यक्ति उपर्युक्त रूप में वाणी तथा नेत्रों के द्वारा होती है। इस दशा की सहज अनुगामिनी होती है प्रलाप तथा उन्माद की दशाएँ, जिनके अन्तर्गत विरह-वेदना का समुचित विकास होता है। राम पशुपक्षी तथा लता-द्रुमों से सीता का पता पूछते फिरते हैं। यह कवि की कोरी ऊहा नहीं प्रत्युत मनोविज्ञान की वह ठोस आधार भूमि है जिस पर मानव-व्यवहार का अध्ययन किया जाता है—अपने रंग में चराचर जगत को रंगा देखना।

"फिरत प्रभु पूछत बन-द्रुम-बेली।
अहो बंधु, काहूँ अवलोकी, इहिं मग बधू अकेली?
अहो बिहंग, पन्नग-नृप, या कंदर कै राइ।
अबकैं मेरी विपति मिटावौ, जानकि देहु बताइ।"

इस प्रसंग में कला और कल्पना जन्य रुपकातिशयोक्ति के रूप में भी तथा सीताहरण के कारण का उल्लेख हुआ है। सूर की कल्पना यहाँ द्रष्टव्य है—

"सुनौ अनुज इहिं बन इतनिनमिलि जानकी प्रियाहरी।
कछु इक अंगनि की सहिदानी, मेरी दृष्टि परी।

---

१. "रघुपति कहि प्रिय नाम पुकारत।
हाथ धनुष लीन्हे, कटि माथा, चकित भए दिसि-बिदसि निहारत।
निरखत सून भवन जड़ ह्वै रहे, खिन लोटत घर बपु न सँभारत।
हा सीता, सीता कहि सिग्रपति, उमड़ि नयन जल भरि-भरि डारत॥"

कटि केहरि, कोकिल कल बानी, ससि मुख-प्रभा धरी।
मृग मूसी नैननि की सोभा, जाति न गुप्त करी।
चंपक-बरन, चरन-कर कमलनि, दाड़िम दसन लरी।
गति मराल अरु बिंब अधर-छबि, अति अनूप कबरी।
अति करुना रघुनाथ गुसाईं, जुगज्यौं जाति धरी।
सूरदास प्रभु प्रिया-प्रेम-बस, निज महिमा बिसरी।"

सीता की करुणापूर्ण दशा—सीता की करुणापूर्ण दशा का वर्णन संपाती और हनुमान के द्वारा कराया गया है। लंका में सीता रावण के बन्धन में हैं और इस कारण अति दुःखी हैं। संपाती "गीधहिं दृष्टि अपार" के फलस्वरूप समुद्र के इस पार से ही सीता जी की करुणापूर्ण दशा को देख लेता है और हनुमान आदि बानरों के सम्मुख उस दशा का निम्नलिखित शब्दों में वर्णन करता है। सीता जी की करुणापूर्ण दशा प्रत्येक सहृदय को द्रवीभूत कर देगी, विशेष कर जब वह देखेगा कि सीता के रूप में जन-जीवन अत्याचारों के नीचे कराह रहा है—

"बिछुरी मनौ संग तैं हिरनी।
चितवत रहत चकित चारौं दिसि, उपजी विरह तन जरनी।
तरुवर-मूल अकेली ठाढ़ी, दुखित राम की घरनी।
बसन कुचील, चिहुर लिपटाने, बिपति जाति नहिं बरनी।
लेति उसास नयन जल भरि-भरि, धुकि सो परैं धरि धरनी।
सूर सोच जिय पोच निसाचर, राम नाम की सरनी॥"

लंका में पहुँचकर हनुमान भी सीता के इसी करुणापूर्ण रूप के दर्शन करते हैं—

"पुनि आयौ सीता जहँ बैठी, बन अशोक के माँहिं।
चारों ओर निसिचरी घेरे, नर जिहिं देखि डराहिं।
....
बहु निसाचरी मध्य जानकी, मलिन बसन तन माँहिं।
बारंबार बिसूरि सूर दुख, जपत नाम रघुनाहू।
ऐसी भाँति जानकी देखी, चंद गह्यौ ज्यों राहू॥"

महारानी सीता की ऐसी दीन मलीन तथा करुणापूर्ण दशा को देखकर कौन ऐसा होगा जो उनके साथ पुकार-पुकार कर हनुमान् से यह न कहे—

"सूरदास स्वामी सौ कहियौ अब बिरमाहिं नहीं।"

सीता का परिताप—त्रिजटा प्रभात की बेला में देखा हुआ अपना स्वप्न सीता जी को सुनाती हैं कि उसने देखा—

"कुसुम-विमान बैठी वैदेही, देखी राघव पास।
स्वेत छत्र रघुनाथ सीस पर।

भयौ पलायमान दानवकुल व्याकुल सायक-त्रास ॥"

इस स्वप्न की सुखद बातों को सुनकर "वैदेही अति दुख से उसास लेने लगीं।"

जिस स्वप्न के द्वारा रामविजय, रामसीता-मिलन तथा राक्षस-विनाश का सुखद समाचार सुनाया जाय, उसको सुनकर सीता के अति दुःखी होने की क्या बात हो सकती है ? इस जिज्ञासा में मनोविज्ञान के पंडित सूर के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विवेचन का अध्ययन करना होगा।

इस प्रसंग पर पुनः दृष्टिपात कर लेना आवश्यक होगा—

"त्रिजटा वचन सुनत बैदेही अति दुख लेति उसास।
हा हा रामचन्द्र, हा लछिमन, हा कौशल्या सास।
त्रिभुवननाथ नाह जो पावै, सहै सो क्यों बनबास ?"

सीता के मानस को निम्नलिखित भाव आलोड़ित कर रहे थे—

१—त्रिजटा के स्वप्न को सुनकर आंतरिक अपार हर्ष।

२—वर्त्तमान अपार कष्ट की अनुभूति, वनवास, राक्षस के यहाँ बंधन, राक्षस-त्रास।

३— सुखद स्वप्न साकार होने की उत्कट लालसा तथा शीघ्र साकार क्यों नहीं हो रहा यह सोचकर असह्य मानसिक क्लेश।

कहना न होगा कि अन्तिम भाव ही प्रमुख हो गया है और उसका कारण यह है कि विलंब के साथ सीता का परिताप कष्टकर रूप में प्रकट होने लगा है। उनके मन में यही विचार बार-बार आता है और मन को तिलमिला जाता है कि "कौन पाप मैं पापिन कीन्हौं, प्रगट्यौ जो इहिं बार" इस विचार के साथ निम्नलिखित दो अपराध उनको स्मरण हो आते हैं और इस प्रकार पूरा प्रसंग हर्ष के स्थान में वेदना तथा दुःख को प्रकट करने लगता है। सूर की कला यहाँ विशेष रूप से अवलोकनीय है—

१—मृगहित दियौ हथियार।

२—नाघ्यौ धनुष-प्रकार।

लक्ष्मण शक्ति—लक्ष्मण शक्ति के अवसर पर राम की शारीरिक तथा मानसिक दशाओं का कवि ने अति समीप से अध्ययन किया है। कवि के सूक्ष्म निरीक्षण में कवि की श्रेष्ठ कला का उद्घाटन हुआ है।

मानसिक दशा—राम के मन में तत्कालीन परिस्थितियों का ध्यान सबसे पहले आता है। वह देखते हैं कि आपत्तियों का एक ताँता बँध गया है, दशरथ-मरण हुआ, सीता-हरण हुआ; और तो और यह शूरवीर भाई भी साथ छोड़कर चल दिया। युद्ध में बैरियों की भीड़ लग रही है। अब ऐसे समय में कौन साथ देगा और कौन धैर्य बँधावेगा। दूसरी ओर वचन-बद्धता का विचार आता है और वह सोचने लगते

हैं कि सब कुछ विनाश सही पर शरणागत विभीषण को लंका का राज्य किस प्रकार दिया जा सकेगा। अब विभीषण को दिया यह वचन कैसे पूरा होगा ?

राम की वेदना को निम्नलिखित तीन स्थितिथों में देखा जा सकता है—

१—लक्ष्मण के मरण से जो क्षति होगी उसकी पूर्ति नहीं हो सकती। किस को साथ लेकर युद्ध करूँ।

२—शत्रु का मनचीता हो गया। अब तो पराजय है ही। साथ में स्त्री भी गई।

३—विभीषण को लंका का राज्य देने का वचन पूरा न हो सकेगा।

राम की वेदना सामाजिक के लिए अति मर्मस्पर्शी बन गई जब वह "बार-बार सिर लै लछिमन कौ, निरखि गोद पर राखै" तथा अति विकल हो कहने लगे—"बोलत नहीं मौन कहा साध्यौ बिपति-बँटावन वीर।"

शारीरिक दशा—शोक के कारण राम की मानसिक कष्टकर वेदना के साथ उनका शरीर अति शिथिल तथा बेचैन हो गया है और उनके नेत्रों से आँसू बह रहे हैं।

सूर की कल्पना—दुःख समुद्र के रूपक में विशेष रूप से द्रष्टव्य है। रिपु-सैना-समूह-रूपी जल उमड़ आया है और केवट बीच मंझधार में ही थक गया। इस विपत्ति से कोई कैसे पार पावे।

" ...भूतल बंधु पर्‌यौ।
करुना करत सूर कोसलपति नैननि नीर झरयौ॥"

तथा

"निरखि मुख राधव धरत न धीर।
गए अति अरुन बिसाल कमल दल-लोचन मोचत नीर।
बारह बरस नींद है साधी तातैं बिकल सरीर।
बोलत नहीं मौन कहा साध्यौ, बिपति-बँटावन वीर।
दशरथ-मरन, हरन-सीता कौ, रन बैरिन की भीर।
दूजौ सूर सुमित्रा-सुत बिनु, कौन धरावै धीर॥"—९/१४५/५८९

तथा

"अब हौं कौन कौ मुख हेरौं ?
रिपु-सैन-समूह-जल उमड़यौ, काहि संग लै फेरौं ?
दुख-समुद्र जिहिं वार-पार नहिं, तामैं नाव चलाई।
केवट थक्यौ, रही अधबीचहिं, कौन आपदा आई ?
....
बीचहिं भई और की औरै, भयौ शत्रु कौ भायौ।
....
ह्वै है कहा बिभीषन की गति, यहै सोच जिय गुनि कै।
बार बार सिर लै लछिमन कौ, निरखि गोद पर राखै॥"—९/१४६/५९०

करुण मनोभाव—हनुमान् के द्वारा लक्ष्मण-शक्ति का दुःखद समाचार भरत तथा राजपरिवार को मिलता है और सब लोग विलाप करने लगते हैं। उनकी विकलता करुणरस की अनुभूति का सृजन करती है किन्तु अविलम्ब सुमित्रा जो अभी "त्राहि-त्राहि कहि, पुत्र-पुत्र कहि" रो रही थीं, साहस और धैर्य का परिचय देते हुए उत्साह का अनुभव करने लगती हैं और इस प्रकार करुणरस की स्थिति बदल कर वीररस के मनोभावों का उदय हो जाता है। भावसंश्लिष्टि की दृष्टि से सूर का यह पद विशेष रूप से अवलोकनीय है—

"वन मैं बसत, निसाचर छलकरि, हरी सिया मम मात।
ता कारन लछिमन सर लाग्यौ, भए राम बिनु भ्रात।
यह सुनि कौसिल्या सिर ढोर्‌यौ, सबनि पुहुमि तन जोयौ।
त्राहि-त्राहि कहि, पुत्र-पुत्र कहि, मातु सुमित्रा रोयौ।
धन्य सुपुत्र पिता-पन राख्यौ, धनि सुबुधू कुललाज।
सेवक धन्य अंत अवसर जो आवै प्रभु कै काज।
....
कौसिल्या सौं कहति सुमित्रा, जनि स्वामिनि दुख पावै।
लछिमन जनि हौं भई सपूती, राम-काज जो आवै॥"

करुण का अप्रिय प्रसंग—हेगल ने करुण के दो रूपों की कल्पना की है—अप्रिय (या असत्य), प्रिय (या सत्य)। भारतीय साहित्य में इस प्रकार के पात्रों की कभी कल्पना नहीं हुई जो अप्रिय करुण का सृजन करते। कतिपय ऐसे प्रसंग अवश्य प्रकट हुए हैं जिनमें करुण की अनुभूति वेदना से आगे वढ़कर घृणा में परिणित होती प्रतीत होने लगती है। ऐसा ही एक प्रसंग रामकथा के अन्तर्गत निम्नलिखित रूप में प्रकट होता है—

रावण-वध के पश्चात् सीता को लाने के लिए लक्ष्मण लंकापुरी में गए। वहाँ उन्होंने सीता की अति करुणापूर्ण दशा देखी—

"लछिमन सीता देखी जाइ।
अति कृस, दीन, छीन-तन प्रभू बिनु, नैननि नीर बहाइ।"

करुणा की प्रतिमूर्ति, दीन, मलीन, क्षीण तथा अति दुःखी सजलनयन सीता जब मर्यादापुरुषोतम राम के सम्मुख उपस्थित होती हैं तो श्रीराम उनकी ओर से मुख मोड़ लेते हैं। यह कैसी विडम्बना है? यह कितना मर्मस्पर्शी तथ्य है? इसका अनुमान प्रत्येक सहृदय सहज ही लगा सकता है—

"पुहुप विमान बैठी बैदेही, त्रिजटी सब पहिराइ।
देखत दरस राम मुख मोर्‌यौ, सिया परी मुरझाइ॥"

राम के इस कष्टकर व्यवहार के फलस्वरूप सीता का मूर्च्छित होकर गिर पड़ना स्वाभाविक ही है। यही क्यों उनके साथ सामाजिक का हृदय भी क्षुब्ध हो जाता

है। बड़े कष्ट के साथ ही वह इस अनुभूति को सहन कर पाता है। इसीलिए इस प्रसंग को कवि ने संकेत-मात्र रूप देकर परम्परा का अनुपालन किया है जो लोक-मंगल एवं लोक-मर्यादा की प्रतिष्ठा के लिए आवश्यक समझा जाता रहा है।

विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति—विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति के साथ सामाजिक का तादात्म्य नहीं हो पाता। इस तथ्य को दृष्टिगत रखकर ही कवियों की दृष्टि इन प्रसंगों के प्रति उदासीन रही है। विपक्ष विनाश पर कवि सुख की साँस लेता दिखलाई देता है जो पक्ष की विजय तथा विपक्ष की हार के अवसर पर स्वाभाविक है। इस सुख और संतोष के साथ समाजिक की अनुभूति का तादात्म्य हो जाता है। इसका रूप विपक्षीपात्रों की शोकानुभूति में उन तथ्यों के अन्तर्गत प्रकट हुआ है जिनमें विपक्षी पात्र प्रियजन के लिए शोक करने के स्थान में उसके दोषों का वर्णन करते हैं।

सूर ने एक ही पद में रावण-वध पर मंदोदरी तथा विभीषण के विलाप का उपर्युक्त रूप में वर्णन किया है—

"करुना करति मंदोदरि रानी !
चौदह सहस सुन्दरी उमहीं, उठै न कंत महा अभिमानी।
बार-बार बरज्यौ, नाहिं मान्यौ, जनक-सुता तैं कत घर आनी।
ये जगदीस ईस कमलापति, सीता तिय करि तैं कत जानी ?
लीन्हे गोद विभीषन रोवत, कुल कलंक ऐसी मति ठानी।
चोरी करी, राजहूँ खोयौ, अल्प मृत्यु तब आइ सुलानी।
कुंभकरन समुझाई रहे पचि, है सीता, मिलि साँरगपानी।
सूर सवनि कौ कह्यो न मान्यौ, त्यौं खोई अपनी रजधानी ॥"

बन्धन—बन्धन का एक प्रसंग "नाग-पाश बन्धन" के अन्तर्गत आया है किन्तु इस बन्धन में करुण की अनुभूति नहीं हो सकी है। पक्ष के प्रमुख पात्र का बन्धन है। इसलिए कवि की दृष्टि प्रसंग का संकेतमात्र कर देने तक रही है। उसके अपकर्ष को दिखाना उसके लिए संभव न था।

"हँसि-हँसि नाग-फाँस सर साँधत, बंधु समेत बँधायौ।"

संभव था इस बंधन-मुक्ति के लिए चिन्ता, व्यग्रता अथवा क्लेश उत्पन्न होता किन्तु कवि ने ऐसा अवसर भी नहीं आने दिया। बीच में ही आकर नारद युक्ति बता देते हैं और पूरा प्रसंग प्रभु-लीला के रूप में समाप्त हो जाता है।

"नारद स्वामी कह्यौ निकट ह्वै, गरुड़ासन काहैं बिसरायौ ?
भयौ तोष दशरथ के सुतकौं, सुनि नारद कौ ज्ञान लखायौ।"

पराभव—पराभव का एक संकेतमात्र प्रसंग विषय में अंगद-रावण-संवाद के अन्तर्गत प्रकट हुआ है। अंगद ने एक प्रस्ताव रखा—

"कोपि अंगद कह्यौ धरौं धर चरन मैं, ताहि, जो सकै कोऊ उठाई।
तौ बिना जुद्ध कियैं जाहिं रघुबीर फिरि ॥"

इस प्रस्ताव को रावण तथा रावण के दरबार ने सहर्ष स्वीकार किया और अंगद के पैर को उठाने के लिए दरबार के लब्ध प्रतिष्ठ योद्धा "सुनतइ उठे रिसाई" किन्तु "रहे पचिहारि, नहि टारि कोऊ सक्यो।" यह देखकर रावण को बड़ा क्षोभ हुआ और वह स्वयं अंगद का पैर उठाने के लिए चल दिया। इस अवसर पर अंगद ने अपने वाक्चातुर्य्य से रावण-पराभव की निम्नलिखित रूप में योजना की—

"कह्यौ अंगद, कहा मम चरन कौं गहत,चरन रघुबीर गहि क्यौं न जाई।
सुनत यह सकुचि कियौं गवन निज भवन कौं······।"

संक्षेपतः कहा जा सकता है कि महाकवि सूर ने रामकथा में करुणरस का जो चित्रण किया है उसमें निम्नमिखित विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं—

विषय एवं शैलीगत—१. कथा संक्षिप्त कर दी गई है। इस कारण कहीं-कहीं कथा का पूर्वापर सम्बन्ध भी लुप्त होता-सा प्रतीत होता है।

२. करुणरस की अभिव्यक्ति मुख्यतः "इष्टनाश एवं प्रियजनवियोग" के अन्तर्गत ही प्रगट हुई है। करुणरस के अन्य आलंबनों के प्रति या तो उदासीनता दिखलाई गई है या उनको छोड़ दिया गया है।

३. विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति के प्रति कवि की स्पष्ट उदासीनता दिखलाई देती है। वह समझता है कि विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति के साथ सामाजिक का तादात्म्य नहीं हो सकता।

४. पदशैली में ही विषय का विवेचन किया गया है। पदों में राग मारू की सबसे अधिक संख्या है।

अभिव्यक्तिगत—१. कवि की प्रवृत्ति भावों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की ओर रही है।

२ शोकानुभूति का आधार कवि ने विवश एवं असहाय परिस्थितयों को बनाया है।

३. स्मरणगत रूप में प्रियजनों के कष्ट की कल्पना तथा अनिष्ट की आशंका ने अनुभूति को गति प्रदान की है।

४. विरह की वेदना को चराचर जगत में व्याप्त दिखलाया गया है।

५. आशा-निराशा के उत्थान-पतन के अन्तर्गत अनुभूति को स्वाभाविकता प्रदान की गई है।

६. प्रियजन के अभाव में स्थान तथा वस्तु की शून्यता की ओर कवि का ध्यान गया है। यह शून्यता शोकानुभूति में उद्दीपन का सृजन करती है।

७. शोकानुभूति के प्रवाह में आत्मग्लानि तथा परिताप प्रस्फुटित हुए हैं।

८. मनोभावों तथा बाह्याभिव्यंजकों का सुन्दर समन्वय हुआ है।

९. प्रकृति के साथ आत्मीयता दिखाई गई है तथा चेतन-रूप में उस की कल्पना की गई है।

१०. मनोभावों की संश्लिष्ट योजना कर मानव के सहज स्वभाव का उद्‌घाटन किया गया है।

११. कर्त्तव्यपरायणता तथा आदर्शों की प्रतिष्ठा पर कवि की दृष्टि रही है।

: ५ :

तुलसी का मानस तथा गीतावली

कवि का दृष्टिकोण—तुलसीदास 'स्वान्तः सुखाय' रघुनाथगाथा लिखते हैं। उनके राम परमब्रह्म हैं किन्तु वह "देह धरि" नर लीला भी करते हैं तथा "ग्यानधाम श्रीपति असुरारी" होकर भी "अग्य इव" सीता खोज में परम व्याकुल होते हैं। इस प्रकार तुलसी के मानस में "हरि नर" एवं "नर हरि "का यह समाधान ही कवि का प्रमुख दृष्टिकोण है। मानस के पात्रों को परमब्रह्म के नररूप धारण करने में शंका होती है तथा उनकी नर लीला में उनको परमब्रह्म का आभास प्राप्त नहीं हो पाता अतएव नरलीला के इन प्रसंगों पर कवि "परम ब्रह्मत्व" की छाप लगाता चलता है—

'मनुज चरित्र कर अज अविनासी।"

नर परमब्रह्मस्वरूप की प्रतिष्ठा के लिए कवि नरलीला के स्वाभाविक प्रसंगों के साथ परमब्रह्मस्वरूप की विनय, प्रार्थना, गुणकथन आदि का आयोजन कर देता है जिससे नरलीला का रूप पृथक् तथा स्वतन्त्र होते हुए भी भक्तों को परमब्रह्मस्वरूप के दर्शन कराने में समर्थ रहता है। सामाजिक की वासनागत अनुभूति लौकिक नर-लीला के समय अश्रु मोचन का कारण बनती है तो ब्रह्मस्वरूप की स्तुति के समय उस को गद्-गद् होने का अवसर देती है।

नरलीला तथा परमब्रह्मस्वरूप का क्रमिक विकास—मानस-प्रसंगों के अन्तर्गत नरलीला में परमब्रह्मस्वरूप का क्रमिक विकास सहज ही संभव हो गया है। नरलीला से प्रारम्भ हो कर ब्रह्मस्वरूप के पर्यवसान में मानस का कथानक अग्रसरित होता है। कौशल्या की प्रार्थना, "तजहु तात यह रूपा" नरलीला की भूमिका है जिसके अन्तर्गत परमब्रह्म का अहं अपने ब्रह्मत्व के प्रकाशन के लिए मानो उतावला हो उठा था जिसको 'माँ' के दुलार तथा 'माँ' की ममता ने सिर पर हाथ फेर कर शान्त कर दिया। विवाह के उल्लास तथा आनन्दोत्सव वनवास प्रसंग तक पहुँच कर दुखान्त बन जाते हैं। राम की सहज शालीनता के समक्ष जनता व्यथित हो उठती है। करुणा स्वयं बिलख उठती है। दशरथ मरण में इन प्रसंगों का चरम उत्कर्ष दिखलाई देता है। इस से आगे सीताहरण के अवसर पर राम की कातरता बरबस प्रकट हो जाती है। ब्रह्मत्व का

कवच झंकृत हो उठता है। उसकी कड़ियाँ बिखर जाती हैं। इसी प्रकार लक्ष्मण-शक्ति के अवसर पर भी नरलीला का स्पष्ट रूप प्रकट हो जाता है। इन घटनाओं के साथ ब्रह्मस्वरूप की धारा क्षीणरूप में बहती चलती है जिसका कार्य नरलीला के असंभव स्थलों को संभव करके नररुपगत कथानक की लुप्त कड़ियों का सृजन करना है।

उत्तरकाण्ड में ब्रह्मस्वरूप की यह धारा प्रबल रूप में नर लीला के ऊपर हावी हो जाती है तथा उसके गर्भ में नर लीला अपना अस्तित्व विलीन कर देती है। तुलसी इसी का आयोजन करना चाहते थे। यही उनको अभीष्ट था।

मानस के लौकिक प्रसंग—मानस में नरलीला के पक्षगत प्रसंग अपने मूलरूप में लौकिक प्रसंगों की ही योजना करते हैं। इनके साथ विपक्षगत प्रसंग विशेष रूप से लौकिक प्रसंगों के अन्तर्गत आते हैं। इन प्रसंगों में कवि को अतिमानवीय रूप देने की आवश्यकता नहीं हुई। राक्षसों के राक्षसी कर्मों में भी मानवीय करुणभावनाओं की सहज अनुभूति इन स्थलों को जितना मार्मिक बना देती है उतनी ही कवि की विपक्षी भावनाओं के प्रति उदासीनता इन प्रसंगों को अपर्याप्त तथा अपूर्ण छोड़ देती है। प्राय: प्रसंग एक-दो चौपाइयों में चलते कर दिए गए हैं।

मानस में करुण प्रसंगों की योजना—कवि ने कथास्वतु की साधारण घटनाओं के साथ विशेष प्रेरक शक्तियों की योजना की है। रामवनवास इसी प्रकार की दैवी योजना का फल है। इस प्रकार की योजना द्वारा सामाजिक भाग्यवाद अथवा प्रभु इच्छा में अपनी शोकानुभूति का पर्यवसान कर संतोष की साँस लेता है। आदर्श एवं शुभ कर्मों की सुखान्तता की इस प्रकार रक्षा हो जाती है। मूल धारा की इस योजना के साथ "प्रतापभानु" नरेश का एक ऐसा भी आख्यान है जिसके अन्तर्गत नरेश अपनी सम्पूर्ण शुभ लालसाओं के क्रोड़ में प्रवंचना का शिकार बन जाता है। तुलसीदास कदाचित् इसका समाधान नहीं कर सके। यह आख्यान सामाजिक की आदर्शोन्मुख आस्था को हिलाने के लिए पूर्णतया समर्थ होता यदि इसको कथावस्तु की मूलधारा में स्थान दिया जाता। आश्रित एवं पोषक गाथा के रूप में प्रकट होने के कारण उसकी दारुण दुखान्त अनुभूति प्रभावहीन हो गई है, यह स्पष्ट है।

सन्देह तथा मोह के अन्तर्गत सती कथा तथा नारद मोह प्रसंग आते हैं। सती तथा नारद स्वकर्मसंभूत परिरिस्थितियों के कटु फल भोगते हैं। सती का परिताप के मानव के कर्म-स्वतन्त्र में बन्धन तथा विवशता की विषादयुत गाथा है जिसके प्रायश्चित्त के लिए सती को आत्म-बलिदान करना पड़ता है। नारदमोह की योजना भक्त के अहंकारशमन का उदाहरण है। कामजित नारद को काममोह का कटु पाठ पढ़ना पड़ता है तथा उनकी कामजय पराजय बन कर रह जाती है। नारद हरिमाया रचित सम्पूर्ण दृष्टान्त में मानव कठपुतली की पंगुता का उद्घाटन करते हुए मानव की असहायावस्था की प्रतिष्ठा करते हैं।

मानवीय चरित्रों की योजना के अन्तर्गत दैवी घटनाओं द्वारा अपकार करने

के लिए विवश एवं असहाय पात्रों की ग्लानि का निरुपण किया गया है। ककैयी प्रमुख रूप से इस ग्लानि में जलती हुई दिखलाई देती है।

युद्ध के हताहत पात्रों के प्रति शोकानुभूति का प्रदर्शन किया गया है। विपक्ष के नाश का मुख्य कारण राम विरोध दिखलाया गया है। इस तथ्य को विपक्ष के पात्र जानते हैं। इसीलिए वह राम-विरोध करने का आग्रह एवं उपदेश करते हुए दिखलाई देते हैं। विभीषण इसी प्रसंग में 'घर के भेदी" बन जाते हैं।

मानसगत करुणरस के प्रसंगों की शैली—तुलसीदास जी ने प्रभुगुणगान को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाया था। उनका मत था—

"कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना,
सिर धुनि गिरा लाग पछिताना।"

अतएव तत्कालीन सभी प्रचलित शैलियों में अपनी कुशलता का परिचय देते हुए भी उन्होंने अपने लक्ष्य के परिवर्तन का विचार नहीं किया। इसीलिए कथानक का यथास्थान पिष्टपेषण भी दिखलाई देता है। शैली के साथ यह पिष्टपेषण भी मौलिक प्रतीत होता है इस प्रकार राम कथागत करुणरस के प्रसंग उनकी सभी शैलियों में प्रकट हुए हैं।

दोहा-चौपाई शैली—दोहा-चौपाई की शैली मानस की प्राँजल शैली है जिसके अन्तर्गत प्रसादगुण की विशदता में स्वभाविकता को प्रमुख स्थान मिलता है। करुण रस के स्थलों पर कवि का शब्दविन्यास अति सरल और स्वाभाविक बन पड़ता है जिस के फलस्वरूप भाव तथा शैली एकाकार हो जाते हैं।

मानस के अन्तर्गत आये हुए करुणरस के सभी प्रसंग इस दोहा-चौपाई शैली में प्रकट हुए हैं। करुणरस की अभिव्यक्ति के लिए यह शैली उपयुक्त होगी, इस तथ्य को भलि-भाँति जानते हुए ही तुलसीदास जी ने करुणरस के प्रसंगों के लिए इस शैली को अपनाया। जहाँ शोकानुभूति के साथ ब्रह्मस्वरूप की आस्था का पात्रगत द्वन्द्व प्रकट होता है वहाँ पर दोहा, चौपाई शैली के साथ "छन्द" का प्रयोग हुआ है।

इस प्रकार का एक स्थल रावणमृत्यु पर मन्दोदरी विलाप के समय उपस्थित हुआ है। मंदोदरी का विलाप दोहा-चौपाई शैली में समाप्त हो जाता है। ब्रह्मस्वरूप राम को "मनुज करि जान्यो" के फलस्वरूप इस गीत को प्राप्त होने का संकेत करते हुए ऐसे "परद्रोहरत पापौधमय तनु" को निजधाम देने की उदारता के प्रति कृतज्ञ मंदोदरी के नमस्कार का वर्णन छंद के अन्तर्गत किया गया है।

करुणरस के प्रसंग में तुलसी की काव्य-कुशलता—तुलसी कवि और संत दोनों रूपों में अवतरित हुए हैं। उनका मानस भावों से ओतप्रोत है तो उनका मस्तिष्क कला के अंगप्रत्यंगों का सूक्ष्म दृष्टा। इसलिए तुलसी के काव्य से भक्तों की पिपासा जितनी शान्त होती है उससे कहीं अधिक संतुष्ट होती है साहित्यमनीषियों की कला कौतूहलपूर्ण शास्त्रीय जिज्ञासा। करुणरस के प्रसंगों में तुलसी की कला निम्नलिखित

रूप में अवलोकनीय है ।

उक्तिवैचित्र्य—उक्तिवैचित्र्य के सम्बन्ध में डाक्टर माताप्रसाद गुप्त ने लिखा है, "अपने किसी विश्वास की दृढ़ता अथवा अपनी कथा के किसी पात्र अथवा किसी विषय के प्रति तीव्र सहानुभूति अथवा तीव्र विद्वेष के कारण उमंग में आकर कवि एक युक्ति पर दूसरी युक्ति, एक उक्ति पर दूसरी उक्ति अथवा एक कल्पना चित्र पर दूसरी कल्पना चित्र समान और बहुत सी बातों में पूर्व कथित के अनुरूप प्रस्तुत करके अपनी व्यंजना को एक अद्भुत अंश तक प्रभावशाली बना देता है।" करुणरस के प्रसंगों में तुलसीदास जी की यह प्रवृत्ति प्रायः पाई जाती है किंतु करुण-रस के इन प्रसंगों के सम्बन्धों में प्रकट कवि की इस प्रवृत्ति को "उमंग में आकर प्रस्तुत करना" नहीं कहा जा सकता है। वस्तुतः कवि की यह प्रवृत्ति मनोवैज्ञानिक तथ्य पर आधारित है। शोकानुभूति, आत्मग्लानि एवं आत्मभर्त्सना के अवसरों पर व्यथित प्राणी एक युक्ति अथवा एक उक्ति अथवा एक कल्पना-चित्र प्रस्तुत करके संतुष्ट नहीं हो पाता। वह स्वभावतया ही एक के बाद दूसरी बात कहने के लिए विवश हो जाता है। मनोवेगों की यह स्वाभाविक दशा कही जा सकती है। तुलसीदास जी ने मनोवेगों की इस दशा का अध्ययन किया था। भरत के घोर क्षोभ तथा आत्मग्लानि के अन्तर्गत उक्तिवैचित्र्य के सुन्दर उदाहरण प्रकट हुए हैं। अन्य प्रसंगों में रामविरह, मंदोदरी-विलाप, पुरजनों द्वारा कैकेयी की निन्दा तथा सुमंत्र परिताप के अन्तर्गत भी इस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं।

रस-व्यंजना—यह कवि का मुख्य उद्देश्य है। वर्णन-विशदता की ओर कवि प्रायः उदासीन रहा है। इसीलिए उसका भाव-चित्रण परम उत्कृष्ट बन पड़ा है। सूक्ष्म विश्लेषण तथा मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त भावचित्रणगत कल्पना के आधार हैं तथा सात्विक एवं संचारीभाव अपने बाहुल्य में अनुभूति की गंभीरता को प्रकट करते हैं।

अलंकारों का प्रयोग—अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप में यथास्थान हुआ है। करुणरस के प्रसंगों में उत्प्रेक्षा, उत्प्रेक्षा-पुष्टरूपक तथा सांगरूपक विशेषरूप से प्रयुक्त हुए हैं। इन अलंकारों के प्रयोग के साथ तुलसी की अलौकिक कल्पना के भी दर्शन होते हैं। तुलसी को रूपकों का तो सम्राट कहा जा सकता है। लम्बे-लम्बे रूपकों का क्रम ठीक बनाए रखने में तुलसी सिद्धहस्त हैं। करुणरस के रूपकों में "अयोध्या मसान", "कैकेयी किरातिन" आदि अति सुन्दर रूपक हैं जिनमें कवि की कल्पना के साथ भावों की गंभीरता का पुट भी लगा हुआ है।[1]

---

१. इस प्रसंग में यहाँ करुणरस का एक रूपक देख लेना असंगत न होगा

"आश्रम सागर सांतरस पूरन पावन पाथु।
सेन मनहुँ करुना सरित लिए जाहिं रघुनाथ॥"—२७५ अयो०

"बोरति ग्यान विराग करारे। वचन ससोक मिलत नद नारे॥
सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट तरुवर कर भंगा॥
विषम विषाद तुरावति धारा। भयभ्रम भँवर अवर्त अपारा॥
....
आश्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई॥
सोक विकल दोउ राज समाजा। रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा॥
भूप रूप गुन सील सराहीं। रोवहिं सोक सिंधु अवगाहीं॥"

कथावस्तु में परिवर्तन—कवि ने यथास्थान आधार-ग्रन्थों से इतर अपनी कल्पना के आधार पर करुणरस के प्रसंगों में गम्भीरता लाने की दृष्टि से कथावस्तु में परिवर्तन भी किए हैं। "त्रिजटा-सीता-संवाद" की योजना ऐसा ही एक प्रसंग है जिसके अन्तर्गत कवि ने सीता की निराशाजनित घोर व्यथा का सुन्दर चित्रण किया है। इस विषय का पृथक् से विवेचन किया जायेगा।

चरित्र-चित्रण—चरित्र-चित्रण के अन्तर्गत कवि ने आधार ग्रन्थों में आए हुए पात्रों के क्रोध एवं अमर्ष के प्रसंगों को निकाल कर करुणरस की विवश एवं असहाय अनुभूति की योजना की है जिसके फलस्वरूप शोकानुभूति की परमवेदना में परिस्थिति के प्रति सामाजिक की घृणा प्रकट नहीं हो पाती तथा शोकानुभूति की शुद्ध अनुभूति में भी कोई व्यवधान नहीं पड़ता।

मानस में करुण रस के प्रसंग—मानस में करुण रस के प्रसंग संक्षेप्तः निम्नलिखित रूप में प्रकट हुए है—

अ—प्रिय बन्धुबान्धव एवं पुत्रादि का वियोग एवं मरण—

१—रामवनवास—

१. दशरथ की दशा।

२. कौशल्या तथा अन्य रानियों की दशा।

३. कैकेयी की आत्मग्लानि!

४. भरत की आत्मग्लानि एवं स्वाभाविक चिन्ता,
भय एवं विषाद;
मनोभावों का संघात;
घोर परिताप;
गीतावली में यही प्रसंग;
आत्मनिन्दा;
व्याज निन्दा;
भाग्य निन्दा;
दुःखों का तुलनात्मक अध्ययन।

५. सुमन्त्र की शोकानुभूति।
सोच, विकलता;
निराशा;
परिताप;
ग्लानि।

६. पशुपक्षीगत विरह।
राम के घोड़े;
पशु खगमृग;
गीतावली में घोड़ों का प्रसंग!

७. पुरजनों की विषम शोकानुभूति।
अशुभ की आशंका;
विषम शोक;
ग्लानि एवं क्षोभ;
सामान्यदशा;
अयोध्या-वर्णन;
राम-वियोग पर शोक;
मार्ग के नर-नारियों का शोक।

२—**सीता-हरण**—१. सीता का करुण-क्रन्दन;
सीता की निराशा।

३—**लक्ष्मण-शक्ति**—भाई का उपकार;
राम का प्रलाप;
गीतावली में यही प्रसंग।

४—**विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति**—तारा विलाप;
रावण शोकानुभूति;
मंदोदरी विलाप;
विभीषण शोकानुभूति।

आ—पराभाव, पराजय, वध, बन्धन—

१—**पराभाव**—सीतास्वयंबर समय राजाओं का पराभाव;
रावण पराभव।

२—**पराजय** - सुग्रीव पराजय;
मेघनाद पराजय।

३ **बन्धन**—हनुमान-बन्धन;
नागपाश द्वारा राम-बन्धन।

४—**वध** — अक्षयवध;

इ—धर्म अपघात एवं शाप—

प्रतापभानु नरेश आख्यान;
सती परित्याग;
नारद मोह;
शिव-शाप कागभुशुण्डि को;
लोमस-शाप कागभुशुण्डि को।

ई—क्लेश एवं दुःख-प्राप्ति—

क्लेश—कवितावलीगत् प्रसंग।

करुण रस के प्रसंगों की अभिव्यक्ति

रामवनवास प्रसंग—कैकेयी द्वारा वनवास के वरदान को सुनकर महाराज दशरथ अवाक् रह जाते हैं। अपने कर्त्तव्य एवं आदर्श के समक्ष वात्सल्य का बलिदान करने की उनकी विवशता जीवन-मरण का प्रश्न बन जाती है। अकस्मात् ही इस अप्रिय समाचार को सुन कर महाराज किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। उनकी दशा का परिचय गोस्वामी जी निम्नलिखित गिनेचुने किन्तु अति मार्मिक शब्दों द्वारा कराते हैं--

"गयउ सहमि न कछु कहि आवा।"

महाराज दशरथ की अति शोकपूर्ण दशा का समीप से अध्ययन करते हुए कवि ने लिखा—

"बिबरन भयउ निपट नरपालू,
दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू।
माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन,
तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन ॥"

महाराज की शोकानुभूति असह्य हो जाती है जब राम वल्कल वस्त्र धारण करके वन के लिए विदा माँगने उपस्थित होते हैं। मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुकूल कवि ने इस असह्य दशा में महाराज की मूर्च्छा का वर्णन किया है। "मुर्छित नरनाहू" कहकर कवि ने महाराज की अति शोकपूर्ण दशा का प्रकटीकरण किया है।

इसी प्रसंग में महाराज दशरथ के मानस का सूक्ष्म अध्ययन करते हुए कवि ने महाराज की अति स्वाभाविक कल्पनाओं का निम्नलिखित रूप में उद्घाटन किया है—

"हृदय मनाव भोरु जनि होई,
रामहि जाइ कहै जनि कोई।"

तथा

"तुम प्रेरक सब के हृदय सो मति रामहि देहु,
वचन मोर तजि रहहिं घर परिहरि सीलु सनेहु।"

परम शोकानुभूति के अन्तर्गत महाराज की उपर्युक्त कल्पनाएँ कितनी स्वाभाविक एवं सार्वजनीन हैं इसका अनुमान कोई भुक्तभोगी भलीभाँति लगा सकता है। जिसके लिए अपने स्वजन की मृत्यु इसीप्रकार की कल्पनाओं का कारण बन चुकी हो—चिता में जलकर भस्म हो जाने से पूर्व तक जो यह कल्पना करता रहा हो कि उसका स्वजन अब जीवित होकर उठने वाला है।

महाराज दशरथ के कल्पनागत यह स्वप्न सत्य न हो सके। यहाँ महाराज की कर्त्तव्य निष्ठा की ओर स्वाभाविक जिज्ञासा उठाते हुए कहा जा सकता है कि इस अवसर पर महाराज ने इन कल्पनाओं के साथ अपने वचन वापिस लेने की बात क्यों नहीं सोची ? इसका समाधान निम्नलिखित रूप में हो सकता हैं—

शोकानुभूति के अन्तर्गत विवेक तथा विश्लेषण को कोई स्थान नहीं मिल पाता इसलिए विवेक सम्बन्धी अति समीप की बात भी अप्रत्यक्ष बनी रहती है। साथ ही कर्त्तव्यनिष्ठ की वासना वासनागत रूप में महाराज के दृष्टिकोण को एक ओर उन्मुख किए रही थी—यह मानना भी आवश्यक है। यह अवश्य है कि वह स्वयं यह कभी न सोच सके कि उनके महान शोक के मूल कारण वही हैं तथा अपने वचन को वापिस लेकर उद्धार पा सकते थे।

महाराज दशरथ की शोकानुभूति की अन्तिम अवस्था का प्रकटीकरण "सुत वचन" सुनकर होता है। महाराज को विश्वास था कि राम-लक्ष्मण-सीता वन घूम कर वापिस आ जावेंगे। अपने विश्वास के प्रतिकूल जब उन्होंने सुना कि—

"तेहि अवसर रघुवर रुख पाई केवट पारहिं नाव चलाई।
रघुकुलतिलक चले एहि भाँति देखउ ठाढ़ कुलिस धरि छाती॥"

तो महाराज परम निराश एवं परम कातर हो उठे। इस अति करुणापूर्ण प्रसंग को कवि ने अपने सूक्ष्म अध्ययन सहित निम्नलिखित शब्दों में रखा है—

"जाइ सुमंत्र दीख कस राजा अमिय रहित जनु चंद।"

तथा

"आसन सयन विभूषन हीना परेउ भूमितल निपट मलीना।
लेइ उसास सोचु एहि भाँति सुरपुर ते, जनु खसेंउ जजाती।
लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती जनु जरि पंख परेउ संपाती॥"
... ...

प्रात कंठगत भयउ भुआलू मनि विहीन जनु व्याकुल व्यालू।
इन्द्री सकल विकल भईं भारी जनु सर सरसिज बनु बिनु बारी।
कौसल्या नृपु दीख मलाना रविकुल रवि अँथयउ जियँ जाना॥"

सूत के वचनों का घातक परिणाम कवि निम्नलिखित रूप में प्रकट करता है—

"सूत वचन सुनतहिं नरनाहू परेउ धरनि उर दारुन दाहू।
तलफत विषय मोह मन माया माजा मनहुँ मीन कहुँ व्यापा॥"

इस विषम स्थिति में महाराज को जीवन से घृणा होने लगी। उनका अन्तिम करुणापूर्ण प्रलाप अति मर्मस्पर्शी बन गया—

"सो तनु राखि करब मैं काहा जेहिं न प्रेम पनु मोर निबाहा।
हा रघुनन्दन प्रान पिरीते तुम बिन जिअत बहुत दिन बीते॥"
तापस अंध साप सुधि आई···
... ...

बिलपत राउ बिकल बहु भाँती भइ जुग सरिस सिराति न राती॥"

इसी प्रलाप में महाराज ने शरीर त्याग किया—

"राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम॥"

—(अयो० १५५)

इस प्रकार कवि ने महाराज की शोकानुभूति की अन्तिम स्थिति मरण-दशा में दिखलाकर करुणरस की पूर्ण अभिव्यंजना की है। वर्णन की मार्मिकता तथा अनुभूति की गम्भीरता का मुख्य कारण कवि का मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। दूसरी शैलियों में भी कवि की इस विशेषता के कारण मौलिकता का सृक्त हुआ है। गीतावली में दशरथ तथा सुमंत्र मिलन मनोवैज्ञानिक विशेष अध्ययन नहीं कर पाते कि राम वनवास की बात महाराज से कह दें तथा उधर महाराज दशरथ संदेश की निराशा से सशंकित होकर स्वयं साहस नहीं कर पाते कि सुमंत्र से पूछ लें कि राम वन से वापिस आ गए या नहीं? सुमंत्र और महाराज दशरथ के मानस की द्वन्द्वात्मक अन्तर्वृत्तियों का सहज प्रकटीकरण कवि के निम्नलिखित शब्दों में हुआ है—

"सुन्यो जब फिरि सुमंत्र पुर आयो।
कहि है कहा प्राणपति की गति नृपति विकल उठि धायो।
पाँय परत मंत्री अति व्याकुल नृप उठाय उर लायो।
दशरथ दशा देखि न कह्यो कछु हरि जो सँदेश पठायो।
बूझि न सकल कुसल प्रीतम की हृदय यहै पछितायौ।
साँचेहु सुत वियोग सुनिबे कहँ धिग विधि मोहि जिआयो॥"

कौशल्या तथा अन्य रानियों की दशा—रामवनवास प्रसंग में राम राजतिलक की पृष्ठभूमि के साथ माता कौशल्या का शोक अति असह्य बन जाता है जब वह राम के मुख से सहज एवं सरल रूप में राम वनवास की बात सुनती हैं। कवि से बाह्य-व्यंजकों द्वारा ही माता के शोक का प्रकटीकरण करना उचित समझा है। हृदय के असह्य विषाद में वाणी का मौन होना स्वाभाविक है।

कौशल्या राम की "शीतल बानी" को सुन कर सहम जाती हैं, सूख जाती हैं तथा नेत्र सजल हो जाते हैं, शरीर थर-थर काँपने लगता है[1] विषाद की इस विषय स्थिति में गम्भीर मौन तिम्नलिखित कटूक्ति में फूट पड़ती है—

"जाहु सुखेन बनहिं बलि जाऊँ।
करि अनाथ जन परिजन गाऊँ॥"

इस प्रकार की उक्ति शोकानुभूति की अति मार्मिक एवं दारुण स्थिति में प्रकट होती है। इसलिए इस उक्ति के साथ कौशल्या विलाप कर अति व्याकुल हो जाती हैं।

१. "सहमि सूखि सुनि सीतल बानी·· कहि न जाइ कछु हृदय विषाद।
नयन सजल तन थर थर काँपी माजहि खाइ मीन जनुँ मापी॥"

"बहु विधि बिलपि चरन लपटानी,
परम अभागिनी आपुहि जानी।
दारुन दुखह नाह उर व्यापा,
बरनि न जाहिं बिलाप कलापा ॥"

दशरथ मरण से राजहल में कुहराम मच जाता है कवि शोकानुभूति की गम्भीरता में अपने आप को पृथक् नहीं रख पाता तथा इस प्रसंग को वर्णनातीत कह कर स्थल-स्थल पर उसे मौन हो जाना पड़ता है। कवि की यह मूकवाणी अपनी मौन के ही कारण अति मार्मिक बन जाती है। रानियों की शोकानुभूति का वर्णन कवि सबसे पहले करता है—

"करि बिलाप सब रोवहिं रानी
महा बिपति किमि जाइ बखानी।
सुनि बिलाप दुखहू दुखु लागा
धीरजहू कर धीरजु भागा ॥"

इस महाविपति का वर्णन किया जाना वास्तव में कठिन है। इसकी ओर कवि का संकेत अलम् कहा जा सकता है। सामाजिक अपनी अनुभूति एवं कल्पना के आधार पर इसका अनुमान सहज ही लगा सकता है। इस प्रकार की परिस्थितियों में विश्लेषण तथा सूक्ष्म विवेचन को कोई स्थान नहीं मिल पाता साधारणतया जो कुछ दृष्टि गोचर होता है—वह होता है रोना तथा मूर्च्छित होना। अतएव कवि इसी स्वाभाविक दृश्य की ओर संकेत करता है—

"सोक बिकल सब रोवहिं रानी,
रूपु सीलु बलु तेज बखानी।
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा,
परहिं भूमितल बारहिं बारा।
बिलपहि बिकल दास अरु दासी,
घर-घर रुदनु करहिं पुरवासी ॥"

विलाप एवं शोक की गम्भीरता का संकेत कवि निम्नलिखित रूपों में करता है—

१. अनेक प्रकार विलाप कर रही हैं।

२. पृथ्वी पर बार-बार गिर रही हैं।

चित्रकूट प्रसंग—चित्रकूट प्रसंग में राम सम्पूर्ण समाज को दुःखी देखते हैं। इसी अवसर पर दशरथ-मरण का दुःखद समाचार सुनाया जाता है तथा स्थिति अति गम्भीर बन जाती है। एक बार पुनः अति विषादपूर्ण दृश्य को देखकर कवि का अनुमान लगाना, मानों महाराज दशरथ का आज ही निधन हुआ हो, विषादपूर्ण स्थिति की गम्भीरता का उद्घाटन करने के साथ सामाजिक की स्वाभाविक प्रवृत्ति की ओर भी संकेत करता है जिसके अन्तर्गत शोकानुभूति की गम्भीरता अनुभूतिगत स्मृति को

प्रत्यक्षरूप दे देती है। अपने प्रति प्रेम को महाराज की मृत्यु का कारण समझ कर राम अति विकल हो जाते हैं।[1] उनके साथ लक्ष्मण, सीता तथा सब रानियाँ एवं सम्पूर्ण समाज परम शोक के कारण अति व्याकुल हो जाता है।

दूसरा अति कारुणिक चित्र जनक आगमन के समय उपस्थित होता है। सीता जी की सास जनकराज के रनिवास में पहुँचती हैं। वैधव्य के साथ रामवनवास की कालिमा दृश्य को अति मर्मस्पर्शी बना देती है। कवि के सूक्ष्म अध्ययन के अन्तर्गत इस दृश्य का यथातथ्य चित्रण निम्नलिखित रूप में हुआ है—

"सावकास सुनि सब सिय सासू,
आयउ जनकराज रनिवासू।
... ...

सीलुसनेहु सकल दुहु ओरा
द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा।
पुलक सिथिल तन बारि बिलोचन,
महि नख लिखन लगीं सब सोचन।
सब सिय राम प्रीति कि सि मूरति,
जनु करुना बहु बेष बिसूरति॥"

शोकानुभूति के अन्तर्गत यहाँ गोस्वामी जी ने एक विशेष अनुभाव "महि नख लिखन लगीं सब सोचन" का वर्णन किया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से शोकानुभूति के अन्तर्गत यह क्रिया अति स्वाभाविक है। मानों अप्रत्यक्षरूप में शोकाभिभूत प्राणी शोकशमन का कोई हल निकालना चाह रहा हो। इसलिए पृथ्वी पर नाखून से कुछ लिखने लगा हो।

कैकेयी की आत्मग्लानि—कैकेयी की आत्मग्लानि भरत की राजतिलक के लिए उपेक्षा तथा मातृभर्त्सना के अप्रिय प्रसंग के फलस्वरूप प्रकट होती है। प्रारम्भ में कैकेयी मौन दिखलाई देती है। साथ ही उसकी सुनता कौन ? भरत अपने आपको मातृसम्मत समझ कर परिताप के कारण जितना कहना चाहते थे उसका एक अंश भी किसी की सुनने को तैयार न थे। अपनी विषम वेदना में भरत शीघ्र ही माता को अवहेलना करने के लिए विवश हो जाते हैं—

"जो हसि सो हसि मुंह मसि लाई,
आँखि ओट उठि बैठहि जाई।"

वास्तव में कैकेयी की दशा अपेक्षाकृत शोचनीय थी। दशरथ-मरण पर सब रानियाँ, पुरजन तथा प्रियजन सब उसकी ओर ही देखते होंगे, और वह इस देखने

---

१. "नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा, सुनि रघुनाथ दुसह दुख पावा।
... ...
सोक बिकल अति सकल समाजू, मानहुँ राजु अकाजेउ आजू॥"

का तात्पर्य समझती और मन ही मन घुलती रही होगी। कैकेयी की इस गम्भीर अनुभूति ने ही संभवतः उसको मौन रहने के लिए बाध्य कर दिया।

चित्रकूट प्रसंग में भी कैकेयी मौन रहती है। कवि एक विशेष प्रसंग की योजना कर उसकी दशा का अनुमान कराना चाहता है तथा इस प्रसंग में वह स्वयं कुछ नहीं कहता। पाठक स्वयं अनुमान लगालें कि इस स्थिति में कैकेयी की क्या दशा रही होगी तथा उसने राम से क्या कहा होगा। राम सबसे पहले माता कैकेयी से भेंट करते हैं अपने सरल स्वभाव तथा भक्ति से माता को द्रवित कर देते हैं। बहुत प्रकार से माता का प्रबोध करते हैं तथा काल, कर्म एवं विधि को दोष देकर माता को सान्त्वना देते हैं। इस प्रसंग में कैकेयी के मौन का क्या तात्पर्य है, पाठक इसका सहज ही अनुमान लगा सकते हैं।

कैकेयी की ग्लानि का एक दूसरा अवसर और उपस्थित होता है। सीता की सेवा से सब सास प्रसन्न हो जाती हैं। सीता तथा राम-लक्ष्मण की सरलता को देखकर कैकेयी भी अति प्रसन्न एवं मुग्ध हो जाती है। ऐसे सरल एवं निर्दोष व्यक्तियों को अपने कुचक्र के कारण वन-वन घूमते हुए देखकर वह अति क्षुब्ध हो उठती है। ग्लानि की चरम सीमा पर कैकेयी की अभिव्यक्ति मृत्यु की याचना में प्रकट होती है—

"लखि सिय सहित सरल दोउ भाई
कुटिल रानि पछितानि अघाई।
अवनि जमहि जाचति कैकेई,
महि न बीचु बिधि मीचु न देई॥"

कैकेयी की आत्मग्लानि का तीसरा अवसर चित्रकूट में जनक आगमन के समय प्रकट होता है। जनक के साथ सीता की माँ तथा रनिवास की अन्य महिलाएँ भी आई हैं। इस अवसर पर कैकेयी की आत्मग्लानि (अपने आत्मसम्मान को ठेस लगने के विचार से) द्विगुणित दारुण बन जाती है। वह सीता की माँ तथा जनकपुर की अन्य महिलाओं के लिए सम्माननीय है। आज भी उसको सम्मान मिलेगा किन्तु इस सम्मान के साथ होगी इन लोगों की मूक घृणा—"ये हैं कैकेयी जिन्होंने यह सब किया" मनोभावों की इस द्वन्द्वात्मक स्थिति को तुलसीदास जी "गरइ ग्लानि" कह कर प्रकट करते हैं—

"गरइ ग्लानि कुटिल कैकेई,
काहि कहै केहि दूषन देही।"

अविधी के पश्चात् अयोध्या वापिस जाते हुए राम से भेंट करते हुए भी कैकेयी को संकोच होता है। कहना न होगा कि कैकेयी का यह उसकी आत्मग्लानि का वह क्षोभ है जो उसके जीवन का एक अङ्ग बन गया और उससे पृथक नहीं हुआ।

"रामहिं मिलत कैकेई हृदय बहुत सकुचानि।"

भरत की आत्मग्लानि—मानस के पात्रों में भरत के चरित्र का अध्ययन तुलसी

के मनोवैज्ञानिक पण्डित्य का विशिष्ट उदाहरण है। भरत के मृदु सरल स्वभाव की पृष्ठभूमि में करुणरस की अति मार्मिक अनुभूति की योजना करके इस प्रसंग को कवि ने विशेष रूप से मर्मस्पर्शी बना दिया है।

भरत ननिहाल में हैं। जब से अयोध्या में "अनरघु" आरम्भ हुइ तभी से उन को अपशकुन होने लगे। रात को कुस्वप्न देखने लगे जिसके फलस्वरूप जग कर "कद्रु कोटि कल्पना" करते थे, ब्राह्मणों को भोजन कराते तथा दान देते थे। "हृदय महेस मनाइ" माता-पिता परिजन तथा भाइयों की कुशलक्षेम की प्रार्थना करते थे।

"गुर बोलाइ पठयउ दोउ भाई" इस संदेश को सुन कर भरत के मानस की स्वाभाविक चिन्ता भरत को उदासीनता तथा अन्यमनस्क बना देती है। मार्ग की दूरी उनको अखरने लगती है। ऐसा सोचते हैं कि उड़कर पहुंच जाऊँ। उनकी ऐसी कल्पनाएँ मानव मानस की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का सहज प्रकाशन कही जा सकती हैं।

"हृदय सोचु बड़ कछु न सोहाई,
अस जानहिं जियँ जाउँ उड़ाई।"

भरत अयोध्या के समीप पहुँचते हैं। नगर के निकट "खर सिआर बोलहिं प्रतिकूला" सुनकर भरत के "मन में सूला" होना स्वाभाविक है। नगर के नागरिक केवल अभिनन्दन करके चुप रह जाते हैं। इससे भरत को और भी आशंका होती है। अशुभ संदेश की आशंका से वह स्वयं भी कुछ पूछने का साहस नहीं कर पाते। भरत के सरल एवं सहज स्वाभाव का यथातथ्य वर्णन तुलसीदास जी भरत की इस आशंका द्वारा करते है। ननिहाल में भरत के मानस की "कोटि कल्पना" भरत की इस आशंका की पृष्ठभूमि है जिनके आधार पर नगर-प्रवेश का यह दृश्य विशेष रूप से मार्मिक बन जाता है।

भरत का शोक—भरत का शोक दशरथमरण समाचार को सुनकर प्रबल वेग के साथ प्रकट हो जाता है। वह परम व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं उनके शोकापूर्ण उद्‌गार प्रलाप के रूप में बरवस फूट पड़ते हैं[२]—

"तात तात हा तात[१]।"

---

१. "असगुन होहिं नगर पैठारा, रटहिं कुभाँति कुखेत करारा।
खर सिआर बोलहिं प्रतिकूला, सुनि सुनि होई भरत मन सूला॥
पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु गँवहिं जोहारहिं जाहिं।
भरत कुसल पूँछि न सकहिं भय विषाद मन माहिं॥"

—(अयो० १५८)

२. "तात तात हा तात पुकारी, परे भूमितल व्याकुल भारी।
चलत न देखन तोही, तात न रामहि सौपेहु मोही॥"

—(अयो० १५९/३)

भरत को दो बातों का सबसे अधिक सोच है—

१—पिता के अन्तिम दर्शन न हो सके।

२—वात्सल्य के अभिलाषी भरत को महाराज राम के सुपुर्द न कर सके।

सरल एवं कोमल चित्त भरत के मानस का यह स्वाभाविक परिताप है जो पितृ एवं भ्रातृ-भक्ति के प्रश्रय में अति मर्मस्पर्शी बन गया है।

भरत की आत्मग्लानि—करुणरस के अन्तिम स्तर पर भरत की आत्मग्लानि अमर्ष के आभास में दृष्टिगोचर हो उठती है जब माँ कैकेयी उनके लिए ही यह सब प्रपंच रचे जाने की कुटिल कथा उनको सुनाती हैं। उनकी शोकानुभूति असह्य होकर अमर्ष का रूप धारण कर लेती है किन्तु अन्ततोगत्वा पर्यवसान उनकी असह्य आत्मग्लानि में ही होता है। कुशल कलाकार तुलसी करुणरस की आदर्श अभिव्यक्ति का निर्वाह करना भलीभाँति जानते थे।

भरत की आत्मग्लानि का क्रमिक विकास तुलसी की अभिव्यक्ति की निजी विशेषता है। जीवन के प्रति घृणा से भरत की आत्मग्लानि का प्रारम्भ होता है। उनकी विवशता निम्नलिखित शब्दों में प्रकट होती है—

"जौ पै कुरुचि रही अति तोही,
जनमत काहे न मारेस मोही।
पेड़ काटि तै पालउ सींचा,
मीन जिअन हित बारि उलीचा।"

इस आत्मग्लानि के साथ विधि के समक्ष भरत की विवशता पूर्व असहायावस्था के दर्शन निम्नलिखित रूप में होते हैं—

"हंस बंसु दशरथु जनकु राम लखन से भाइ,
जननी तू जननी भई विधिसन कछु न बसाइ।"

इस विधिविधानगत विवशता के साथ भरत का अमर्ष भी प्रकट हुआ। माता की काली करतूत पर वह क्षुब्ध हो उठते है। अनुभूति की असह्य अवस्था ने विवेक को अवसर न दिया और भरत माता को अपशब्द कहने के लिए विवश हो गए। भरत के आत्मग्लानिपुष्ट अमर्ष का क्रमिक विकास निम्नलिखित रूप में हुआ—

"जब तै कुमति कुमत जियँ ठयऊ,
खंड खंड होइ हृदयु न गयऊ।
बर माँगत मन भइ नहिं पीरा,
गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा।

भै अति अहित रामु तेउ तोही,
को तू अहसि सत्य कहु मोही।
जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई,
आँखि ओट उठि बैठहि जाई ॥"

भरत के इस अमर्ष को आत्मग्लानि का प्रबल-प्रवाह कहा जा सकता है जिसके आवेग में भरत का मानसिक क्षोभ अति दारुण बन गया। उन्होंने अपनी ओर देखा और अपने आपको महान् पातकी समझकर घोर आत्मग्लानि में जल उठे—

"राम विरोधी हृदय तें प्रगट कीन्ह विधि मोहि,
मो समान को पातकी बादि कहउँ कछु तोहि।"

भरत के मनोभावों का संघात—शोक-संतप्त माता कौशल्या के दर्शन करके भरत के मानस में दीनता, ग्लानि, प्रलाप, परिताप आदि भिन्न-भिन्न मनोभावों का एक साथ ही उदय भावसंघात दशा को प्रकट कर देता है। अपने आप को सम्पूर्ण अनर्थों का हेतु समझकर वह परम कातर हो उठते हैं।

माता कौशल्या को देखकर भरत को स्वाभाविक रूप से ही तात तथा भ्रात की स्मृति हो आती है। वह गंभीर शोकानुभूति के फलस्वरूप प्रलाप कर उठते हैं—

"मातु तात कहँ देहि दिखाई,
कहँ सिय रामु लखन दोउ भाई।"

माता कौशल्या की दीन दशा देखकर तथा इस सबका मूल कारण कैकेयी को जानकर भरत का अमर्ष पुनः जाग्रत हो उठता है—

"कैकेइ कत जनमी जग माँझा,
जौ जनमि त भइ काहे न बाँझा।"

कैकेयी के साथ शीघ्र ही उनको अपनी सहमति की आशंका का स्मरण हो आता है तथा इस सब प्रपंच को अपनी हित-साधना का साधन देखकर अपने आपको कोसने लगते हैं—

"को त्रिभुवन मोहि सरस अभागी,
गति असि तोरि मातु जेहि लागी।"

भरत की यह आत्मग्लानि अन्त में घोर परिताप तथा उद्वेग में परिणत हो जाती है। वह अपने आपको धिक्कारने लगते हैं—

"पितु सुरपुर बन रघुबर केतू,
मैं केवल सब अनरथ हेतू।
धिग मोहि भयउ बेनु बन आगी,
दुसह दाह दुख दूषन भागी।"

भरत का घोर परिताप—परिस्थितिवश भरत कैकेयी के वरदान में अपनी सहमति मानने के लिए विवश हो जाते हैं। सरल एवं निर्दोष होते हुए भी परिस्थितियाँ उनको निर्दोष सिद्ध नहीं कर सकती थीं। जो कार्य भरत-हित में हो उसमें भरत की सहमति न हो ऐसा किस प्रकार संभव है तथा इसका कौन विश्वास कर सकता है, यही विचार भरत के मन के विषाद, चित्त की विकलता तथा घोर आत्मग्लानि का कारण बन जाता है। इस घोर परिताप के फलस्वरूप भरत माता कौशल्या के सामने अनेक शपथ लेते है तथा लोक के गर्हित कृत्यों के कुत्सित परिणामों को भोगने की कामना करते हैं। इस प्रसंग में भरत अपने घोर परिताप के कारण बार-बार भावावेश दशा को पहुंच जाते हैं। एक उक्ति के बाद दूसरी उक्ति तथा एक कल्पना के बाद दूसरी कल्पना करते चले जाते हैं। उनको संतोष नहीं होता। अपनी सफ़ाई देने के लिए कितना कहें और किस प्रकार कहें। घोर पातकों की जितनी वह याचना करते हैं, एक लम्बी तालिका बन जाती है। दुर्गति प्राप्त करनेवाले व्यक्तियों की एक नामावली प्रस्तुत कर देते हैं और शपथ के साथ बार-बार यही कहते हैं कि यदि मैं मातृमत होऊँ तो यह दुर्गतियाँ मुझे प्राप्त हों[1]।

भरत के द्वारा प्रस्तुत इस प्रसंग को संक्षेपतः निम्नलिखित रूप में रखा जा सकता है—

अ—पाप जिनकी भरत याचना करते हैं यदि वह मातृमत में हों—

---

१. "जे अघ मातु पिता सुत मारें, गाइ गोठ महिसुर पुर जारें।
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें, मीत महीपति माहुर दीन्हें।
जे पातक उपपातक अहहीं, करम बचन मन भव कबि कहहीं।
ते पातक मोहि होहुँ बिधाता, जौ यहु होइ मोर मत माता।
जे परिहरि हरि हर चरन भजहि भूतगन घोर।
तेहि कर गति मोहि देउ विधि जौ जननी मत मोर॥"
"बेचहिं बेदु परमु दुहि लेहीं, पिसुन पराय पाप कहि देहीं।
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी, वेद विदूषक विस्व विरोधी।
लोभी लंपट लोलुपचारा, जे ताकहिं परधनु परदारा।
पावौं मैं तिन्ह कै गति घोरा, जौ जननी यहु संमत मोरा।
जे नहिं साधुसंग अनुरागे, परमारथ पथ विमुख अभागे।
जे न भजहिं हरि नर तनु पाई, जिन्हहि न हरि हर सुजसु सोहाई।
तजि श्रुति पंथु बाम पथ चलहीं, बंचक बिरचि बेष जगु छलहीं।
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ, जननी जौ यहु जानौं भेऊ।
मातु भरत के बचन सुनि साँचे सरल सुभायँ।
कहति राम प्रिय तात तुम्ह सदा बचन मन कायँ॥"
—(अयो० १६७-१६८)

१. माता-पिता और पुत्र को मारने के पाप।
२. गौशाला और ब्राह्मणों के नगर को जलाने के पाप।
३. स्त्री और बालहत्या के पाप।
४. मित्र और राजा को विष देने के पाप।
५. मनवचनकर्म से होनेवाले संभव पातक एवं उपपातक।

आ—दुर्गति प्राप्त होनेवाले व्यक्ति जिनकी गति भरत माँगते है यदि वह मातृमत में हों। दुर्गति जो उन लोगों को मिलानेवाली है जो —

१. भगवान् विष्णु तथा भगवान् शिव को छोड़कर भूतप्रेतों का भजन करते हैं।
२. वेदों को बेचते हैं, दूसरों की बुराई करते हैं।
३. कपटी, कुटिल, कलहप्रिय तथा क्रोधी हैं।
४. वेदों की निन्दा करनेवाले तथा वेदविरोधी हैं।
५. लोभी, लंपट तथा लालचियों के आचरण करनेवाले हैं।
६. वे अभागे जो परमार्थ मार्ग से विमुख है।
७. मानव शरीर पाकर भगवद्भजन नहीं करते।
८. वेदमार्ग को छोड़कर वाममार्ग का अनुसरण करते हैं।
९. ठग हैं तथा वेष बनाकर जगत् को छलते हैं।

कहना न होगा कि इस तालिका में तुलसीदासजी ने समाज की प्रत्येक अनीति का समावेश किया है जिनके अन्तर्गत मनवचनकर्म द्वारा संपादित सभी पापाचारों का वर्णन हो जाता है।

भरत की यह ग्लानि लोक की ग्लानि है। लोक-धर्म का आर्त्तरूप भरत की आत्मग्लानि में प्रकट हुआ है। तुलसी के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर यह प्रसंग अपने आपमें मौलिक तथा अलौकिक है, यह स्पष्ट है।

भरत की आत्मग्लानि का यही प्रसंग गीतावली में अपनी निजी विशेषता में प्रकट हुआ है। निम्नलिखित पद के अन्तर्गत अपने आपको निर्दोष सिद्ध करने में भरत की विवशता तथा असहायावस्था विशेषरूप से अवलोकनीय है—

"जो पै हौं मातु मते महँ ह्वै हौं।
तौ जननी जग में या मुख की कहाँ कालिमा ध्वैहौं?
क्यों हौं आजु होत सुचि सपयनि कौन मानिहै साँची?
... ...
गहि न जात रसना काहू की, कहौ जाहि जोइ सूझै।
दीनबंधु कारुण्यसिंधु बिनु कौन हिये की बूझै?"

तुलसीदास मानव मानस की अपूर्णता से भलीभाँति परिचित हैं। दूसरे के मनोभावों की मूल अनुभूति का परिज्ञान संभव नहीं होता। इसलिए भरत को विश्वास नहीं होता कि "मानस" के अन्तर्गत उन्होंने जो अनेक शपथें खाई हैं उनसे लोगों को विश्वास हो जायगा कि वह निर्दोष हैं। अपनी विवशता एवं असहायावस्था में कातर भरत एक प्रभु-आधार का ही भरोसा करते हैं। वह अन्तर्यामी हैं। इसलिये उनकी निर्दोषता को वही भलीभाँति जान सकते हैं।

चित्रकूट-प्रसंग में भरत की आत्मग्लानि—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस प्रसंग पर अपने विचार प्रकट किए हैं। उनको यहाँ देख लेना आवश्यक है—"किसी बुरे प्रसंग में यदि निमित्त रूप से भी हमारा नाम आ जाता है तो हमें लज्जा होती है—चाहें ऐसा हमारी जानकारी में हुआ हो, चाहे अनजान में ! यदि बिना हमें जताए हमारे पक्ष में कोई कुचक्र रचा जाय तो उसका वृत्तान्त फैलने पर हमें लज्जा क्या, ग्लानि तक हो सकती है ···· अपमान होने पर यदि क्रोध के लिए स्थान हुआ तो क्रोध का, नहीं तो अपनी तुच्छता का अनुभव होता है। दूसरों के चित्त में हमारे प्रति जो प्रेम या प्रतिष्ठा का भाव रहता है उसका ह्रास किसी कुचक्र के साथ अपना नाम मात्र का संबंध समझकर भी, हम समझे बिना नहीं रह सकते। जब स्थिति ऐसी होती है कि इस ह्रास का न समाधान द्वारा निराकरण कर सकते हैं, न क्रोध द्वारा प्रतीकार तो सिवा इसके कि हम अपनी हीनता का अनुभव करें, और कर ही क्या सकते हैं ? भरत को इसी दशा में पाकर राम ने उन्हें समझाया था—

"तात जीय जनि करहु गलानी।
ईस अधीन जीव-गति जानी।
तीनि-काल त्रिभुवन मत मोरे,
पुन्यसलोक तात उर तोरे।
उर आनत तुम पर कुटिलाई,
जाइ लोक परलोक नसाई ॥"

जिसने इतनी बुराई की वह मेरी माता है, इस भावना से जो लज्जा भरत को थी उसे दूर करने के लिए ही आगे का वचन है—

"दोष देहिं जननिहि जड़ तेई,
जिन गुरु-साधु-सभा नहीं सेई।"[१]

भरत की आत्मनिन्दा—भरत को राजतिलक करने का प्रश्न आता है किन्तु भरत इसके लिए तैयार नहीं होते। अपने आपको अवगुणी समझकर वह अपनी अस्वीकृति को सकारण सिद्ध करते हैं। भरत की आत्मनिन्दा का यह प्रसंग निम्न-लिखित में प्रकट हुआ है। भरत अपने अवगुणों को प्रकट करते हुए बताते हैं।[२]

---

१. चिन्तामणि : १९५६, पृष्ठ ९२

२. "कैकेई सुअ कुटिलमति राम बिमुख गत लाज।
तुम्ह चाहत सुखु मोहबस मोहि से अधम के राज ॥"
—(अयो० १७८)

१. कैकेयी सुत हूँ जिस कैकेयी की प्रपंचात्मकता के कारण रामवनवास तथा दशरथमरण आदि सब कुछ हुआ।
२. कुटिलमति हूँ—इस प्रपंच में सहमति के कारण।
३. रामविमुख हूँ—राम को बनवास दिलाने के कारण।
४. गतलाज हूँ—इतना सब कुछ करने के पश्चात् भी मुंह दिखा रहा हूँ।

भरत की आत्मनिन्दा का यह प्रसंग मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अति स्वाभाविक है। गोस्वामीजी ने इस अवसर पर केवल तथ्यों का उद्घाटन किया है। संभावित कारणों को पाठक की कल्पना के लिए छोड़ दिया है। वह समझते हैं कि सामाजिक एवं पाठक अपनी शोकानुभूतिगत वासना के आधार पर सहज ही अनुमान लगायेंगे कि किन कारणों से भरत राजतिलक के लिए सहमत नहीं होते तथा क्यों राजभोग के प्रति उदासीन हैं।

व्याजनिन्दा—भरत उपर्युक्त प्रसंग में ही व्याजनिन्दा द्वारा कैकेयी के कार्यों की आलोचना करते हैं। कैकेयी के इन कार्यों की प्रशंसा में भरत की मार्मिक वेदना के दर्शन हो सकते हैं जब इस प्रशंसा एवं स्तुति की गंभीरता की ओर पाठक का ध्यान बरबस आकर्षित हो जाता है। व्यंजना की अपूर्व अभिव्यक्ति ऐसे स्थलों पर देखी जा सकती है। वाच्यार्थ के नितान्त प्रतिकूल अभिव्यक्ति का अर्थ होता है तथा उस अर्थ के साथ वेदना का मर्मस्पर्शी रूप प्रकट हो जाता है। भरत भी गुरुजन तथा प्रजाजन के आग्रह से आहत होकर राजतिलक का वर प्राप्त करनेवाली माँ की व्याजस्तुति करने लगते हैं—

"कैकेयी ने बड़े अच्छे कार्य किए हैं—राम, लक्ष्मण तथा सीता को वनवास दिया, स्वर्ग भेजकर पति का कल्याण किया, स्वयं वैधव्य तथा अपयश प्राप्त किया, प्रजाजन को शोक और संताप दिया, मुझको सुयश तथा उत्तम राज्य दिया। वास्तव में कैकेयी ने सभी काम बना दिए। इससे अच्छा मेरे लिए अब और क्या होगा? उस पर भी आप मुझे राज्य देने की कह रहे हैं, राजतिलक का आग्रह कर रहे हैं।"[१]

भरत एवं भाग्यवाद—जब भरत देखते हैं कि किस प्रकार यह अप्रिय घटना दैवी-योजना के आधार पर घटित हुई है तो अपने दुर्भाग्य को कोसते हुए वह भाग्यवाद की शरण लेते हैं। भरत की अनुभूति का क्रमिक विकास तुलसी की विशेष

---

१. "लखन रामसिय कहुँ बन दीन्हा, पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा।
लीन्ह विधवपन अपजसु आपू, दीन्हेउ प्रजहि सोक संतापू।
मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू, कीन्ह कैकेई सब कर काजू।
एहि ते मोर काह अब नीका, तेहि पर देन कहहु तुम टीका।।"
—(अयो० १८०)

योजना है जिसको निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है[1]—

प्रथम चरण—वात्सल्य का सुख-सन्तोष स्मरण होता है। राम के दुलार का स्मरण उन्हें गद्-गद् कर देता है।

द्वितीय चरण—माँ की करतूत का स्मरण होता है।

तृतीय चरण—माँ की भर्त्सना का प्रसंग आत्मनिन्दा में परिणत हो जाता है।

चतुर्थ चरण—आत्मनिन्दा एवं घोर आत्मग्लानि में कातरता।

पंचम चरण—परिताप तथा भाग्यवाद।

भरत द्वारा दुःखों का तुलनात्मक अध्ययन—राम-वियोग में परम दुःखी पात्रों की दशा को देखकर भरत परम व्याकुल होकर यह सोचने लगते हैं कि उनका शोक अभी तक उस दशा को क्यों प्राप्त नहीं हुआ जिसके अन्तर्गत प्राणत्याग संभव हो जाता है। अपने चारों ओर भरत को रामविरहकातुर व्यक्ति ही दिखलाई देते हैं जो उनके शोक एवं विषाद के लिए उद्दीपन का कार्य करते हैं। निम्नलिखित पात्रों की शोकानुभूति का भरत पर विशेष प्रभाव पड़ा है[2]—

१—राजा दशरथ मृत्यु को प्राप्त हुए।

२—माताओं की विरह-विकलता देखी नहीं जाती।

३—अवधपुरी के नर-नारी विरह-ताप से जल रहे हैं।

---

१. **प्रथम चरण**—"विधि न सकेउ सहि मोर दुलारा।"

द्वितीय चरण—"नीच मीचु जननी मिस मारा।

तृतीय चरण—"यहउ कहत मोहि आजु न सोभा।
अपनी समुझि साधु सुचि कोभा॥

चतुर्थ चरण—"मातु मंद मैं साधु सुसाली।
उर नस आनत कोटि कुचाली।
करइ कि कोदब बालि सुसाली
मुकता प्रसब कि संबुक काली।"

पंचम चरण—"सपनेहुँ दोसक लेसु न काहू।
मोर अभाग उदधि अवगाहू।
बिनु समुझे निज अघ परिपाकू
जारिउँ जायँ जननि कहि काकू॥"

—(अयो० २६०/२६१)

२. भूपति मरन पेम पनु राखी—
देखि न जाहिं विकल महतारी। जरहिं दुसह जर पुर नरनारी॥
महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला॥
सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनि वेष लखन सिय साथा।
बिनु पानहिन्ह पायदेहि पाएँ। संकरु साखि रहेउँ एहि घाएँ॥"

—(अयो० २६१/१,२,३)

उपर्युक्त पात्रों के दुःख का मूल कारण भरत अपने आपको समझते हैं तथा अपने विरह के साथ अपने इस कलंक की मार्मिक अनुभूति में वह परम दुःखी हो जाते हैं—

१. राम, सीता तथा लक्ष्मण का वनवास हुआ इसको सुनकर भी प्राण न निकले।

२. निषादराज का आदर्श प्रेम देखा; अपने प्रेम को उसकी समता-योग्य न पाकर हृदय न फटा।[1]

यह सब कुछ सुना और देखा किन्तु प्राण न निकले। दुसह दुःख सहने के लिए जीवित रहा। भरत की यह आत्मग्लानि शोक की परम कारुणिक अनुभूति का प्रकटीकरण करती है।

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर स्पष्ट है कि भरत की परम शोकानुभूति का एवं असह्य आत्मग्लानि का वर्णन कवि की कला-कुशलता के साथ कवि के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अध्ययन का भी परिचय देता है जिसके कारण ये प्रसंग अपनी नवीनता तथा अपनी मौलिकता में अलौकिक तथा अद्वितीय बन गए हैं। भरत का पूरा चित्र ही करुण की प्रतिमूर्ति है। गोस्वामी जी ने भरत के चरित्र-चित्रण द्वारा करुणरस की अनुभूति के प्रत्येक रूप का प्रकटीकरण किया तथा मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर उस की सकारणता सिद्ध की।

सुमंत्र की शोकानुभूति—सुमंत्र महाराज दशरथ के सचिव हैं। महाराज के राजनीतिक जीवन के विश्वस्त सहयोगी होने के साथ वह राजपरिवार के भी अभिन्न अंग हैं। गोस्वामीजी प्रत्येक पात्र को रामभक्ति का पाठ पढ़ाना चाहते हैं। सुमंत्रजी भी उनकी पाठशाला के एक विद्यार्थी हैं।

सुमंत्र अति मृदु एवं कोमल स्वभाव के व्यक्ति हैं। महाराज की शोचनीय दशा देखकर किसी अमंगल की आशंका से भयभीत हो जाते हैं। "सचिव सभीत सकय नहिं पूछी"—लिखकर कवि ने सुमंत्र की मनोव्यथा तथा सशंकित हृदयगत चिन्ता की ओर संकेत किया है। कैकेयी ने मुँह खोला भी किन्तु "हेतु जान जगदीसु" कहकर प्रसंग को और गंभीर बना दिया। सुमंत्र के राजनीतिक अनुभव ने संकेत किया—"लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी" किन्तु इस गूढ़ समस्या को वह सुलझा न सके। वह अनुमान हीन लगा सके कि "रामहिं बोलि कहिहि का राऊ।" इस समस्या की गंभीरता इतनी असह्य हो जाती है कि 'सोच विकलता' के कारण मग में सुमंत्र के भलीभाँति पैर नहीं पड़ते।

सुमंत्र की यह "सोच विकलता" बाह्यव्यंजकों को जन्म देती है तथा सुमंत्र की करुणापूर्ण दशा से विषम परिस्थिति का प्रकटीकरण हो जाता है। तुलसीदासजी इस

१. "बहुरि निहारि निषाद सनेहू, कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू।"

प्रसंग की ओर निम्नलिखित शब्दों में संकेत करते हैं—

"राम कुभाँति सचिव सँग जाहीं,
देखि लोग जहँ-तहँ बिलखाहीं।"

सुमंत्र की निराशा—महाराज दशरथ सुमंत्र को आज्ञा देते हैं—

"बनु देखाइ सुरसरि अन्हवाई,
आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई।"

महाराज की इस आज्ञा का पालन करते हुए सुमंत्र राम-लक्ष्मण-सीता को वन ले जाते हैं।

वन में पहुँचकर राम "सुचि सुजान बट छीर" मँगाते हैं तथा "अनुज सहित सिर जटा" बना लेते हैं। इस दृश्य को देखकर सुमंत्र को विश्वास हो जाता है कि राम अब अयोध्या वापिस नहीं लौटेंगे। वह पूर्ण निराश होकर अति दुःखी हो उठते हैं। सुमंत्र की विवशता इस प्रसंग को विशेष मर्मस्पर्शी बना देती है। उनकी असाधारण व्यथा असह्य बन जाती है जब वह देखते हैं कि महाराज दशरथ की आज्ञा का पालन होना संभव नहीं है। उधर महाराज बिना राम के जीवित नहीं रह सकते, यह भी स्पष्ट है। इन परिस्थितियों में सुमंत्र यही प्रयत्न करते हैं कि राम किसी प्रकार वापिस चले चलें। वह अनेक प्रकार से राम से वापिस चलने के लिए प्रार्थना विनय तथा आग्रह करते हैं किन्तु उनके ये सब प्रयत्न राम की दृढ़ता के समक्ष व्यर्थ सिद्ध हो जाते हैं। विवश एवं अति दुःखी सुमंत्र किंकर्तव्यविमूढ़ होकर बालक की भाँति रोने लगते हैं—

"करि बिनती पायँन परेउ, दीन बाल जिमि रोइ।"

अपनी विवशता तथा असहायावस्था में राजभक्त सुमंत्र अति दीन होकर रोने लगे। उनका यह रोना गम्भीर शोकानुभूति तथा परम असहायावस्था के अन्तर्गत अति स्वाभाविक था, मनोविज्ञानशास्त्री तुलसी इस तथ्य से भली-भाँति परिचित थे।

सुमंत्र का राम, सीता तथा लक्ष्मण को वनमें छोडकर अयोध्या वापिस आना—"सोक-सिथिल" सुमंत्र "रथु सकइ न हाँकी—" इसलिए निषाद "सुसेवक चारि" साथ में कर देते हैं। शोकानुभूति के अन्तर्गत शरीर की शिथिलता अति स्वाभाविक होती है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य के आधार पर सुमंत्र की शोकानुभूति की मार्मिकता स्पष्ट हो जाती है।

सुमंत्र का परिताप—सुमंत्र को विश्वास था कि राम इतने कठोर नहीं हो सकते कि उनको वन से अकेला ही लौटना पड़े। अतएव विश्वासगत आशा के निराशा में परिणत हो जाने पर सुमंत्र का परिताप दारुण बन गया। "रघुबीर विहीना" जीवन को वह धिक्कारने लगे। सुमंत्र की दारुण शोकानुभूति का स्पष्ट प्रकटीकरण हो सके इस दृष्टि से तुलसीदासजी ने समकक्ष अन्य दारुण अनुभूतियों के उदाहरणों का निम्न-

लिखित रूप में संकलन किया[1]—

सुमंत्र हाथ मींड़ते हुए सिर धुनकर इस प्रकार पछताते हैं, जैसे कि—

अ—कृपण मनुष्य धनराशि खोकर शोकविह्वल हो जाता है।

आ—श्रेष्ठ वीर युद्ध में पराजित होकर शोकाकुल हो जाता है।

इ—वेदविद साधु तथा विवेकी ब्राह्मण धोखे में मद-पान कर शोकसंतप्त हो उठते हैं।

ई—कुलीन एवं पतिव्रता, साधु एवं सयानी स्त्री भाग्यवश पति से पृथक रहकर दुःखी होती है।

बाह्यव्यंजकों द्वारा सुमंत्र की दशा का प्रकटीकरण करते हुए कवि कहता है—सुमंत्र के नेत्र अश्रुपूर्ण है, दृष्टि संकुचित हो गई है, कानों से सुनाई नहीं देता, अत्यन्त व्याकुल हैं, अधर सूख रहे हैं, मुख विवर्ण हो गया है। उनको देखा नहीं जाता। ऐसा लगता है कि मानो—

अ—उन्होंने माता-पिता की हत्या कर डाली हो, एतदर्थ घोर परिताप भोग रहे हों।

आ—उनके मन में अत्यन्त ग्लानि एवं हानि व्याप्त हो रही है जिस प्रकार पापी मनुष्य को यमपुर का सोच अत्यन्त व्याकुल कर देता है।[2]

कहना न होगा कि उपर्युक्त वर्णन में कवि ने सुमंत्र का अति समीप से सूक्ष्म अध्ययन किया है; इसीलिए सूक्ष्म से सूक्ष्म तथ्य की स्पष्ट अभिव्यक्ति संभव हो सकी है।

---

१. अ—"सोच सुमंत्र विकल दुख दीना, धिग जीवन रघुवीर बिहीना।
मीजि हाथ सिर धुनि पछिताई, मनहुँ कृपन धन-रासि गवाँई॥"

आ—"बिरिद बाँधि बीरु कहाई, चलेउ समर जनु सुघट पराई।"

इ—"बिप्र विवेकी वेद बिद सम्मत साधु सुजाति।
जिमि धोखे मद पानि कर सचिव सोच तेहि भाँति॥"
—(अयो० ११४)

ई—"जिमि कुलीन तिय साधु सयानी, पति देवता करममनबानी।
रहै करम बस परिहरि नाहू, सचिव हृदय तिनि दारुन दाहू।"

२. "लोचन सजल दीठि भई थोरी।
सुनइ न स्रवन बिकल मति भोरी।"
"सूखहिं अधर लागि मुँह लाटी, जिउ न जाय उर अवधि कपाटी।"
बिबरन भयउ न जाइ निहारी, मारिसि मनहुँ पितामहतारी।
हानि गलानि विपुल मनव्यापी, जमपुर पंथ सोचि जिमि पापी।"

सुमंत्र की ग्लानि—राम, सीता तथा लक्ष्मण के संबंध में विरह-व्यथित अयोध्या के पुरवासियों, शोकसंतप्त महाराज दशरथ तथा राजमाताओं की जिज्ञासा का वह क्या उत्तर दे सकेंगे, इस विचार से सुमंत्र अति कातर हो उठते हैं तथा उनकी दशा अति करुणापूर्ण बन जाती है। उनकी आत्मग्लानि, आत्मभर्त्सना तथा व्याज-निन्दा के प्रसंग निम्नलिखित रूप में प्रकट हुए हैं[1]—

अ—अयोध्या के पुरजन एवं प्रियजनों के (राम के संबंध में किये गये) प्रश्नों के वह क्या उत्तर देंगे, यह सोचकर सुमंत्र किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं।

आ—रामविहीन रथ को जो कोई देखेगा वह स्वयं सुमंत्र को देखकर सकुच जायगा। इन दर्शकों की ग्लानि का विचार कर सुमंत्र अति क्षुब्ध हो जाते हैं।

इ—जब राम-माता बछड़े की स्मृति में व्याकुल गाय की भाँति दौड़ती हुई आवेंगी तथा राम के सम्बन्ध में पूछेंगी तो यही उत्तर देना पड़ेगा—

"गे बनु राम लखनु बैदेही।"

ई—अन्य और कोई राम के सम्बन्ध में पूछेंगे तो यही उत्तर देकर सुख प्राप्त किया जायगा।

उ—जब दुःखी तथा दीन महाराज़ दशरथ जिनका जीवन रघुनाथ आधीन है, राम के सम्बन्ध में पूछेंगे तो किस मुँह से उत्तर दूँगा कि कुमारों को सकुशल पहुँचा आया।

सुमंत्र की आत्मग्लानि कितनी असह्य हो गई इसका अनुमान सुमंत्र के अयोध्या-प्रवेश-प्रसंग से लगाया जा सकता है। दिन में वह नगर-प्रवेश का साहस नहीं कर पाते। उनको इसी प्रकार का संकोच हो रहा है मानों गुरु, ब्राह्मण एवं गाय की हत्या कर डाली हो। इसीलिए किसी वृक्ष के नीचे छुपे-छुपे दिन बिताकर संध्या होने पर अंधकार में नगर-प्रवेश की बात सोचते हैं। मनोविज्ञानाश्रित मौलिक उद्भावना के आधार पर गोस्वामीजी ने सुमंत्र की शोकानुभूति को अति मार्मिक रूप दे दिया है। सुमंत्र की रामभक्ति का गोस्वामीजी ने इस रूप में विकास दिखलाया है कि रामकथा के अन्य भक्त पात्रों के समान ही सुमंत्र की दशा अति करुणापूर्ण दिखलाई देती है तथा उनकी राजभक्ति रामभक्ति में विलीन हो जाती है।

---

१. बचनु न आब हृदय पछिताई, अवध काह मैं देखब जाई।"
"राम रहित रथ देखिहि जोई, सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई।"
"राम जननि जब आइहि धाई, सुमिरि बच्छु जिमि धेनु लवाई।
पूछत उतरु देव मैं तेही, गे बनु राम लखनु बैदेही।"
"जोइ पूँछिहि तेहि ऊतरु देवा, जाइ अवध अब यहु सुखु लेवा।
"देहउँ उतरु कौन मुहु लाई, आयउ कुसल कुवँर पहुँचाई।"
—(अयो० १४५)

पशुपक्षीगत विरह-दशा—रघुनाथजी के घोड़े इस प्रसंग में विशेष उल्लेखनीय हैं। राम ने उनकी सदा देखभाल की थी। साहचर्यगत भावना के अन्तर्गत राम के वियोगी घोड़ों की दशा किसी भी रामवियोगी पात्र से कम कारुणिक नहीं है।

राम के घोड़े दक्षिण दिशा की ओर मुँह करके हिनहिनाते हैं। वह इस प्रकार परम व्याकुल हो रहे हैं जिस प्रकार बिना पंखों के कोई पक्षी अति विकल हो रहा हो। खाना-पीना उन्होंने छोड़ दिया है। उनकी आँखों से अविरल अश्रुपात होता रहता है।[1]

रामविहीन रथ को वापिस ले जाना राम के घोड़े के लिए भी परम वेदना का कारण बन जाता है। उनकी शोकसंतप्त दशा का चित्रण तुलसीदासजी निम्नलिखित रूप में करते हैं—

१. तड़फड़ा रहे हैं तथा मार्ग में आगे नहीं बढ़ते मानो वनमृग जोत दिए गए हों।

२. चलते-चलते यकायक मार्ग में रुक जाते हैं तथा मुड़कर पीछे देखते हैं।

३. जो कोई "राम लक्ष्मण वैदेही" कहता है तो उसी की ओर "हिंकरि-हिंकरि" कर देखने लगते हैं।

घोड़ों की दशा सहानुभूतिगत शोकानुभूति का कारण बन जाती है जब उनकी दीन दशा को देखकर अन्य व्यक्ति दुःखी हो उठते हैं। उस मनोवैज्ञानिक तथ्य का निम्नलिखित रूप में प्रकटीकरण हुआ है जबकि घोड़ों की उपर्युक्त दीन दशा को देखकर अन्य लोग भी व्याकुल हो जाते हैं—

"व्याकुल भए निषाद रघुबर बाजि निहारि।"

तथा

"भयउ निषाद विषाद बस देखत सचिव तुरंग।"

अयोध्या वापिस पहुँचकर घोड़ों की करुणापूर्ण दशा रामवनवास के विषाद-पूर्ण प्रसंग को जन-जन में अविलम्ब प्रसारित कर देती है। रथ को देखकर अयोध्या वासियों का एकत्रित होना स्वाभाविक था तथा उसको पहचानकर एवं घोड़ों की दीन दशा को देखकर यह अनुमान लगा लेना भी सहज था कि राम वापिस नहीं आए। इसीलिए बिना कुछ पूछे ही पुरवासी अति व्याकुल होने लगते हैं—

---

१. देखि दखिन दिसि हय हिनहिनाहीं, जनु बिनु पंख विहग अकुलाईं।
नहिं तृन चरहिं न पिअहिं जलु मोचहिं लोचन बारि।।"

—(अयो० १४२)

"तरफराहि मग चलहिं न घोरे बन मृग मनहुँ आनि रथ जोरे।
अढुक परहिं फिरि हेरहिं पीछें, राम वियोगि बिकल दुख तीछें।
जो कह रामु लखनु बैदेही, हिंकरि-हिंकरि हित हेरहिं तेही।
बाजि बिरह गति कहि किमि जाती ; बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भाँती।"

—(अयो० १४१/३, ४)

"रथु पहिचानि विकल लखि घोरे।
गरहिं गात जिमि आतप ओरे॥"

चित्रकूट प्रसंग पशुखगमृग—महाराज के निधन-समाचार को सुनकर चित्रकूट विशेषरूप से शोकाभिभूत हो जाता है। राम-लक्ष्मण तथा सीता की परम शोकानुभूति एक बार पुनः अति करुणापूर्ण दृश्य को उपस्थित कर देती है जिसके फलस्वरूप ऐसा प्रतीत होने लगता है मानों महाराज का निधन उसी दिन हुआ हो। इस महाशोक में चित्रकूट का सम्पूर्ण चराचर जगत् दुःखी दिखलाई देता है।

शोकानुभूति के अन्तर्गत भोजन के प्रति उदासीनता एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। गोस्वामीजी ने समागत सम्पूर्ण समाज की भोजन के प्रति उदासीनता का प्रकटीकरण किया है किन्तु इस तथ्य को गोस्वामीजी इस प्रकार सीधे-साधे रूप में नहीं रखते। वे पशुखगमृग की दशा का चित्रण करते हैं तथा उसके द्वारा समाज की दशा का अनुमान लगाना पाठक के लिए छोड़ देते हैं—

"पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू,
प्रिय परिजन कर कौन विचारू।"

गीतावली में घोड़ों का प्रसंग—गीतावली में दिए हुए इस वर्णन को यहाँ देख लेना आवश्यक होगा। इसके अभाव में "पशुपक्षीगत विरह प्रसंग" अपूर्ण ही रह जावेगा।

सूर का "अति कृसगात भई हैं तुम बिन परम दुखारी गाय" पद पशुपक्षीगत शोकानुभूति का आदर्श उदाहरण सिद्ध हुआ तथा इसका अनुकरण अन्य कवियों के लिए आवश्यक हो गया। तुलसीदासजी भी इस रूप में शोकानुभूति को प्रकट करने के लिए विवश हुए तथा पद-शैली में ही उन्होंने राम के घोड़ों का प्रसंग लगभग इसी रूप में प्रस्तुत किया।

कवि ने माँ का संदेश लिखा और उसमें पशुपक्षीगत विरह-वेदना का मार्मिक शब्दों में प्रकटीकरण किया—

"राघौ, एक बार फिर आवौ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने बहुरो बनहिं सिधावौ।
जे पय प्याइ पोसि कर-पंकज बार बार चुचुकारे।
क्यों जीवहिं मेरे राम लाड़िले ते अब निपट बिसारे।
भरत सौगुनी सार करत हैं अति प्रिय जानि तिहारे।
तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे मनहु कमल हिम मारे।
सुनहु पथिक जो राम मिलहिं बन कहियो मातु सँदेसो।
तुलसी मोहि और सबहिनतें इन्हको बड़ो अंदेसो॥"

तुलसी की कला-कुशलता का परिचय उपर्युक्त पदगत अपूर्व अभिव्यक्ति से सहज ही प्राप्त हो सकता है जब माता के इस सन्देश की गम्भीरता, पशुओं की अपनी

विवशता, राम की वनवास की अवधि को पूरा करने की दृढ़ता, दूसरों की शोकानुभूति में सहानुभूति तथा माता कौशल्या के अचेतनमनगत राम दर्शनलालसा का एक संश्लिष्ट चित्र पाठक की आँखों के सामने नाचने लगता है।

बेचारे पशु वनवास-अवधि को क्या समझें। उनके लिए तो रामवियोग पूर्णतया निरपेक्ष एवं परम निराशाजनक है। इसीलिए उनकी दशा दिन-दिन अति शोचनीय होती जा रही है। उनकी इस असह्य दशा को देखकर "क्यों जीवहिं" की आशंका होने लगती है तथा वह (माता) संदेश भेजने के लिए विवश हो जाती है। इस संदेश को माता का एक स्वप्न कहा जा सकता है। वह जब स्वस्थ हुई होंगी तो इस संदेश की निरर्थकता का ध्यान कर स्वयं दुःखी हो उठी होंगी—क्या इस संदेश को प्राप्त कर राम अयोध्या वापिस आ जावेंगे ?

पुरजनों की विषम शोकानुभूति

अशुभ की आशंका—जब पुरजन "कुभाँति सचिव" के साथ राम को महाराज दशरथ के पास जाते हुए देखते हैं तो किसी अशुभ की आशंका "जहँ तहँ" बिलखने लगते हैं। मंत्री का असाधारण क्षोभ भावी घोर आपत्ति का प्रतीक बनकर उनके लिए असह्य हो जाता है।

आशंकागत करुण—रामवनवास के अवसर पर विषम शोक का दृश्य उपस्थित हो जाता है। अशुभ की आशंका से अति दीन दशा को प्राप्त पुरजन अशुभ प्राप्ति के समय किस प्रकार अपने आपको सम्हाल सकते थे और फिर सब रामवनवास की "सुतीखी बात"[१] अनायास एवं यकायक ही नगर में व्याप्त होगई तब तो उनकी दशा और भी असह्य एवं दारुण बन गई। गोस्वामीजी ने इस असह्य व्यथा का वर्णन निम्नलिखित रूप में किया है[२]—

१. इस दुःखद संवाद को सुनकर सम्पूर्ण नर-नारी व्याकुल होगए (जिस प्रकार बेलि-विटप दावाग्नि को देखकर कातर हो उठता है।)
२. जो जहाँ इस दुःखद संवाद को सुनता है, शोकानुभूति के कारण वहीं अपना सिर धुनने लगता है।
३. सम्पूर्ण नगर में अति विषाद व्याप्त हो रहा है कोई धैर्य धारण नहीं कर पा रहा।
४. सब के मुख सूख रहे हैं।

---

१. "नगर व्यापि गई बात सुतीछी, छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी।
सुनि भए बिकल सकल नरनारी, बेलि विटप जिमि देखि दवारी॥"

२. "जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई, बड़ विषादु नहिं धीरजु होई।
मुख सुखाहि लोचन स्रवहिं सोकु न हृदय समाइ।
मनहुँ करुन रस कटकई उतरी अवध बजाइ।"
—(अयो० ४६)

५. नेत्रों से अश्रुमोचन हो रहा है। शोक हृदय में नहीं समा रहा। ऐसा प्रतीत होता है मानो करुण रस अपने कटक के साथ अयोध्या में आ गया है।

चित्रकूट में माता कौशल्या को भरत के सम्बन्ध में विशेष चिन्ता है। राम के प्रति भरत के गूढ़ स्नेह को देखकर माता को यह सोच है कि राम के वियोग में भरत जीवित कैसे रहेंगे! माता की यह आशंका ही करुणरस का संचार करती है। मूल प्रसंग यहाँ निम्नलिखित रूप में अवलोकनीय है—

"तौ भल जतन करब सुबिचारी, मोरें सोचु भरत कर भारी।
गूढ़ स्नेह भरत मनमाहीं, रहें नीक मोहि लागत नाहीं।
लखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी सबभइ मगन करुनरस रानी।"
—(अयो० २८३/२-३)

उपर्युक्त प्रसंग में गो० तुलसीदासजी ने करुणरस के क्षेत्र का विस्तार किया है। मूल मनोभाव आशंका एवं चिन्ता हैं जो वक्ता की सहज सरलता में विशेष प्रभावोत्पादक बन गए हैं तथा करुणरस की योजना करते हैं।

पुरजनों की ग्लानि एवं क्षोभ—पुरजनों की ग्लानि एवं क्षोभ, शोक की असह्यावस्था में अमर्ष की ओर उन्मुख हो जाता है जब वे सुनते हैं कि यह सब आपत्ति कैकेयी के कारण उत्पन्न हुई है। इसीलिए उनकी मनोव्यथा का सारा वेग कैकेयी को बुराभला कहने में निकल पड़ता है।[1]

१—जहाँ तहाँ लोग कैकेयी को गाली देते हैं।
२—उसके इस कार्य की कटु आलोचना करते हैं।
अ—कैकेयी ने भवन पर छान छा कर आग लगादी है।
आ—वह अपने हाथों से अपनी आँखें निकालकर देखना चाहती है।
इ—वह सुधा फेंक कर विष चखना चाह रही है।
ई—रघुवंश रूपी वन के लिए वह आग बन गई है।
उ—शाखा पर बैठकर इसने पेड़ को काटा है।
ऊ—सुख में शोक का ठाठ रच दिया है।

अतएव यह कैकेयी पापिन है, कुटिल, कठोर, कुबुद्धि अभागिन है।

पुरजनों की सामान्य दशा—पुरजनों की सामान्य दशा का वर्णन गोस्वामीजी

---

१. "मिलेहि माझ बिधि बात बेगारी, जहँ तहँ देहिं कैकेइहि गारी।
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ, छाइ भवन पर पावकु धरेऊ।
निज कर काढ़ नयन चह दीखा, डारि सुधा विषु चाहत चीखा।
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी, भइ रघुवंस बेनु बन आगी।
पालव बैठि पेडु एहिं काटा, सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा।"
—(अयो० ४६/१, २, ३)

बाह्यव्यंजकों द्वारा करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो कवि ने शोकसंतप्त एक-एक पुरजन का समीप से अध्ययन किया है तथा यथातथ्य चित्रण करने में इसी कारण वह इतना सफल हो सका है[1]—

१—प्रत्येक जन सोचता है कि यह क्या हुआ ?
२—हृदय में असह्य दाह है।
३—उत्साह नष्ट हो गया है।
४—विषम दाह में जलते हुए वे दीर्घ श्वासें ले रहे हैं।
५—विपुल वियोग में प्रजा व्याकुल है। उनका शरीर कृश है, मन दुःखी है, बदन मलीन है, वे हाथ मींड़कर सिर धुनते हैं तथा पंखविहीन पक्षी की भाँति तड़फड़ा रहे हैं।

बाह्यव्यंजकों के वर्णन के साथ अनुभूति की गंभीरता का प्रकटीकरण करने के लिए कवि समकक्ष दारुण अनुभूतियों के उदाहरण देता जाता है जिससे पात्रगत बाह्य एवं आन्तरिक दशा का वास्तविक प्रकटीकरण संभव हो जाता है। पुरजनों की विकल तथा व्यथापूर्ण दशा के स्पष्टीकरण के लिए कवि ने कहा कि पुरजन इस प्रकार व्याकुल हैं जिस प्रकार मधुमक्खियाँ मधु के छिन जाने पर परम अधीर तथा विकल हो जाती हैं। इस उदाहरण द्वारा कवि ने पुरजनों की विकलता का सजीव चित्र उपस्थित किया है।

अयोध्या-वर्णन—वनवास के लिए प्रस्तुत राम के प्रस्थान के समय नगर की दशा अति शोचनीय हो जाती है। चारों ओर कुहराम मच जाता है। नागरिकों का आर्त्तनाद सुना नहीं जाता। अयोध्या की इस शोकपूर्ण दशा का कवि ने निम्नलिखित रूप में वर्णन किया है[2]।

---

१. "जरहिं विषम जर लेहिं उसासा, कवनि राम बिनु जीवन आसा।
विपुल वियोग प्रजा अकुलानी, जनु जलचर गन सूखत पानी।"
"तन कृस मन दुखु बदन मलीने, विकल मनहुँ माखी मधु छीने।
कर मींजहिं सिरु धुनि पछिताहीं, जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं।"
"देखे लोग बिरह दब दाढ़े।" —(अयो० ५०/३)

२. "राम चलत अति भयउ विषादू, सुनि न जाइ पुर आरत नादू"।
लागति अवधि भयावन भारी, मानहुँ कालिराति अँधियारी।
घोर जंतु सम पुर नरनारी, डरपहिं एकहि एक निहारी।
घर मसान परिजन जनु भूता, सुत हित मीत मनहुँ जमदूता।
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं, सरित सरोवर देखि न जाहीं॥
हय गय कोटिन्ह केलिमृग पुरपसु चातक मोर।
पिक रथाँग सुक सारिका सारस हंस चकोर॥"
"राम वियोग विकल सब ठाढ़े, जहँ तहँ मनहु चित्र लिखि काढ़े।"
—(अयो० ८३)

१—अयोध्या अति भयानक लगती है मानो अँधेरी कालरात्रि हो।

२—नगर के नर-नारी घोर जुन्तुओं के समान हैं जो एक-दूसरे को देखकर डरते हैं।

४—परिजन भूतों जैसे लग रहे हैं।

५—पुत्र, मित्र तथा अन्य हितैषी यमदूत के समान दिखलाई दे रहे हैं।

६—उपवनों में वृक्ष तथा लताएँ मुरझा गई हैं।

७—नदी-तालाब देखते नहीं बनते।

८—हाथी, घोड़ा तथा पुर के अन्यान्य पशु, चातक, मोर, पिक, शुक, सारिका, सारस, हंस, चकोर आदि सब राम-वियोग में विकल खड़े हैं मानो चित्रलिखे हों।

९—सम्पूर्ण नगर तथा वन में "विपुल" खगमृग तथा "सकल" नरनारी कैकेयी द्वारा दसों दिशाओं में लगादी गई दुःसह दावाग्नि से कातर होकर भागने लगे हैं।

इस वर्णन के अन्तर्गत कवि का संकेत नगर की उस बाह्य दशा की ओर है जिसका अभास प्रथम दर्शन में संभव होता है। कवि ने शोकानुभूति के समय नगर की अति सामान्य दशा का अवलोकन किया है। शोकाभिभूत नगर का श्मसान के समान दिखलाई देना अति स्वाभाविक है।[1]

अपनी भावनाओं के रंग में रंगने की मानवी प्रवृत्ति ऐसे अवसरों पर क्रियाशील रहती है तथा मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में इन प्रसंगों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति संभव हो जाती है।

रामवियोग पर पुरजनों का शोक—रामवनगमन के समय राम के साथ दुःखी एवं कातर पुरजन तमसा नदी तक पहुँच जाते हैं। रात में जब सब लोग सो जाते हैं तो भगवान राम सुमंत्र को जगाकर मार्ग-चिन्हों को मिटाते हुए आगे बढ़ जाते हैं। इधर उधर तमसा के तीर पर प्रातः जब पुरवासी जगते हैं तो राम को न देखकर परम विकल हो उठते हैं। "राम राम" पुकारते हुए वे चारों दिशाओं में उद्भ्रान्त होकर दौड़ने लगते हैं किन्तु रथ की खोज नहीं कर पाते। इस प्रकार पूर्ण निराशा छा जाती है। कलाकार तुलसी पुरजनों की विषय-अनुभूति की अभिव्यक्ति

१. "नगर सकल बनु गहबर भारी, खगमृग विपुल सकल नरनारी।
विधि कैकेई कiरातिन कीन्ही, जेहि दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्ही।
सहि न सके रघुबर बिरहागी, चले लोग सब व्याकुल भागी॥"

बड़े सुन्दर ढंग से करते हैं ।

समुद्र में जहाज के डूब जाने पर जिस प्रकार बनिक-समाज बड़ा विकल हो जाता है उसी प्रकार राम के चले जाने पर पुरजन परम व्याकुल एवं दुःखी हो रहे हैं। वे आपस में एक दूसरे को समझाते है कि हम लोगों को साथ रखने में राम को क्लेश होता यही सोचकर राम ने हम लोगों को त्याग दिया है[1] ।

विरह में व्यथित पुरजन मीनप्रेम की सराहाना करते हैं तथा अपने आपको धिक्कारते हैं। विरह में कातर होकर वे मृत्यु की याचना करते हैं किन्तु "माँगे मरनु" कहाँ मिलता है। पुरजनों की यह करुणापूर्ण दशा अयोध्या पहुँचते-पहुँचते सह्य बन जाती है तथा इस प्रकार करुण रस का प्रसंग समाप्त हो जाता है।[2]

मार्ग के नर-नारियों का क्षोभ—राम-सीता-लक्ष्मण को वन-मार्ग से जाते हुए देखकर मार्ग के नर-नारी उनके सहज-सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाते हैं किन्तु जब उनको यह ज्ञात होता है कि इनको वनवास दिया गया है तो अति दुःखी हो उठते हैं। राम-वनवास को असंगत एवं अनीतिपूर्ण समझकर तथा दैव को इन सबका मूल कारण जानकर वे दैवनिन्दा करने लगते हैं। इस प्रसंग में प्रकट यह वह सात्विक क्षोभ है जिसने अपने पराए के संकुचित विचारों को पार करके आदर्श के अपघात को देखकर मार्ग के नर-नारियों को क्षुब्ध होने के लिए विवश कर दिया।

वे समझते हैं कि विधाता के सब कार्य उल्टे होते हैं, क्योंकि वह स्वयं "निपट निरंकुस निठुर निसंकू" है। इसीलिए जो मन में आता है वही करता है। चन्द्रमा को सकलंक बना दिया, सागर के जल को खारा बना दिया तथा कल्पतरु को वृक्ष-योनि दी। निश्चय ही उसी विधाता ने इन राजकुमारों को वन में भेज दिया है।

ये सुन्दर राजकुमार सुख-वैभव भोगने योग्य थे। इनको वनवास देकर वास्तव में संसार की भोग्य वस्तुएँ व्यर्थ सिद्ध हो गईं। भिन्न-भिन्न प्रकार के वाहन व्यर्थ हैं जब ये राजकुमार ही नंगे पैरों चल रहे हैं। सुभग शय्या व्यर्थ है जब इन राजकुमारों को पृथ्वी पर कुशपत्र बिछाकर सोना पड़ता है। धवलधाम व्यर्थ हैं जब ये राजकुमार वृक्षों के नीचे निवास करते हैं। "विविध भाँति भूषन-वसन" भी व्यर्थ

---

१. "रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं, राम राम कहि चहुँ दिसि धावहिं।
मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू, भयउ विकल बड़ बनिक समाजू।
एकहिं एक देहिं उपदेसू, तजे राम हम जानि कलेसू ॥"—(अयो० ८४/१,२)

२. "निंदहिं आपु सराहहिं मीना, धिग जीवन रघुबीर विहीना।
जो पै प्रिय वियोगु बिधि कीन्हा, तौ कस मरनु न माँगे दीन्हा ॥"

हैं जब ये सुन्दर राजकुमार केवल वल्कल वस्त्र धारण किए हुए हैं।[1]

सीताहरण—सीताहरण प्रसंग में सीता की करुण पुकार रक्षा-याचना कही जा सकती है। जटायु रक्षा करने के लिए आता भी है। इस पुकार से राम का स्मरण भी वह रक्षा-भाव के अन्तर्गत ही करती हैं। इस प्रकार यह पूर्ण प्रसंग करुण के अन्तर्गत आता है।

सीता का करुणक्रन्दन—सीता अपने हरण को अपने किसी अपराध का परिणाम समझती हैं तथा अपनी आत्मग्लानि में अति कातर हो उठती हैं। भगवान् राम को स्मरण करते हुए उनको प्रभु के निम्नलिखित चार रूपों का स्मरण होता है[2]—

१—जग में एक वीर।

२—आरति हरन।

३—सरन सुखदायक।

४—रघुकुलसरोजदिननायक।

प्रभु के इन गुणों की सार्थकता में सीता "सीताहरण" रहस्य को समझ नहीं पातीं। इसीलिए अपने दोषों की ओर दृष्टि डालने के लिए विवश हो जाती हैं। उनके मुख से हठात् यही शब्द निकल पड़ते हैं—"केहि अपराध बिसारेहु दाया।"

राम के साथ सीता को लक्ष्मण का स्मरण होता है तथा लक्ष्मण की स्मृति उन को लक्ष्मण के प्रति अपने रोष तथा कहे गए कटु वचनों का स्मरण करा देती है तथा सीता इनका स्मरणकर आत्मग्लानि की दारुण वेदना में विलख उठती हैं—"हा लछिमनु तुम्हार नहिं दोसा।"

---

१. "फिरत नारि-नर अति पछिताहीं, दैअहि दोषु देहिं मनमाहीं।

... ...

निपट निठुर निरंकुस निसंकू, जेहिं ससि कीन्ह सरुज सकलंकू।
रूख कलपतरु सागरु खारा, तेहिं पठए बन राजकुमारा।
जौं पै इन्हहि दीन्ह बनवासू, कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू।
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना, रचे बादि बिधि बाहन नाना।
ए महि परहिं डासि कुस पाता, सुभग सेज कत सृजत बिधाता।
तरुबर बास इन्हहिं बिधि दीन्हा, धवल धाम रचि-रचि श्रमु कीन्हा।
..............बिबिध भाँति भूषन बसन बादि किए करतार॥"

—(अयो० ११८/११९)

२. "हा जग एक वीर रघुराया, केहि अपराध बिसारेहु दाया।
आरति हरन सरनसुखदायक, हा रघुकुल सरोजदिननायक।"

"आरत बचन कहति बैदेही ।
बिलपति भूरि बिसूरि दूरि गए मृग सँग परम सनेही ।"
—(गीतावली)

इस आत्मग्लानि से आहत सीता करुण विलाप करने लगती हैं। उनका विलाप चराचर जगत् को दु:खी बना देता है। वह विविध प्रकार से विलाप करती हुई जा रही हैं। सीता की असहाय दशा का दिग्दर्शन कवि भयभीत मृगी के उदाहरण से कराता है जो (मृगी) बधिक के वशवर्ती होकर उसके साथ जाने के लिए विवश है। इस सम्पूर्ण प्रसंग में सीता की असहायावस्था विशेषरूप से कवि की दृष्टि में रही है जिसके फलस्वरूप यह प्रसंग अति मार्मिक बन गया है।[1]

सीता का चीत्कार विदेशी सत्ता रूपी रावण से प्रपीड़ित जनता की वह करुण पुकार है जिसने कवि को द्रवीभूत कर दिया।

अशोक वाटिका में सीता की करुणदशा—अशोक वाटिका में सीता की करुण-दशा का हनुमान दर्शन करते हैं। हनुमान विरहाकुल सीता की परम करुणापूर्ण दशा को देखकर "परम दुखी" होते हैं।

कृश शरीर, सिर पर जटा तथा एक वेणी धारण किये हुए, हृदय में प्रभुगुणगान करती हुई, नेत्रों को नीचे किए हुए तथा मन को प्रभुचरणों में लीन किए हुए दीन सीता की करुणापूर्ण दशा हनुमान को असह्य हो गई है।[2] परम निराशा में सीता ने जब आत्मघात का निश्चय कर लिया तथा "आनि काठ रचु चिता बनाई, मातु अनल पुनि देहि लगाई" प्रार्थना की तब तो हनुमान किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। शोक संतप्त प्राणी को प्रलाप एवं परिवेदन में आश्रय मिल सकता है। किन्तु निराश प्राणी के लिए विवशता में आत्मघात के सिवाय कोई चारा ही नहीं रहता है। सीता की विवशता विकल व्यथा में परिणत हो गई जब त्रिजटा स्पष्ट उत्तर दे गई—

"निसि न अनल मिलि सुनु सुकुमारी।"

अति व्यथित होकर सीता आकाश के तारों, अशोक के रक्तवर्ण से आग की याचना करने लगीं। इस परम निराशाजन्य दृश्य को देखकर हनुमान परम दु:खी हो उठे तथा उनको एक क्षण एक कल्प के सामान भारी हो गया। अवसर का लाभ उठा कर हनुमान ने मुद्रिका डाल दी तथा इस प्रकार स्थिति को सम्हाल लिया। गोस्वामीजी ने इस प्रसंग को अन्य पुरुषानुभूति के अन्तर्गत रखकर विशेष मर्मस्पर्शी बना दिया है।

सीता की करुण दशा रौद्र मनोभाव की प्रतिक्रिया के रूप में करुण मनोभाव के अन्तर्गत निम्नलिखित रूप में प्रकट हुई है—

रावण—"मास दिवस महुँ कहा न माना, तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना।"

---

१. "करत विलाप जाति नभ सीता, व्याघ बिवस जनु मृगी सभीता।"
२. "कृस तनु सीस जटा एक बेनी, जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी।"
निज पद नयन दिए मन, राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत, देखि जानकी दीन॥"—(सु० का० ९/५)

सीता—"मास दिवस महुँ नाथु न आवा तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा।"

—(सु० २६/३)

लक्ष्मण-शक्ति

लक्ष्मण-शक्ति एक अति करुणापूर्ण प्रसंग है जिसके अन्तर्गत राम भ्रातृप्रेम के उत्कृष्ट आदर्श की स्थापना करते हैं। उनका ब्रह्मस्वरूप उनके नर-रूप में पूर्ण विलीन हो जाता है तथा प्रभु इस अवसर पर अति साधारण मनुष्य की भाँति शोक प्रकट करते हैं।

हनुमान मूर्च्छित लक्ष्मण को उठाकर अपने कटक में ले आते हैं। लक्ष्मण-मूर्च्छा को सुनकर राम को बड़ा दुःख हुआ किन्तु धैर्य और विवेक ने साथ न छोड़ा। अविलम्ब उपचार का प्रबन्ध किया गया। हनुमान संजीवनी बूटी लेने के लिए भेजे गए।

आधी रात बीत गई किन्तु हनुमान नहीं आये। "भोर" होते-होते लक्ष्मण की दशा असाध्य हो जायगी, इस विचार से राम आहत हो उठे। उनकी निराशा ने उन को अधीर बना दिया। वह धैर्य और विवेक को खो बैठे। भाई को उठाकर हृदय से लगा लिया तथा दारुण शोकानुभूति प्रलाप बनकर फूट पड़ी।

भाई का उपकार—भाई के उपकार का राम को सर्वप्रथम स्मरण हुआ। "मृदुल सुभाउ" लक्ष्मण अपने बड़े भाई को कभी दुःखी नहीं देख सकते थे। राम की सेवा के लिये ही उन्होंने माता-पिता तथा बन्धुबान्धवों को छोड़ दिया था। वन में राम के साथ "हिम आतप बाता" जनित अनेक कष्ट सहते फिरे थे। ऐसे परम उपकारी भाई के निधन के कारण अपने आपको निस्सहाय समझ लेना राम के लिए अति स्वाभाविक था।

राम-प्रलाप—राम का ध्यान इस आपत्ति के मूल कारण की ओर जाता है और वह कह उठते हैं—"वन में बन्धुविछोह होगा" इस तथ्य को यदि मैं जानता तो मैं पिता की आज्ञा को न मानता, और वन न आता।[1]

भ्रातृक्षति की पूर्ति को असंभव समझकर राम की वेदना असह्य बन जाती है। वह परम विकल होकर कहते हैं—"सुत, बित, नारि, भवन तथा परिवार" संसार में नष्ट हो जाते हैं और फिर प्राप्त हो जाते हैं किन्तु सहोदार पुनः नहीं मिलता; इसलिये हे भाई ! लक्ष्मण उठो और इस घोर आपत्ति से मुझे मुक्त करो।

भ्रातृक्षति के पश्चात् जीवित रहने की कल्पना राम को अति दुःखी बना देती है। वह सोचने लगते हैं, यदि भ्रातृवियोग के पश्चात् मैं जीवित रहा तो मेरा जीवन

---

१. "जौ जनतेउ बन बंधु बिछोहू, पिता वचन मनतेउ नहिं ओहू।
सुत बित नारि भवन परिवारा, होहिं जग बारहिं बारा।
अस बिचारि जिय जागहु ताता, मिलइ न जगत सहोदर भ्राता।"

—(लंका—६०)

उसी प्रकार अति करुणापूर्ण हो जायगा जिस प्रकार पंखरहित पक्षी, मणिरहित सर्प तथा कररहित हाथी का जीवन अति व्यथापूर्ण होता है।

राममन की पीड़ा—अयोध्या से राम सीता और लक्ष्मण के साथ वन आए थे। वह यह सोचकर परम अधीर हो उठते हैं कि अब उनको अकेला ही वापिस लौटना पड़ेगा। यदि किसी प्रकार सीता मिल भी गई तब भी लक्ष्मण तो साथ न होंगे। छोटे भाई लक्ष्मण के बिना अयोध्या में राम किस प्रकार मुँह दिखलावेंगे, यह विचार राम की मन की पीड़ा का कारण बन जाता है। वह सोचते हैं कि लोग यही कहेंगे कि राम ने स्त्री के लिए छोटे भाई को "गवाँ" दिया। इस प्रकार इन घोर यातनाओं की कल्पना राम को अति कातर बना देती है और वह सोचने लगते हैं कि इससे तो यही अच्छा था कि 'सीता-हरण' के पश्चात् ही हम दोनों भाई अयोध्या वापिस चले जाते क्योंकि स्त्रीक्षति से विशेष हानि नहीं होती[1]। भ्रातृ एवं स्त्रीक्षति का यह तुलनात्मक अध्ययन राम की शोकानुभूति के अन्तर्गत अति स्वाभाविक रूप में प्रकट हुआ है। भ्रातृ-क्षतिगत दारुण शोकानुभूति इसकी पृष्ठभूमि है। इस रूप में राम ने आदर्श भ्रातृस्नेह की प्रतिष्ठा की है।

गीतावली में यही प्रसंग—गीतावली में यह प्रसंग अति मार्मिकरूप में प्रकट हुआ है। गीतावली के वर्णन के आधार पर राम की दारुण शोकानुभूति निम्नलिखित रूप में देखी जा सकती है—

राम की आत्मग्लानि तथा आत्मनिन्दा इस वर्णन में मुखरित हो उठी है। राम कहते हैं कि मुझसे तो कभी कुछ हुआ ही नहीं[2]।

१—माता-पिता पुरजन तथा सम्पूर्ण सुखों को छोड़कर वन-वन लक्ष्मण मेरे साथ घूमे। मेरी विपत्ति में हाथ बँटाया तथा अपने कर्त्तव्य को भली-भाँति पूरा

---

१. "जथा पंख बिनु खग अति दीना, मनि बिनु फनि करिबर कर हीना।
अस मम जिवन बन्धु बिनु तोही, जौ जड़ दैव जिआवै मोही।
जैहउँ अवध कौन मुहु लाई, नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई।
बरु अपजस सहतेउँ जग माँही, नारि हानि बिसेष छति नाहीं॥"
—(लंका—६१)

२. "मो पै तौ न कछू ह्वै आई।
ओर निवाहि भली विधि भायप चाल्यौ लखन सो भाई।
पुर पितुमातु सकल सुख परिहरि जेहि वन विपति बटाई।
ता सँग हौं सुरलोक शोक तजि सक्यो न प्रान पठाई।
जानत हौ या उर कठोर तें कुलिस कठिनता पाई।
सुमिरि सनेह सुमित्रा-सुत को दरकि दरार न जाई।
तात मरन तिय हरन, गीधवध, भुज दाहिनी गँवाई।
तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहिं कालिमा लाई॥"

किया । आज ऐसा भाई लक्ष्मण स्वर्ग को चल दिया और मैं अपने प्राण उसके साथ न भेज सका ।

२—प्रिय भ्राता लक्ष्मण के निधन पर मेरा हृदय शोक भी न मना सका । कुलिश से कठोर हृदय में फटकर दरार भी न पड़ीं ।

३—मैंने सभी प्रकार से अपने कुल को कलंक ही लगाया । पिता की मृत्यु हुई, स्त्री का हरण हुआ, गीधवध हुआ तथा दक्षिण भुजा के समान भाई लक्ष्मण को गँवा दि ा किन्तु मैं इन सबको अन्यथा करने के लिए कुछ न कर सका ।

दूसरे पद में राम के पुरुषार्थ को शिथिल दिखाते हुए कवि ने राम की असहाय स्थिति का प्रकटीकरण किया है ।[1]

"विपत्ति बँटाने वाले" भाईरूपी बाहु के अभाव में राम किसका भरोसा करें । समर-संकट के समय लक्ष्मण-जैसे वीर भाई का वियोग राम की सम्पूर्ण आशाओं पर पानी फेर देता है । उनको यही सोच है कि—

आ—भालु-बन्दर गिरिकन्दराओं में चले जावेंगे । वह अकेले रह जावेंगे । उनको "अनुजसंघाती" होने का घोर परिताप है । अतएव समर में वह कुछ पुरुषार्थ न दिखला सकेंगे ।

इ—विभीषण को राज्य देने का वचन दिया था । वह वचन कैसे पूरा होगा ? कर्त्तव्यगुरुता तथा वचनवद्धता के कारण राम विकल हो उठते हैं । उनकी व्यथा द्विगुणित गंभीर बन जाती है । कर्त्तव्य के आदर्श के साथ शोकानुभूति तथा भाई के अभाव के साथ असहायावस्था इन तथ्यों का समन्वय एक समस्या है जिसके कारण राम की दशा अति विषम बन गई है । गोस्वामीजी इस प्रकार की विषम परिस्थितियों का सुन्दर संगठन कर स्थल की मार्मिकता का उद्‌घाटन करने में सिद्धहस्त हैं ।

विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति

१. तारा विलाप—सुग्रीव की मित्रता बालि-वध की रहस्यमय योजना का कारण बनती है । राम छिपकर बालि पर बाण छोड़ते हैं और बालि आहत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ता है । पतिवध का समाचार सुनकर तारा शोकविकल हो जाती

---

१. "मेरो सब पुरुषारथु थाको ।

विपति बँटावन बंधु-बाहु बिनु करौं भरोसो काको ।

....

गिरिकानन जैहैं साखामृग हौं पुनि अनुज संघाती ।

ह्वै है कहा विभीषन की गति रही सोच भरि छाती ।"

है।[1] उसके केश छूटे हुए हैं, देह की "सँभार" नहीं हैं। नाना प्रकार से विलाप कर रही है। तारा की शोकानुभूति का यह स्वाभाविक वर्णन बीच में शान्त हो जाता है जब तुलसीदासजी "दीन्हि ग्यान हरि लीन्ही माया" लिखकर तारा को ज्ञानी भक्त के रूप में अविलम्ब मौन होने के लिए विवश कर देते हैं। अतः यहाँ रस का भली-भाँति परि-पाक नहीं हो पाता।

२. **रावण शोकानुभूति**--अक्षयकुमारवध के अवसर पर रावण संभवतः जीवन में प्रथम बार दुःख का अनुभव करता है। हो सकता है इसीलिए शोकानुभूति अधिक गंभीर न हो सकी। यद्यपि इसका मुख्य कारण विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति की ओर से गोस्वामीजी की उदासीनता ही है। अक्षयवध प्रसंग को आधी चौपाई में ही चलता कर दिया जाता है—"सो सुनि रावन भयउ दुखारा"। इस प्रकार यह प्रसंग करुण की अभिव्यक्ति नहीं करा पाता।

दूसरा प्रसंग कुंभकरण मृत्यु पर उपस्थित होता है। कुंभकरण जैसे जगत्-विख्यात योद्धा के लिए रावण की गंभीर वेदना स्वभावतः ही दारुण बन जाती है[2]। रावण इस अवसर पर "बहु विलाप" करता है तथा "बंधुसीस" को पुनः पुनः गोद में रखता है।

रावण की शोकानुभूति का तीसरा तथा अन्तिम प्रसंग मेघनादवध के समय उपस्थित होता है। रावण मेघनादवध के दुःखद समाचार को सुनकर परम व्याकुल हो जाता है। "अक्षयवध" के अवसर के सदृश केवल दुःखी होकर नहीं रह जाता प्रत्युत मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ता है।

सम्पूर्ण लंका के लिए ही मेघनाद दारुण शोकानुभूति का कारण बन जाता है। सब लोग शोकविकल तथा लंका की क्षेम के सम्बन्ध में विशेष चिन्तित हो जाते हैं।

मंदोदरी-विलाप—मेघनादवध के समय मंदोदरी का विलाप गंभीर शोकानुभूति को प्रकट करता है। मंदोदरी भारी रुदन करती है। अनेक प्रकार से पुकार-पुकार कर विलाप करती है तथा बार-बार छाती पीटती है। शोकानुभूति के अन्तर्गत स्त्रियों का छाती पीटना शोकानुभूति बाह्यव्यंजकों की एक विशेषता है जिसका उल्लेख तुलसीदासजी ने किया है।

---

१. "नाना विधि विलाप कर तारा, छूटे केस न देह संभारा।
तारा विकल देखि रघुराया, दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया॥"

२. "बहु बिलाप दसकंधर करई, बंधु सीस पुनि पुनि उर धरई।
रोवहिं नारि हृदय हति पानी, तासु तेज बल बिपुल बखानी॥"

रावणवध के अवसर पर मंदोदरी की शोकानुभूति अपेक्षाकृत निम्नरूप में प्रकट होती है। गोस्वामीजी ने राम के ब्रह्मस्वरूप में मंदोदरी की आस्था दिखलाई है जिसके फलस्वरूप वह समय-समय पर रावण से राम को भगवान मानने का आग्रह तथा सीता को लौटा देने की प्रार्थना करती हुई दिखलाई देती है। अन्य अवसरों पर रावण की विफलताओं का दिग्दर्शन कराती हुई राम-विरोध के दुष्परिणाम से रावण को अवगत कराती है। इसीलिए मंदोदरी का विलाप करुण मनोभावों के रूप में प्रगतिशील होकर धृति में परिणत हो जाता है। मंदोदरी की शोकानुभूति का निम्नलिखित रूप में वर्णन हुआ है—

शारीरिक दशा—पति का कटा हुआ सिर देखकर मंदोदरी व्याकुल तथा मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ती है। केश कटे हुए है तथा शरीर की सम्हाल नहीं हो रही। वह नाना प्रकार से विलाप करती तथा छाती पीटती है[1]।

मानसिक दशा—विलाप करती हुई मन्दोदरी रावण के प्रताप का वर्णन करती है—

१. तुम्हारे बल से पृथ्वी हिलती थी।
२. पावक, शशि तथा सूर्य तुम्हारे सामने तेजहीन थे।
३. शेष तथा कमठ तुम्हारे भार को नहीं सह सकते थे।
४. वरुण, कुबेर, सुरेश तथा वायु में से कोई भी रण में तुम्हारा सामना नहीं कर सका।
५. तुमने अपनी भुजाओं के बल से काल को भी जीत लिया थ
६. तुम्हारी प्रभुता संसार में विदित है।
७. तुम्हारे अधीन सारे "विधिप्रपंच" थे। भयसहित तुमको सब सिर नवाते थे।

रावण के मृत शरीर का वर्णन जो मंदोदरी की शोकानुभूति को उद्दीप्त करता है—

अ—धूल में पड़ा है।
आ—अनाथ की भाँति पड़ा हुआ है।
इ—सिर तथा भुजाओं को गीदड़ खा रहे हैं।
ई—कुल में कोई रोनेवाला भी नहीं रहा।

मंदोदरी की यह शोकानुभूति रामभक्ति में विलीन हो जाती है जब वह अपने पति की इस दशा का कारण खोजती हुई इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि "राम

---

१. "पति सिर देखत मन्दोदरी,
मुरुछित विकल धरनि खसि परी।"
"पति गति देखि ते करहि पुकारा, छूटे केस नहिं वपुष सँभारा।
उर ताड़ना करहि विधि नाना, रोवत करहिं प्रताप बखाना॥"

बिमुख यह अनुचित नाहीं।"

कहना न होगा कि इस टिप्पणी द्वारा मंदोदरी का करुणक्रन्दन व्यर्थ सिद्ध हो जाता है। वह केवल परिपाटी का निर्वाहमात्र करती हुई दिखलाई देती है। राम के कार्यों को उचित सिद्ध कराने की कवि की चिन्ता ने मंदोदरी की शोकानुभूति को इस प्रकार प्रभावहीन बना दिया। जहाँ तक शोकानुभूति के प्रकटीकरण का प्रश्न है। गोस्वामीजी ने केवल मंदोदरी की शोकानुभूति का ही विस्तृत एवं अपेक्षित वर्णन विपक्षीपात्रों की शोकानुभूति के अन्तर्गत किया है।

"तब बल नाथ डोल नित धरनी, तेजहीन पावक ससि तरनी।
सेष कमठ सहि सकहिं न भारा, सो तनु भूमि परेउ मरि छारा।
बरुन कुबेर सुरेस समीरा, रन सनमुख धरि काहुँ न धीरा।
भुजबल जितेहु काल जम साईं आजु परेहु अनाथ की नाईं।
जगत विदित तुम्हार प्रभुताई, सुत परिजन बल बरनि न जाई।
राम बिमुख अस हाल तुम्हारा, न कोउ कुल रोवनहारा।
तक बस बिधि प्रपंच सब नाथा, सभय दिसिप नित नावहिं माथा।
अब तक सिर भुज जंबुक खाहीं, राम बिमुख यह अनुचित नाहीं॥"
—(लंका १०४)

विभीषण की शोकानुभूति—विभीषण की शोकानुभूति का संकेतमात्र वर्णन रावण-मृत्यु के अवसर पर गोस्वामीजी निम्नलिखित शब्दों में करते हैं। रामभक्ति के प्रश्रय में संभवतः विभीषण को रावण-वध मंगलमय ही दिखलाई दिया—

"रुदन करत देखीं सब नारी,
भयउ बिभीषन मन दुख भारी।"
तथा
"बंधु दसा विलोकि दुख कीन्हा,
तब प्रभु अनुजहिं आयसु दीन्हा।
लछिमन तेहि बहु विधि समुझायो।"
—(लंका १०४/२,३)

यहाँ विभीषण के अनुभाव आदि को प्रकट होने का अवसर नहीं दिया गया। कवि दर्शक की भाँति विभीषण की दशा का दिग्दर्शन कराकर संतोष कर लेता है।

पराजय, पराभव, बन्धन, और बध

पराजय, पराभव, वध, बन्धनगत प्रायः प्रसंग अपने मूल रूप में करुणरस की अभिव्यक्ति नहीं करा सके हैं। उनके द्वारा संकेतमात्र स्थिति अथवा भावमात्र दशा का प्रकटीकरण हो सका है। यहाँ संक्षेप में इन प्रसंगों पर इस दृष्टि से दृष्टिपात करलेना अप्रासंगिक न होगा कि ये परिस्थितियों पर प्रकाश डालते है जिनमें उपर्युक्त शीर्षों

के अन्तर्गत करुणरस की अनुभूति संभव हो सकती थी।

पराभव का प्रथम प्रसंग सीता स्वयंवर के अवसर पर उपस्थित होता है। "देस-देस के भूपति नाना" सीता स्वयंवर में भाग लेने के लिए उपस्थित हुए हैं किन्तु कोई भी राजा धनुष को न उठा सका। उनकी पराभवगत दशा गोस्वामीजी ने केवल "चलहिं लजाइ" शब्दों द्वारा व्यक्त की है। "श्रीहत भए हारि हिय राजा" कहकर पराभवजन्य वदनमलीनता की ओर संकेत किया गया है। इस प्रसंग में इन श्रीहत राजाओं की स्वानुभूति के प्रकटीकरण की कोई आवश्यकता न थी इसीलिए गोस्वामीजी ने उनको "नतमुख" दिखलाकर ही संतोष कर लिया।

रावण-पराभव—रावण-पराभव के निम्नलिखित स्थूल मानस में प्रकट हुए हैं।

१—सेतु-बंध पर रावण की विकलता।

२—छत्रमुकुट ताटंक हनन।

३—रावण सभा में अंगद का प्रण तथा रावण-पराभव। सेतुबंध की सूचना पाकर रावण अति विकल हो जाता है।

रावण को विश्वास नहीं होता कि "सेतुबंध" किस प्रकार संभव हो गया। रावण की विकलता का मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म अध्ययन गोस्वामीजी ने "सेतुबंध" सूचना की पुष्टि के अन्तर्गत किया है। रावण समुद्र के पर्यायवाची विभिन्न शब्दों द्वारा इस सूचना की पुष्टि करता है। उसके दसोमुख एक साथ पुकार उठते हैं—सेतु (बन्ध गया) ? बननिधि बँध गया) नीरनिधि ? उदधि ? पयोधि ?···(बँध गया)।

गोस्वामीजी दसमुखों के लिए समुद्र के दस पर्यायवाची शब्दों को रखकर रावण की विकलता का सजीव चित्रण उपस्थित कर देते हैं। उनका मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण कला के सौन्दर्य में प्रस्फुटित हो उठा है। इस विकलता के साथ रावण के पराभव का संकेत-मात्र वर्णन निम्नलिखित रूप में हुआ है—

" निज बिकलता बिचारि बहोरी
बिहँसि गयउ गृह करि भय भोरी।"

रावण के इस "बिहँसि" में कितना त्रास तथा कितनी विकलता भरी हुई है, इसको मनोविज्ञान का विद्यार्थी सहज ही समझ सकता है।

छत्रमुकुट ताटंक हनन दूसरा प्रसंग है। इस अवसर पर भी गोस्वामीजी रावण की पराभवगत शोकानुभूति का प्रकटीकरण नहीं होने देते। सभा को सशंकित तथा भयभीत देखकर रावण हँसकर युक्तिपूर्ण बात बना देता है—

"सिरउ गिरे संतत सुभ जाहीं,
मुकुट परे कस असगुन ताही॥"

रावण सभा में अंगद का प्रण तीसरा प्रसंग है। अंगद रावणसभा में पैर जमा देते हैं। "फिरहिं रामु सीता मैं हारी" प्रण के साथ अंगद का पैर जमाना विशेषरूप से

महत्वपूर्ण बन जाता है। सम्पूर्ण सभा हार मान जाती है। कोई सभासद अंगद के पैर को हटा नहीं पाता। अन्त में रावण स्वयं उठता है तथा अंगद का पैर पकड़कर हटाना चाहता है। अंगद प्रत्युत्पन्नमति का परिचय देते हुए कह उठते हैं—

"मेरे पैर पकड़ने से तेरा उद्धार न होगा। हे दुष्ट, तू जाकर राम के चरण पकड़ प्रभु से क्षमायाचना माँग।"

इस तिरस्कारपूर्ण उत्तर को सुनकर रावण का लज्जित हो जाना स्वाभाविक था। फिर वह अपनी सभा का सभापतित्व कर रहा था तब तो उसका यह कार्य उस के लिए और भी लज्जा का कारण बन गया। अतएव श्रीहत होकर सिंहासन पर जा बैठा।

रावण की अनुभूति की ओर कवि निम्नलिखित रूप में संकेतमात्र करके रह जाता है—

"भयउ तेजहत श्री सब गई, मध्य दिवस जिमि ससि सोहई।
सिंहासन बैठेउ सिर नाई, मानहुँ संपति सकल गवाँई।"

पराजय के दो प्रसंग उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं किन्तु इसमें भी करुणरस का परिपाक न हो सका—पक्षमें सुग्रीवपराजय, विपक्ष में मेघनादपराजय। इन दोनों प्रसंगों में करुण के स्थान पर अपमान और लज्जा का ही प्रकटीकरण होता है। सुग्रीव पराजय में सुग्रीव राम से अन्य कोई प्रबंध करने की प्रार्थना करते हुए दिखलाई देते हैं—

"मैं जो कहा रघुवीर कृपाला,
बंधु न होइ मोर यह काला।"

मेघनाद रावण के समक्ष विजयगर्वोक्ति करके युद्ध के लिये प्रस्थान करता है। इसीलिये अपनी पराजय पर वह लज्जित दिखलाई देता है—

"मेघनाद कै मुरछा जागी। पितहि बिलोकि लाज अति लागी।"

बन्धन के दो प्रसंग मानस में आये हैं—

१—हनुमान् बन्धन, २—रामबन्धन (नागपाश द्वारा)। इन दोनों ही प्रसंगों में बन्धन करुण की अभिव्यक्ति नहीं कर पाते।

१—हनुमान "कीन्ह चहउँ निज प्रभु काजा" की धुन में मस्त हैं। इसलिए उन्हें "कछु बाँधे कइ लाजा" कैसे हो सकती है! इस प्रकार यह प्रसंग करुण के अन्तर्गत ही नहीं आता।

२—"व्यालपास बस भए खरारी" कहकर गोस्वामीजी प्रभु की शक्ति एवं स्वेच्छा का उल्लेख करते हैं। इस प्रकार करुण का प्रश्न ही नहीं उठता।

वध के प्रसंग रावण की शोकानुभूति के अन्तर्गत आ चुके हैं। यहाँ पृथक्

विवेचन की आवश्यकता नहीं है। वध के निम्नलिखित दो प्रसंग आये हैं—

१—अक्षयवध

२—मेघनादवध

धर्म अपघात एवं शाप—धर्म अपघातगत प्रसंगों में परिताप, प्रायश्चित्त तथा आर्त्त निवेदन की भावनाओं का प्रकटीकरण हुआ है। करुण रस की अभिव्यक्ति के उपर्युक्त स्थलों की ओर संकेत करते हुए इन प्रसंगों में कवि की दृष्टि शोकानुभूति की अभिव्यक्ति की ओर इतनी नहीं रही है जितनी इन कथाप्रसंगों द्वारा सगुण की प्रतिष्ठा, गर्वनिवारण, भावीप्रबल की ओर है।

सती-संदेह—निर्गुण ब्रह्म की आस्था में सती को विश्वास नहीं होता कि—

"ब्रह्म जो व्यापक विरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत वेद।"

तथा शंका होती है कि—"खोजइ सोकि अग्य इव नारी।"

इस शंका-समाधान के लिए सती सीता का रूप धारण करके परीक्षा लेने के लिए विवश हो जाती हैं तथा इस परीक्षा के फलस्वरूप उनको घोर परिताप भोगना पड़ता है। उनसे निम्नलिखित दो अपराध बन पड़े थे—

१. रघुपति का अपमान किया।

२. पति वचन मृषा करि जाना।

इन दोनों घोर अपराधों का विचार सती के लिए दारुण बन गया। उधर इस सम्पूर्ण प्रसंग को जानकर महादेव जी स्वयं असमंजस में पड़ गए। वह सोचने लगे—

"जौ अब करउँ सती सन प्रीती,
मिटइ भगति पथु होइ अनीती।"

इसके साथ ही महादेवजी संकल्प कर लेते है—

"एहि तन सतिहि भेंट मोहि नाहीं।"

इस तीसरी आपत्ति के साथ सती की वेदना असह्य बन गई। उनकी आत्म-ग्लानि उनके जी को जलाने लगी—

"निज अघ समुझि न कछु कह जाई,
तपइ अवाँ इव उर अधिकाई।"

विवश होकर सती ने पिता के घर जाने का विचार किया जिससे कुछ दिन कट जायँ किन्तु वहाँ पर सती को संतोष न मिला। सती के लिए एक और असह्य आपत्ति आई तथा उनका घोर परिताप उनके आत्मघात का कारण बन गया। गोस्वामीजी इस कार्य की पुष्टि करते हुए कहते हैं, ठीक है—

"जद्यपि जग दारुन दुख नाना,
सबतें कठिन जाति अवमाना।"

इस प्रसंग में गोस्वामीजी ने परितापगत शोक से संतप्त प्राणी की मानसिक विक्षुब्ध दशा का चरम उत्कर्ष दिखलाया है जिस स्थिति में प्राणी अपने आत्मघात में ही अपना त्राण समझता है। इस प्रसंग द्वारा साथ ही गोस्वामीजी ने सगुण की इस रूप में प्रतिष्ठा की है कि इस सम्बन्ध में शंका करने के घातक परिणामों को सोचकर कोई शंका करने का साहस ही न कर सके।

नारद मोह—भक्तगर्वनिवारण की मूलकथा नारद मोह प्रसंग के अन्तर्गत प्रकट होती है। भगवान भक्त के अहंकार को दूर करने के लिए हरिमायारचित राजकुमारी के स्वयंवर की योजना करते हैं। इस योजना का रहस्य नारद नहीं जान पाते तथा प्रभु को शाप तक दे डालते हैं। किन्तु—"जब हरि माया दूरि निवारी, नहि तहँ रमा न राजकुमारी।" तथ्य स्पष्ट होता है तो नारद आत्मग्लानि में विकल हो जाते हैं, परमकातर हो उठते हैं। उस समय उनका आर्त्त निवेदन अति मर्मस्पर्शी बन जाता है—

"तब मुनि अति सभीत हरि चरना।
गहे पाहि प्रनतारित हरना।
मृषा होउ मम शाप कृपाला।
. .... ••• ..
मैं दुर्वचन कहे बहुतेरे।
कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे।"

प्रतापभानु नरेश आख्यान—एक षड्यन्त्र कथा है। राजा पूर्णतया निर्दोष है किन्तु परिस्थितिवश उसको ब्राह्मणों के घोर शाप का दुष्परिणाम भोगना पड़ता है। "बिप्रवृंद उठि-उठि गृह जाहू, है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू", यह आकाश-वाणी ब्रह्मणों को धर्म-अपघात से बचा देती है। "ईश्वर राखा धर्म हमारा" कहकर ब्राह्मण आपत्तिमुक्तजन्य संतोष प्राप्त करते हैं किन्तु यह प्रवंचना उनके लिये असह्य हो जाती है तथा वे राजा को घोर शाप दे डालते हैं—

"संवत् मध्य नास तव होऊ।"

निर्दोष राजा इस घोर शाप को सुनकर अति विकल हो जाता है तथा मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ता है। जब इस सम्पूर्ण षड्यन्त्र का पता लगता है तो शाप-दाता तथा शापित दोनों व्यक्तियों को दुःख होता है। किन्तु गोस्वामीजी की दृष्टि इस शोकानुभूति की ओर नहीं थी। वह कदाचित् "भावी प्रबल" सिद्ध करना चाहते थे तथा चाहते थे उन लोगों के लिये एक शास्त्रीय उत्तर खोज लेना जो शुभ कर्मों के

करते हुए भी घोर यातनाओं को सहने के लिये विवश हो जाते हैं। इसीलिये कवि ने इस स्थल पर शापित अथवा शापदाता की शोकानुभूति की अभिव्यक्ति की विशेष चिंता न की।

शाप-कथाएँ—निम्नलिखित शाप-कथाएँ मानस में प्रकट हुई हैं—१. तापस अन्ध शाप, २. शिव शाप और ३. लोमश शाप।

इन शाप-कथाओं में भी करुणरस की अभिव्यक्ति संभव न हो सकी। इन शाप-कथाओं के द्वारा मूलरूप में कवि निम्नलिखित तथ्यों की पुष्टि करना चाहता है—

१. दशरथ का पुत्रवियोग में मरण।
२. गुरु-अवज्ञा का दारुण परिणाम तथा "गुरुकर कोमल सील सुभाऊ।"
३. भक्तिमार्ग में वाचाल की दशा।

इन कथाओं का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है—

तापस अन्ध शाप—इस कथा का महाराज दशरथ को मृत्यु शय्या पर स्मरण होता है। मूल रूप में यह प्रसंग मानस में प्रकट नहीं हुआ। पुत्रवियोग में छटपटाते हुए अन्धतापसयुग्म का करुणापूर्ण चित्र महाराज की निर्वाणोन्मुख दशा में घातक सिद्ध होता है तथा इस चित्र के साथ उनका वह शाप "पुत्रवियोग में प्राण त्याग करो" महाराज की अन्तिम श्वासों को गतिशील बना देता है तथा महाराज सदा के लिये आँखे बन्द कर लेते हैं।

काकभुशुण्डि के लिये शिव-शाप—काकभुशुण्डि द्वारा गुरु-अवज्ञा को देखकर यद्यपि गुरु कुछ नहीं कहते तथापि शिवजी इस अनीति को सहन नहीं कर पाते तथा शाप दे डालते हैं—"सर्प हो जा"। इस घोर शाप को सुनकर गुरुजी परम विकल हो जाते हैं तथा हा-हाकार करने लगते हैं। अपने शिष्य का अहित उनकी वेदना का कारण बन जाता है। वह अति विनय कर शापशमन की व्यवस्था कराते हैं। इस प्रकार इस सम्पूर्ण प्रसंग में गुरु के उदार चरित्र एवं कोमल स्वभाव का वर्णन है। शापित काक-भुशुण्डिजी की किसी अनुभूति के दर्शन भी नहीं होते। उनकी वेदना निम्नलिखित परिताप में दृष्टव्य है—

"एक सूल मोहि बिसर न काऊ,
गुरुकर कोमल सील सुभाऊ।"

लोमश-शाप—काकभुशुण्डिजी की तर्कबुद्धि के कारण दुःखी होकर लोमश ऋषि भुण्डि जी को "काग हो जाने" का शाप दे डालते हैं। काकभुशुण्डिजी इस अवसर पर सहनशीलता का परिचय देते हैं। उनकी "महत सीलता" तथा "रामचरन विश्वास बिसेखी" को देखकर लोमश ऋषि को व्यर्थ शाप देने का परिताप होता है। शोकानुभूति के अन्तर्गत प्रकटीकरण नहीं हो पाता। ऋषि अविलम्ब भुशुण्डिजी को दूसरे रूप में कृतार्थ कर संतुष्ट कर देते हैं। वह उनको राम मंत्र दे देते हैं

और इस प्रकार शाप की कटुता समाप्त हो जाती है[1]।

क्लेश एवं दुःखप्राप्ति—क्लेश एवं दुःखप्राप्ति के प्रसंग तुलसीदासजी की स्वानुभूति के अन्तर्गत कवितावली तथा बाहुक में प्रकट हुए हैं। तुलसीदासजी बाहु-पीड़ा तथा संभवतः महामारी से पीड़ित हुए थे। उन्होंने हनुमानजी तथा शिवजी से क्लेश एवं दुःख मुक्ति की आर्त्त प्रार्थना की "परन्तु जान पड़ता है कि रोग का शमन नहीं हुआ[2]।"

तुलसी की आर्त्त प्रार्थना

अ—"अधिभूत वेदन बिषम होत, भूतनाथ,
तुलसी बिकल, पाहि पचत कुपीर हौं।
मारिये तो अनायास कासीबास खास फल,
ज्याइये तौ कृपा करि निरुज सरीर हौं।"
—(कवि० १६६)

आ—"रोग भयो भूत-सो, कुसूत भयो तुलसी को,
भूतनाथ, पाहि पदपंकज गहतु हौं।
....
मारिये तो मागी मीचु सूधियै कहतु हौं।"
—(कवि० १६७)

इस आर्त्त प्रार्थना में तुलसीदासजी की वेदना "ताना मारती हुई" दिखलाई देती है—"मारिये तौ अनायास" तथा "मारिये तो मागी मीचु" द्वारा मृत्यु की याचना तुलसीदासजी की घोर वेदना पर प्रकाश डालती है। दारुण वेदना में मृत्यु की याचना अति स्वाभाविक होती है।

---

१. शाप की इतर दो कथाएँ निम्नलिखित हैं—
अ—नारदका हरगण को शाप।
आ—शिव का कामदहन।
हरगण अपना वास्तविक परिचय देकर तथा अनुनय-विनय कर शाप-अनुग्रह प्राप्त कर लेते हैं तथा शापजन्य शोकानुभूति का प्रकटीकरण संभव नहीं हो पाता। कामदहन प्रसंग में रतिविलाप—इष्ट-नाश के अन्तर्गत आ जाता है तथा शोकानुभूति प्रकट करता है—"पतिगति सुनत रति मुरछित भई" तथा "रोदति बदति बहुभाँति संकर पहिं गई" किन्तु शंकरजी के पास पहुँचकर उसकी शोकानुभूति प्रार्थना तथा विनय में परिवर्तित हो जाती है तथा वह वरदान पाकर शान्त हो जाती है।

२. रामचन्द्र शुक्ल—तुलसीदास, पृष्ठ १५६

सीता-वनवास

गोस्वामी तुलसीदासजी ने इस प्रसंग का समावेश रामचरितमानस में नहीं किया है। लवकुशकाण्ड के नाम से अष्टमकाण्ड की रचना जो कुछ प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित रामचरितमानस के कतिपय संस्करणों में समाविष्ट की गई है, प्रक्षिप्त अंश मानी जाती है।

गीतावली में अवश्य गोस्वामीजी ने इस प्रसंग का उल्लेख किया है। इस प्रसंग की मर्मस्पर्शी प्रकृति से कलामर्मज्ञ गोस्वामीजी भली-भाँति परिचित थे। इसीलिए इस प्रसंग की चर्चा से पूर्व उन्होंने राम-सीता के सहज स्नेह का दिग्दर्शन कराया है—

"राम-सीय-सनेह बसत अगम सुकवि सकाहिं।
राम-सीय-रहस्य तुलसी कहत राम-कृपाहिं।"

सीता के संबंध में जनसमाज में फैली चर्चा को दूतों से सुनकर भगवान् राम ने महारानी जी से उनकी दोहद जानने की इच्छा प्रकट की। सहज संकोच के साथ सीता ने अपनी वही इच्छा प्रकट की जो तत्कालीन परिस्थितियों में राजा राम को अभीष्ट थी।

"तीय-तनय समेत तापस पूजिहौं बन जाइ।"

भगवान् राम ने इसको "भावी—विवस सकल सहाइ" समझकर संतोष किया। इस बहाने लोकमत के समर्थन में सीता-निर्वासन की योजना बनाई गई और लक्ष्मण को आदेश हुआ कि—"बालमीकि मुनीस आश्रम आइयहु पहुँचाइ।"

लक्ष्मण-जैसे आज्ञकारी सेवक अविलंब आज्ञापालन के लिए चल दिए। भोली-भाली सीता को इस प्रयाण में अपनी अभिषित रुचि की पूर्ति के साथ प्रभु की कर्त्तव्य-परायणता की पूर्ति का भी भान हो चला था किन्तु उन्होंने धैर्य धारण किया और शान्तिपूर्वक लक्ष्मण के साथ वाल्मीकि के आश्रम को चल दीं।

जब भावीदेवर आश्रम पहुँचे तो महर्षि को स्थिति का ज्ञान होने में देर न लगी क्योंकि उन्होंने देखा कि—"व्याकुल लषन गरत गलानि।"

साथ ही सद्गुणधाम प्रभु के इस प्रकार के कार्य को देखकर उनको खेद भी हुआ—"राम सदगुन-धाम परिमिति भई कछुक मलानि।"

महारानीजी को अब स्पष्ट हो चुका था कि उनको ऋषि आश्रम भेजने का क्या तात्पर्य था? लक्ष्मण की विकलता, वेदना तथा ग्लानि ने महारानीजी की वेदना को भी मुखरित कर दिया—

"दीनबन्धु दयालु देवर देखि अति अकुलानि।
कहति वचन उदास तुलसीदास त्रिभुवनरानि।"

महारानीजी की शब्दावली में व्यंग्य, वेदना, पीड़ा, विवशता, कर्त्तव्यपरायणता तथा लोकमर्यादा के प्रति मर्मस्पर्शी कटाक्ष आदि का अनुपम समावेश किया गया है। कवि की उत्कृष्ट कला के यहाँ साकार दर्शन होते हैं। इस मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति ने स्वयं महर्षि को भी द्रवीभूत कर दिया और उनके नेत्र भी सजल हो गये। करुण रस की इतनी सुन्दर अभिव्यक्ति स्यात् किसी अन्य कलाकार से संभव न थी। मनोविज्ञान और रस के समन्वय का ऐसा अनुपम एवं उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करना गोस्वामी जैसे मनोविज्ञान तथा रस के पंडित की लेखनी का ही काम था—

"तौलौं बलि, आपुही कीबी विनय समुझि सुधारि।
जौलौं हौं सिखि लेउँ बन रिषि-रीति बसि दिनचारि।
तापसी कहि कहा पठवति नृपनि को मनुहारि।
बहुरि तिहि बिधि आइ कहिहै साधु कोउ हितकारि।
लषनलाल कृपाल निपटहिं डारिबी न बिसारि।
सुनत सीता-बचन मोचत सकल लोचन-बारि।
बालमीकि न सके तुलसी सो सनेह सँभारि॥"

पद का एक-एक शब्द हृदयतंत्री को झकझोर डालता है। विशेषता यह है कि पद में उन सब तथ्यों के होते हुए भी जिनसे अप्रिय, कटु एवं घृणोत्पादक अनुभूतियों का सृजन होता, अति मार्मिक रूप में करुणरस की विवश एवं असहाय परिस्थितियों का ही उद्घाटन हुआ है। राम के प्रति सामाजिक का क्रोध जाग्रत नहीं होता, उसके हृदय में उनके प्रति घृणा का भी उदय नहीं होता, दूसरी ओर सीता कहने में कुछ कसर भी नहीं उठा रखतीं। इस मार को भुक्तभोगी लक्ष्मण ही जान सकते थे जो इन शब्दों को सुनकर तिलमिला उठे, व्याकुल होकर विलख उठे, अपने भाग्य तथा जीवन को कोसने लगे किन्तु उत्तर में एक शब्द न कह सके—

"सुनि व्याकुल भए उतरु कछु कह्यो न जाइ।
जानि जिय विधि बाम दीन्हों मोहि सरुष सजाइ।"

उनको वास्तव में यह सजा मिली थी। एक ओर सीता के प्रति अपार श्रद्धा थी तो दूसरी ओर थी प्रभु की कठोर आज्ञा। इसीलिए तो बेचारे बिलखकर रह गए। बार-बार महारानीजी के पैरों में पड़कर मौन ही वापिस चल दिये—

"गौने मौन ही बारहि बार परि-परि पाय।"

परिताप, ग्लानि, पश्चात्ताप और विधाता की वामता के कटु परिणाम पर ग्लानि, ये थे लक्ष्मण के संश्लिष्ट मनोभाव जिनका कवि ने सूक्ष्म अध्ययन किया।

वह बेचारे सोचते थे कि उन्हीं के कारण पहले सीताहरण हुआ था, उसकी सजा उनको शक्ति लगकर मिली किन्तु हनुमान ने संजीवनी लाकर उनको फिर जीवित

कर दिया। उस जीवन का अब यह सुफल रहा कि वे ही सीता को निर्वासित करने आये। विधि की कैसी विडम्बना है !

"असन-बिनु बन, बरभ बिनु रन, बच्यो कठिन कुघाय।
दुसह साँसति सहन को हनुमान ज्यायो जाय।
हेतु हौं सियहरन को तब, अबहु भयो सहाय।
... ...
घोर हृदय कठोर करतब सृज्यौ हौं विधि बाम।"

संक्षेपतः कहा जा सकता है कि महाकवि तुलसीदास ने रामकथा में करुणरस का जो चित्रण किया उसमें निम्नलिखित विशेषताएं प्रकट हुई हैं—

विषयगत—१. कथा का सविस्तर वर्णन किया गया है। कथा में कतिपय ऐसे प्रसंगों की भी योजना की गई है जिनका कथा से सीधा कोई सम्बन्ध नहीं है। केवल "भावी प्रबल" के सिद्धान्त की पुष्टि के लिये उनका उल्लेख हुआ है। साथ ही करुणरस के प्रसंगों में गम्भीरता लाने के लिए कथा में कुछ हेरफेर भी किया गया है।

२. करुणरस की अभिव्यक्ति प्रायः सभी आलंबनों के रूप में हुई है। यह अवश्य है कि "प्रिय बन्धुबान्धव का मरण अथवा वियोग एवं अनिष्ट प्राप्ति" के अन्तर्गत प्रकट प्रसंगों को ही विशेषता दी गयी है।

३. विपक्षीपात्रों की शोकानुभूति के वर्णन में कवि की उदासीनता प्रतिलक्षित होती है। कवि को विश्वास है कि प्रसंगों के साथ सामाजिक की अनुभूति का तादात्म्य न हो सकेगा।

शैली एवं अभिव्यक्तिगत—१. दोहा-चौपाई शैली में ही विषय का चित्रण हुआ है। द्वन्द्वात्मक स्थिति में छन्द का प्रयोग किया गया है। गीतावली में पदों का प्रयोग हुआ है जिनमें करुण की मनोविज्ञानाश्रित उत्कृष्ट अभिव्यक्ति संभव हो सकी है।

२. शोकानुभूति के अन्तर्गत "अवर्णनीयता" का उल्लेख हुआ है। यह उल्लेख कवि की असमर्थता के स्थान में अनुभूति की गंभीरता को ही प्रकट करता है।

३. शोकानुभूति के वर्णन को सुग्राह्य बनाने के लिए प्रसंग के अनुकूल पौराणिक प्रतीकों के उदाहरण दिए गए हैं तथा समकक्ष दारुण अनुभूतियों की उपमा दी गई है।

४ कवि की दृष्टि विशेषरूप से अभिव्यक्ति के मनोवैज्ञानिक पक्ष को चित्रित करने की ओर रही है जिसके फलस्वरूप करुणरस की अलौकिक एवं उत्कृष्ट अभिव्यक्ति संभव हो सकी है।

५. आत्मग्लानि, परिताप तथा आत्मनिन्दा का विकसित रूप शपथग्रहण तथा पापगति-याचना में प्रकट हुआ है। प्रायश्चित्त के अन्तर्गत आत्मोत्सर्ग में प्रसंगों की भी योजना की गई है।

६. करुणरस की अनुभूति के लिए आश्रय की नितांत विवशता तथा अति असहायावस्था को ही प्रधानता दी गई है।

७. विरह-वेदना की अनुभूति चराचर जगत् में व्याप्त दिखलाई गई है। पशु-पक्षियों की आत्मीयता का प्रकटीकरण किया गया है। शोकसंतप्त आश्रम के साथ चराचर जगत शोकाभिभूत दिखलाया गया है।

८. विशेष अनुभावों की उद्भावना की गई है।

९. कतिपय स्थलों पर व्यंग्य एवं मर्मस्पर्शी कटाक्षों के अन्तर्गत करुणरस की अनुभूति अति वेदनापूर्ण बन गई है।

१०. अशुभ समाचारों की आशंका एवं भय का विशेष दृश्य उपस्थित किया गया है। एक ओर आश्रम को समाचार पूछने का साहस नहीं होता तो दूसरी ओर आलंबन को समाचार-निवेदन का साहस नहीं होता, करुणरस की मौनगत विशेष अनुभूति का इस रूप में सुन्दर दिग्दर्शन कराया गया है।

११. मनोभावों एवं बाह्य-व्यंजकों की सुन्दर योजना की गई है।

१२. कर्त्तव्यपरायणता तथा मर्यादा की प्रतिष्ठा कवि का लक्ष्य रहा है। शोकानुभूति के अन्तर्गत विवेक एवं विश्लेषण की प्रवृत्ति लुप्तप्रयः प्रतीत होती है किन्तु आदर्शनिष्ठा से अभिभूत मानस कर्त्तव्यपरायणता से विमुख नहीं दिखलाया गया है।

१३. मानस की सहज अनुभूतियों तथा कल्पनाओं का उद्घाटन किया गया है।

१४. कतिपय समर्थ पात्रों की शोकानुभूति का क्रम निम्नलिखित रूप में प्रकट होता हैं—

शोक-रोष-शोक—इस रूप में प्रथम शोक के अन्तर्गत आलंबन की क्षति दृष्टिगत रहती है तथा दूसरी स्थिति में रोषजन्य ग्लानि एवं क्लेश होता है, जो शोक का कारण बनता है।

१५. शोकानुभूति के अन्तर्गत अपने प्रियजनों की महत्ता और लघुता की तुलना की गई है तथा एक के नाश में दूसरे की निन्दा तथा उपेक्षा की गई है जो अप्रिय अनुभव होती है।

१६. शोकानुभूति में मृत्यु की कामना की गई है। शोक की चरम अवस्था में आत्मघात के प्रयत्न भी प्रतिलक्षित हैं)।

१७. व्याजनिन्दा एवं व्यंग्य के अन्तर्गत शोक की मर्मभेदी अनुभूति प्रकट हुई है।

: ६ :

केशव की रामकथा में करुण रस

कवि का दृष्टिकोण—ग्रन्थ रचना का कारण बताते हुए कवि ने अपने एक स्वप्न का उल्लेख किया है—

"बालमीकि मुनि स्वप्न महँ दीन्हो दर्शन चारु।
तिनसों केशव यों कह्यो "क्यों पाऊँ सुख सारु ॥"

"मुनि "रामदेव गाइये" तथा "देव लोक पाइये" उपदेश करते हैं तथा उसी समय से केशव के "रामचन्द्र जू इष्ट" हो जाते हैं तथा वह संकल्प कर लेते हैं—

"तिन के गुण कहिहौं सब सुख लहिहौं पाप पुरातन भागै।"

पुरातन पापों से मुक्ति तथा सब सुखों की प्राप्ति के लिए प्रभुगुणगान एक अमोघ साधन है। प्रभुगुणगान से मानव-मानस का परिष्कार हो जाता है इस मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त से आचार्य जी परिचित थे और इसी दृष्टिकोण को लेकर उन्होंने अपना ग्रन्थ प्रारम्भ किया—

"जागत जाकी ज्योति जग एक रूप स्वच्छन्द।
रामचन्द्र की चन्द्रिका वर्णत हौं बहु छन्द ॥"

इस प्राक्कथन में कवि के ध्येय रामचन्द्र जी की कथा-वर्णन के साथ "बहु छन्द" की विशेषता और आ गई जिसके द्वारा कवि की कलारुचि का संकेत ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही हो जाता है।

लोक के सामने कवि जिस रामचरित को "रामचन्द्रिका" के रूप में उपस्थति करता है तथा जिसको सुनने का फल" ताहि पुत्र कलत्र संपति देत श्रीरघुराय" बताता है वह रामचरित तुलसी के "रामचरित" की भाँति सहज, सुपाच्य तथा स्वान्तः सुखाय नहीं है अपितु वह विद्वज्जन-हियहार, श्रमसाध्य कलाकृति है जिसको जनसाधारण न समझ सकता है और न प्रशंसा कर सकता है।

कवि का व्यक्तित्व—कवि को अपने पाण्डित्य, कला निपुणता तथा अपने कुल और वंश का गर्व है। उनके पिता पितामह संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। यही नहीं

उनके कुल के दास तक संस्कृत बोलते थे । भाषा बोलना नहीं जानते थे । अतएव केशवदास की भाषा में कविता करने का अपार दुःख है—

"भाषा बोलि न जानहीं जिनके कुल के दास ।
भाषा कवि यों मन्दमति, तेहि कुल केशवदास ॥"

रामचन्द्रिका के प्रारम्भ में अपना परिचय देते हुए भी कवि ने इसी तथ्य का ओर संकेत किया है—

"उपजयों तेहि कुल मंदमति शठकवि केशवदास ।
रामचन्द्र की चन्द्रिका भाषा करी प्रकास ॥"

कवि की इसी आत्मग्लानि ने कवि को पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए विवश कर दिया । कल्पना की ऊँची उड़ान, अलंकारों की भरमार, वस्तुवर्णन की विशदता तथा छन्दों की बहुलता, संस्कृत शब्द ही नहीं प्रत्युत संस्कृत के समस्त पदों तक के प्रयोग द्वारा कला एवं पाण्डित्य का ही प्रकाशन कवि रामचन्द्रिका में कर सका । रामकथा जिसको प्रमुख उद्देश्य मानकर ग्रन्थारम्भ हुआ था, गौण रूप में कला एवं पाण्डित्य की अनुगामिनी होकर ही रह सकी ।

रामचन्द्रिका में कथावस्तु—रामचन्द्रिका में कथावस्तु विशेष सँक्षिप्त रूप में प्रकट हुई है । ग्रन्थ का कलेवर महाकव्य के लिए अपेक्षित विविध वर्णनों से ओतप्रोत है । मूलकथा वस्तुतः इतनी संक्षिप्त हो गई है कि जिससे भक्त की कथा-पिपासा शान्त नहीं हो पाती तथा इसी कारण भक्तहृदय रामचन्द्रिका के प्रति इतनी रुचि प्रकट नही कर पाता जितनी रुचि तुलसी के मानस के प्रति की जाती है ।

रामकथा के प्रारम्भ में अवतार आदि होने के विभिन्न कारणों की ओर कवि ने ध्यान नहीं दिया है । कथा मूलतः विश्वामित्र आगमन प्रसंग से प्रारम्भ होती है । आगे चलकर ग्यारहवें प्रकाश में अगस्त्य के मुंह से अवतार के कारणों की ओर कवि ने संकेत किया है ।

कथा को संक्षिप्त करने की प्रवृत्ति का विशेष प्रभाव करुणरस के स्थलों पर पड़ा है । प्रायः स्थल संकेतमात्र रूप में चलते कर दिए गए हैं । इन प्रसंगों पर तुलसीदास जी पर्याप्त प्रकाश डाल चुके थे तथा पुनः उन्हीं प्रसंगों पर लिखना पिष्टपेषण होता अथवा महाकाव्य के लिए करुणरस की शास्त्रीय निषेधात्मक मर्यादा के कारण कवि ने इन प्रसंगों को इस रूप में रखा । यह भी संभव है कि वह अपने "रामचन्द्र जू इष्ट" तथा उनसे संबंधित अन्य श्रेष्ठ पात्रों द्वारा साधारण मनुष्यों की भाँति करुण की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति न कराना चाहते हों । इस तथ्य की ओर लक्ष्मण-शक्ति प्रसंग में संकेत किया गया है । राम-विलाप से पूर्व कवि निम्न टिप्पणी दे देना आवश्यक समझता है—

"यद्यपि है अति निर्गुणताई, मानुष देह धरे रघुराई ।"

कुछ हो इन स्थलों पर कवि की यह उपेक्षा रस की दृष्टि से विशेष अखरती है।

करुण रस के प्रसंगों में शैली—रामचन्द्रिका में कवि ने पिंगलशास्त्र की पूरी रूपरेखा दी है। प्रत्येक प्रकार का संभव छंद ही नहीं प्रत्युत कुछ नवीन छंदों को भी बनाकर उनका कवि ने सुन्दर प्रयोग किया है।

करुणरस के प्रसंगों का अध्ययन करने से प्रकट होता है कि कवि ने छंद-प्रयोग में किसी विशेष क्रम का ध्यान नहीं रखा। कवि की दृष्टि विभिन्न छंदों के प्रयोग की ओर ही थी। उदाहरणतः हनुमान द्वारा भरत की करुणापूर्ण दशा तथा अशोकवाटिका में सीता की करुणापूर्ण दशा का अवलोकन दो विभिन्न छंदों में (चतुष्पदी तथा भुजंगप्रयात में क्रमशः) हुआ है।

अभिव्यक्ति प्रायः दोधक छंद में हुई। उदाहरणतः भरत द्वारा शोकसंतप्त अयोध्या का अवलोकन, चित्रकूट में दशरथनिधन समाचार पर विलाप, लक्ष्मण-शक्ति पर राम-विलाप, लवकुश द्वारा रामदल को हत देखकर सीता का शोक आदि प्रसंग दोधक छंद में ही प्रकट हुए हैं।

अन्य स्थलों पर तारक, चंचरी, तोमर, भुजंगप्रयात, चंचला आदि अनेक छंदों का प्रयोग हुआ है।

छंदों के प्रयोग में कवि की कलाकुशलता के दर्शन होते हैं। एकाक्षरी छंद से लेकर क्रमशः अष्टाक्षरी छंद तक के उदाहरण पहले प्रकाश में ही ८ से लेकर १६ तक प्रयुक्त छंदों में प्रकट हुए हैं। इनके साथ वर्णिक छंदों की भी रामचन्द्रिका में भरमार है।

अलंकारों का प्रयोग—आचार्य केशवदास जी ने छंदों के समान अलंकारों का प्रयोग भी विशेष रूप से किया है। उत्प्रेक्षा, रूपक और परिसंख्या के तो स्थल-स्थल पर दर्शन होते हैं। करुणरस के प्रसंग में उत्प्रेक्षा का विशेष प्रयोग हुआ है। इसके साथ अन्य स्थलों पर संदेह तथा श्लेष का भी प्रयोग हुआ है।

अभिव्यक्ति—अभिव्यक्ति के अन्तर्गत आचार्य जी की अलौकिक कल्पना के उत्कृष्ट उदाहरण प्रकट हुए है। विशद वर्णनों के अन्तर्गत कवि की ऊँची उड़ान के दर्शन होते हैं। करुणरस के मार्मिक प्रसंगों में कवि ने प्रायः मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा मानस के सूक्ष्म तत्वों का उद्‌घाटन किया है। इन स्थलों पर कवि को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। यह अवश्य है कि करुणरस के इन प्रसंगों को सूक्ष्म एवं संक्षिप्त कर देने से रसनिष्पत्ति में व्यवधान पड़ा है किन्तु इसके लिए कवि को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। कवि करुणरस की अभिव्यक्ति न तो करना ही चाहता था और न उसने की है। यह स्थल तो कथा-प्रसंग में बरबस आ पड़ें हैं इसलिए कवि को इनका निर्वाह करने के लिये करुणरस की अभिव्यक्ति करनी पड़ी है जिसमें कवि की उदासीनता के स्पष्ट दर्शन होते है।

रामचन्द्रिका में करुणरस के प्रसंग संक्षेप्त : निम्नलिखित रूप प्रकट हुए हैं—

प्रिय बन्धुबान्धव एवं पुत्रादि का वियोग एवं मरण

१—रामवनगमन—१—विश्वामित्र के साथ रामवनगमन, दशरथ का विषाद।
२—दशरथ मरण।
३—भरत का शोक।
४—भरत की आत्मग्लानि।
५—चित्रकूट में दशरथमरण पर शोक।

२—सीताहरण—१—सीता का करुणक्रन्दन।
२—अशोकवाटिका में सीता की करुण दशा।

३—लक्ष्मण-शक्ति—१—रामविलाप।

४—विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति—१—रावण शोकानुभूति—
अक्षयवध, मेघनादवध, मकराक्षवध।
२—मंदोदरी विलाप।

पराभव, पराजय, वध, बन्धन

१—रावण पराभव—छत्रमुकुटहनन प्रसंग।
२—मंदोदरी पराभव—मखविध्वंस प्रसंग।
३—पराजय—लक्ष्मण पराजय।
४—बन्धन—हनुमान् बन्धन।
नागपाश में रामलक्ष्मण-बन्धन।
५—वध—अक्षय, मेघनाद, एवं रावण वध।
६—विभीषण शरणागति।

५—अन्य प्रसंग—करुणरस की विशेष अनुभूति,
जनकपुर में जनक द्वारा भोजन के लिए निमंत्रण।

रामचन्द्रिका उत्तरार्द्ध—

प्रियबन्धुबान्धव मिलन एवं वियोग—

१—अवधि काल में भरत की करुण दशा।
२—माताओं से मिलन।
३—सीतानिर्वासन।
अ—राम का शोक।
आ—भरत का विषाद।

इ—सीता की आशंका।

ई—लक्ष्मण का शोक।

४—सीता का शोक।

अ—लव के लिए,

आ—रामलक्ष्मण आदि के लिए।

५—राम का शोक,

शत्रुघ्न के मारे जाने पर।

६—भरत की मन-जल्पना।

पराभव— १—राम का सम्पूर्ण सेना को हत देखना।

२—अंगद का गर्व हरण।

करुण की अभिव्यक्ति

प्रियबन्धुबान्धव एव पुत्रादि का वियोग

रामवनगमन—रामवनगमन के अन्तर्गत दो प्रसंग प्रकट हुए हैं—

१—विश्वामित्र के साथ यज्ञ रक्षाहेतु रामवनगमन।

२—रामवनवास।

विश्वामित्र के साथ यज्ञरक्षाहेतु राम के वन-गमन से ही रामचन्द्रिका का प्रारम्भ होता है। विश्वामित्र जी राम की याचना करते हैं तथा बड़े असमंजस के पश्चात् महाराज दशरथ राम को देने के लिए प्रस्तुत होते हैं किन्तु महाराज को राम-वियोग से बड़ा दुःख होता है। दुःखातिरेक मौन को जन्म देता है आचार्य जी इस मनोवैज्ञानिक तथ्य से भली-भाँति परिचित थे। अतएव वह बाह्यव्यंजकों (दोनों नेत्र अश्रुपूर्ण तथा लाल) द्वारा ही करुणापूर्ण परिस्थिति का परिज्ञान करा देते हैं—

"रामचलत नृप के युग लोचन,
बारि भरित भये बारिद लोचन।
पायन परि ऋषि के सजि मौनहिं,
केशव उठि गये भीतर भौनहिं॥"

—(रा० च० १।२७)

यहाँ "सजि मौनहिं, उठि गए भीतर भौनहिं" शब्द आचार्य केशव के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अध्ययन, मानव-मानस की स्वाभाविक गति तथा दुःखी प्राणी के विशेष व्यवहार की ओर संकेत करते हैं। इन गिनेचुने शब्दों द्वारा ही आचार्य जी ने उस गंभीर अनुभूति का परिचय दिया है जो अन्यत्र देखने को नहीं मिल सकती। यह गंभीर अनुभूति आगे आनेवाले "रामवनवास" प्रसंग के लिए यह भी सूचित करती है कि उस परम करुणापूर्ण स्थिति में महाराज दशरथ की क्या दशा होगी ?

रामवनवास के अन्तर्गत इसीलिए दशरथ के प्रलाप आदि के दर्शन नहीं होते।

कैकेयी के वरदान की बात महाराज को किस प्रकार घातक सिद्ध हुई इसका दिग्दर्शन आचार्य जी स्वयं कराते हैं—

"यह बात लगी उर वज्र तूल,
हिय फाट्यो ज्यौं ज्यौं जीरन दुकूल।"

दशरथ-मरण—इसके पश्चात् शीघ्र ही रामचन्द्र जी के वनगमन की सूचना महाराज के कानों में पड़ती है। इस दारुण समाचार का घातक प्रभाव होता है तथा महाराज दशरथ अपनी असहायावस्था में अति आर्त्त एवं दीन होकर प्राण त्याग देते हैं—

"रामचन्द्र धाम तें चले सुने जबै नृपाल!
बात को कहै सुनै सुह्वै गये महा बिहाल!!
ब्रह्मरंध्र फोरि जीव यौं मिल्यो जुलोक जाय!
गेह तूरि ज्यों चकोर चन्द्र में मिलै उड़ाय!!"
—(रा० च० ६/३१)

महाराज दशरथ के शव को अन्त्येष्टि क्रिया के लिए ले जाते समय सम्पूर्ण नगर में हाय-हाय होने लगती है। नगर के सब नर-नारी अन्तिम दर्शनार्थ बाहर निकल आते हैं। सरजूतट पर दाह-संस्कार होता है। इस अवसर पर रानियों समेत भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई बहुत विलाप करते हैं[1]।

यद्यपि कवि का यह वर्णन संक्षिप्त रूप में प्रकट हुआ है तथापि इस वर्णन में दशरथमरणगत शोकाकुल दृश्य को भलीभाँति चित्रित करने की पूर्ण क्षमता है।

भरत का शोक—ननिहाल से भरत वापिस आते हैं तथा अयोध्या की शोकाकुल दशा को देखकर स्तम्भित हो जाते हैं। इस प्रसंग में आचार्य जी ने अति सूक्ष्म निरीक्षण की योजना कर शोकानुभूति को अति मर्मस्पर्शी बना दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि भरत एक-एक वस्तु को देखते फिर रहे है। एक वस्तु को देखने के पश्चात् वह दूसरी वस्तु को देखते हैं और इस प्रकार मानों अपनी शंका का समाधान करते फिरते हैं। आचार्य जी की यह योजना निम्नलिखित रूप में देखी जा सकती है[2]—

---

१. "हाय हाय जहाँ तहाँ सब ह्वै रही सिगरी पुरी,
धाम धाम नृप सुन्दरी प्रगटी सबै जे रही दुरी।
लै गये नृपनाथ को सब लोग श्री सरजू तटी,
राजपत्नि समेत पुत्रनि विप्रलाप गटी रटी॥"—(रा० च० १०/१०)

२. "आनि भरत्थ पुरी अवलोकी। थावर जंगम जीव ससोकी॥
भाट नहीं बिरदावलि साजैं। कुंजर गाजैं न दुंदुभि बाजैं॥
राजसभा न विलोकिय कोऊ। सोकगहे तब सोदर दोऊ॥
मंदिर मातु बिलोकि अकेली। ज्यों बिन वृक्ष विराजति बेली॥"
—(रा० च० १०।१, २)

१—भरत ने नगर देखा—स्थावर, जंगम, जीव सब शोकाकुल थे।
२—भाट देखे—विरदावली नहीं गा रहे थे।
३—हाथी देखे—प्रसन्न न थे, न दुंदुभी बज रही थी।
४—राजसभा देखी—कोई न था।
५—महल देखा—माता अकेली थीं।

नगर की उपर्युक्त दशा को देखकर भरत परम विकल हो उठते हैं। शोक-संतप्त भरत को माता कैकेयी के पास पहुँच कर जब यह ज्ञात होता है कि माता ने यह सब कुछ उनके लिए ही किया है तो वह अति कातर हो जाते हैं। आचार्य जी ने भरत के मानस का अति समीप से अध्ययन किया। उन्होंने देखा कि भरत को इन सबसे अधिक दुःख एवं ग्लानि यही जानकर हुई कि यह सब उनके लिए ही किया गया है। अतएव माता कौशल्या तथा अन्य जन अवश्य ही यह समझते होंगे कि इस कार्य में भरत की सहमति रही होगी। इस विचार से भरत काँप उठते हैं, एक क्षणभर के लिए महाराज के निधनजन्य दुःख को भूल जाते हैं। परम दुःखी होकर वह अविलंब माँ कौशल्या के पास अपनी सफाई देने के लिए पहुँच जाते हैं। एक निर्दोष व्यक्ति के सिर जब इतना भारी दोष मढ़ दिया जाय तो उसकी क्या दशा होगी इस तथ्य से भरत के मन की ग्लानि तथा परिताप का अनुमान लगाया जा सकता है।

मनोविज्ञान के कुशल आचार्य केशवदास जी ने इस प्रसंग में भरत के मन की मनोवैज्ञानिक दशा का वास्तविक परिचय दिया है—

"सुनु मातु भई यह बात अनैसी।
जुकरी सुत-भई विनाशिनि जैसी।।
यह बात भई अब जानत जाके।
द्विज दोष परै सिगरे सिर ताके।।
जिनके रघुनाथ बिरोध बसै जू।
मठधारिन के तिन पाप ग्रसै जू।।
रस राम रस्यो मन नाहिन जाको।
रण में नित होय पराजय ताको।।"

—(रा० च० १०/७,८)

उपर्युक्त विवरण के अन्तर्गत भरत अपनी सत्यता तथा माता के मत से असहमति प्रकट करने के लिए निम्नलिखित घोर पापों के लगने की शपथ लेते हैं—

१—यदि उनकी सहमति हो तो उनको ब्रह्महत्या का पाप लगे।
२—यदि रघुनाथ से उनका विरोध हो तो उनको मठधारियों का पाप लगे।
३—विरोध न सही यदि राम से प्रेम भी न हो उनके प्रति उदासीन भाव हो तो भी रण में सदा पराजय हो।

भरत इस प्रकार इन तीन गतियों का दिग्दर्शन कराकर निम्नलिखित रूप में परम शोक का अनुभव करते हैं—

१—ब्रह्महत्या द्वारा समाज में तिरस्कार जन्य मानसिक शोक।

२—मठधारियों की अधोगतिजन्य शोक[1]।

३—पराजयजन्य घोर ग्लानि एवं शोक।

चित्रकूट प्रसंग—माताओं के साथ भरत चित्रकूट पहुँचते हैं। माताओं से कुशलक्षेम पूछते हुए राम पूछ उठते हैं—

"सुख है पिता तन माइ।"

इस मिलन प्रसंग में विषाद का स्मरण मनोवैज्ञानिक विषम परिस्थिति को जन्म देता है, सारा समाज अविलम्ब शोकग्रस्त हो जाता है। मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म-निरीक्षण के अन्तर्गत कवि ने इस प्रसंग को निम्नलिखित रूप में रखा है—

"तब पुत्र कौ मुख जोइ,
क्रमते उठीं सब रोइ।"

इस रोने के साथ अश्रुप्रवाह के प्रवाह का वर्णन करते हुए कवि अतिशयोक्ति के अन्तर्गत शोकगत प्रबल अनुभूति का दिग्दर्शन कराता है—

"आँसुन सों सब पर्वत धोये।
जड़जंगम को सब जीवहु रोये॥
सिद्ध बधू सिगरी सुन आई।
राजबधू सबई समुझाई॥" —(रा० च० १०/३१)

उपर्युक्त वर्णन में कवि ने मानस की मनोबैज्ञानिक निम्नलिखित प्रवृत्ति की ओर भी संकेत किया है।

जब हम प्रसन्न होते हैं तो सब कुछ सुन्दर, आशामय, प्रकाशमय तथा प्रसन्न दिखलाई देता है किन्तु जब हम दुःखी होते हैं तो संसार भी हमारे साथ रोता हुआ निराशामय, अन्धकारमय तथा अवसन्न दिखलाई देता है।

सीताहरण—सीताहरण के अन्तर्गत सीता का करुणाक्रन्दन त्रसित सीता की बन्धनमुक्ति के लिए करुणपुकार है। इसलिए इस प्रसंग को सीताबन्धन प्रसंग भी कहा जा सकता है। इस करुण पुकार में शोक की मार्मिक अनुभूति हुई है। सीता के मुख से हठात् निम्नलिखित पुकार फूट पड़ती है—

"हा राम, हा रमन, हा रघुनाथ धीर।

---

१. मठधारियों को अन्त में घोर नरक भोगना पड़ता है केशव ने इस विश्वास की प्रतिष्ठा की है। रामचन्द्रिका के उत्तरार्द्ध में श्वान प्रसंग के अन्तर्गत इस विश्वास की ओर संकेत किया है। श्वान अपनी पूर्व जन्म की कथा सुनाता हुआ बताता है कि मठधारी के यहाँ से नाखून में लगे हुए घी को, जो उसके पिता द्वारा उसके लिए दूध ठंडा करते हुए दूध में गिर गया था, पान करने से उसको श्वान-योनि प्राप्त हुई है।

लंकाधिनाथ बश जानहु मोहि बीर ।।
हा पुत्र लक्ष्मरण, छुड़ावहु बेगि मोही।
मार्तण्डवंश यश की सब लाज तोही ।।"

—(रा० च० १२/२१)

इस करुण पुकार के द्वारा सीता यह बता देना चाहती हैं कि वह किस परिस्थिति में हैं। इसको बता देने के पश्चात् वह अपनी करुणदशा का निवेदन करती हुई अविलम्ब बन्धनमुक्ति की याचना करती है। सीता की यह करुण पुकार त्रसित एवं आर्त्त जन की करुण पुकार बन कर जन-जन में व्याप्त हो जाती है और ऐसी पुकार ही प्रभुअवतार का कारण होती है। रामावतार की सार्थकता भी इसी जन पुकार पर आधारित है, यह स्पष्ट है।

रामविरह में विप्रलंभ की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है[1]। प्रकृतिगत उपमानों में सीता की खोज करते हुए सुग्रीवमैत्री का प्रसंग प्रकट होता है तथा हनुमान् सीता-खोज के लिए लंका जाते हैं।

अशोकवाटिका में सीता की करुणदशा का हनुमान अवलोकन करते हैं तथा अन्यपुरुषानुभूति के अन्तर्गत उनकी वेदना अति मर्मस्पर्शी बन जाती है। सीता की करुणापूर्ण दशा का चित्र कवि ने निम्नलिखित रूप में प्रकट किया है—

"धरे एक बेणी मिली मैल सारी।
मृणाली मनों पंकतें काढ़ि डारी ।।
सदा राम नामै रटै दीन बानी।
चहूँ ओर हैं राकसी दुःखदानी ।।"

—(रा० च० १३/५३)

"मृणाली मनो पंकतें काढ़ि डारी" कहकर कवि सीता की मलीन एवं दीन दशा का वास्तविक चित्र उपस्थिति करना चाहता है। इस तथ्य का यथातथ्य भान कराने के लिए कवि विभिन्न उत्प्रेक्षाओं की योजना करता है। एक के पश्चात् दूसरी तथा दूसरी के पश्चात् तीसरी उत्प्रेक्षा देता हुआ कवि मानों हनुमान के चित्त की दशा का सूक्ष्म अध्ययन करता है। हनुमान का दु.खी चित्त किन-किन वस्तुओं की ओर जाता है इसका अवलोकन कवि ने विशेष रूप से किया है। इसको कवि की कला की धुन नहीं कहा जा सकता। यह कवि का मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म अध्ययन है। यह अवश्य है कि कवि का वह अध्ययन एक शास्त्रमर्मज्ञ पण्डित की ऊँची उड़ान है।

कवि ने इस प्रसंग में निम्नलिखित उत्प्रेक्षाओं की योजना की है—

१—"ग्रसी बुद्धि सी चित चिंतानि मानों।"
२—"किन्धौं जीभ दंतावली में बखानों।"

---

१. इसीलिए यहाँ इस प्रसंग को स्थान नहीं दिया गया है।

३—"किधौ घेरि के राहु नारीन लीनी,
कलाचन्द्र की चारु पीयूष भीनी।"
४—"किंधौ जीव की ज्योति मायान लीनी।"
५—अविद्या के मध्य विद्या प्रवीनी।"
६—"मानो संवर-स्त्रीन मे काम-बामा,
हनूमान ऐसी लखी राम रामा।"
(राम० च० १३,५४,५५)

इस अवसर पर रावण आता है तथा सीता रावण के आने के समाचार का सुनकर अति दु:खी हो उठती है। महारानी की वेदना का कवि ने समीप से अध्ययन किया तथा उनकी एक-एक मुद्रा को तूलिका से रंग देकर चित्रित कर डाला—

"तहाँ देवद्वेषी दसग्रीव आयो।
सुन्यो देवि सीता महा दु:ख पायो॥
सबै अंग लै अंगही में दुरायो।
अधोदृष्टि कै अश्रुधारा बहायो॥"—(राम० च० १३ ५६)

इस वर्णन में सीता की कितनी विवशता, कितनी परवशता, कितनी असहायावस्था तथा कितनी करुणा भरी हुई है यह यहाँ विशेषरूप से अवलोकनीय है। कवि ने कहने सुनने के स्थान में बाह्यव्यंजकों द्वारा यथातथ्य चित्रण कर दिया है और वह एक ओर मौन खड़ा देख रहा है कि इस करुणचित्र का पाठक पर क्या प्रभाव पड़ता है। सीता की अश्रुधारा के साथ प्रत्येक सहृदय पाठक की अश्रुधारा वह उठती है जैसे ही उसे इस करुणापूर्ण चित्र के दर्शन हो जाते हैं, यह कहना अत्युक्ति न होगी।

लक्ष्मण-शक्ति पर रामविलाप—इस प्रसंग में भी कवि की दृष्टि मनोवैज्ञानिक तथ्यों के उद्घाटन की ओर रही है। इसीलिए यह प्रसंग अति स्वाभाविक तथा मर्मस्पर्शी बन गया है।

राम धीर एवं वीर हैं। अतएव लक्ष्मण-शक्ति का समाचार पाकर वह धैर्य धारण करते हुए दिखलाई देते हैं। आहत लक्ष्मण उनके सामने लाए जाते हैं तो वह अपना धैर्य खोकर अति सामान्य पुरुष की भाँति विलाप करने लगते हैं—

"लक्ष्मन राम जहीं अवलोक्यो,
नैनन ते न रह्यौ जल रोक्यौ।"—(राम० १७/४३)

इस अश्रुमोचन के साथ राम का प्रलाप भी प्रारम्भ हो जाता है। उनके प्रलाप में मर्मस्पर्शी वेदना के दर्शन होते हैं। मूलरूप में यह वेदना जनसामान्य की अनुभूति के अति समीप होने के कारण जनवेदना का रूप ले लेती है और इसीलिए अति मर्मस्पर्शी बन गई है। कवि के शब्दों में राम का प्रलाप निम्नलिखित रूप में अवलोकनीय है—

"बारक लक्ष्मण मोहि बिलोको, मो कहँ प्राण चले तजि रोको।
हौं सुमिरों गुण केतिक तेरे, सोदर पुत्र सहायक मेरे॥
लोछन वान तुही धनु मेरो, तू बल विक्रम बारक हेरो।

तो बिनु हौं पल प्रान न राखौं, सत्य कहौं कछु भूठ न भाखौं।
मोहि रही इतनी मन शंका, देन न पाई विभीषण लंका।
बोलि उठौ प्रभुको पन पारो, नातरु होत है मो मुख कारो।"
—(राम० च० १७/४४, ४५/४६)

राम के विलाप के अन्तर्गत "बारक लक्ष्मण मोहि बिलोको" तथा "बारक हेरो" शब्द शोकगत सामान्य लालसा का उद्घाटन करते हैं। कवि ने इन शब्दों के द्वारा राम की अनुभूति को असाधारण विशेषता प्रदान की है। राम-लक्ष्मण के गुणों का स्मरण करते है, अपने बलवैभव का उनको आधार समझते हुए विभीषण को लंका देने के प्रण की पूर्ति में आशंका करते हुए अति कातर हो उठते हैं। उनकी बन्धुवियोगजन्य अनुभूति जनजन की अनुभूति के रूप में प्रकट होती है तथा उनके साथ जनजन के कंठ से यही शब्द बरबस निकल पड़ते हैं—

"बारक लक्ष्मण मोहि बिलोको।"

विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति

रावण शोकानुभूति—अक्षयवध तथा कुंभकर्णनिपात के अवसर पर कवि ने रावण की शोकानुभूति का संकेतमात्र वर्णन किया है। अक्षयवध पर "रावण के पछिताने की" और संकेत किया गया है तथा कुंभकर्णनिपात पर "शोक ग्रस्यो" कह कर शोकानुभूति की ओर संकेत किया गया है। इस प्रकार इन प्रसंगों में करुण की अभिव्यक्ति संभव न हो सकी।[1]

मेघनादवध पर रावण की शोकानुभूति प्रकट हुई है। रावण आसन लगाए हुए ध्यानावस्थित बैठा था। इसी समय उसकी "अंजुलि में" मेघनाद का कटा हुआ सिर आ गिरा। रावण मेघनाद के कटे हुए सिर को देखकर हा-हा कार करने लगा, मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। रावण रोता तथा विलाप करता है। सम्पूर्ण महल में कुहराम मच गया है। कोई धैर्य धारण नहीं कर रहा। इस परम शोकानुभूति में रावण का प्रलाप प्रकट होता है। परम निराश होकर उसने प्राणत्याग करने का संकल्प कर लिया है। इसीलिए आज वह विपक्षियों को आनन्द मानने की सुविधा देना चाहता है। उसकी निराशाजन्य विषम व्यथा के दर्शन निम्नलिखित शब्दों में किए जा सकते हैं—

पुत्र-शोक में वह स्वयं आज प्राण दे देगा। अतएव अब उसके शत्रुओं को उस का आतंक एवं भय न रहेगा। आदित्य, जल, पवन, पावक, चन्द्र आदि देवगण आनंद मनावें, किन्नर आनन्दगान गावें, गंधर्व नृत्य करें तथा ब्रह्मरुद्रादि देव इन्द्र का अभि-

---

१. "मारो अक्ष सुना जहीं रावण अति पछिताय,
इन्द्रजीत सों यों कही बानर जियत न जाय॥"—(राम० च० १३/९६)
"दशग्रीव शोक ग्रस्यो लोकहारी
भयो लंक के मध्य आतंक भारी।"—(रा० च० १८/२८)

षेक कर दें, सीता राम को दे दी जाय, लंका विभीषण को देदी जाय तथा ब्राह्मण लोग पुण्यानुष्ठान हेतु यज्ञादि करें।[1]

मंदोदरी विलाप—रावण वध पर मंदोदरी विलाप करती है। इष्टनाशगत इस विलाप में शोक की अभिव्यक्ति की जानी चाहिए थी किन्तु कवि ने इस प्रसंग को अति संक्षिप्त बनाकर एक छंद में ही समाप्त कर दिया है। समय-समय पर मंदोदरी ने रावण को समझाया तथा सीता को वापिस देने के असफल प्रयत्न किए। मंदोदरी के इन प्रयत्नों में कवि ने अप्रत्यक्ष रूप से अपने पति के कार्यों के प्रति मंदोदरी की असहमति तथा राम के प्रति निष्ठा को प्रकट किया है। इसलिए संभवतः इस परम शोकपूर्ण अवसर पर कवि ने मंदोदरी विलाप को गुणकथन रूप में चलता कर दिया।

मंदोदरी निम्नलिखित रूप में विलाप करती है—

"तुमने दिग्पालों को जीत लिया था। तुम्हारे डर से इन्द्र स्वर्ग से भाग गए थे। विरहिणी शची की गर्म श्वासों से आकाश गंगा सूख गई। राजाओं और देवताओं की संपति दिनरात तुम्हारे कारण पीड़ित थी। तीनों लोकों की स्त्रियों की (तुम्हारी सेवा करने के लिए) दो दो 'दण्ड" की पारी बँधी हुई थी। वही तुम आज कुत्तों और सियारों से सेवित भूमि पर पड़े सो रहे हो।"[2]

पराभव पराजय वध बन्धन

पराभव—पराभवगत प्रसंगों में विपक्ष के दो प्रसंग प्रकट हुए हैं—

१—छत्रमुकट हनन में रावण पराभव।

२—रावण मख विध्वंस में मंदोदरी पराभव।

---

१. "देख्यो सिर अंजुलि में जब हीं, हा हा करि भूमि पर्‌यो तबहीं।
आये सुत-सोदर मंत्री तबै, मंदोदरि स्यों तिय आई सबै।
कोलाहल मंदिक माँझि भयो, मानो प्रभु को उड़ि प्राण गयो।
रोवै दसकंठ विलाप करै, कोऊ न कहूँ तन धीर धरै॥"—(राम० च० १६/२)

"आजु आदित्य जल पवन पावक प्रबल चन्द अनन्द मय,
त्रास जग को हरौ, गान किन्नर करौ नृत्य गंधर्व।
....

ब्रह्मरुद्रादि दै देव तिहूँ लोक के राज को जाय अभिषेक इन्द्रहिं करौ।
आजु सिय राम दै, लंक कुलदूषणहिं, यज्ञ को जाय सर्वज्ञ विप्रहु बरौ।"
—(रा० च० १६/३)

२. "जीत लिए दिगपाल, सची की उसासन देवनदी सब सूकी
बासरहू निसि देवन की नरदेवन की रहै संपति हूकी
तीनहु लोकन की तरुनीन की बारी बँधी हुती दंडहि दूकी
सेबित स्वान सिगार सो रावण सोवत सेज परे अब चूकी।" (रा० च०१६/५४)

छत्रमुकुट हनन प्रसंग—छत्रमुकट हनन प्रसंग का संकेतमात्र रूप में वर्णन किया गया है। पराभवगत अनुभूति का संकेत केशवदासजी रावण की पराभवगत लज्जा के अन्तर्गत करते हैं। रावण इस लज्जा के कारण भागकर भवन में घुस जाता है—

"लज्जित खल तजि सुनहु भज्जि भवन में गयो।

लक्ष्मण-प्रभु तत्क्षण गिरि दक्षिण पर सोभयो॥" (राम० च० १५/४९)

रावण की शोकानुभूति के प्रकटीकरण के अभाव में यह प्रसंग अपूर्ण है तथा करुण की अनुभूति नहीं करा पाता। इस प्रसंग से रावण की उन परिस्थितियों पर प्रकाशमात्र पडता है जिनके अन्तर्गत पराभवगत शोकानुभूति संभव हो सकती थी।

मंदोदरी पराभव—रावण के मख-विध्वंस प्रसंग में मंदोदरी पराभव का वर्णन आता है। इस प्रसंग में भी कवि ने मंदोदरी को पराभवगत शोकानुभूति के प्रकट करने का कोई अवसर नहीं दिया। कवि स्वयं ही सम्पूर्ण दृश्य का अवलोकन करता है और उसका तथ्य वर्णन करता है। रावण का मख विध्वंस करने के लिए वानरों के साथ अंगद रावण के साथ महल में घुस आते हैं तथा मंदोदरी को पकड़ लेते हैं। मंदोदरी को घसीटते हुए बाहर ले आते हैं।

"सुआनी गहे केश लंकेशरानी,
गहे बाँह ऐंचैं चहूँ ओर ताको,
मनो हंस लीन्हें मृणाली लता को।" (राम० च० १९/२९)

अंगद द्वारा खींचातानी में मंदोदरी की वेशभूषा अस्तव्यस्त हो जाती है। उसकी कंचुकी फट जाती है तथा उसके कुच दिखलाई देने लगते हैं। इस अवसर पर कवि मंदोदरी के इन कुचों का वर्णन करने लगता है। "लंकरानीन की दीन बानी" जन्य करुणापूर्ण दृश्य में कवि का कुच वर्णन संगत प्रतीत नहीं होता। यह ठीक है कि विपक्ष है तथा विपक्ष का पराभव भी सामाजिक के लिए मनोरंजन का साधन बन सकता है किन्तु इस प्रसंग के लिए यह दृष्टिकोण सनीचीन नहीं प्रतीत होता। इस प्रकार स्पष्ट है कि इस प्रसंग में भी करुण की अभिव्यक्ति संभव न हुई

पराजय प्रसंग—पराजय प्रसंग का संकेत कवि ने रावणलक्ष्मण युद्ध के अन्तर्गत किया है। रावण के युद्ध पाण्डित्य तथा राक्षसी माया के सामने लक्ष्मण हार मान जाते हैं। वह रावण के सिरों को काट काट कर फेंकते है किन्तु उनके

---

१. "छुरी कंठमाला लुरैं हार टूटे, खसैं फूल फैलें लसैं केश छूटे;
फटी कंचुकी किंकिनी चारु छूटी, पुरी काम की सी मनो रुद्र लूटी।"
(राम० च० १९/३०)

"बिना कंचुकी स्वच्छ वक्षोज राजैं,
किधौं सौचहू श्रीफलै सोभ साजैं,
किधौं स्वर्ण के कुंभ लावण्य पूरे।" (राम० च० १९/३१)

स्थान में दूसरे नए सिर उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार लक्ष्मण रावणवध-प्रयत्न में असफल रहते हैं।

इस प्रकार का प्रसंग रामचरितमानस में प्रकट नहीं हुआ। मानस में राम स्वयं ही रावण से युद्ध करते हैं। रावण लक्ष्मण के युद्ध का अवसर ही नहीं आता। यहाँ पर भी यह प्रसंग रावण की अजेय दिखाने के साथ प्रभु की परम शक्ति की ओर ही संकेत करता है। ऐसे अजेय रावण को भी जय कर लिया। साथ ही इस प्रसंग में लक्ष्मण की किसी शोकानुभूति की भी अभिव्यक्ति नहीं हुई है। इस प्रकार इस प्रसंग की योजना प्रभु की परमशक्ति की प्रतिष्ठा के लिए ही जान पड़ती है। हो सकता है मेघनाद वध के फलस्वरूप लक्ष्मण को अपने रणपाण्डित्य का गर्व हो गया हो तथा सर्वगर्वहारी प्रभु ने इस योजना द्वारा लक्ष्मण के गर्व को नष्ट किया हो। भग्नमनोरथ लक्ष्मण अन्त में प्रभु से यही प्रार्थना करते हैं—

"अब टरै न टारौ मरै न मारौ,
हौ हठि हारौ धरि शायक।" (राम० च० १९/५०)

प्रभु के समक्ष प्रकट लक्ष्मण की यह विवशता पराजय एवं पराभवगत शोकानुभूति की ओर संकेतमात्र करती है। करुणरसानुभूति के अन्तर्गत नहीं आ सकती।

बन्धन—रामचन्द्रिका में बंधन के दो प्रसंग प्रकट हुए हैं—

१—हनुमान बन्धन।

२—नागपाश द्वारा रामलक्ष्मण बन्धन।

हनुमान बन्धन प्रसंग अति सुक्ष्म एवं संकेत रूप में प्रकट हुआ है। साथ ही यह बंधन साभिप्राय "मन शुद्ध कै" के अन्तर्गत प्रकट हुआ है। इस प्रकार यह प्रसंग करुणरस के अन्तर्गत नहीं आता।

नागपाश द्वारा राम लक्ष्मण बन्धन—मेघनाद राम लक्ष्मण को नागपाश में बाँध लेता है।

"सायक सो अहिनायक साँध्यो,
सोदर सों रघुनायक बाँध्यो।" (राम० च० १७/९)

इस प्रसंग में भी बन्धनगत राम लक्ष्मण की किसी शोकानुभूति का प्रकटीकरण नहीं होता। इसलिए यह प्रसंग भी करुण की अभिव्यक्ति के अन्तर्गत नहीं आता। इस प्रसंग में कवि ने एक मौलिक योजना करके अति करुणापूर्ण दृश्य का उद्घाटन अवश्य किया है जिसको यहाँ देख लेना अप्रासंगिक न होगा।

नागपाश में बँधे हुए रामलक्ष्मण को रावण सीता को दिखाता है और इस प्रकार सीता की दारुण वेदना एवं परम निराशा को प्रकट करना चाहता है। मूल प्रसंग निम्नलिखित है—

"लै विमान अधिरुढ़ित धायो,
जानकीहिं रघुनाथ दिखायो।" (राम० च० १७/१०)

इस रूप में यह प्रसंग विशेष मर्मस्पर्शी बन जाता है। यद्यपि कवि ने सीता की निराशा तथा परम विकलता का दिग्दर्शन नहीं कराया तथापि यह प्रसंग अपने इस मूल रूप में सीता की दयनीय दशा की ओर संकेत अवश्य करता है। नागपाश में बँधे हुए राम-लक्ष्मण को देखकर एक क्षण के लिए सीता की क्या दशा हो गई होगी, यह तथ्य कवि ने, ऐसा प्रतीत होता है, पाठक की कल्पना के लिए छोड़ दिया है। इस दृश्य में निहित सीता की घोर निराशा, परम वेदना तथा परम विकलता, रावण का उल्लास, उत्साह तथा परम प्रसन्नता आदि सब कुछ एक साथ ही पाठक के मर्म को भेद डालते हैं। यह प्रसंग जितना संक्षिप्त एवं सूक्ष्म दृष्टिगोचर होता है उतना ही यह गंभीर एवं प्रभविष्णु है। गागर में सागर की उक्ति यहाँ अक्षरशः सत्य है।

कवि इस प्रसंग की गंभीरता से परिचित था। इसलिए इस आशंका से कि कहीं इसका प्रभाव घातक न सिद्ध हो जाय, कवि निम्नलिखित टिप्पणी देकर शीघ्र ही इस प्रसंग को सह्य एवं प्रभावहीन बना देता है जिससे सीता एवं सामाजिक की अवरुद्ध श्वासप्रश्वास पुनः साधारण रूप में चलने लगती है तथा एक लम्बी संतोष की साँस के साथ इस प्रसंग का पटाक्षेप हो जाता है।

"पन्नगारि प्रभु पन्नगसाई,
काल-चाल कछु जानि न जाई।" (राम० च० १७/१२)

"पन्नगारि प्रभु" कहकर कवि इस प्रसंग की वास्तविकता का उद्‌घाटन करने के साथ आगे आने वाले बंधनमुक्ति-प्रसंग की ओर संकेत भी कर देता है।

वध—वध के प्रसंग विपक्ष की शोकानुभूति के अन्तर्गत आ चुके हैं। अक्षय-वध, मेघनादवध, कुंभकर्ण, रावणवध विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके सम्बन्ध में यहाँ पृथक् विवेचन की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

विभीषण-शरणागति—रावण सभा में विभीषण का निरादर हुआ—

"सिर माँझ लात पग लागत मार्‌यो,
करि हाय हाय उठि देह सँभार्‌यो।"

और भाई से इस प्रकार निरादृत तथा अति दुःखी हो कर "उर रामचन्द्र जगती पति" जानकर विभीषण प्रभु शरण में आया तथा निम्नलिखित रूप में भगवान् को पुकारने लगा—

"दीनदयाल कहावत केशव हौं अति दीन दशा गहो गाढ़ो।
रावण के अघ ओघ समुद्र में बूड़त हौं बर ही गहि काढ़ो॥
ज्यों गजकी प्रह्लाद की कीरत त्यों ही विभीषण को जस बाढ़ो।
आरत बंधु पुकार सुनौ किन आरत हौं तौ पुकारत ठाढ़ो॥" (रा० च० १५/२४)

"केशव आपु सदा सह्यो दुःख पै दासन देखि सके न दुखारे।
जाको भयो जेहि भाँति जहाँ दुःख त्यों हीं तहाँ तेहि भाँति सँभारे॥
मेरिय बार अबार कहा कहूँ नाहिं न काहू के दोष विचारे।
बूड़त हौं महामोह समुद्र में राखत काहे न राखनहारे॥" (राम च० १५/२५)

विभीषण की इस करुण पुकार में कवि की अन्तरात्मा पुकार उठी है। गज, प्रह्लाद की कीर्ति के उदाहरण दिए, आरतबंधु, दीनदयाल, राखनहारे आदि विरदों के द्वारा प्रभु की कृपा-याचना की तथा "मेरिय बार अबार कहा" एवं "राखत काहे न राखनहारे" कहकर प्रभुहृदय को द्रवित कर लिया। प्रभु ने प्रसन्न होकर "लंकेश आउ चिर जीवहि लंका धाम, राजा कहाउ जग जौ लगि राम नाम" कहा और विभीषण के लोक और परलोक दोनों को सुधार दिया। विभीषण की शरणागति के साथ जनजन की शरणागति का प्रसंग प्रकट हो जाता है तथा विभीषण की करुण पुकार के साथ जनपुकार बार-बार यही आग्रह करती है—"राखत काहे न राखनहारे।"

विभीषण-शरणागति के साथ कवि की लालसा का भी स्मरण हो आता है कवि ने जिसका निर्देश ग्रन्थारम्भ में निम्नलिखित रूप में किया है—

"जिनको यशहंसा, जगतप्रशंसा, मुनिजन मानस रंता।
लोचन अनुरुपिनि श्यामसरूपिनि अंजनअंजित संता॥
कालत्रय दरशी निर्गुण-परशी होत बिलंब न लागै।
तिनके गुण कहिहौं सब सुख लहिहौं पाप पुरातन भागै॥" (राम० च० १/२०)

करुणरस की विशेष अभिव्यक्ति—आचार्य केशव ने अतिनिवेदन तथा मिलन को करुणरस के अन्तर्गत ही लिया है। ऐसे दो प्रसंग रामचन्द्रिका में प्रकट हुए हैं—

१—जनक बरात को भोजन के लिए निमंत्रण देते हैं।
२—अवधि के पश्चात् राम का अयोध्या आगमन तथा माताओं से मिलना।

महाराज जनक तथा ऋषि सतानंद बरात को भोजन के लिए निमंत्रण देने आते हैं और कहते हैं—

"बिनती करिये जन जो जिय लेखो[1]।
दुख देख्यो ज्यों ज्यों कालिह त्यों आजहु देखो[2]॥
यह जानि दिये ढिठई मुख भाषा।
हम हैं चरणोदक के अभिलाषा॥" (राम० च० ६/१)

इस विनय को सुनकर सब करुणरस में डूब गये—

"जब ऋषिराज बिनै कर लीनो।
सुनि सब के करुणा रस भीनो॥"

ऋषि सतानंद तथा महाराज जनक की विनय तथा अतिनिवेदन को सुनकर सब के चित्त करुणरस से द्रवित हो गए।

---

१. "विनती करिये जन जो चित दीजै।" पाठान्तर—
२. "कष्ट कियौ ज्यों कालिह त्यों आजहु कीजै।" पाठान्तर—

इसी प्रकार राम के अयोध्या आगमन पर रामजननी मिलन को करुणरस के अन्तर्गत रखा गया है—

"मिले जाय जननीन कों जबही श्री रघुराइ।
करुणारस अद्‌भुत भयो मो पै कह्‌यो न जाइ॥"
(रा० च० २२/१३।)

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि आचार्य जी की दृष्टि विकास एवं विस्तार की ओर थी। वह रूढ़ि के पक्ष में न थे। इन दो प्रसंगों के द्वारा निश्चय ही करुण-रस के क्षेत्र का विकास एवं विस्तार हुआ है।

रामचन्द्रिका उत्तरार्द्ध

अवधिकाल में भरत की करुण दशा—हनुमान जी भरत को रामागमन का शुभ संदेश देने के लिए आते हैं तथा अन्यपुरुषानुभूति के अन्तर्गत भरत की अति करुणापूर्ण दशा का अवलोकन करते हैं[1]—

१—भरत शोकसंतप्त हैं तथा सम्पूर्ण अंग मलीन हैं।

२—वल्कलवस्त्र पहने हैं, सिर पर जटा हैं, फलमूल का आहार करते हैं।

३—सम्पूर्ण सुखों से विरक्त हैं।

४—प्रभुचरणपादुकाओं की मनवचनकर्म से सेवा कर रहे हैं।

भरत की इस करुणापूर्ण दशा से भरत की निष्ठा, विरक्ति, उदासीनता तथा मार्मिक शोकानुभूति का अनुमान लगाया जा सकता है जो अपने मूल रूप में रामवनवास प्रसंग से भी अधिक कष्टकर तथा दारुण है।

सीता-निर्वासन

राम का शोक—दूत ने प्रभु से आकर रजक का विचार प्रकट किया जिसको सुनकर महाराज राम बड़े दुःखी हुए। प्रातः जब तीनों भाई आए तो राम के बाह्य-व्यंजकों से उनकी दारुण वेदना का अनुमान लगा लिया—"रामचन्द्र देखियो प्रभात चन्द्र के समान" और इसलिए तीनों भाइयों ने "बहुभाँति बंदनता करी" किन्तु महाराज राम "हँसि बोलियो न दयाधरी।"

अन्त में अति दुःखी एवं शोकसंतप्त राम ने कहा—"क्या कहा जाय, कुछ

---

१. "हनुमंत बिलोके भरत सशोके अंग सकल मलधारी।
बलका पहरे तन सीस जटागन हैं फलमूल अहारी॥
बहु मंत्रिनगन मैं राज्यकाज में सब सुखसों हित तोरे।
रघुनाथ पादुकनि, मन वच प्रभुगनि सेवत अंजुलि जोरे॥"
—(रा० च० २१/२२)

कहा नहीं जाता । कहने में जी बहुत डरता है," तथा तब प्रभु ने दूत की सारी बात किसी प्रकार कह सुनाई[1]

भरत का शोक—रजक निन्दा के कारण प्रभु सीता को निर्वासित करना चाहते हैं यह जानकर भरत को बड़ा दुःख हुआ । वे प्रभु को समझाने लगे[2]—

१—सीता को अति शुद्ध मानकर आप घर लाए ।

२—अग्नि-परीक्षा में सीता जी शुद्ध सिद्ध हुई ।

३—शिव, ब्रह्म, धर्म तथा स्वयं पिताजी उनकी शुद्धता के साक्षी हुए ।

४—सीता पवित्र, प्रियवादिन, पतिव्रता, अतिशुद्ध, तथा जग की पूज्या हैं । वे इस समय गर्भिणी है । अतएव उनका निर्वासन धर्मविरुद्ध है ।

५—यवनादि के कहने से क्या ब्रह्मण गाय को त्याग देगा ।

६—चन्द्रमा वियोगियों को दुःखदायी है । वे चन्द्रमा की निन्दा करते हैं तो क्या इसीलिए शिवजी उसको मस्तक पर से हटा देंगे ?

७—इसलिए रजकनिन्दा को सत्य समझना सुधा छोड़कर विष पीने के समान अहितकर होगा ।

भरत के इस समझाने बुझाने का कोई परिणाम न हुआ । महाराज राम सीतानिर्वासन के लिए दृढ़ निश्चय ही दिखलाई दिए । यह देखकर भरत को अति

---

१. "कहिये कहा न कही परै । कहिये तो ज्यो बहुतै डरै ।
तब दूत बात सबै कही । बहुभाँति देह दशा दही ।।"
—(रा० च०२३/२१)

२. "मम मानिकै अति शुद्ध सीतहि आनियो निज धाम ।
अवलोकि पावक अंक ज्यों रबिअंक पंकज दाम ।।
केहि भाँति ताहि निकारिहौ अपवाद-वादि बखान ।
शिव ब्रह्म धर्म समेत श्री पितु साखि बोल्यो आन ।।"
यवनादि के अपवाद क्यों द्विज छोड़िहै कपिलाहि ?
विरहीन को दुखदेत क्यों हर डारि चन्द्र कलाहि ?
यह है असत्य जु होहिगो अपवाद सत्य सनाथ ।
प्रभु छोड़ि शुद्ध सुधाहि पीवत विषहि अपने हाथ ।।
—(रा० च० ३३/३२, ३३)

दुःख एवं शोक हुआ। अपने दुर्भाग्य को कोसते हुए वह कहने लगे—[1]

१—माता वैसी मिली, पिता वैसे मिले (जिन्होंने मेरे लिए राम को वनवास दिया तथा मुझे कलंकित होना पड़ा।)

२—केवल आप जैसे धर्मात्मा भई के यश के फलस्वरूप अपने आपको अबतक यशस्वी समझता था।

३—वह आप भी सीतानिर्वासन द्वारा कलंकित हुए जा रहे हो।

अब तो मैं माता-पिता, भाई सभी को निंदित पाकर अति निंदित हुआ हूँ। मैं संसार में कौन मुँह दिखलाऊँगा। साथ ही भरत ने पुनः एक बार राम को समझाने का प्रयत्न किया।[2]

यदि आपको सीता को छोड़ना ही है तो संतान-प्रसव के पश्चात् केवल सीता को छोड़ देना। गर्भिणी स्त्री को तो दो पल के लिए भी यहाँ तक कि स्वप्न में भी न छोड़ना चाहिए। ऐसी दशा में सीता को छोड़कर लोकलोकांतर में अपयश न लीजिए। इस पर भी जब भरत ने राम को दृढ़-निश्चय देखा तो अति दुःखी होकर कहने लगे—

"घर घर प्रति सब जग सुखी, राम तुम्हारे राज,
अपनेहि घर कत करत हो, शोक अशोक समाज।"

यही नहीं अति क्षोभ एवं उदासीनता के अन्तर्गत उनके मुँह से हठात् यह शब्द निकल पड़े—"और होइ तो जानिये, प्रभु सों कहा बसाय" साथ ही यह सोच-कर कि सीता निर्वासन का अति दुष्कर कार्य उनको ही न सौंप दिया जाय भरत तथा शत्रुघ्न अति दुःखी होकर वहाँ से चल दिए।[3]

सीता की आशंका—सीता ने प्रथम दोहद को प्रकट करते हुए प्रभु से प्रार्थना की—

"जो सब ते हित मोपर कीजत, ईश दया करिके बरु दीजत,
हैं जिसने ऋषि देव नदी तट, हौं तिनको पहिराय फिरौं पट।"

जब लक्ष्मण सीता को साथ लेकर वन मार्ग की ओर चले तो सीता ने प्रभु की स्वीकृति "पट पहिरावन ऋषिन को, जैयो सुन्दरि प्रात" के अनुकूल यही समझा कि उनकी दोहद के अनुकूल ही लक्ष्मण उनको ऋषि-आश्रमों को ले जा रहे हैं—

---

१. "वा माता वैसे पिता तुम सो भैया पाय।
भरत भयो अपवाद को भाजन भूतल आय॥" (रा०च० ३३/३५)

२. "स्वप्नहू नहिं छोड़िये तिय गुर्बिनी पल दोय।
छोड़ियो तब शुद्ध सीतहिं गर्भ मोचन होय।
पुत्र होय या पुत्रिका यह बात जानि न जाय।
लोक लोकन में अलोक न लीजिए रघुराय॥"—(रा०च० ३३/४०)

३. "यह विचारि के शत्रुहा, भरत गये अकुलाय।"—(रा०च०३३/४४)

किन्तु निर्जन मार्ग को देखकर उनकी आशंका मुखरित हो उठी—

"सुनों न वेद की गिरा, न बुद्धि होति है थिरा।
ऋषीन की कुटी कहाँ, पतिव्रता बसैं जहाँ ।।"
मिलै न कोइयै कहूँ, न आवतै न जातहूँ,
चले हमें कहाँ लिये, डराति हौं महा हिये ।।"

महारानी की उपर्युक्त आशंका को समझकर लक्ष्मण को बहुत दुःख हुआ, उनके नेत्रों में आँसू भर आए तथा वह कुछ भी उत्तर न दे सके। लक्ष्मण की ऐसी दशा को देखकर सीताजी अति व्याकुल होकर संज्ञाशून्य होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं मानों घने वन में बिजली गिर गई हो।

लक्ष्मण का शोक—लक्ष्मण परम आज्ञाकारी प्रभु-सेवक हैं। भरत की भाँति कुछ कह सुनकर वह अपनी शोकानुभूति को शांत नहीं कर सकते थे। यह दुष्कर कार्य उन्हें करना पड़ा। इसको करने या न करने के सम्बन्ध में अपनी सहमति या असहमति देने का प्रश्न ही नहीं उठा। प्रभु ने उनको आज्ञा इस रूप में दी—

"सीतहि लै अब सत्वर जैये,
राखि महाबन में फिरिपैये।
लक्ष्मण, जो फिर उतर दैहौ,
शाशनंग को पातक पैहो।"—(रा० च० ३३।४५)

इस कठोर आज्ञा के पालन में विवश लक्ष्मण, सीता को संज्ञाशून्य देखकर परम दुःखी होकर बिलख उठे। एक हाथ से संज्ञाशून्य सीता के मुख पर उन्होंने छाया की तथा दूसरे हाथ से वायु करते हुए इतने रोये कि उनके आँसुओं से सीता जी का सम्पूर्ण शरीर भीग गया। लक्ष्मण की इस मौन व्यथा की गंभीरता को कोई क्या जान सकता था। भरत ने एक स्थल पर लक्ष्मण की घोर आत्मग्लानि की ओर निम्नलिखित शब्दों में संकेत किया है—

"लक्ष्मण सीय तजी जब ते बन,
लोक अलोकन पूरि रहे तन।
छोड़न चाहत ते तब ते तन,
पाय निमित कर्यो मन पावन।"—(रा० च० ३६।३०,३१)

घोर आत्मग्लानि में आत्मघात ही चित्त की शांति उत्पन्न कर सकता है इस तथ्य को आचार्य जी भलीभाँति जानते थे। इसलिए उन्होंने घोर आत्मग्लानि में लक्ष्मण के "शरीर छोड़ने" के विचार को प्रकट किया।

सीता का शोक

अ--लव मूर्च्छा प्रसंग—शत्रुघ्न के साथ युद्ध करते हुए लव मूर्च्छित हो गए। लव की मूर्च्छा की सूचना जब सीता को प्राप्त हुई तो पुत्रशोक में परम दुःखी सीता

स्वयं अचेत हो गई। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि श्री रघुनाथ का पुत्र अजेय है वह शत्रु के हाथ किस प्रकार पड़ गया। परम शोक से विकल होकर उन्होंने अपने पातिव्रत की शपथ ली। ऋषि और कुश में से उस समय आश्रम में कोई न था ऐसी दशा में लव को शत्रु से कौन छुड़ावे। इस विवशता में उनकी आर्त्त पुकार वनप्रांत में गूँज उठी तथा अति आकुल कुश शीघ्र उनकी सहायता के लिए आगए और इस स्थल पर इस प्रसंगगत शोकानुभूति शांत हो गई।[1]

आ--रामदल पर कुश की विजय—कुश ने सम्पूर्ण रामदल को पराजित किया तथा अपनी विजय की प्रसन्नता में रण-हत वीरों के अच्छे आभूषणादि तथा बंदी किए हुए हनुमान तथा जामवंत को लेकर वह माता के पास पहुँचे। सीताजी ने "चीन्हि देवर के विभूषण देखि कै हनुमंत" समझ लिया कि उनके वीर पुत्रों ने किन शत्रुओं पर विजय प्राप्त की है। अतएव परम शोकाकुल होकर वह पुकारने लगीं।[2]

१—अरे, यह तुमने कैसा दुरंत कार्य किया। तुमने तो मुझको ही विधवा बना दिया।

२—अपने पिता तथा सब चाचाओं को मारकर और हनुमान को बाँधकर तुम मेरे लिए कलंक ही लाए हो।

३—एक साथ ही तुमने अपनी माता तथा सब काकियों को ही विधवा कर दिया।

४—मेरे समान कौन पापिन है जिसके तुम जैसे कुलविनाशक पुत्रों ने जन्म लिया।

५—अरे, पापियो पिता को मारकर तुम कहाँ जाओगे। चौदह लोकों में तुमको कहीं स्थान न मिलेगा।

६—तुमको कोई रामपुत्र न कहेगा। तुम जारज पुत्र कहलाओगे।

कहना न होगा कि इस प्रसंग में सीता की परम शोकानुभूति परम आत्मग्लानि के साथ अति मर्मस्पर्शी बन गई है। कवि ने अपने मनोवैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर इस परम शोकानुभूति का क्रमिक विकास भी दिखलाया है जो आत्मग्लानि की ओर उन्मुख है।

राम का शोक—शत्रुघ्न को रण-हत सुनकर रामचन्द्र जी को पहले तो बड़ा आश्चर्य हुआ।

---

१. "सीता गीता पुत्र की सुनि कै भई अचेत।" (रा० च० ३५/२४, २५)

२. "चीन्हि देवर के विभूषण देखि कै हनुमंत,
पुत्र हौं विधवा करी तुम कीन काम दुरंत।"
पापि, कहाँ हति बामहि जैहौ, लोक चतुर्दश ठौर न पैहौ॥
रामकुमार कहैं नहिं कोऊ, जारज जाय कहावहु दोउ॥" (रामग्र च० ३९/३)

शत्रुघ्न तो बड़ा गुणी, शत्रुओं को मारने वाला, बालकपन से ही रणाभ्यस्त, दशरथ जैसे यशस्वी महाराज का पुत्र, मेरा भाई तथा लवणासुर का हंता था। आज यह क्या हुआ, ऐसे विकट भट को दो छोटे मुनि बालकों ने मार डाला। इस आश्चर्य के साथ राम की शोकानुभूति द्विगुणित गंभीर हो जाती है। "काल की कुटिलता" समझकर इस शोकानुभूति को राम किसी प्रकार सह्य बना लेते है।[1]

"यहि जगत जाल के करम काल के कुटिल भयानक भारे।"

इस प्रसंग में कवि राम की शोकानुभूति की अभिव्यक्ति न कर सका। संकेतमात्र रूप में ही इसका प्रकटीकरण हुआ है।

भरत के मन का क्षोभ तथा आत्मग्लानि—सीतानिर्वासन के कारण भरत विशेष रूप से क्षुब्ध रहे हैं। उन्होंने प्रभु को सभी प्रकार से समझाया किंतु सीता को निर्वासित ही किया गया। उनके मन को बड़ी ठेस पहुंची। उनका यह प्रस्ताव भी ठुकरा दिया गया कि यदि सीता को निर्वासित करना ही है तो प्रसव के पश्चात् कर दिया जाय। इन परिस्थितियों में भरत का मन आत्मग्लानि तथा आन्तरिक क्षोभ से जल उठा। जब उन्होंने यह सुना कि शत्रुघ्न तथा लक्ष्मण रण में पराजित होकर धराशायी हो गए तो भ्रातृवियोगजन्य शोक से उनका अंतर्दाह अति असह्य हो गया।

लवकुश की विजय को देखकर मनुष्य भिन्न-भिन्न प्रकार की कल्पनाएँ करने लगे। कोई इन बालकों को रावण का सहायक समझता था तो दूसरा लवणासुर का हितैषी बताने लगा किन्तु भरत को तो स्पष्ट ही ये बालक "निज पातक वृक्षन के फल" जान पड़े।

यही नहीं शत्रुघ्न एवं लक्ष्मण पराजय में भी उन्होंने सीता निर्वासनजन्य शोकानुभूति को ही पराजय का मुख्य कारण समझा। जब से लक्ष्मण सीता को वन में छोड़ आए हैं तभी से घोर आत्मग्लानि में जल रहे थे तथा आत्मघात करने की सोच रहे थे। इस अवसर पर इस निमित्त को पाकर उन्होंने अपने विचार को पूरा कर लिया—

"पाय निमित करयो मन पावन।"

ऐसे परम शोक संतप्त लक्ष्मण को मार डालने में किस की विजय समझी जा सकती है। वह तो स्वयं ही मरने के लिए कोई बहाना खोज रहे थे। इस प्रकार भरत की आत्मग्लानि उत्तरोत्तर बढ़ती गई तथा शत्रुघ्न एवं लक्ष्मण के हत होने के

---

१. गुणगण प्रतिपालक, रिपु कुल घालक बालक ते रणरंता,
दशरथ नृप को सुत, मेरो सोदर लवणासुर हंता।
कोऊ द्वै मुनि सुत काकपक्षयुत सुनियत हैं तिन मारे,
यहि जगत जाल के करम काल के कुटिल भयानक भारे।"
—(राम० च० ३६/८)

समाचार से परम दुःखी होकर उन्होंने प्रभु से कह ही डाला—

"पातक कौन तजी तुम सीता।
पावन होत सुने जग गीता॥
दोष विहीनहिं दोष लगावै।
सो प्रभु ये फल काहे न पावै॥" —(राम० च० ३६/३२)

परम शोक संतप्त भरत घोर आत्मग्लानि से आहत होकर स्वयं भी आत्मघात की सोचने लगे। प्रभु ने निर्दोष सीता को निर्वासित किया और वह प्रभु के भाई हैं अतएव उनको भी संगदोष लगा। अपने आत्मघात के द्वारा भरत इस संगदोष मे भी मुक्त होना चाहते हैं। इसीलिए उनके मुख से बरबस निम्नलिखित शब्द फूट पड़े—

"हौं तेहि तीरथ जाय मरौंगो,
संगति दोष अशेष हरौंगो।" (राम० च० ३६/३३)

पराभवगत प्रसंग

अंगद पराभव—राजतिलक के समय अंगद को अपने बल का गर्व हुआ तथा उन्होंने रामदल को युद्ध के लिए ललकारा—

"आजु मोसन युद्ध माँडहु एक एक अनेक कै।
बाप को तब हौं तिलोदक दीह देहुँ विवेक कै।" —(राम० च० २६/३४)

अंगद की इस ललकार को स्वीकार करके प्रभु ने अंगद की इच्छापूर्ति के लिए वरदान दिया—

"कोऊ मेरे वंश में करिहै तोसों युद्ध।
तब तेरो मन होइगो अंगद मोसों शुद्ध॥" —(राम० च० २६/३५)

इसीलिए प्रभु ने लवकुश से युद्ध करने के लिए अंगद को आदेश दिया। इस आदेश में अंगद के उन शब्दों की ओर भी महाराज राम संकेत करते है—

"अंगद जीति इन्हैं गहिल्यावौ, कै अपने बल मारि भगाओ॥
बेगि बुझावहुचित्त चिता को, आजु तिलोदक देहु पिताको॥"

"अंगद तौ अंग अंग न फूले" क्योंकि वह तो इस अवसर की तलाश में थे ही। अविलम्ब रणक्षेत्र में कूद पड़े किन्तु लवकुश के सामने डटना सहज न था। बाणों की विकट मार के कारण अंगद का शरीर शिथिल हो गया, वाणी क्षीण हो गई, शरीर त्रिशंकु की भाँति अधर लटक गया और इस प्रकार बलवीर्य का सम्पूर्ण गर्व नष्ट हो गया। प्राणरक्षा का प्रश्न उठा और अंगद के मुँह से बरबस यह करुण पुकार फूट पड़ी—"रक्षहु गर्व गयो सब मेमो"[१]

---

१. "बोल घट्यो सु भयो सुर मंगी, ह्वै गयो अंग त्रिशंकु को संगी।
हा रघुनायक हौ जन तेरो, रक्षहु गर्व गयो सब मेरो।"
—(राम० च० ३८।१४)

अंगद की इस करुण पुकार में पराभवजन्य वह शोकानुभूति निहित है जिसके अन्तर्गत रणगर्व में कहे हुए वचनों के प्रति परिताप, प्रभु से विरोध करने के कारण ग्लानि तथा अपनी विवश एवं असहायावस्था पर आन्तरिक क्षोभ सब कुछ भरा हुआ है। कवि ने अंगद की पराभवगत शोकानुभूति का वर्णन अति संक्षेप में किया है किन्तु जिन गिने चुने शब्दों में इस शोकानुभूति की अभिव्यक्ति हुई है वे शब्द परितापगत शोक को प्रकट करने में पूर्ण क्षम है।

राम का पराभव—शत्रुघ्न तथा लक्ष्मण के रण-हत होने के समाचार को सुनकर स्वयं राम रणक्षेत्र में पहुँचे। लवकुश की रणकुशलता देखकर वह दंग रह गए तो उधर अपने दल की पराजय को देखकर अति उदासीन जब भगवान राम ने अपनी सम्पूर्ण सेना को बाणविद्ध देखा तो वह स्वयं अति दुःखी एवं उदासीन होकर रण से विमुख हो गए। इस अवसर पर कवि ने केवल संकेतमात्र वर्णन देकर संतोष कर लिया। राम के पराभवगत शोक को प्रकट न करके कवि ने निम्नलिखित संकेत से ही काम चला लिया—

"बाण बिधे सबही जब जोये,
स्यंदन में रघुनंदन सोये।" (राम० च० ३८/१७)

उपसंहार—संक्षेपतः आचार्य केशवदास की रामकथा में प्रकट करुणरस की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

विषयगत—१. यद्यपि करुणरस के संभव सभी प्रसंगों पर कवि की दृष्टि गई तथापि इष्टनाशगत प्रसंगों की ही विशेष अभिव्यक्ति संभव हुई है।

२. करुणरस के ये प्रसंग अपने मूलरूप में पिष्टपेषित न सिद्ध हों इसलिए कवि ने मनोवैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर इन प्रसंगों को विशेषता तथा मौलिकता प्रदान की है जिससे अपनी नवीनता में ये प्रसंग अति प्रिय बन गए हैं।

३. करुणरस के प्रसंगों को कवि ने संक्षिप्त रूप में ही प्रकट किया है। गोस्वामी तुलसीदास की प्रसिद्ध रचना ने सामाजिक में इन प्रसंगों के लिए अपेक्षित संस्कार जाग्रत एवं पुष्ट कर दिए हैं, ऐसा कदाचित् आचार्य जी ने सोचा हो। साथ ही उनकी दृष्टि मुख्यतः कला की ओर थी। इसलिए भाव-अपेक्षी ऐसे प्रसंग उनका अधिक ध्यान आकृष्ट न कर सके।

४. शोकानुभूति के वर्णन में परंपरागत रूप का आचार्य जी ने अनुपालन किया है। यह अवश्य है कि अपनी सूझ-बूझ से उसमें आवश्यक परिवर्तन कर दिए हैं। इस प्रसंग में यह विशेष रूप से अवलोकनीय है कि आचार्य जी वाल्मीकि का अनुकरण करना चाहते हैं और इसलिए रावण की मायायोजना तथा सीता-निर्वासन के प्रसंगों का उन्होंने उल्लेख किया है जबकि उनके पूर्ववर्ती गो० तुलसीदास ने उनको छोड़ दिया है।

५. कवि ने विभिन्न छंदों का प्रयोग किया है। भाव के स्थान में कवि कला का पोषक है। कतिपय छंद करुण की मार्मिक स्वर लहरी का भी आयोजन करते हैं, यथा विभीषण की पुकार का प्रसंग।

अभिव्यक्तिगत—१. कवि की दृष्टि रूढ़ि की पोषक नहीं है। करुणरस के क्षेत्र को विकसित करते हुए कवि ने अतिनिवेदन तथा मिलन प्रसंगों को करुणरस के अन्तर्गत ही रखा है। इस दृष्टि से भक्त के अतिनिवेदन के सम्बन्ध में प्रकट शंका (कि भक्त का अति निवेदन करुण के क्षेत्र में आ सकता है या नहीं) का समाधान हो जाता है।

२. आत्मग्लानि, परिताप एवं आत्मनिन्दा के विकसित रूप शपथ-ग्रहण तथा पापगतियाचना में प्रकट हुए हैं।

३. प्रसंग की गुरुता से अवर्णनीयता का सहारा लिया गया है—"मोपै कह्यौ न जाय"।

४. विवश एवं असहाय परिस्थितियों के साथ आर्त्तनिवेदन, सकारण विनय तथा परिस्थितिगत विषमताओं का भी प्रकटीकरण किया गया है।

५. संवेदनात्मक रूप में शोक के प्रसार का चित्र कवि ने उपस्थित किया है।

६. शोकानुभूति का विस्तार जड़जंगम तक दृष्टिगोचर होता है।

७. करुण की मर्मस्पर्शी अनुभूति को हृदयंगम कराने के लिए समकक्ष अन्य अनुभूतियों के उदाहरण दिए गए हैं।

८. शोकानुभूति के प्रकटीकरण में गुणकथन, क्षतिपूर्त्ति असंभव, असहायावस्था, कर्त्तव्यपूर्ति में आशंका आदि विभिन्न तथ्यों का वर्णन किया गया है जिसके फलस्वरूप शोकानुभूति का सहज एवं स्वाभाविक रूप संभव हो सका है।

◆◆◆

: ६ :

मध्ययुगीन हिन्दी-रामकथा में करुण रस

मध्ययुगीन हिन्दी-रामकाव्य की पूर्वपीठिका—इसके अन्तर्गत संस्कृत एवं अपभ्रंश साहित्यगत रामकाव्य तथा चारणकाल में करुणरस की स्थिति का विवेचन कर चुके हैं। यहाँ इस पूर्वपीठिका तथा हिन्दी-रामकाव्य की अभिव्यक्ति के संबंध पर विचार करना अभीष्ट है। संस्कृत साहित्यगत रामकाव्य का हिन्दी-रामकाव्य की अभिव्यक्ति से विशेष संबंध है। इस संबंध को निम्नलिखित दो रूपों में देख सकते हैं—

१. दृष्टिकोणगत।
२. कथावस्तुगत।

हिन्दी रामकाव्य के कलाकारों—सुर, तुलसी और केशव में तुलसी के 'मानस' को ही हिन्दी रामकाव्य की उत्कृष्ट कृति होने का गौरव प्राप्त है। गो० तुसलीदास ने मानस में अध्यात्म रामायण के अनुकूल 'नर' के स्थान में भगवान के 'नारायण' स्वरूप को प्रमुखता दी है तथा उसी रूप की प्रतिष्ठा की है। फिर भी, तुलसी के नारायण का चरित्र नर रूप की प्रतिष्ठा में कोई बाधा उपस्थित नहीं करता। अध्यात्म रामायण में नारायण का स्वरूप नर रूप को प्रस्फुटित नहीं होने देता। अध्यात्म रामायण में नर लीला के प्रसंगों के रहस्य को नारायण स्वरूप के संदर्भ में उनके घटित होने से पूर्व ही प्रकट कर दिया जाता है। मानस में यह कार्य प्रायः प्रसंग के अन्त में किया जाता है जब रस की पूर्ण निष्पत्ति हो चुकती है। इस प्रकार अध्यात्म रामायण तथा मानस की भिन्न योजनाओं के अन्तर्गत एक ही दृष्टिकोण दो रूपों में प्रकट होता है जिसके फलस्वरूप कथा में विशेष अन्तर न होते हुए भी करुणरस की निष्पत्ति में विशेषता आ जाती है। अध्यात्म रामायण में उपर्युक्त योजना के कारण रसनिष्पत्ति में बाधा उपस्थिति होती है, वहाँ मानस की अपनी विशेष योजना रसनिष्पत्ति में योग देती है।

मानस की कथावस्तु के विस्तार का संबंध वाल्मीकि रामायण से है। यहाँ पर भी गो० तुलसीदास जी ने करुणरस के निम्नलिखित प्रसंगों को प्रश्रय नहीं दिया है—

पारिवारिक कलह एवं द्वेष को प्रकट करने वाले प्रसंग—१. कौशल्या कहती हैं कि पति का प्रेम मिला नहीं। अब सौतों की सेवा करनी पड़ेगी। फिर भी कैकेयी की दासी के बराबर भी पूछ न होगी।

२. राम महाराज दशरथ से कहते हैं कि माता कौशल्या का ध्यान रखें तथा उसका उचित सम्मान एवं सत्कार करें।

३ सुमंत्र के द्वारा राम संदेश देते हैं कि भरत कौशल्या को अपनी माता ही समझें तथा इस संदेश को देते समय राम का बहुत रोना।

४. कौशल्या महाराज दशरथ से कहती हैं कि चौदह वर्ष की अवधि के पश्चात् राम लौटेंगे तो भरत उनको राज्य और कोष न देंगे।

५. कौशल्या भरत से कहती हैं (राज्यकामी) तुमने निष्कंटक राज्य प्राप्त कर लिया।

६. सीताहरण पर राम का लक्ष्मण से कहना ...भरत से कहना कि वही राज्य करें।

७. राम के कटे हुए (मायानिर्मित) सिर को देखकर सीता कहती हैं—

"सकामा भव कैकेयि हतोऽयं कुलनंदन।"

कटूक्तियाँ—१. कैकेयी राम से कहती हैं—'जबतक तुम बन को न जाओगे तबतक महाराज ऐसे ही बैठे रहेंगे, न स्नान करेंगे न भोजन करेंगे।'

२. कौशल्या का राम के साथ महाराज के पास जाना तथा कटूक्तियाँ कहना।

३. कौशल्या का महाराज से उनकी मरणासन्न अवस्था में कहना कि यह सब तो आपने ही किया है, अब आप क्यों रोते हो?

४. रावण-वध के पश्चात् सीता का राम के पास आना तथा राम का सीता के प्रति कटूक्तियाँ कहना।

५. सीता-निर्वासन प्रसंग के लिए अपवाद।

अन्य प्रसंग—१. लक्ष्मणमूर्छा-प्रसंग पर राम का विलाप।

२. मूर्च्छित राम-लक्ष्मण को देखकर विभीषण की निराशा तथा मूर्च्छा से जगने पर उनकी आँख धोना।

३. सीता को राम का कटा हुआ (मायानिर्मित) सिर दिखलाना।

४. माया-निर्मित सीता का युद्धस्थल में हनुमान की उपस्थित में वध।

५. नागपाशवद्ध रामलक्ष्मण को वायुयान से सीता को दिखाना।

६. अंधतापसशाप-प्रसंग का पूरा विवरण।

७. अयोध्या नगर की शोकसंतप्त माताएँ रामवनगमन की दुःखद बात को सुनकर अपने बड़े पुत्रों को देखकर आनंदित न हुई।

वाल्मीकि की कथावस्तु के उपर्युक्त प्रसंगो का अवलोकन करने से ऐसा लगता है कि कतिपय प्रसंगों में महर्षि वाल्मीकि आचार्य अरस्तू की भाँति करुण के लिए त्रास और भय की योजना करने के पक्ष में है। अरस्तू ने अपने काव्यशास्त्र में त्रासदी (ट्रेजेडी) का विवेचन करते हुए उसके लिए त्रास और भय को आवश्यक बतलाया है। करुण का यह स्वरूप सामाजिक अथवा पाठक की करुणा को जाग्रत करने के स्थान में एक मिश्रित भाव की अनुभूति कराता है जिसमें करुणा, भय और त्रास का समन्वय होता है। करुणा का उद्रेक विवश और असहाय परिस्थितियों के स्थान में त्रास और भय की परिस्थितियों से होता है जिसके द्वारा अरस्तू इन भावों के विवेचन की कल्पना करते हैं। भारतीय रस-सिद्धान्त इस अभाव की स्थिति से आगे आनन्द-प्राप्ति को अपना लक्ष्य मानता है। इसीलिए करुणरसानुभूति में तथा त्रासदी की रसानुभूति में विशेष अन्तर प्रतिलक्षित होता है। कदाचित् इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए पाश्चात्य विद्वानों में हेगल ने करुण के दो रूपों की कल्पना की है—

१. प्रामाणिक शोक। २. अप्रामाणिक शोक।

वाल्मीकि की करुणरस की उपर्युक्त योजना स्यात् संयोगवश ही रही हो अथवा इसके लिए तत्कालीन समाज में प्रचलित लोककथाओं का महर्षि को प्रचुर आधार मिला हो जैसाकि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर का विचार है, " ··—रामायण की रचना करते समय आदि कवि वाल्मीकि को भी रामसंबंधी नाना लोकगीतों का सहारा मिला होगा।"—(साहित्य २९, पृ० ८८/८९)

हिन्दी रामकाव्य में करुणरस की जो अभिव्यक्ति हुई उसको करुणरस का विकसित रूप कह सकते हैं क्योंकि हिन्दी रामकाव्य के कलाकारों ने इस प्रकार के प्रसंगों को या तो छोड़ दिया या संकेतमात्र रूप में चलता कर दिया जिसके फलस्वरूप करुण का प्राचीन वाल्मीकीय रूप अपनी प्रमुखता खो बैठा और लुप्त प्रायः हो गया।

सूर और केशव की कथा का दृष्टिकोण भी वाल्मीकि के स्थान में अध्यात्म रामायण की ओर ही उन्मुख है। आचार्य केशवदास जी ने यद्यपि स्वप्न में वाल्मीकि ऋषि से "रामदेव गाइए" और "देवलोक पाइए" संदेश प्राप्त किया है फिर भी उन्होंने अपनी कृति में वाल्मीकि के अप्रिय प्रसंगों को प्रश्रय नहीं दिया। जो एक-दो प्रसंग उन्होंने लिए हैं वे संकेतमात्र रूप में ही प्रस्तुत किए गए हैं। उदाहरणस्वरूप नागपाश बंधन प्रसंग को ले सकते है। भय और त्रास की अनुभूति से पूर्व ही "पन्नगारि प्रभु पन्नगसाई, काल-चाल कछु जानि न जाई" कहकर इस प्रसंग को समाप्त कर दिया जाता है।

कथा के विस्तार की ओर तो सूर और केशव की दृष्टि गई ही नहीं है प्रत्युत दोनों कवियों ने कथा को संक्षिप्त करने का प्रयत्न किया है। इस विषय में इन कवियों की अपनी सूझबूझ ही प्रमुख रही है।

अपभ्रंशकाल के महान कवि स्वयंभू के पउमचरिउ (रामायण) की शैली अभिव्यक्तिगत विशेषता (बिंवग्रहण कराने की शक्ति एवं मर्मस्पर्शिता) तथा अनुभावों की विशेष अभिव्यक्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जिनका प्रभाव रामकाव्य की कृतियों और विशेषकर मानस पर पड़ा होगा। अभी तक मानस के स्रोतों की खोज करते हुए संस्कृति काव्यों एवं संस्कृति के कवियों की ओर ही प्रायः अनुसंधित्सुओं का ध्यान रहा है। अपभ्रंश की दिशा में कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं हुआ है। अतएव यहाँ इस विषय पर संक्षेप में विचार कर लेना असंगत न होगा। संस्कृत से मानस के स्रोत खोजने वाले विद्वानों ने पर्याप्त सामग्री एकत्रित की है तथा तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर इस बात की पुष्टि की है कि मानस का आधार संस्कृत काव्य रहे है। अतएव यह संभव है कि संस्कृत की भाँति अपभ्रंश की महान् कृति पउमचरिउ का मानस पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव न रहा हो तथापि यह समझ लेना कि इतनी महत्वपूर्ण कृति का गो० तुलसीदास को पता न था या उन्होंने इसको देखा न हो, भ्रमात्मक होगा। जैनमतानुयायी परिवारों में इसका पठन-पाठन एवं पारायण होता रहे और रामकथा का तुलसी जैसा महान् गायक कान बंद किए हुए अपनी ही धुन में मस्त रहे, ऐसा सोचना असंगत ही है। गोस्वामी जी ने चाहे इस कृति से प्रत्यक्षतः कोई लाभ न उठाया हो किन्तु यह निश्चित है कि इस कृति के वह प्रशंसक रहे होंगे तथा अप्रत्यक्ष प्रभाव भी उन पर पड़ा होगा।

मानस की चौपाई शैली का रूप पउमचरिउ की पज्झडिया में प्राप्त होता है। इस शैली को अपनाने से पूर्व गो० तुलसीदास जी ने पउमचरिउ में इसके सफल प्रयोग को देखा होगा, अभिव्यक्ति एवं अनुभावों के उत्कृष्ट उदाहरण भी गोस्वामी जी की दृष्टि में रहे होंगे। कुछ हो संस्कृत रामकाव्य तथा हिन्दी रामकाव्य की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति के बीच की ज्योतिष्मती जैनकृति 'पउमचरिउ' अवलोकनीय है जिसके संदर्भ में करुणरस की धारा का अखण्डरूप प्रकट हो जाता है। आलंबन के क्षति का प्रभाव, शोक में प्रकृति के सहज व्यापारों की सहेतुक कल्पना, उपमानजन्य उद्दीपन, मानवीकरण, अनुभावों का विस्तृत चित्रण आदि तथ्य स्वयंभू के पउमचरिउ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिनकी छाया में मानस की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ द्रष्टव्य हैं।

पूर्वपीठिका की उपर्युक्त सामग्री को हिन्दी रामकाव्य के कलाकारों के लिए अनुकृति का साधन समझना भूल होगी। पूर्वपीठिका प्रेरणा का स्रोत होती है तथा कवि उसके संदर्भ में अपनी मौलिक उद्भावना करता है। इसी रूप में हिन्दी कला-

ग्रारों ने पूर्वपीठिका का ग्राश्रय लिया है। जहाँ कहीं पूर्वपीठिका की ग्रभिव्यक्ति को ग्रविकल रूप में लेना ग्रभीष्ट रहा है वहाँ पर भी हिन्दी कलाकारों की ग्रपनी मौलिकता एवं विशेषता ग्रवलोकनीय है। उदाहरणस्वरूप यहाँ एक प्रसंग ले सकते हैं।

वाल्मीकि— "त्वं नित्यं सुविषण्णं मामाश्वासयसि लक्ष्मण।
गतासुर्नाद्य शक्तोऽसि मामार्तमभिभाषितुम्।" —(युद्ध ४९/१३)

मानस—"सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ, बन्धु सदा तव मृदुल सुभाऊ।
मम हित लागि तजेउ पितु माता, सहेहु बिपिन हिम ग्रातप बाता।
सो ग्रनुराग कहाँ ग्रब भाई, उठहु न सुनि मम बच बिकलाई।"
—(लंका ६०/२, ३)

साथ ही हिन्दी कलाकारों ने नए प्रसंगों की भी उद्भावना की है। 'चित्रकूट दरबार' मानस का एक ऐसा ही प्रयास है जो एकांकी ही कवि की महानता का उद्घाटन करने के लिए ग्रलम् है। चित्रकूट दरबार में ग्राचरण के उत्कृष्ट ग्रादर्शों की प्रतिष्ठा के साथ करुणरसानुभूति के संभव सभी प्रसंगों का सुन्दर चित्रण हुग्रा है।

वनपथ में रामसीतालक्ष्मण को जाते हुए देखकर ग्रामीण नरनारियों की सहानुभूति का प्रसंग विश्वबन्धुत्व तथा प्रेम के निष्कपट, सरल एवं परम प्रिय रूप को प्रकट करता है! ग्रन्य प्रसंगों में कवि ने करुणरसानुभूति से त्रास ग्रौर भय के तत्वों को बिलीन करके विवश ग्रौर ग्रसहाय परिस्थितियों को प्रमुखता दी है तथा इस रूप में प्रत्येक प्रसंग को प्रिय एवं मर्मस्पर्शी बनाकर बहुत बड़ा काम किया है। कवि द्वारा ग्रायोजित करुणरस की सहज, सरल एवं ग्रबोध ग्रभिव्यक्तियाँ देखते ही बनती है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य से गोस्वामी जी भलीभाँति परिचित थे कि यदि दुःखी एवं विपन्न व्यक्ति व्यंग्य एवं कटूक्तियों की शरण ले लेता है तो करुण की वैसी मर्मस्पर्शिनी ग्रनुभूति संभव नही होती जैसी दुःख एवं क्लेश के होते हुए भी उसकी मौन, विवशता एवं सहनशीलता में प्रकट होती है। इस दृष्टि से देखें तो वाल्मीकि की कथावस्तु से ग्रप्रिय एवं उद्वेगजनक प्रसंगों का हिन्दी कलाकारों ने परिष्कार किया है तथा उसमें उनको ग्रभूतपूर्व सफलता प्राप्ति हुई।

करुणप्रसंगगत मध्ययुगीन हिन्दी-रामकथा

हिन्दी-काव्य के करुणप्रसंगों का ग्राधार संस्कृत साहित्यगत रामकथा के विभिन्न ग्रन्थ रहे हैं किन्तु कथा का जो रूप हिन्दी के कलाकारों ने ग्रहण किया है वह ग्रापस में एक कलाकार से दूसरे कलाकार की कृतियों में तथा ग्राधार ग्रंथों की कथा से कुछ ग्रंशों में भिन्न है।

हिन्दी-कलाकारों की कृतियों में कथागत जो विभिन्नता है उस पर यहाँ संक्षेप

में विचार किया जा रहा है। यहाँ करुणरस के उन्हीं स्थलों की ओर संकेत किया जायगा जिनके अन्तर्गत कुछ भिन्नता प्रकट हुई है। शेष स्थल समान हैं ऐसा समझ लेना चाहिए।

भरत का राम को अयोध्या वापिस आने के लिए आग्रह करने वन जाना—सूर के वर्णन से ज्ञात होता है कि भरत अकेले ही वन को गए हैं। भरत राम से अयोध्या वापिस चलने के लिए आग्रह करते हुए कहते है कि माता कौशल्या अति दुःखी हैं। उनके हित में ही वापिस चलिए। इस उल्लेख से प्रकट होता है कि माता कौशल्या उनके साथ नहीं हैं प्रत्युत वह अयोध्या में हैं। कवि के मूल शब्दों में इस प्रसंग को देख लेना असंगत न होगा—

"हठ करि रहे चरन नहिं छाँड़े, नाथ तजौ निठुराई !
परम दुःखी कौशल्या जननी, चलौ सदन रघुराई ॥"

इसके विपरीत रामचरितमानस तथा रामचन्द्रिका में माताओं के साथ भरत चित्रकूट पहुँचते हैं। इस प्रसंग में केशवदास जी ने महाराज जनक, राजसमाज तथा पुरवासी आदि का उल्लेख नहीं किया है जिनका उल्लेख गोस्वामीजी ने मानस में किया है। केशवदासजी ने स्थान-स्थान पर कथा को संक्षिप्त कर दिया है। अतएव यह संभव है कि उसी प्रवृत्ति के अन्तर्गत यह प्रसंग भी संक्षिप्त कर दिया गया हो। गोस्वामी जी की भाँति चित्रकूट-दरबार की योजना तो न सूर ने की हैं न केशवदास ने।

सीताहरण पर रामविलाप—इस प्रसंग को सूर तथा तुलसी दोनों ने प्रायः एक ही रूप में लिया है। दोनों कवियों की कृतियों में राम की भावावेश दशा का मुख्यतः वर्णन है। वह खगमृग तथा द्रुमवेली आदि सबसे सीता का पता पूछते हैं। सीता के अभाव में सब उपमान प्रबल हो गए हैं और प्रकट दिखलाई दे रहे हैं। सीता के सम्मुख इनको प्रकट होने का साहस ही नहीं होता था। रामचन्द्रिका में यह प्रसंग किसी प्रकार छोड़ दिया गया है।

मेघनाद एवं कुंभकरण के वध पर रावण की शोकानुभूति का वर्णन कदाचित् सूर ने नहीं किया है। हो सकता है इन प्रसंगों के पद अभी प्राप्त न हों। साथ ही प्रियबन्धुबान्धव के वियोग एवं इष्टनाश से इतर पराभव, पराजय, बंधन आदि प्रसंगों को सभी कवियों ने संकेतमात्र रूप में लिया है तथा प्रायः चलते कर दिया है।

संस्कृत-साहित्यगत करुणरस के प्रसंगों को हिन्दी-कलाकारों ने प्रायः संक्षिप्त रूप में लिया है तथा उस प्रसंगों में यथास्थान कमी कर दी है।

हिन्दी-रामकथा के करुण प्रसंग में अपेक्षाकृत जो कमी की गई उसको निम्न-लिखितरूप में देखा जा सकता है—

(१) दशरथ-शोक एवं मरण-प्रसंग को वाल्मीकि रामायण से कहीं संक्षिप्त रूप दिया गया है। इसका कारण यह हो सकता है कि वाल्मीकि के लिए यह प्रसंग नवीन था तथा इस प्रकार के प्रसंग के लिए सम।जिकों में उपयुक्त संस्कार न थे। श्रवण के अंधे मातापिता का बलिदान न होकर आत्मघात् ही कहा जायगा। चिता पर चढ़कर ही उन्होंने अपने प्राण त्याग दिए थे। इस रूप में भी शोक की अनुभूति कम वेदना पूर्ण नहीं होती किन्तु वियोग में छटपटाते हुए ही प्राणत्याग देना निश्चय ही उससे कहीं अधिक दारुण तथा करुणापूर्ण था। इस तथ्य को हृदयंगम कराने के लिए ही महर्षि ने उसका विस्तृत वर्णन किया और उसके प्रत्येक रूप पर प्रकाश डाला। आगे आनेवाले कवियों के लिए महर्षि वाल्मीकि का यह प्रयत्न सफल सिद्ध हुआ तथा वासना रूप में इस प्रकार के शोक की अनुभूति होने लगी। अतएव विस्तृत विवेचन की आवश्यकता न रही। इसीलिए इस प्रसंग के वर्णन में कमी हुई।

(२) विपक्षी प।त्रों की शोकानुभूति के वर्णन में विशेष कमी हुई। वाल्मीकि रामायण में ऐसा प्रतीत नहीं होता कि ये पक्ष के और ये विपक्षी पात्र हैं। शोकानुभूति किसी भी प्रकार से पक्ष के पात्रों से कम नहीं है। इन स्थलों पर विपक्षी-पात्रों की शोकानुभूति के साथ कवि की पूर्ण सहानुभूति रही है तथा पक्ष-विपक्ष का कोई अन्तर विशेषकर शोकानुभूति के अन्तर्गत करना कवि ने उचित नहीं समझा है। स्वयं राम विपक्ष की सीमा निश्चित करते हुए अपनी सहानुभूति प्रकट करते है—

"मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारों ममाप्येष यथा तव।"

मरने के पश्चात् फिर बैर कैसा और विपक्ष कैसा? विपक्षी नेता के शोक संतप्त परिवार से पूर्ण सहानुभूति अतएव उचित ही है।

हिन्दी-कवियों के समय तक आकर विपक्षी पात्रों का न तो समकक्ष स्थान रहा न उनके शोक के प्रति सहानुभूति ही रही। रामलीला में रावण के पुतले का जलाया जाना तथा जन-समाज की अपार प्रसन्नता प्रकट करना सामाजिक की वासना-परिवर्तन का ही रूप है जिसका काव्य में प्रकट होना स्वाभाविक ही था। सामाजिक की परिवर्तित वासना के अनुकूल ही विपक्षीपात्रों की शोकानुभूति के प्रति हिन्दी-कवियों की उद।सीनता रही तथ प्रायः प्रसंग चलते कर दिए गए। इन प्रसंगों का रूप-परिवर्तन भी हुआ। शोकानुभूति के स्थान में पक्ष के पात्रों के कार्यों की सम्पुष्टि तथा अपने अपराध की स्वीकृति और फलस्वरूप दण्ड-प्राप्ति का वर्णन हुआ जिसके कारण ऐसा आभास होने लगा कि यह तो अपराधियों को दण्ड दिया गया है जो उचित ही था। इस प्रकार विपक्षीपात्रों की शोकानुभूति के प्रसंग उत्तरोत्तर सूक्ष्म एवं संक्षिप्त होते चले गए। वाल्मीकि रामायण में जिन शब्दों में पक्ष की शोकानुभूति का वर्णन किया

है उन्हीं शब्दों में विपक्षी-पात्रों की शोकानुभूति का वर्णन किया गया। उदाहरण-स्वरूप कुंभकरण के वध पर रावण भी राम के समान यही कहता है कि बंधुवियोग पर अब मुझे जीवित रहने से क्या प्रयोजन है, मैं भी वहीं जाऊँगा जहाँ मेरा भाई गया है। हिन्दी-रामकथा में वर्णनगत विभिन्नता भी दृष्टिगोचर होती है। वाल्मीकि रामायण के वर्णनों से सहज में यह पता लगा लेना संभव नहीं है कि यह पक्ष के पात्र की शोकानुति है अथवा विपक्ष के पात्र की। किन्तु हिन्दी-रामकथा में पृथक्-पृथक् वर्णनों से स्पष्ट दिखाई देता है कि पक्ष और विपक्ष के लिए पृथक् शब्दावली तथा पृथक् अनुभूतियों का प्रयोग हुआ है।

(३) मायारचित राम के कटे हुए सिर का सीता को दिखाना तथा माया सीता का युद्धस्थल में मेघनाद द्वारा वध, रामबंधन के अन्तर्गत रामलक्ष्मण का आहत तथा असहाय अवस्था में सीता को दिखाना[1] ऐसे प्रसंग हैं जो हिन्दी-रामकथा के करुणप्रसंगों में छोड़ दिए गए हैं। कहना न होगा कि पक्ष के पात्रों के उत्कर्ष के लिए यह कार्य आवश्यक था। उपर्युक्त प्रसंग साथ ही अति दारुण तथा हृदयविदारक थे। पक्ष के साथ अति ममत्व एवं सहानुभूति रखनेवाले सामाजिकों के लिए ऐसे प्रसंगों से अति कष्ट होता, करुण के अप्रिय रूप से वह विचलित हो उठते, यही सोचकर हिन्दी के कवियों ने इन प्रसंगों को छोड़ना ही उचित समझा। साथ ही वाल्मीकि के समय से लेकर हिन्दी कवियों के समय तक सामाजिक की वासना भी परिष्कृत हो चुकी थी जिससे हिन्दी के कवि अवगत थे। वाल्मीकि के समय में राम का नर पक्ष प्रबल था। इसलिए इस प्रकार के प्रसंगों की योजना असह्य थी किन्तु हिन्दी-कवियों के समय तक आकर राम का नररूप हरिरूप में परिवर्तित हो गया। इसी कारण जहाँ वाल्मीकि के राम महान् पुरुष के रूप में वंदनीय रहे, हिन्दी-कवियों के राम परम-आराध्य हो गए। अतएव पक्ष के इतने उत्कर्ष के साथ उपर्युक्त प्रसंगों को रखना मर्यादा के अनुकूल न कहा जाता। इसीलिए उनका छोड़ना ही संगत रहा।

इसके साथ तुलसीदास जी ने तो रामचरितमानस से सीतानिर्वासन[2] प्रसंग

१. इस प्रसंग का यद्यपि केशवदास जी ने उल्लेख किया है किन्तु वह संकेत-मात्र ही है।

२. सीता-निर्वासन प्रसंग तुलसीदास की गीतावली में अवश्य प्रकट हुआ है। आचार्य केशवदास ने भी रामचन्द्रिका के उत्तरार्द्ध खण्ड में इस प्रसंग को लिया है। दोनों ही कवियों की कथा का आधार संस्कृत-साहित्य-सम्मत लोकनिन्दा है जिसके कारण सीता का निर्वासन किया गया किन्तु लोक-साहित्य में निर्वासन का एक दूसरा कारण दिया गया है जो अभी तक साहित्य में प्रश्रय नहीं पा सका। वह है भावज-ननद का द्वेष। सीता की ननद रावण का चित्र बनाने का आग्रह करती है और उनके चित्र बनाने पर अपने भाई श्रीराम से सीता की शिकायत कर देती है कि वह तो तुम्हारे शत्रु का चित्र बनाती है और राम इसी बात पर सीता को निर्वासन कर देते हैं।

को भी निकाल दिया और इस प्रकार रामकथा को सुखांत रूप दिया। लवकुश काण्ड के नाम से एक अष्टम अध्याय का समावेश रामचरितमानस के कतिपय संस्करणों में हुआ है किन्तु अब यह सर्वमान्य है कि यह अंश प्रक्षिप्त है तथा मूल रामचरितमानस में सात काण्ड ही रखे गए थे और सीतानिर्वासन प्रसंग छोड़ दिया गया था।

गोस्वामीजी का दूसरा प्रयास नररूप और हरिरूप के समन्वय में यह रहा कि रामकथा का करुण, करुणाकरुण विलक्षण स्थिति को प्राप्त हो जाय। करुण भी हो अकरुण भी हो और इस प्रकार एक विलक्षण रूप प्रकट हो सके। भगवान् राम नररूप में हैं तथा नररूप के अनुकूल वह मानव-शोकानुभूति का यथोचित अभिनय करते हैं किन्तु गोस्वामीजी इस सब को भगवान् की लीला बताकर अकरुण रूप दे देते हैं। सामाजिक जो करुण की मर्मस्पर्शी अनुभूति कर रहा था गोस्वामीजी की इस प्रकार की टिप्पणी को सुनकर भगवान के अविलंब हाथ जोड़ लेता है, उनकी जय बोल देता है किन्तु मूल शोकानुभूति से विरत नहीं हो पाता क्योंकि भगवान् का अभिनय जनमानस के सर्वथा अनुकूल होता है जिसके कारण रसपरिपाक में कोई बाधा उपस्थित नहीं हो पाती। साथ ही रसानुभूति के पश्चात् ही गोस्वामीजी का यह समाचार प्रसारित होता है कि यह सब तो भगवान का अभिनयमात्र था, उनकी लीलामात्र थी। इस प्रकार करुणरस की अनुभूति जो इससे पूर्व ही रस-निष्पत्ति तक पहुँच चुकी है, अक्षुण्ण बनी रहती है। हाँ, यह अवश्य है कि गोस्वामीजी के इस प्रयत्न में रामकथा के रसिक भक्त बन गए और रामचरितमानस के साहित्यिक अनुशीलन के साथ धार्मिक पारायण भी होने लगे। इस प्रकार भक्तिरस को, जिसकी अब स्वतंत्र सत्ता सर्वमान्य हो चुकी है, बल मिला।

कथा के करुणप्रसंगों में कमी के साथ कथा के अन्तःपक्ष में अनुभूति के क्षेत्र में विशेष विकास भी हुआ। वाल्मीकि के समय में असह्य अभिव्यंजकों का विशद-वर्णन हुआ, शोकगत विभिन्न परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराया गया किन्तु अनुभूतिगत पक्ष अपेक्षाकृत इतना विकसित न हो सका। हिन्दी-कवियों पर वाल्मीकि के काव्य का अमिट एवं विस्तृत प्रभाव होते हुए भी हिन्दी-साहित्यगत रामकथा में प्रकट करुणरस के स्थलों में अपनी मौलिकता है जो मनोविज्ञानाश्रित तथ्यों पर आधारित है। अनुभूतिगत पक्ष के अति सूक्ष्म तत्वों का उद्‌घाटन इन कवियों के द्वारा हुआ। इस रूप में रामकथा के करुणप्रसंगों का विकास हुआ है।

मध्ययुगीत हिन्दी रामकाव्य के अन्तर्गत करुणरस का विकास—हिन्दी में रामकथा को लेकर काव्यरचना करनेवाले लगभग चालीस कवि हैं जिनमें मध्ययुगीन हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ तथा मार्गदर्शक मुख्यतः तीन कवि हैं— सूर, तुलसी और केशव। इन तीनों कवियों की कला का करुणरस की दृष्टि से सविस्तर अध्ययन पृथक्-पृथक् प्रकरणों के अन्तर्गत किया जा चुका है। यहाँ उस अध्ययन के आधार पर करुणरस के प्रसंगों का विकास देखना अभीष्ट है।

करुणरस के प्रसंगों को एक-एक करके देखने से पूर्व यह उचित होगा कि तीनों कवियों के दृष्टिकोणों पर तुलनात्मक दृष्टि से प्रकाश डाल लिया जाय जिससे उनके दृष्टिकोणों के अन्तर्गत विकास की सकारणता प्रकट हो सके।

सूर आचार्यजी के आदेशानुसार "कछु भगवल्लीला" वर्णन कर रहे हैं और गोस्वामीजी "स्वान्तः सुखाय" लिख रहे हैं तो आचार्य केशवदासजी "तिनके गुण कहिहौं सब सुख लहिहौं पापपुरातन भागैं" लिखकर पुरातन पापों से मुक्ति तथा सब सुखों की प्राप्ति के लिए रामचन्द्रिका का "बहु छन्द" में वर्णन करते हैं। इस प्रकार इन तीनों कवियों के दृष्टिकोणों के अनुकूल इनकी अभिव्यक्ति में भी विशेषता आगई है। सूर की रामकथा तथा तुलसी का रामचरितमानस जहाँ हृदतंत्री को झंकृत करते हैं वहाँ केशव की रामचन्द्रिका मस्तिष्क के आह्लाद का विषय बनती है। एक ओर कला अनायास आ गई है तो दूसरी ओर स्वयं कला के प्रदर्शन के लिए लेखनी उठाई गई है। सूर और तुलसी को अपने कुकवित्व का क्षोभ है तो केशव को अपने एवं अपने कुल के पाण्डित्य का गर्व है। इसीलिए सूर और तुलसी की कृति जन-जन का हार है तो दूसरी ओर केशव की कृति विद्वन्मण्डली की शोभा है।

करुणरस के प्रसंगों के अन्तर्गत तीनों कवियों के पृथक् दृष्टिकोण हैं, सूरदास तथा गोस्वामीजी भावपक्ष की ओर उन्मुख है तो आचार्य केशवदासजी, कलापक्ष की ओर। इसी कारण रामचन्द्रिका के प्रायः स्थल ऐसे हैं जहाँ रसपरिपाक संभव नहीं हुआ है। साथ ही आचार्यजी ने इन प्रसंगों को संक्षिप्त भी कर दिया है जिससे वर्णनगत पूर्णता क. अभाव भी खटकने लगता है।

दशरथ-मरण—रामवनवास-प्रसंग में दशरथ-मरण करुणरस का मर्मस्पर्शी प्रसंग है जिसको रामकथा का प्रथम प्रसंग कह सकते है[1]।

---

१. करुणमनोभाव के रू में "विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण का वनगमन" प्रसंग लिया जा सकता है और इसको प्रथम प्रसंग कह सकते है। सूर ने इस प्रसंग को साधारण कथन-मात्र के रूप में लिया है तथा रसव्यंजना का प्रश्न नहीं उठता। वह केवल इतना कहते हैं "दसरथ सौं रिषि आनि कह्यौ, असुरनि सौं जग होन न पावत; रामलषन तब संग दयौ।"

मानस में विश्वामित्रजी की "अप्रिय बानी"को सुनकर महाराज दशरथ को विशेष दुःख होता है जो उनके अनुभावों से प्रकट है—"हृदय कंप मुख दुति कुमुलानी"। महाराज दशरथ इस प्रसंग में अपने उत्कृष्ट पुत्रस्नेह का भी प्रकटीकरण करते है; "देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं, सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं" तथा "सब सुत प्रिय मोहि प्रान की नाईं, राम देत नहिं बनइ गोसाईं।" किन्तु समझाने-बुझाने से महाराज दशरथ का मोह नष्ट होता है और वह राम-लक्ष्मण को विश्वामित्रजी को सौंप देते हैं। मानस के इस प्रसंग में भी रसनिष्पति संभव नहीं हुई है। करुणमनोभाव पुत्रस्नेह की उत्कृष्टता में संभव होता किन्तु वह भी वर्णनमात्र होने के कारण प्रभावोत्पादक

सूर ने दशरथ-मरण प्रसंग में कर्त्तव्य एवं प्रेम के द्वन्द्व की पृष्ठभूमि देकर करुण की विशेष मर्मस्पर्शी अनुभूति की योजना की है। मरण-दशा को प्राप्त होने से पूर्व महाराज के शोक की निम्नलिखित तीन स्थिति विशेषरूप से अवलोकनीय हैं—

१. रामवनवास के लिए कैकेयी का वरदान माँगना तथा महाराज की विवशता। महाराज दशरथ अपने दुलारों को कर्त्तव्य की वेदी पर चढ़ा देते हैं और फिर प्रेम से कातर होकर "चारि जाम विस्राम" करने की प्रार्थना करते हैं तथा "फिरि-फिरि" उनकी बात चलाते हैं।

२. राम-सीता-लक्ष्मण का प्रयाण—महाराज उस दृश्य को देखकर अचेत हो जाते हैं।

३. सुमंत्र वन से अकेले ही आते हैं। महाराज दशरथ को आशा थी कि वन से सुमंत्र के साथ राम-सीता-लक्ष्मण वापिस आजावेंगे किन्तु ऐसा नहीं हुआ और उनक परम आशा घोर निराशा में परिणत होगई। फलतः उनकी मृत्यु होगई।

सूर के महाराज दशरथ सरल हृदय, विश्वासी तथा बालकों के समान कल्पनाशील व्यक्ति हैं। इसी कारण उनकी मृत्यु सांघातिक रूप में दिखलाई गई है।

तुलसी के महाराज में प्रेम के साथ विवेक तथा राजमर्यादा के अप्रत्यक्षरूप में दर्शन होते है। यद्यपि तुलसी के महाराज दशरथ भी सूर के महाराज की भाँति कल्पना करते हैं, सुमंत्र के साथ ही रामसीतालक्ष्मण को वन भेजते हैं किन्तु उनकी कल्पना सूर के महाराज दशरथ की भाँति परम विश्वासपूर्ण नहीं थी। जब सुमंत्र उनको राम के वापिस न आने की बात बतलाते है तो उनकी तत्काल मृत्यु नहीं हो जाती प्रत्युत उसके लिए गोस्वामीजी को अन्य उपादानों की भी योजना करनी पड़ती

नहीं होसका। केशव की रामचन्द्रिका में इस प्रसंग का सुन्दर चित्र उपस्थित हुआ है जिससे करुणमानोभाव मर्मस्पर्शी बन गया है तथा संक्षिप्त होते हुए भी यह प्रसंग विशेषरूप से उल्लेखनीय है। उपर्युक्त दोनों प्रसंगों में राम-लक्ष्मण की विदा के समय का चित्र चित्रित नहीं किया गया। विश्वामित्र के साथ जव राम-लक्ष्मण जाते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त प्रसंगों में महाराज दशरथ अविचलित खड़े देखते रहते हैं जबकि वर्णन के अन्तर्गत वह राम-लक्ष्मण को प्राणों से भी प्रिय बतलाते हैं। रामचन्द्रिका में आचार्यजी ने इस कमी को दूर कर दिया है। विदा का सुन्दर चित्र यहाँ अवलोकनीय है जो परम पुत्रस्नेही महाराज दशरथ के लिए उपयुक्त एवं अपेक्षित है—

"रामचलत नृप के युग लोचन, बारि भरित भये बारिद रोचन।
पायन परि ऋषि के सजि मौनहिं, केशव उठि गये भीतर भौनहिं।"

इस प्रसंग के संदर्भ में महाराज दशरथ की पुत्रवियोग में मृत्यु संभव प्रतीत होती है। इसी प्रकार के संदर्भ को पृष्ठभूमि में देने का प्रयत्न यद्यपि गोस्वामीजी ने भी किया है। जिसका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है किन्तु वह प्रयत्न इतिवृत्ति रूप में ही रह गया है। आचार्य केशव की भाँति मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित नहीं हो सका है।

है। तापसअंधशाप की स्मृति के संदर्भ में ही महाराज का देहावसान होता है। जहाँ तक वर्णन एवं विवरण का संबंध है, गो० तुलसीदासजी ने महाराज दशरथ की मृत्यु का बड़े विस्तार से वर्णन किया है। उनके वर्णन की भी उपर्युक्त तीन स्थितियाँ की जा सकती हैं। इन तीनों स्थितियों में कवि की दृष्टि कदाचित् मनोवैज्ञानिक सकारणता की ओर रही है जबकि सूर की दृष्टि भावों के अतिरेक तथा सरल एवं बालसुलभ मर्म-स्पर्शी अनुभूतियों के संघटन की ओर है। सूर के महाराज दशरथ के साथ इसी कारण अति आत्मीयता-सी अनुभव होती है और उनकी मरणासन्न दशा में उनके समीप पहुँचने तथा विह्वल होकर रोने की इच्छा होती है तो तुलसी के महाराज की परम वेदना में भी राजा-प्रजा का सम्बन्ध बना रहता है तथा कर्त्तव्यजन्य विवशता का ध्यान करके बड़ा कष्ट होता है, करुण आती है और यह देखकर आश्चर्य होता है कि राजा तक अपनी परिस्थितियों में कितने विवश है! आचार्य केशवदासजी ने राम के प्रयाण ही महाराज की मृत्यु का कारण बना दिया है। प्रयाण की बात को सुनते ही महाराज दशरथ विकल हो जाते है और उनकी मृत्यु 'ब्रह्मरंध्र फोरि जीव मिल्यो जुलोक जाय' हो जाती है, आचार्यजी ने मृत्यु के लिए जिस शब्दावली का प्रयोग किया है, वह सामान्यत: बोधगम्य न होने के कारण प्रसंग की मार्मिकता को प्रकट नहीं कर पाती। ऐसा लगता है मानो किसी योगी ने समाधि ली हो। इस प्रकार इस प्रसंग का केशव की कृति में विकास नहीं हो सका। सूर और तुलसी तो दो पृथक् दृष्टिकोण लेकर चले ही हैं।

भरत का शोक—सूर तथा गोस्वामीजी के भरत सरल हृदय तथा अबोध प्रतीत होते हैं। वह आत्मग्लानिगत मनोभावों के संघात में बालक की भाँति किं-कर्त्तव्यविमूढ़ हैं। शपथ एवं घोर परिताप के अन्तर्गत भरत की अधोगति की याचना करना स्वाभाविक प्रतीत होता है। उधर केशव के भरत को इस अवसर पर इसी बात की विशेष चिन्ता है कि कहीं माता कोशल्या तथा अन्य प्रियजन एवं पुरजन कैकेयी-वरदान प्रसंग में माता कैकेयी के साथ उनकी सहमति न समझ बैठें। इस प्रकार उनको आत्मग्लानि एवं आत्मनिन्दा के पीछे सफाई देने की लालसा अधिक स्पष्ट दिखलाई देती है। साथ ही केशव के भरत में अमर्ष के भी दर्शन होते हैं किन्तु सूर तथा गो-स्वामीजी के भरत परम सहनशील, दु:ख से अति कातर तथा असहाय ही दिखलाई देते हैं।

भरत का अमर्ष रामचन्द्रिका में सीतानिर्वासन तथा लवकुश से रामदल के युद्ध-प्रसंग में भी प्रकट होता है। भरत अग्रज राम के सामने पग-पग पर विरोध करते हुए दिखलाई देते हैं। भरत की विवश एवं असहाय दशा के दर्शन आचार्यजी नहीं करा सके। सीतानिर्वासन के समय विभिन्न प्रकार से समझाने-बुझाने पर भी जब राम नहीं मानते तो भरत के विवशतागत अमर्ष के दर्शन निम्नलिखित रूप में होते हैं—

"और होइ तो जानिये, प्रभु सों कहा बसाय।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि भरत के चरित्र में करुणरस का विकास संभव न हो सका अपितु सूर एवं गोस्वामी जी के चरित्रचत्रिण से कहीं अधिक संकुचित रूप आचार्य जी के वर्णन में प्रकट हुआ है।

रामवनवास प्रसंग भी जिसके अन्तर्गत सूर तथा गोस्वामीजी ने करुण का बहुमुखी प्रसार दिखलाया है—पुरिजन, पुरजन, पशु, पक्षी आदि सभी इस वियोग में विकल एवं संतप्त दिखलाए गए हैं, आचार्य जी की लेखनी द्वारा अति सूक्ष्म एवं संक्षिप्त रूप में प्रकट हुआ है। आचार्यजी ने इस स्थल पर न अलंकारों का वैभव ही प्रकट किया है जनव्यापी करुणपुकार को ही हृदयंगम कराया है। स्पष्ट ही यह प्रसंग सूर तथा उनसे अधिक गोस्वामीजी के मानस में पूर्ण एवं चरम रूप में विकसित हो चुका था। उसके पश्चात् इस प्रसंग का और अधिक विकास संभवतः संभव न था।

चित्रकूट में दशरथ-मरण की सूचना—सूर ने साधारण रूप से राम को इस दुःखद संवाद से सूचित करा दिया है—"तात मरन सुनि स्रवन, कृपानिधि धरनि परे मुरझाई" मानस में गुरु वशिष्ठ दशरथ-मरण की सूचना निम्नलिखित रूप में देते हैं—

"कहि जग गति मायिक मुनिनाथा।
कहे कछुक परमारथ गाथा॥
नृपकर सुरपुर गवनु सुनावा।
सुनि रघुनाथ दुसहु दुखु पावा॥"

आचार्य केशवदासजी ने इस प्रसंग में व्यंजना को प्रश्रय दिया है और इस प्रसंग की सुन्दर अभिव्यक्ति की है जो इस प्रसंग के विकास को प्रकट करती है—

"तब पूछियो रघुराइ,
सुख है पिता तन माइ।"

गोस्वामीजी के विस्तृत प्रसंग में ऐसा ज्ञात होता है मानों महाराज को विस्मृत ही कर दिया गया हो। यद्यपि मानस तथा रामचन्द्रिका में सुहागचिह्नों के सम्बन्ध में कोई संकेत नहीं है तथापि यह मानना कि उस समय सुहागचिह्नों का कोई प्रयोग ही नहीं होता था, भूल होगी।[1] इन सुहागचिह्नों के अभाव में माताओं का वैधव्य सहज ही स्पष्ट रहा होगा किन्तु इस ओर गोस्वामीजी का ध्यान अति विलम्ब के साथ गया

१. मीरा ने सुहागचिह्नों की ओर निम्नलिखित पद में संकेत किया है—
"मैं जाण्यो नाहीं प्रभु को मिलन कैसे होइ री,
....
चुरियाँ फोरुँ माँग बखेरुँ, कजरा मैं डारुँ धोइ री।
....
मीरा के प्रभु हरि अबिनासी, मिलि बिछरो मति कोइ री॥"
—(चतु०—मीराबाई की पदावली, पद—४८, पृ० २०)

है। गोस्वामी जी रामभरत मिलाप, माता के चरणस्पर्श आदि सम्पूर्ण प्रसंगों को समाप्त करने के पश्चात् महाराज के मरण की सूचना गुरुजी द्वारा दिलवाते हैं। पाठक की जिज्ञासा अतृप्त ही बची रहती है जब वह देखता है कि इस अवसर पर राम जैसे मर्यादा-पुरुषोत्तम माताओं की शोकसंतप्त दशा को देखकर महाराज दशरथ के सम्बन्ध में कोई शंका नहीं करते तथा आचार्य केशव के राम की भाँति स्वयं नहीं पूछते—

"सुख है पिता तन माइ।"

इस प्रसंग का मनोवैज्ञानिक चरम उत्कर्ष भी आचार्यजी की रामचन्द्रिका में इस शोक-समाचार को प्राप्त करने के पश्चात् शोकानुभूति के अन्तर्गत प्रकट हुआ है।

सूर और गोस्वामी जी ने इस प्रसंग को निम्नलिखित शब्दों में प्रकट किया है। इन शब्दों में 'राम' की शोकानुभूति किसी भी प्रकार कम मर्मस्पर्शी नहीं है किन्तु प्रसंग को इतिवृत्तात्मक रूप में ही प्रस्तुत किया है।

सूर —"तात मरन सुनि स्रवन कृपानिधि धरनि परे मुरझाइ।

... ...

दुरलभ भयौ दरस दसरथ कौ, सो अपराध हमारे।"

गोस्वामीजी—"नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा, सुनि रघुनाथ दुसहु दुखु पावा।
मरन हेतु निज नेहु बिचारी, भे अति बिकल धीर धुर धारी।"

सूर ने किन्तु अन्यत्र दूसरे पद में शोकमत सहानुभूति तथा भावव्यंजना की ओर सुन्दर संकेत किया है। हो सकता है इसी प्रसंग से आचार्यजी को अपने प्रसंग के लिए प्रेरणा मिली हो।

"भ्रातमुख निरखि राम बिलखाने।
मुंडित केस-सीस, विह्वल दोउ, उमँगि कंठ लपटाने।"

रामचन्द्रिका में इस प्रसंग को उत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह प्रसंग गिने-चुने शब्दों में होने के कारण संक्षिप्त अवश्य है किन्तु है गागरमें सागर के रूप में अति प्रभावशाली।

रामचन्द्रजी माताओं से पूछते हैं—"सुख है पिता तन माइ" मनोविज्ञान के आचार्य, आचार्य केशवदासजी समझते हैं कि इस अवसर पर कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता। इसीलिए वह इस मनोवैज्ञानिक गुत्थी को मानस-कला के दिग्दर्शन के अन्तर्गत निम्नलिखित रूप में सुलझाते हैं—

"तब पुत्र कौ मुख जोइ,
क्रम ते उठीं सब रोइ।"

केशव के इस मौन चित्र ने कला के उत्कृष्ट उदाहरण की सृष्टि की है। गोस्वामीजी से संभवतः इस मौन-उत्तर की खोज न हो सकी। इसीलिए उन्होंने इस

प्रसंग को राम की जिज्ञासा के अन्तर्गत न रखकर गुरुजी के कथन के अन्तर्गत रखा है।

माताएँ राम को पिता की कुशलक्षेम का क्या उत्तर देतीं ? परम शोकानुभूति में क्या उत्तर संभव हो सकता था ? इन सब तथ्यों से आचार्य जी भलीभाँति परिचित थे। साथ ही मनोविज्ञान के मर्मज्ञ आचार्य केशवदासजी यह भी जानते थे कि ऐसे प्रश्नों के उत्तर किस प्रकार दिए जा सकते हैं। ऐसे प्रश्नों के उत्तर शोकाभिभूत मूक वाणी नहीं दे सकती। इनका उत्तर हृदय देता है। शोकानुभूति का प्रबल वेग अश्रुमोचन की सृष्टि कर स्थिति का स्पष्टीकरण कर देता है। यह अश्रुमोचन किस समय संभव होता है इस मनोवैज्ञानिक तथ्य से भी आचार्यजी परिचित थे। पुत्रमिलन के सुख एवं आनन्द में पुत्र की शोकानुभूति के प्रति जिज्ञासा निश्चय ही अश्रुमोचन के लिए उपयुक्त अवसर था। इसीलिए आचार्यजी ने गिने-चुने शब्दों में करुण की अनुभूति को उत्कृष्ट रूप में प्रकट किया—

"तब पुत्र कौ मुख जोइ, क्रम तें उठीं सब रोइ।"

इस शोकानुभूति का प्रभाव चराचर जगत पर समान रूप से प्रतिलक्षित होता है। सूर ने इस प्रभाव का कदाचित् वर्णन नहीं किया। तुलसी और केशव ने इस तथ्य की ओर स्पष्ट संकेत किया है।

गोस्वामीजी ने इस शोकानुभूति के दो अवसर रखे हैं—

१—भरत आगमन।

२—जनक आगमन।

इस शोकानुभूति की चरम व्यापकता का दिग्दर्शन जनक आगमन के अवसर पर कराया गया है। दूसरी बार महाराज जनक के आगमन पर यह शोकानुभूति द्विगुणित मर्मस्पर्शी बन गई है। आचार्यजी इस सर्वव्यापी शोकानुभूति में चराचर जगत का अश्रमोचन दिखलाकर शोक एवं संताप की दशा को प्रकट करते हैं—

"आँसुन सों सब पर्वत धोये जड़ जंगम को सब जीवहु रोये।"

गोस्वामीजी आचार्यजी से आगे बढ़कर खिन्नता तथा उदासीनता का दिग्दर्शन कराते हैं—

"सकल सोक संकुल नर नारी,
सो बासरु बीतेउ बिनु बारी।
पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू,
प्रिय परिजन कर कौन बिचारू।"

इस प्रसंग में गोस्वामीजी ने शोकानुभूति के क्रमिक विकास को दिखलाते हुए "खिन्न" दशा को प्रकट किया है। उनका यह प्रयास करुणरस के इस प्रसंग में अनुपमेय है। आचार्यजी ने संभवतः इसीलिए इस प्रसंग में संकेतमात्र वर्णन से ही संतोष कर लिया।

सीताहरण प्रसंग—सीताहरण प्रसंग में सीता का करुणक्रन्दन जन-जनव्यापी वह करुण पुकार है जिसके अन्तर्गत सीता की रक्षायाचना मुख्य रूप से व्याप्त है। सूर की सीता इस तथ्य का अपवाद कही जानी चाहिए। वह धैर्य धारण करती हुई दिखलाई देती है जब वह कहती है—

"सूर सीय पछितानि यहं कहि,
करमरेख मेटी नहि जाई।"

मानस के सीताहरण प्रसंग में सीता परम विवश एवं असहाय तथा परम निराश हैं। उनको विश्वास नहीं होता कि उनकी इस करुण पुकार को कोई प्रभु तक पहुँचा देगा—

"विपति मोरि को प्रभुहि सुनावा,
पुरोडास चह रासभ खावा।"

इससे आगे आत्मनिरीक्षण एवं आत्मग्लानि के फलस्वरूप अपने अपराध तथा अपने दोष को देखते हुए सीताजी अपनी दशा को अति दयनीय बना लेती है। जब देखती हैं कि इस आपत्ति का कारण वह स्वयं ही हैं तो उनकी शोकानुभूति द्विगुणित गंभीर बन जाती है। उनकी मर्मस्पर्शी वेदना निम्नलिखित रूप में प्रकट होती है—

"हा जग एक वीर रघुराया, केहि अपराध बिसारेहु दाया।
हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा, सोफलु पायऊँ कीन्हेउ रोसा।।"

आचार्य केशवदास जी ने इस प्रसंग में प्रायः संकेतमात्र वर्णन का सहारा लिया है। रामचन्द्रिका की सीता की दशा इतनी निस्सहाय एवं विवश नही दिखलाई देती। अप्रत्यक्ष रूप मे उनको विश्वास है कि उनके प्रभु उनकी करुण पुकार को सुन रहे है। इसीलिए वह अपना पता बताकर सन्तोष कर लेना चाहती है—

"लंकाधिनाथ वश जानहु मोहि बीर।"

लक्ष्मण की शक्ति एवं सामर्थ्य में सीता जी को विश्वास है। इसलिए वह उनसे शीघ्र ही बन्धन से मुक्त कराने की प्रार्थना करती हैं—

"हा पुत्र लक्ष्मण, छुड़ावहु वेगि मोही।"

इस प्रसंग में आचार्य जी द्वारा सीता की करुण पुकार आदि पर प्रकाश नहीं डाला गया। इस प्रकार रामचन्द्रिका में इस प्रसंग का विकास सम्भव न हो सका।

अशोक वाटिका में सीता की करुणदशा—सूर की सीता की करुणदशा का दर्शन पहले गीध और बाद में हनुमान करते हैं। तुलसी और केशव ने गीध द्वारा सीता की करुणदशा के दर्शन तथा वर्णन के प्रसंग को छोड़ दिया है। मानस में गीध अपनी अपार दृष्टि के बल पर सीता को अशोक वाटिका में देख लेता है और उनका पता बतला देता है किन्तु उनकी करुणदशा का वर्णन नहीं करता। वह केवल इतना

कहता है "तहँ अशोक उपबन जहँ रहई, सीता बैठि सोच रत रहई।"

यहाँ सूर अति मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित करते हैं जिसको तुलसी और केशव कदाचित और अधिक विकसित न कर सके—"बिछुरीं मनौ संग तैं हिरनी,···रामनाम की सरनी ?"

सूर के हनुमान् अशोकवाटिका में सीता को निम्नलिखित रूप में देखते हैं—

"बहु निसाचरी ·· ज्यौं राहु[1]।"

जबकि मानस के हनुमान सीता को निम्नलिखित रूप में देखते हैं—

"कृस तनु सीस जटा एक बेनी,
जपति हृदय रघुपति गुन श्रेनी।
निज पद नयन दिए मन·· रामपदकमल लीन।"

उधर रामचन्द्रिका के हनुमान भी सीता के दर्शन इसी रूप में करते हैं—

"धरे एक बेणी मिली मैल सारी,
मृणाली मनो पंकतें काढ़ि डारी।
सदा राम नाम रटै दीन बानी,
चहूँ ओर हैं राकसी दुःखदानी।"

आचार्य जी इस करुणापूर्ण दशा के दर्शन कराने के पश्चात् "चहूँ ओर हैं राकसी दुःखदानी" कहकर परिस्थिति की मर्मस्पर्शी अनुभूति को प्रकट करना चाहते हैं। सीता यदि अकेली होतीं तो उनकी दशा इतनी मर्मस्पर्शी न होती जितनी इस समय इन "राकसी दुःखदानी" के बीच उनकी दशा मर्मस्पर्शी बन गई है। सूर ने भी इस तथ्य की ओर संकेत किया है "बहु निसाचरी मध्य जानकी।"

आचार्य जी इस परिस्थिति की समकक्ष कष्टकर दशाओं का वर्णन करते हुए इस विशेष परिस्थिति की दारुण अनुभूति का परिज्ञान कराते हैं—

१—मानों चित्त की चिन्ताओं में ग्रसित बुद्धि हो।
२—मानों दाँतों के बीच जिह्वा हो।
३—मानों राहु की स्त्रियों से घिरी हुई चारु चन्द्रकला हो।
४—मानों जीव की ज्योति माया से आवृत हो।
५—मानों अविद्याओं के बीच विद्या हो।
६—मानों शंबर असुर की स्त्रियों के बीच रति हो।

इस प्रकार आचार्यजी सीता की परम असहाय एवं विवशतागत का चित्रण कर करुणरस की मार्मिक अनुभूति कराना चाहते हैं। उनकी सीता जितनी विरहाकुल

---

१. देखिए पूरे पद 'सूर की रामकथा में करुणरस' प्रकरण के शीर्षक 'सीता की करुणापूर्ण दशा, के अन्तर्गत।

हैं उससे कहीं अधिक त्रसित तथा पीड़ित है। सूर के उपर्युक्त दोनों पदों की छाया केशवदास जी पर है किन्तु उन्होंने विभिन्न उत्प्रेक्षाओं के साथ प्रसंग को चित्रित करने का विशेष प्रयास किया है। "चंद गह्यौ ज्यों राहु"—सूर की मूल उत्प्रेक्षा है जिससे केशवदास जी ने तत्त्वविवेचिनी प्रेरणा प्राप्त की है किन्तु अपनी सूक्ष्म बुद्धि के बल पर उन्होंने इस उत्प्रेक्षा के रूप को परिमार्जन किया है। उन्होंने "राहु" के स्थान पर "राहु की स्त्रियों" से घिरी हुई चारु चन्द्रकला कहा है और इस प्रकार प्रसंग में उल्लिखित राक्षसनियों के लिए समलिङ्ग शब्द को रखा है जिसकी ओर 'सूर' की दृष्टि नहीं गई और वह उनके लिए "राहु" शब्द प्रयोग कर गए। इस प्रसंग में कवि ने हनुमानजी की अनुभूति का दिग्दर्शन नहीं कराया। "हनूमान ऐसी लखी रामरामा" कहकर कवि मौन हो जाता है। हनुमान की दशा का अनुमान लगाने के लिए कवि ने पाठक को स्वतंत्र छोड़ दिया है। इस प्रकार इस योजना द्वारा कवि ने एक ओर दुःख की अनिर्वचनीयता की प्रतिष्ठा की है तो दूसरी ओर पाठक की कल्पना के लिए सामग्री छोड़कर कलामर्मज्ञता का सुन्दर परिचय दिया है।

गोस्वामीजी ने इस प्रसंग को इतना महत्त्व नहीं दिया। उनकी सीता विरह-व्यथित ही दिखलाई देती हैं। उनका त्रसित रूप दिखलाकर यह प्रसंग विशेष करुणा-पूर्ण बन सकता था इस तथ्य से गोस्वामी जी परिचित थे किन्तु कदाचित् प्रश्न की मर्यादा की रक्षा के लिए वह इस करुणापूर्ण प्रसंग की कल्पना न कर सके। आचार्य जी की भाँति गोस्वामी जी त्रास योजना करते हैं किन्तु अविलम्ब प्रभु की शक्ति का दिग्दर्शन कराकर इस प्रसंग पर पटाक्षेप कर देते हैं—

"कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई,
सीतहि बहुबिधि त्रासहु जाई।"

तथा इसके साथ ही त्रिजटा के स्वप्न की योजना कर इस त्रासप्रसंग को समाप्त कर देते हैं—

"तासु बचन सुनि ते सब डरीं,
जनकसुता के चरनन्हि परीं।"

दूसरा प्रसंग अशोकवाटिका में रावण आगमन के समय प्रकट होता है। हनुमानजी इस प्रसंग में भी दर्शक के रूप में रहते हैं।

इस प्रसंग में गोस्वामी जी मौन दिखलाई देते हैं। वह केवल रावण के आगमन की सूचनामात्र देकर आगे बढ़ जाते हैं। इस सूचना का सीता जी पर क्या प्रभाव पड़ा इस ओर वह संकेत नहीं करते। स्पष्ट ही उनकी सीता दृढ़ तथा निर्भीक हैं। रावण आगमन समाचार से सीता की करुणदशा में और कोई विशेषता नहीं आती, किन्तु आचार्य जी इस अवसर पर भी गिनेचुने शब्दों में करुणरस की अलौकिक अनुभूति कराते हैं। उनकी सीता त्रसित तथा भयभीत सीता हैं। वह एक सामान्य अबला की भाँति विवश एवं असहाय हैं। इसीलिए रावण आगमन से उनकी साधारण

करुणापूर्ण दशा अति करुणापूर्ण तथा परम मर्मस्पर्शी बन जाती है। आचार्य जी ने इस प्रसंग में करुण रस को मनोवैज्ञानिक प्रगति प्रदान की है जिससे अनुभूति की मार्मिकता अति स्वाभाविक रूप में प्रकट हो सकी है—

१—रावण के आगमन को सुनकर महारानी जी को महान दुःख होता है।

२—अपने सब अङ्गों को अपने शरीर में छिपाती है।
(नारीसुलभ लज्जा का सूक्ष्म मनौवैज्ञानिक अध्ययन आचार्यजी की इस कल्पना का आधार है)।

३—नीचे दृष्टि किए हुए अश्रुधारा बहाने लगती है।[१]

कहना न होगा कि इस प्रसंग में आचार्य जी रावण आगमन के प्रभाव का क्रमिक विकास दिखलाते हुए महारानी जी की असहाय दशा का अति समीप से अध्ययन करते हैं।

केशव की सीता की विवश, असहाय तथा परम दुःखी दशा का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उनकी सीता रावण आगमन समाचार से ही इतनी त्रसित, भयभीत तथा दुःखी हैं। गोस्वामी जी की सीता दूसरी ओर रावण का डटकर सामना करती हैं। वह निर्भीक होकर कटु उत्तर दे सकती हैं तथा रावण की कृपाण के सामने अपना सिर झुका सकती हैं।[२]

इस प्रकार स्पष्ट है कि आचार्य जी ने इस प्रसंग को करुणरस की दृष्टि से विकसित रूप दिया है तथा मानस की इस कमी को पूरा किया है।

लक्ष्मणशक्ति पर राम-विलाप—गोस्वामी जी के राम लक्ष्मण-शक्ति के समाचार तक ही नहीं प्रत्युत आधी रात व्यतीत होने तक धैर्य धारण किए रहते हैं। "अर्ध रात्रि गई कपि नहिं आयउ" देखकर राम निराश एवं अधीर हो जाते है। "उठाइ अनुज उर लाय" वह एक साथ प्रलाप करने लगते हैं। मानों शोक का पारावार जो अब तक किसी प्रकार रुका हुआ था एक साथ फूट पड़ा हो। इस विलम्ब के ही कारण गोस्वामी जी के राम की शोकानुभूति क्रमिक विकास के रूप में प्रकट न होकर एक साथ प्रलाप से प्रारम्भ होती है। सामाजिक अथवा पाठक आश्रय को इस प्रकार विलंब बिना शोकानुभूति के किस प्रकार देख सकता है। यह विलंब उसको अखरने लगता

---

१. "तहाँ देव द्वेषी दसग्रीव आयो,
सुन्यो देवि सीता महादुःख पायो।
सबै अङ्ग लै अंग ही में दुरायो,
अधोदृष्टि कै अश्रुधारा बहायो॥" —(लंका १३/५६)

२. "सठ सूने हरि आनेहि मोही, अधम निलज्ज लाज नहिं तोही।
चन्द्रहास हरु मम परितापं, रघुपति विरह अनल संजातं॥"

है। इसीलिए आचार्य जी ने रामचन्द्र जी के धैर्य को संकुचित रूप देकर इस प्रसंग के अनुकूल शोकानुभूति को शीघ्र ही प्रकट करने की योजना की। उनके राम लक्ष्मण शक्ति का दुःखद समाचार सुनकर धैर्य धारण कर लेते हैं किन्तु जब लक्ष्मण को उनके सामने लाया जाता है तो वह धैर्य खो बैठते हैं—

"लक्ष्मण राम जहीं अवलोक्यो,
नैनन ते न रह्यौ जल रोक्यो।"

आचार्य जी द्वारा आयोजित इस परिवर्तन से पाठक को विशेष संतोष होता है। मनोवैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर भी यह संभव नहीं कि लक्ष्मण कौ देखने के पश्चात् भी राम धैर्य धारण किए रहते। सूर ने भी इस तथ्य की ओर ध्यान दिया है और उनके राम भी "भूतल बंधु पर्यौ" देखकर "करुना करत सूर कोसलपति, नैननि नीर झर्यौ" तथा दूसरे पद में इसी भाव को और स्पष्ट करते हुए कहा है—

"निरखि मुख राघव धरत न धीर"
भए अति अरुन विसाल···
कमल-दल लोचन मोचन नीर।"

आचार्य जी ने सूर की छाया में मनोवैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर इस प्रसंग का उपर्युक्त रूप में विकास किया है।

राम के विलाप में गोस्वामीजी ने प्रसंगानुकूल लक्ष्मण को उठाकर हृदय से लगाने का उल्लेख किया है जिससे इस प्रसंग में स्वाभाविकता तथा मार्मिकता आ गई है। इतनी देर तक धैर्य धारण किए हुए राम की शोकानुभूति का प्रारम्भ इस अनुभाव द्वारा दिखला कर गोस्वामीजी ने मनोवैज्ञानिक संपुष्टि प्राप्त की है। यद्यपि आचार्य जी ने इस अनुभाव की ओर कोई संकेत नहीं किया है तथापि यह प्रतिलक्षित होता है कि लक्ष्मण उनकी गोद में हैं।

दोनों ही कलाकारों की दृष्टि शोकानुभूतिगत निम्नलिखित तथ्यों की ओर गई है—

१—शोकानुभूतिगत परम लालसा—

गोस्वामी जी—"अस विचारि जिय जागहु ताता।"
आचार्य जी—"बारक लक्ष्मण मोहि बिलोकी,
मोकहँ प्राण चले तजि रोको!"

२—लक्ष्मण के गुणों का वर्णन तथा उपकारों का कथन।

गोस्वामी जी के राम को केवल यही सोच है कि "जैहऊँ अवध कौन मुहु लाई" किन्तु आचार्य जी इससे कहीं आगे बढ़ जाते है तथा उनके राम को "भ्रातृहानि" से भी कहीं अधिक शंका "देन न पाई विभीषण लंका" की है। सूर ने भी इस तथ्य की ओर स्पष्ट संकेत किया है तथा राम के हृदय की इस चिन्ता का

दिग्दर्शन कराया है—

"बीचहिं भई और की औरे, भयौ सत्रु कौ भायौ,
ह्वै है कहा बिभीषन की गति, यहै सोच जिय गुनिकै।"

राम अपने प्रण को प्राणों की बाजी लगाकर निभाने वाले "धर्म धुरीन" पिता के योग्य पुत्र हैं तथा उनको भी प्रणनिर्वाह की विशेष चिन्ता है। इस प्रकार राम की आत्मा का तथ्यत: प्रकटीकरण आचार्यजी के निम्नलिखित शब्दों में हुआ है—

"बोलि उठौ प्रभु को पन पारौ,
नातरु होत है मो मुख कारो।"

इस विशेषता के साथ आचार्यजी ने मानसगत अप्रिय प्रसंग, नारी और भाई के तुलनात्मक अध्ययन को छोड़कर इस प्रसंग की स्वाभाविक शालीनता की रक्षा की है। कहा नहीं जा सकता गोस्वामी जी किस धुन में भ्रातृशोक के अन्तर्गत नारी की मानमर्यादा को क्षतविक्षत करने के लिए उतारू हो गए। उनके राम एक अति साधारण एवं अविवेकी मनुष्य की भाँति हेतु को ही अपनी कल्पना का आधार बना लेते हैं जो सामाजिक के अनुकूल नहीं पड़ता।

राम की निम्नलिखित अभिव्यक्ति के अन्तर्गत सीता के लिए उनके हृदय में कोई स्थान नहीं रहता—

"जैहउँ अवध कौन मुहु लाई,
नारि हेतु प्रिय भाई गँवाई।
बरु अपजस सहतेउ जग माँहीं,
नारि हानि बिसेष छति नाहीं॥"

पाठक के लिए जितने लक्ष्मण मान्य हैं उनसे कहीं अधिक महारानी सीता भी। अतएव महारानी जी की ओर लक्षित राम के यह शब्द पाठक के चित्त को उद्विग्न कर देते हैं। पाठक की मानस दशा का आचार्य जी ने समीप से अध्ययन किया तथा इस प्रसंग को 'चन्द्रिका' में स्थान न देकर एक ओर उन्होंने लोक-भावना की रक्षा की तो दूसरी ओर ग्लानि एवं घृणा से इस प्रसंग को विरत कर करुण की प्राण-प्रतिष्ठा की।

गोस्वामी जी ने उपर्युक्त तथ्य की सकारणता का अनुभव किया और इसीलिए उन्होंने भी गीतावली से इस प्रसंग को निकाल कर करुण की अनुकूल-अनुभूति की ओर ही विशेष ध्यान दिया—

"मो पै तौ न कछू ह्वै आई।
और निबाहि भली विधि भायप चल्यौ लखन सो भाई।
पुर, पितुमातु, सकल सुख परिहरि जेहि बन बिपति बटाई।
ता संग हौं सुरलोक सोक तजि सक्यो न प्रान पठाई।
जानत हौं या उर कठोर तें कुलिस कठिनता पाई।

सुमिरि सनेह सुमित्रा-सुत को दरकि दरार न जाई।
तात मरन, तिय हरन, गीध-बध, भुज बाहिनी गँवाई।
तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहिं कालिमा लाई॥"

तथा

"मेरो सब पुरुषारथ थाको।
बिपति बँटावन बँधु-बाहु बिनु करौं भरोसो काको।
....
गिरि कानन जैहैं साखामृग, हौ पुनि अनुज संघाती।
ह्वै है कहा बिभीषन की गति, रही सोच भरि छाती।

विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति

बालिवध पर तारा-विलाप—तारा की शोकानुभूति का प्रसंग केवल मानस में प्रकट हुआ है। रामचन्द्रिका में इस प्रसंग को स्थान नहीं मिला है। आचार्यजी विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति के प्रति गोस्वामी जी से भी अधिक उदासीन थे। इसीलिए प्रायः प्रसंग अति संक्षिष्त रूप में प्रकट हुए है तथा यह प्रसंग छोड़ ही दिया गया।

रावण-शोकानुभूति—रावण-शोकानुभूति तीन अवसरों पर प्रकट हुई है—

१—अक्षयवध।
२—कुम्भकर्ण वध।
३—मेघनाथवध।

अक्षयवध तथा कुम्भकर्णवध अति संक्षिप्त रूप में प्रकट हुए हैं।

अक्षयवध—

गोस्वामी जी—"सो सुनि रावन भयउ दुखारा।"
आचार्यजी—"मारो अक्ष सुनो जहीं रावण अति पछिताय।"

कुम्भकर्णवध—

गोस्वामीजी—"बहु बिलाप दसकंधर करई,
बन्धु सीस पुनि-पुनि उर धरई।"
आचार्यजी —"दशग्रीव शोक ग्रस्यो लोकहारी,
भयो लंक के मध्य आतंक भारी।"

इस प्रकार इन दोनों प्रसंगों में रावण की शोकानुभूति संकेतमात्र रूप में ही वर्णन की गई है। तब भी आचार्य जी की अपेक्षा गोस्वामी जी की दृष्टि शोकानुभूति के प्रकटीकरण की ओर अधिक है। आचार्य जी "पछिताय" तथा "शोकग्रस्यो" शब्दों द्वारा केवल शोकानुभूति की सूचनामात्र देते हैं किन्तु गोस्वामीजी ने रावण के दुःखी होने तथा उसके "बहु विलाप" की ओर संकेत किया है। "बहु विलाप" के साथ "बन्धु सीस पुनि-पुनि उर धरई" लिखकर गोस्वामीजी ने करुण चित्र को स्पष्टरूप से चित्रित करने का प्रयत्न किया है। रावण राक्षस है यह ठीक है किन्तु उसको भी

"बन्धु बिछोह" पर अपार दुःख होता है तथा वह भी शोकानुभूतिगत उन्हीं अनुभावों का अनुभव करता है जिनको मनुष्यमात्र अनुभव करते है। इस प्रकार रावण की शोकानुभूति के साथ सहानुभूति प्रकट कर गोस्वामी जी अपनी उदारता का परिचय देते हैं।

मेघनादवध पर गोस्वामी जी रावण की मूर्च्छा का तथा आचार्य जी विशेष विलाप का वर्णन करते है—

गोस्वामीजी—"सुत वध सुना दसानन जबहीं,
मुरुछित भयउ परेउ महि तबहीं।"

आचार्यजी—"देख्यो सिर अंजुलि में जबहीं,
हा हा करि भूमि परयो तबहीं।
....

कोलाहल मंदिर माँझ भयो,
मानो प्रभु को उड़ि प्राण गयो।
रोवै दसकंठ विलाप करै।"

गोस्वामी जी रावण की मूर्च्छा के साथ रावण की शोकानुभूति के प्रसंग को समाप्त कर देते हैं। वह आगे "मंदोदरी रुदन कर भारी" तथा "नगर लोग सब व्याकुल सोचा" कहकर इस शोकानुभूति की व्यापकता की ओर संकेत करते हैं। इस शोकानुभूति में मंदोदरी का "भारी रुदन" तथा "उर ताड़न बहु भाँति पुकारी" प्रकट करके मंदोदरी की शोकानुभूति रावण की शोकानुभूति से अधिक गम्भीर बन जाती है तथा रावण की शोकानुभूति का प्रसंग किसी प्रकार पिछड़ जाता है।

रामचन्द्रिका में रावण की शोकानुभूति का यह प्रसंग उत्तरोत्तर मनोवैज्ञानिक आधार पर विकसित होता जाता है। रावण की शोकानुभूति के क्रमिक विकास में कवि का सूक्ष्म अध्ययन तथा कलाकुशलता विशेषरूप से अवलोकनीय है जो गोस्वामी जी द्वारा प्रकट प्रसंग में किसी प्रकार संभव न हो सकी—

१—रावण हाहाकार करके भूमि पर गिर पड़ता है।
२—इस दुःखद समाचार से महल में कुहराम मच जाता है।
३—रावण रोता है और विलाप करता है।
४—रावण की मनजल्पना प्रकट होती है—
अ—पुत्रशोक में आज वह स्वयं भी प्राण दे रहा है।
आ—अब उसके शत्रु देवता आदित्य, जल, पवन, पावक, चन्द्र आदि आनन्द मनावें.........।
इ—सीता राम को दे दी जाय।
ई—लंका विभीषण को दे दी जाय।
उ—ब्राह्मण पुण्य अनुष्ठान करे।

मेघनादवध प्रसंग को, इस प्रकार आचार्यजी ने मनोवैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर विकसित रूप दिया है तथा मानसगत शोकानुभूति को प्रांजल रूप में प्रकट किया है।

रावण वध—रावण-वध पर मंदोदरी तथा विभीषण दोनों की शोकानुभूतियों का मानस में वर्णन हुआ है किन्तु रामचन्द्रिका में केवल मंदोदरी की शोकानुभूति का ही वर्णन किया गया है। मंदोदरी की शोकानुभूति के अन्तर्गत गोस्वामीजी तथा आचार्यजी दोनों की दृष्टि विशेषकर गुणकथन की ओर रही है। गोस्वामीजी मंदोदरी की मूर्च्छा, छूटे केश, शरीर की संभाल न होना तथा नाना प्रकार से छाती पीटने आदि अनुभावों का भी वर्णन करते हैं किन्तु आचार्यजी ने इन सबको छोड़ दिया है। रामचन्द्रिका की मंदोदरी केवल रावण के बल-वैभव का वर्णन करती तथा "सेवित स्वान सियार सो रावण सोवत सेज परे अब चूकी" रूप में रावण को देखती तथा दुःखी होती है।

'मानस' की मंदोदरी भी रावण के वैभव वर्णन के साथ "सो तनु भूमि परेउ भरि छारा", "आजु परेहु अनाथ की नाईं" तथा "अब तब सिर-भुज जंबुक खाहीं" आदि रूप में रावण को देखती है तथा विलाप करती है किन्तु राम के प्रति उसकी श्रद्धा इस शोकानुभूति के साथ इस टिप्पणी को भी प्रकट करती है—"राम विमुख अस हाल तुम्हारा" एवं "राम विमुख यह अनुचित नाहीं" तथा इन टिप्पणियों के साथ एक ओर मंदोदरी की शोकानुभूति शान्त हो जाती है तो दूसरी ओर पाठक के लिए प्रभावशून्य बनकर लीक पीटना मात्र दिखलाई देने लगती है। इसी प्रकार का वर्णन सूर ने किया है जिसके अन्तर्गत विभीषण और मंदोदरी रावण के कार्यों की निन्दा करते हैं जिससे करुणरस की निष्पत्ति संभव नहीं होती।[1]

पराभव, पराजय, बध, बन्धन—मानस में पराभवगत प्रसंग इस प्रकार हैं—सीतास्वयंवर के अवसर पर राजाओं का पराभव, सेतुबन्ध पर तथा छत्रमुकुटताटंक हनन पर रावण पराभव है जिनका संकेतमात्र रूप में ही वर्णन हुआ है। चन्द्रिका में "छत्रमुकुटहनन" प्रसंग तथा मखविध्वंस प्रसंग में मंदोदरी पराभव का वर्णन हुआ है। इस प्रकार उभयनिष्ठ प्रसंग केवल "छत्रमुकुटताटंकहनन" है जिसके अन्तर्गत रावण के पराभव का वर्णन हुआ है। अतएव इसी एक प्रसंग पर विकास की दृष्टि से विचार कर लेना अपेक्षित होगा।

मानव में यह प्रसंग पराभवगत शोकानुभूति की ओर संकेतमात्र करता है, रसपरिपाक संभव नहीं होता।

छत्रमुकुटताटंकहनन को रावण सभा "असगुन भयउ भयंकर भारी" समझती

---

१ "करुना करति मंदोदरि रानी।
बार-बार बरज्यौ...त्यौं खोई अपनी रजधानी।"

है तथा भयभीत हो जाती है। इस अवसर पर कवि "दसमुख देखि सभा भय पाई" हेतु को ही प्रधानता देता है। रावण की पराभवगत शोकानुभूति का संकेतमात्र वर्णन निम्नलिखित शब्दों में हुआ है—

"दसमुख देखि सभा भय पाई,
बिहसि बचन कह जुगुति बनाई।"

इस संकेतमात्र वर्णन में "जुगुति बनाई" शब्द पराभवगत शोकानुभूति को प्रकट नहीं कर पाते। इन वचनों में इस अवसर को टालने की लालसा ही विशेष क्रियाशील है जिसका पराभवगत शोकानुभूति से कोई सम्बन्ध प्रकट नहीं होता।

रामचन्द्रिका में भी यह प्रसंग विकसित रूप में प्रकट न हो सका। आचार्यजी रावण की पराभवगत शोकानुभूति की ओर निम्नलिखित रूप में संकेत करते हैं—

"लज्जित खल तजि सुनहु भज्जि भवन में गयो।"

रावण को 'खल' कहकर कवि शोकानुभूति की मार्मिकता को प्रभावहीन बना देता है। पाठक की सहानुभूति रावण के साथ नहीं हो पाती। इस प्रकार रामचन्द्रिका में भी यह प्रसंग संकेतमात्र रूप में ही वर्णन किया गया है।

अन्य-प्रसंग

१. **पराजयगत प्रसंग**—मानस में सुग्रीव तथा मेघनाद की ओर रामचन्द्रिका में लक्ष्मण की पराजय की ओर संकेत हुआ है। इन प्रसंगों में करुणरस की अभिव्यक्ति सम्भव नहीं हो सकी; इसलिए विकास का प्रश्न ही नहीं उठता।

२. **बन्धन**—सूर ने नागपाश बन्धन[१] का ही वर्णन किया है जबकि मानस तथा रामचन्द्रिका दोनों में बन्धन के दो प्रसंग प्रकट हुए हैं—

१—हनुमान बन्धन।
२—नागपाश द्वारा राम-बन्धन।

मानस में बन्धन के दोनों प्रसंग संकेतमात्र रूप में प्रकट हुए हैं। इसके अन्तर्गत बन्धनगत हनुमान अथवा राम की किसी शोकानुभूति की ओर संकेत भी नहीं किया गया है। अतएव यह प्रसंग करुण के अन्तर्गत नहीं आ पाते।

रामचन्द्रिका में हनुमान् बन्धन मानस की भाँति करुण की अनुभूति नहीं करा पाता। नागपाश बन्धन के अन्तर्गत आचार्य जी ने राम और लक्ष्मण दोनों का बन्धन दिखलाया है।

---

१. "हँसि-हँसि नाग-फाँस सर साँधत, बन्धु समेत बँधायौ"

नागपाशबन्धन प्रसंग में आचार्यजी ने एक विशेषता भी रखी है। बन्धनगत राम-लक्ष्मण को दिखाने के लिए वायुयान द्वारा रावण सीता को लाता है तथा सीता को यह दृश्य दिखलाता है। इस योजना के अन्तर्गत कवि की दृष्टि बन्धनगत मार्मिक अनुभूति की ओर गई है। यद्यपि कवि ने केवल इस योजना का उल्लेख कर इस प्रसंग को छोड़ दिया है तथापि यह दृश्य सामाजिक के चित्त को विकल करने के लिए पूर्ण समर्थ है—

"कै विमान अधिरूढ़ित धायो,
जानकीहिं रघुनाथ दिखायो।"

प्रतिष्ठित आदर्शों के प्रतिकूल आचार्यजी न तो राम की बन्धनगत शोकानुभूति ही दिखला सकते थे तथा न राम को बन्धनगत देखकर सीता का विषाद ही प्रकट कर सकते थे। इसीलिए उन्होंने इस दृश्य की कल्पना करके ही प्रसंग को अपूर्ण ही छोड़ दिया। 'भूमिपुत्रि तरु-चन्दन लेख्यौ' कहकर कवि ने राम की दृढ़ता की ओर भी संकेत किया है जिससे प्रतिष्ठित आदर्शों की मर्यादा स्थिर रही है। सूर तथा गोस्वामी तुलसीदास ने तो इस प्रसंग को प्रभु की इच्छा बताकर करुण की सीमा में ही नहीं रखा।

वध के प्रसंग—वध के प्रसंग रावण शोकानुभूति के अन्तर्गत आ चुके हैं। यहाँ इनके पृथक् विवेचन की आवश्यकता नहीं है।

धर्मअपघात, शाप एवं मोह आदि के प्रसंग विशेषकर मानस में ही प्रकट हुए हैं किन्तु इन प्रसंगों के अन्तर्गत करुणरस की अनुभूति संभव नहीं हो सकी। रामचन्द्रिका में इन प्रसंगों को प्रकट नहीं किया गया। इसलिए विकासक्रम के खोजने का प्रश्न नहीं उठता।

विकासक्रम की इस संक्षिप्त रूपरेखा को दृष्टिगत रखते हुए कहा जा सकता है कि रामकथागत करुणरस के प्रसंगों में विकास का आधार मनोविज्ञान तथा मानस शास्त्र के सूक्ष्म तथ्य रहे हैं तथा इस महत्वपूर्ण आधार के कारण ही पदवर्ती संक्षिप्त रूप भी गागर में सागर की भाँति प्रभविष्णु एवं प्रशंसनीय हैं। कुछ ऐसे स्थल भी हैं जिनमें करुणरस के प्रसंग विकसित न होकर संकुचित हुए हैं। इन स्थलों के सम्बन्ध में यह कहना असंगत न होगा कि आगे आनेवाले कवियों के लिए इन स्थलों में विकास के लिए वस्तुतः कोई स्थान ही न रह गया था। इनका पूर्ण विकसित रूप पहले ही प्रकट हो चुका था।

रामकाव्य में करुण रस

रामकाव्यगत करुण रस का विभाजन निम्न प्रकार है—

१—रामकाव्यगत करुणरस के आलंबन विभाव ।

२—रामकाव्यगत करुणरस के उद्दीपन विभाव ।

३—रामकाव्यगत करुणरस के अनुभाव ।

४—रामकाव्यगत करुणरस के प्रतीक एवं शोक की समकक्ष अनुभूतियाँ ।

५—रामकाव्यगत करुणरस की विशेष अभिव्यक्तियाँ ।

६—रामकाव्यगत करुणरस का शब्दकोष ।

७—करुणरस के प्रसंगों की परिसमाप्ति ।

टिप्पणी—उपर्युक्त शीर्षों में यथास्थान निम्नलिखित संकेत प्रयुक्त हुए है इन्हे पाठकगण ठीक समझ लें—

संकेत (कोष्ठगत संख्या)	**अभिप्राय**
(१)	संस्कृत काव्य, वाल्मीकि रामायण, अध्यात्मरामायण तथा भवभूति का उत्तररामचरित के अन्तर्गत ।
(२)	सूरसागर की रामकथा के अन्तर्गत ।
(३)	रामचरितमानस तथा गीतावली के अन्तर्गत ।
(४)	रामचन्द्रिका के अन्तर्गत ।
(५)	लोकगीतों के अन्तर्गत ।

रामकाव्यगत करुणरस का आलंबन विभाव

आलंबन की स्थिति	**आलंबन**	**आश्रय**
मृत	क्रौंच नर	क्रौंच मादा
मृत (इष्ट)	दशरथ	रनिवास की रानियाँ, भरत
इष्ट की मृत्यु का संदेश	शोक-संतप्त परिवार	राम-सीता-लक्ष्मण
मृत इष्ट (वध)	बालि, कुंभकर्ण, मेघनाद, रावण	विपक्षी पात्र—तारा, रावण, मंदोदरी
मृतइष्ट (माया योजना)	राम का कटा सिर	सीता
	सीता का वध	राम

मृत्यु की आशंका	लक्ष्मण	राम
अनिष्ट की आशंका	कौशल्या के लिए	राम (वाल्मीकि)
	भरत के लिए	कौशल्या (मानस)
इष्ट वियोग	राम	दशरथ, कौशल्या
	सीता	राम
व्यंग्य एव कटूक्तियाँ	कौशल्या	दशरथ
अपवाद	सीता	लक्ष्मण, भरत
अतिविनय	दशरथ	जनक

रामकाव्यगत करुणरस का उद्दीपन विभाव

मृत इष्ट—अ—१. निश्चेष्टता (न देखना, न बोलना)।
२. क्षत-विक्षत शव।
३. कटा हुआ सिर, भुजा (गोद में रखकर रोना)।
४. मुकुट, आभूषण आदि अस्तव्यस्त पड़े हुए।
५. शव (की सुरक्षा के लिए) तैल के कढ़ाव में रखना।
६. शव का चिता पर रखना, चिता में आग लगाना, अंतिम दर्शन।
७. जलती चिता की परिक्रमा, फूल चुनना।

आ—१. गुणकथन।
२. मृतइष्ट के साथ भोगे सुखों का स्मरण।
३. अभाव—भविष्य की चिन्ता, सहयोग का अभाव, लक्ष्य की अपूर्ति की चिन्ता एवं अभाव में असहायावस्था की चिन्ता।

प्रकृति— १. तेजवायु का चलना, आकाश मेघाच्छादित, नगर में भूकम्प, दशों दिशाओं में अंधकार, श्रीहत सर-सरिता, बन-बाग, चन्द्रमा तथा तारों से रहित अँधेरी रात, "जन पुर दहँ दिसि लागि दवारी।"
२. शून्यता—राजमार्ग, बाजार, नगर।
३. भयावनी, डरावनी।
४. उपमान—कमल, हिलती लता, मधुकर, खंजन, शुक, कपोत, मृग, मीन, कोकिल, कुंदकली, दाड़िम, दामिनि, शरद, शशि, नागिन, कामदेव का धनुष, हंस, गज, सिंह, श्रीफल, कनक, कदलि, आदि-आदि।

अपशकुन— १. रात को कुस्वप्न, "खर सिआर बोलहिं प्रतिकूला," "रटहिं कुभाँति कुखेत करारा।"

आशंका— २. पुरजनों का मौन।

वियोग व्यथित पशु—"चरफराहिं मग चलहिं न घोरे,"
"अडुकि परहि फिरि हेरहिं पीछे।"

उक्तियाँ – १. व्यंग्य एव कटूक्तियाँ।
२. अपवाद।

रामकाव्यगत करुणरस के अनुभाव

१—अचेत होना—मूर्च्छित (१) मुमोह (१) नष्टचेतन (१) विचेतन (१) अवसन्नांग (१) समूढ़ (१) अचेत (२) धरनि परे मुरझाई (२) मुरछित (३)

२—अधर सूखना—सूखहिं अधर (३) शरीर सूखना—'सहयिसूखि' (३)

३—अश्रुयुक्त नेत्र—वाष्पपर्याकुलईक्षण (१) वारि भरति भये बारिद लोचन (४) नयन सजल (३)

४—अकाश की ओर देखना—गगनासक्तलोचनः (१)

५—ओठ और नासापुट का फड़कना—स्फुरदधरनासापुट (१)

६—काँपना—वेपमानां (१) तन थरथर काँपी (३)

७—चकित होकर इधर-उधर देखना—चकित भये दिसि-विदिसि निहारत (२)

८—दिखाई न देना—न त्वां पश्यामि साधु मां पाणिना स्पृश (१) दीठि भई थोरी (३)

९—दीर्घ श्वास लेना—निःश्वसन्तं (१) निःश्वस्यायतमायतम् (२) लेति उसास (२) लेइउसास (३)

१०—नेत्र न खोल पाना—शशाक नेक्षितुं (१) नैन न जात उघारे (२)

११—बाहें उठाकर विलाप करना—उद्धृत्य बाहू चुक्रोश (१) बाहूनुद्यम्य (१) प्रगृह्य बाहू (१)

१२—भूमि पर गिरना—पपात सहसा भूमौ (१) परेउ भूमि तल (३) परेउ धरनि (३) धरनि खसि परी (३) भूमि पर्‍यो (४)

१३—भूमि की ओर नेत्र किए—वसुधासक्त नयनः (१) अधोदृष्टि कै (४)

१४—भूमि को नाखून से कुरेदना—'महिनख लिखन लगी सब सोचन' (३)

१५—रोना—प्ररुरोद महास्वनम् (१) तुमुलाक्रन्द (१) मृशं रुदन्त्यः ( ) नीर दृग मोचत (२) नैन नीर ढरकाए (२) लोचन जल धारा (२) उमांड़े नयन जल भरि-भरि डारत (२) अश्रुधारा बहायो (४) नैनन ते न रह्यौ जल रोक्यौ (४) नैना नीर बहावै (५) तरर तरर चुवै (५)

१६—लोटना—लोटत सूर धरनि दोउ बंधु (२)

१७—विवर्ण—बिबरन (३) निपट मलीना (३) मलाना (३)

१८—विकलता—इन्द्री सकल विकल (३) तलफत विषम मोह (३) बिकल सब ठाड़े (३) सब व्याकुल भागी (३) जी अकुलावे (५)

१९—वाणी की मूकता—नाभिभापितुम् (१) कहत कछू नहिं आई (२) न कछु कहि आवा (३) केशव उठि गए भीतर भौनहिं (४)

२०—शरीर की शिथिलता—वपु न सँभारत (२) सोक सिथिल (३) छूटे केस नहि वपुष सँभारा (२) तन थरथर काँपी (३)

२१—सिर चकराना—घूर्णमान (१)

२२—सिर और छाती पीटना—शिरश्चोरश्च बाहुभ्यां दुःखेन समभिघ्नती (१) धुनइ सिरु (२) उर ताड़ना करहि विधि नाना (३)

२३—(अ) सिर गोद में रखना रोना—बार बार सिर लै लछिमन कौ निरखि गोद पर राखैं (२) बंधु सीस पुनिपुनि उर धरई (३) देख्यो सिर अंजुलि (४)

(आ) भुजा पकड़ कर रोना—'प्रगृह्य बाहू व्यवलपन्ननाथवत्' (१)

२४—सिर ढोरना—सिर ढोर्‌यो (२)

२५—सहम जाना—गयउ सहमि (३)

२६—सुनाई न देना—सुनइ न स्रवन (३)

२७—हाथ मीड़ना—हाथ मीजि, मीजि हाथ (३)

२८—हाथ पृथ्वी पर पटकना—बाहू विक्षीप्य (१)

२९—हाथों से मुँह ढकना—पहितानन: (१) माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन (३)

३०—हाहाकार करना—हाहाकार कृता—(१) त्राहि त्राहि कर (२) हाहा-करि (४)

३१—अग्नि प्रवेश या विषभक्षण का विचार करना—अग्नि प्रवेक्ष्यामि—विषवा मन्दयामि (१)

रामकाव्यगत करुणरस के प्रतीक एवं शोक की समकक्ष अनुभूतियाँ

प्रतीक—अश्रुप्रवाह—मुक्तामणिसरो (मोतियों की टूटी लड़ी)।

शून्यता—'संमूढ़ निगमां स्तब्धां संक्षिप्त विपणापणाम्' (१) सूनौ भवन, सूनौ सिंहासन (२) राम बिन सूनी अयोध्या (५) सूनो दरसावे (५)

शरीर की क्षीणदशा—जरिबरि भइली कोइलिया (५)

शोक समाचार की सूचना—पपइयो बोल्यो खावड़ रे खेत में।

मरणासन्न—क्षीण स्नेहस्य दीपस्य संसक्ता रश्मयोयथा

मृत्यु का निर्देश—स्वर्ग गत: (१) जीवतान्तमुपागमत् (१)

पश्चिमावस्थां गत: (१) विनिपातित: (१)

निहित: (१) मृत: (१)

पंचत्वमापन्न (१)   आतोऽसि यमसादनम्
महाप्रस्थानमेव (१)   तनु त्यागौ (२)
(बर्फ में गलने के लिए)   या गतिर्धर्मशीलानामश्वमेधादियाजिनाम।
तां गति गतवानद्य पिता ते पितृवत्सले। (५)
रबि अथयउँ (३) गयउ सुरधाम (३)
ब्रह्मरंध्र फोरि जीव कौं मिल्यो जुलोक जाय (४)

शोक की समकक्ष अनुभूतियाँ

प्रकृति—वृक्ष—छिन्नस्तरुरिवपतन्, हतमूल इव द्रुमः, पतिता कदली मिव (१)
दामिनि हनेहु मनहुँ तरुतालू (३) पेड़ काटितें पालउ खींचा (३)
लता—छिन्ना वन लता इव (१)
गजेन्द्रहस्तामिहतेव सल्लकी (१)
नदी—संसायमति वेगेन यथा कूलं नदीरयः (१)
चंद्र—अमिय रहित जनु चंद (३) चंद गह्यौ ज्यौं राहु (२)
कमल—सरसरसिज बनु बिनु बारी (३)
सूल—एक सूल मोहि बिसर न काऊ
यमुना नीर—रोवे जइसे उमड़े बाबा जमुना के पनिया (५)
कालरात्रि—अवधि-भयावन भारी मानहुँ काल रात्रि अँधियारी
जुग सरिस सिराति न राती (३)
धेनु—धेनुविवत्सा (१) सुमिरि बच्छ जिमि धेनु लवाई (३)
मृगी—बिछुरी मनौ संग तैं हिरनी (२) व्याध विवस जनु मृगी सभीता (३)
सिंह—सिंहनाममिव नर्दताम् (१)
कौञ्ची—कौञ्ची नामिवं नारीणां निनाद (१)
कुररी—क्रोशन्तीं कुररीमिव (१)
संपाती—जरि पंख परेउ संपाती (३) जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं (३)
सर्प—हृततेजायथासर्प (१) मनिबिहीनजनु व्याकुल व्यालू (३)
बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भाँती (३)
मछली—माजा मनहुँ मीन कहुँ व्यापा (३)
खीन जिम्रन हित बारि उलीचा (३)

"हे पितृवत्सल! अश्वमेधादि यज्ञ करनेवाले धर्मपरायण पुरुषों की जो गति होती है उसीको आज तुम्हारे पिता भी प्राप्त हुए हैं।" —(अध्यात्म० रा०—अयो० ७/६५)

जनु जलचरगन सूखत पानी [३]
सरार्हहि मीना [३]

माखी—विकल मनहुँ माखी मधु छीने [३]

दीपक—क्षीणस्नेहस्य दीपस्य संसक्ता रश्मयो यथा [१]

व्रण—व्रणे तुघेन सूचिता [१]

केतुगृहीत—गात गह्यौ ज्यों केत [२]

विषपान—विष विषम पियौ [२]

दिवश्च्युतादेव—देवतेव दिवश्च्युता [१] सुरपुरते जनु खसेउ ज़जाती [३]

कृपण—कृपन धनरासि गँवा [३]

मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू, भयउ विकल बड़ बनिक समाजू [३]

हत्या—मारिसि मनहुँ पितामहतारी]३]
जनि मारेसि गुरबांभन गाई [३]

वज्र—कुलिस धरि छाती [३] हृदय दीर्यंते [१] हिय फाट्यो ज्यों वीरन दुकूल [४]

बालक का रोना—दीन बालजिमि रोई [२]

अवर्णनीय तथा मानवीकरण—महा बिपति किमि जाइ बखानी [३]

तनु धरि सोचुलागु जनु सोचन [३] दुखहू दुख लागा [३]

धीरज हू करि धीरज भागा [३] करुना बहु वेष बिसूरति [३]

करुनरस कटकई उतरी अवधि बजाइ [३]

जाति अपमान—सबतें अधिक जाति अवमाना [३]

मदपान—बिप्र बिबेकी बेदबिद...जिमि धोखे मद पानि कर [३]

रामकाव्यगत करुणरस की विशेष अभिव्यक्तियाँ

अन्देसा अथवा सोच—

अ—सुखसुविधा के अभाव का सोच

कृतिसंकेत

[१] यः सुखेषूपधानेषु शेतेचन्दनरुषितः ।
वीज्यमानो महार्हाभिः स्त्रीभिर्मम सुतोतमः ।
स नूनं क्वचिदेवाद्य वृक्षमूलमुपाश्रितः ।
काष्ठं वा यदि वाऽश्मानमुधाय शयिष्यते ।

[२] बिन रथरुढ़ दुसह दुख मारग, बिन पद-त्रान चलै दोउ भ्रात ।
इहि विधि सोच करत अति ही नृप जानकी ओर निरखि बिलखात ।

[२] जौ पै इन्हहिं दीन्ह बनबासू, कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू ।
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना, रचे वादि बिधि बाहन नाना ।

आ—घोड़ों की चिन्ता

[३] ए बर बाजि बिलोकि आपने बहुरो बनहिं सिधावौ ।
....
तुलसी मोहि और सबहिनते इन्हको वड़ो अंदेसो ।

इ—विभीषण को लंका-राज्य न दे सकने की चिन्ता

[२] बीचहि भई और की औरै,
ह्वै है कहा बिभीषण की गति, यहै सोच जिय गुनि कै ।

[३] ह्वै है कहा विभीषण की गति, रही सोच भरि छाती ।

[४] मोहि रहीं इतनी मनशंका, देन न पाई विभीषण लंका ।
बोलि उठौ प्रभुको पन पारौ, नातरु होत है मोमुख कारो ।

संवेदना

[१] "सीते मृतस्ते श्वशुरः पित्रा हीनोऽसि लक्ष्मण ।"
"ततः [illegible] जगतीपतिः ।
परिजग्राह बाहुभ्यामुभौ भरतलक्ष्मणौ ।"

[३] व्याकुल भए निषाद रघुबर बाजि निहारि ।

[४] तब पुत्र कौ मुख जोइ,
क्रमते उठीं सब रोइ ।

व्यंग्य उक्तियाँ—वनवास-प्रसंग

[१] "इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकण्टकम्,
सम्प्राप्तं बत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा ।"

[३] जाहु सुखेन बनहिं बलि जाऊँ,
करि अनाथ जन परिजन गाऊँ ।
भे अति अहित रामु तेउ तोही ।

भरत की आत्मग्लानि का प्रसंग

[३] लखन रामसिय कहुँ बन दीन्हा, पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा ।
लीन्ह विधवपन अपजसु आपू, दीन्हेउ प्रजहि सोक संतापू ।
मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू कीन्ह कैकेई सबकर काजू ।
एहि ते मोर काह अब नीका, तेहि पर देन कहहु तुम टीका ।

सुमंत्र की आत्मग्लानि का प्रसंग

[३] पूछत उतरु देब मैं तेही गे बनु राम लखनु वैदेही ।

जोई पूँछिहि तेहि उतरु देबा जाइ अवध अब यह सुखु लेवा ।

सीता की उक्ति राम के मायाजनित सिर को देखकर

[१] सकामा भव कैकेयी हतोऽयं कुलनंदन ।

रावण की उदासीनता

[४] "आजु आदित्य जल पवन, पावक प्रबल चंद अनंद भय ।"
त्रास जग को हरौ, गान किन्नर करौ नृत्य गंधर्व ।
......अभिषेक इन्द्रहिं करौ ।
आजु सिय राम दै, लंक कुलदूषणहि, यज्ञ को जाय सर्वज्ञ बिप्रहु बरौ ।

सीतानिर्वासन-प्रसंग

(१) "यथापवादः पौराणां तथैव रघुनन्दन ।"
"यथाज्ञं कुरु सौमित्र त्यज्य मां दुःखमागिनीम् ।"
"मामिकेयं तनुर्नूनं सृष्टा दुःखाय लक्ष्मण ।"
"निरीक्ष्य मामद्यगच्छ त्वमृतुकालातिवर्तिनीम् ।"

[३] तापसी कहि कहा पठवति नृपनि को मनुहारि ।
....
लषनलाल कृपाल निपटहिं डारिबी न बिसारि ।

रामकाव्यगत करुणरस की अभिव्यक्तियों का शब्दकोष

अकुलाय (४)
अकुलानी (३)
अचेत (४)
अचेतन (१)
अट्टसपूर्व व्यसन (१)
अवसन्नांग (१)
अस्वस्थ (१)
आकुल (१)
आतुर (१)
आर्तानां (१)
आर्तनाद (३)
आपतन (१)
उरदारुनदाहू (३)
कहत कछु नहिं आई (३)
कोशन्तीं (रामरामैति) (१)
गतचेतनः (१)
गतबुद्धि (१)
गरइ गलानि (३)
घूर्णमान [१]
चक्रतभई [२]
जी अकलावे [५]
जरि जरि भई कोयला [५]
तटस्थ [१]
तुमुजाक्रन्दं [१]
तरर तरर चुवै [५]
थारे बिन सूनो दरसावै [५]
दारुणं [१]
दीन [५]

दुःखितः [१]
दुःखामि सन्तप्तः [१]
धर तन धीर [२]
धरनि खसि परी [३]
(न) धीर धरै (४)
धुनइ सिरु (३)
नष्ट चेतः (१)
निःश्वसन्त (१)
निनाद (१)
नीर झरयौ (२)
नैन भरि आए (२)
नैणा नीर बहावैं (५)
परमदीन (२)
परिताप (१)
प्रासरोद महास्वनम् (१)
पीड़ितानाम् (१)
पर्यदेवयन (१)
बाष्पपर्या कुलेक्षणः (१)
बिकल (३)
बिलखाई (२)
बिलखाहीं (३)
बिलपत (३)
बिसूरि (२) विसूरहिं (५)
बिलाप करै (४]
बिहाल [४]
बैन उचारत [२]
भृशं सदन्त्यः [१]

भृशंभश्रूणिवर्तयन [१]
मंदमश्रूणियुञ्चति [१]
मूर्छितः [१]
मुमोह [१]
मोचत नीर [२]
महादुःख [३]
रोवत [३, ५]
विवेचनाम [१]
विलपन् [१]
व्यथिताकुलचेतसम [१]
वसुधर सक्त नयन [१]
विषण्णानाँ (१)
विव्यथे (१)
विमना (१)
विह्वल तनमन (२)
विषाद [३)
विलपना [१]
शोकेनसममिप्लुत [१]
शोककर्शिता [१]
सम्भ्रान्तं [१]
सुस्वरं दुरुबुः [१]
संमूढः [१]
संतप्त [१]
हानाचेति परिक्रुश्य [१]
हाहाकार कृता [१]
हृदयेनावदीर्णेन [१]
त्रस्तः [१]

करुणरस के प्रसंगों की परिसमाप्ति

करुणरस के प्रसंगों की परिसमाप्ति शोकसंतप्त मानस को शान्त करने के प्रयत्नों में द्रष्टव्य है। शोक-शमन के लिए विवेक आवश्यक है। विवेक प्राप्त होते ही शोक की व्यर्थता स्पष्ट हो जाती है। इस तथ्य को गो०तुलसीदास जी ने एक

सुन्दर रूपक द्वारा प्रकट किया है।[1]

शोकानुभूति रुदन, प्रलाप, व्याधि, मोह, मरण आदि स्तरों में उत्तरोत्तर उत्कृष्ट होती हुई शनैः शनैः उदासीनता एवं वैराग्य में परिणत एवं विकसित होती है। इन अवसरों पर सगे-सम्बन्धी एवं गुरुजन आदि शोक-शमन के लिए आश्रय को समझाते-बुझाते तथा धैर्य बँधाते हैं। इन्हीं प्रसंगों का यहाँ विवेचन किया जावेगा।

(i) **औचित्य का ध्यान दिलाना**—आश्रय की समझदारी, योग्यता और क्षमता का ध्यान दिलाकर उसको धैर्य धारण करने का आग्रह किया जाता है तथा यथावसर अन्त्येष्टि आदि करने के लिए कहा जाता है।

वशिष्ट ने भरत को समझाते हुए कहा—

"हे महायशस्वी राजपुत्र ! तुम्हारा कल्याण हो। बहुत हुआ, अब शोक मत करो। महाराज का समय आ चुका था। अब विधि-विधान से उनकी अन्त्येष्टि क्रिया करो।"[2]

मानस में भी इसी प्रकार वशिष्ट जी भरत को समझाते हुए कहते हैं—

"तात हृदयँ धीरजु धरहु, करहु जो अवसर आजु।
उठे भरत गुर वचन सुनि, करन कहेउ सबु साजु॥"

कुंभकर्ण की मृत्यु पर विलाप करते हुए रावण को इसी रूप में समझाया गया है—

"हे प्रभो ! निश्चय ही आप में इतनी शक्ति है कि यदि आप चाहो तो तीनों लोकों को भी नष्ट कर सकते हो। तब एक साधारण व्यक्ति की भाँति आप इस प्रकार शोक-संतप्त क्यों हो रहे हो।"[3]

मानस में लक्ष्मण-शक्ति प्रसंग का पर्यवसान उत्साह में होता है—

"प्रभु प्रलाप सुनि कान बिकल भए बानर निकर,
आइ गयउ हनुमान जिमि करुना महँ बीर रस।"

(ii) **आलंबन की हित कामना का ध्यान दिलाकर शोक-शमन करना**—विश्वास है कि दिवंगत आत्मा का शेष परिवार से मृत्यु के पश्चात् भी संबंध रहता है। इसलिए परिवार के शेष प्रियजनों के शोक मनाने से उसको कष्ट एवं अशान्ति होती है। इसलिए उसके हित में यही है कि अधिक शोक न किया जाय।

---

1. सोक कनकलोचन मति छोनी। हरी बिमल गुन गन जग जोनी॥
भरत बिबेक बराहँ बिसाला। अनायास उधरी तेहि काला॥
—(अयो० २६६/२)

2. अलं शोकेन भद्रं ते राजपुत्र महायशः।
प्राप्तकालं नरपतेः कुरु संयानमुत्तमम्॥
—(अयो० ७६/२)

3. "न शोक परितापेन श्रेयसा युज्यते मृतः।
यदत्रानन्तरं कार्यं तत्समाधातुमर्हस्य॥"

रामलक्ष्मण बालिवध के अवसर पर अंगद सुग्रीव और तारा को इसी रूप में समझाते हुए कहते हैं—

"शोक-संताप करने से मृत प्राणी का भला नहीं होता। इसलिए आगे जो काम अपेक्षित हैं उनको करो।"[1]

(iii) **आलंबन के यशस्वी जीवन की प्रशंसा करते हुए शोक करने के अयोग्य बताना और शोक-शमन का आग्रह करना**—महाराज दशरथ के निधन पर शोक करते हुए आश्रयों से इसी रूप में शोक-शमन के लिए आग्रह किया गया है। कैकेयी भरत से कहती है—

"तात राउ नहिं सोचै जोगू। बिढ़इ सुकृत जसु कीन्हे भोगू।।
जीवत सकल जनम फल पाए। अंत अमरपति सदन सिधाए।।
अस अनुमानि सोच परिहरहू। सहित समाज राजपुर करहू।।"

वशिष्ट ने भी भरत को इसी प्रकार समझाया—

"तात बिचारु करहु मन माहीं। सोच जोगु दसरथु नृप नाहीं।।
× × ×
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना।।
× × ×
भयउ न अहइ न अब होनिहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा।।
× × ×
सब प्रकार भूपति बडभागी। बादि विषादु करिअ तेहि लागी।।"

(iv) **आश्रय की शक्ति, सामर्थ्य के आधार पर क्षति का प्रतीकार करने के लिए आग्रह करना और शोक-शमन होना**—विपक्षी पात्रों द्वारा की गई क्षति के समय प्रायः ऐसे प्रसंग आते है। यहाँ करुण का पर्यवसान प्रतीकार-भावना तथा रोष में होता है। शोक शमन होकर प्रतीकार के लिए उत्साह जाग्रत हो जाता है मानों 'करुण में वीररस' का आविर्भाव हो गया हो—

शक्ति का ज्ञान कराना—

"शूर लोग इस प्रकार विलाप नहीं करते जिस प्रकार आप कर कहे हैं"—यह उत्साहवर्धक शब्द कुंभकर्ण की मृत्यु पर विलाप करते हुए रावण से कहे गये हैं—'न तु सत्पुरुषा राजन्विलपन्ति यथाभवान्।'

(v) **आश्रय को ज्ञानविज्ञान और वैराग्य के उपदेश करना तथा प्राचीन पुराण और इतिहासों की कथा सुनाना और शोक-शमन करना**—दशरथमरण पर

---

१. "नूनं त्रिभुवनस्यापि पर्याप्तस्त्वमसि प्रभो।
अकस्मात्प्राकृत इव शोचस्यात्मानमीदृशम्।।"

वशिष्ठ जी ने इसी रूप में समझाया है—

"तब बसिष्ठ मुनि समय सम कहि अनेक इतिहास,
सोक नेवारेउ सबहि कर निज बिग्यान प्रकास।"

भरत को माता कौशल्या का समझाना और माता कौशल्या को भरत का समझाना—

"भाँति अनेक भरत समुझाए। कहि विवेकमय बचन सुनाए॥
भरतहुँ मातु सकल समुझाँई। कहि पुरान श्रुति कथा सुहाई॥"

वशिष्ठ का विदेह को समझाना—

"मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे। कहि परमारथ बचन सुदेसे।"

× × ×

"किए अमित उपदेश जहँ-तहँ लोगन्ह मुनिबरन्ह।
धीरज धरिअ नरेस कहेउ बसिष्ठ बिदेह सन॥"

(vi) **नियति अथवा भाग्य-आधीन सब कार्यों को बताकर शोक-शमन करना**—अंगद सुग्रीव व तारा को समझाते हुए रामलक्ष्मण ने कहा—

"नियति ही समस्त लोकों की उत्पत्ति का कारण है। कर्मसाधन भी नियति है। नियति ही प्राणी मात्र का प्रेरक है।"[१]

वशिष्ठ जी भी भरत को 'भावी प्रबल' बताकर उनके शोक का शमन करते हैं—

"सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानिलाभु जीवनु मरनु, जसु अपजसु विधि हाथ॥"

इस प्रकार शोक-शमन के प्रयत्न जिनके द्वारा करुण रस की परिसमाप्ति होती है निम्नलिखित रूपों में प्रकट होते हैं जिनका आधार मनोवैज्ञानिक ही है—

(१) **परंपरागत लोकाचार का ध्यान दिलाना**—मनुष्य जन्म लेते आए हैं और मरते रहे हैं। उनके लिए शोक करना व्यर्थ है क्योंकि मनुष्यमात्र की यह गति होने वाली है। इस अनिवार्यता का ध्यान दिलाकर शोक-शमन करना मनुष्य की परंपरा का स्मरण कराना है। मनोविज्ञान द्वारा इस प्रकार की परंपराओं के लिए अपेक्षित संस्कार बन चुके होते हैं।

(२) **नियति अथवा 'भावी प्रबल' का ध्यान दिलाना**—मृत्यु अवश्यंभावी है। उसके समक्ष मानव-मात्र विवश और असहाय है। इस विवशता और असहायावस्था का परिज्ञान मनोवैज्ञानिक परितोष का कारण होता है जिससे शोक सह्य एवं शमित हो जाता है। ज्ञान-विज्ञान वैराग्य के उपदेश एवं पुराण इतिहास की कथा इसी

१. नियतिः कारणं लोके नियतिः कर्मसाधनम्।
नियतिः सर्वभूतानां नियोगेस्विह कारणम्॥
—(कि० २५।४)

विवशता एवं अनिवार्यता का परिज्ञान कराते हैं।

(३) **आलंबन की आत्मा की शान्ति के लिए कामना एवं उसके यशस्वी जीवन का वर्णन**—यह आश्रय के स्नेह एवं मोह को जाग्रत करता है जिससे शोक की संमूढ़ावस्था रुदन एवं विलाप में परिवर्तित हो जाती है और शोक सह्य हो जाता है। शोक के असह्य आघात को सध्य बनाने के लिए मनोवैज्ञानिक यही प्रयत्न किया जाता है। आलंबन की प्रशंसा एवं आश्रय के प्रति किए गए उसके उपकारों का स्मरण कराने से आश्रय के आँखों से अश्रुमोचन होने लगता है और शोक सह्य हो जाता है।

(४) **करुण के आश्रय में प्रतिद्वन्द्वी के प्रतिकार-भावना जाग्रत करना**—ऐसा करना मनोविज्ञान की युद्ध-प्रवृत्ति को उत्साहित करना है जिससे वह वर्तमान शोक को भूलकर विपक्षी के नाश के लिए उद्यत हो जाता है।

परिशिष्ट—१

करुणरस तथा सुन्दरकाण्ड का पारायण एवं महत्त्व

रामायण के सुन्दरकाण्ड के पारायण की एक परंपरा है। प्रायः व्यक्ति सुन्दर-काण्ड का पारायण करते हैं। इस प्रसंग में, अतएव यह जिज्ञासा स्वाभाविक है कि इस काण्ड का नाम सुन्दरकाण्ड क्यों पड़ा तथा इसका पारायण क्यों किया जाता है। यहाँ यह विशेषरूप से अवलोकनीय है कि तुलसी के मानस का विभाजन काण्डों के रूप में न होकर सोपानों में है तथा सुन्दरकाण्ड नाम से मानस में कोई काण्ड नहीं है। मानस में इसको पंचम सोपान कहा गया है। फिर भी बहुत कम व्यक्ति ऐसे हैं जो इस बात को जानते है। प्रायः व्यक्ति इस पंचम सोपान को सुन्दरकाण्ड ही कहते हैं और ऐसा ही समझते भी हैं। संस्कृत की कृतियों में अवश्य रामायणों का विभाजन काण्डों के रूप में है जिनमें से एक काण्ड सुन्दरकाण्ड भी है। इस प्रकार हिन्दी रामकाव्य प्रेमियों में सुन्दरकाण्ड संबंधी प्राचीन परंपरा ही प्रचलित है और यह तथ्य इस काण्ड के नामकरण तथा पारायण दोनों दृष्टियों पर प्रकाश डालने के लिए अपेक्षित है। यहाँ संक्षेप में विभिन्न रामायणी विद्वानों तथा अन्य व्यक्तियों के मत दिए जा रहे हैं।[1]

सुन्दरकाण्ड की विशेषता तथा नामकरण के कारण—१. त्रिकूटाचल के तीन शिखर हैं—नील, सुबेल और सुन्दर। नील पर लंका बसी है, सुबेल मैदान है और सुन्दर पर अशोकवाटिका बसी है। सुन्दरकाण्ड में अशोक वाटिकागत सीता की कथा है। इसीलिए इस काण्ड का नाम सुन्दर-काण्ड है। २. इस काण्ड में वर्णनीय सब कुछ सुन्दर है ; इसलिए इसका नाम सुन्दर-काण्ड है—

---

१. पं० रामकुमार, श्री रामदयाल मजूमदार, पं० वि० त्रिपाठी, स्वामी श्री प्रज्ञानानंद सरस्वती, श्री नर्मदाप्रसाद वर्मा।

(अ) "सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे सुन्दरः कपिः ।
सुन्दरे सुन्दरी वार्त्ता अतः सुन्दरो च्यते ॥
... ...
सुन्दरो सुन्दरो रामः सुन्देरे सुन्दरी कथा ।
सुन्दरे सुन्दरी सीता, सुन्दरे किन्न सुन्दरम् ॥"

(आ) इस पार—'सिंधु तीर एक भूधर सुन्दर ।'
उस पार—'कनक कोटि बिचित्र मनिकृत सुन्दरायतना धना ।'
मुद्रिका—'तब देखी मुद्रिका मनोहर, राम नाम अंकित अति सुन्दर ।'
फलफूल—'सुनहु मातु मोहि लागी भूखा, लागि देखि सुन्दर फल रुखा ।'
कथा—'सावधान मन करि पुनि संकर, लागे कहन कथा अति सुन्दर ।'

(इ) "मनभावन काँचीपुरी हनुमत् चरित ललाम ।
सुन्दर सा नु कथा तथा, ताते सुन्दर नाम ।"

(ई) मनभावन से कथा का उपक्रम—

"जामवंत के बचन सुहाए,
सुनि हनुमंत हृदय अति भाए ।

(उ) मनभावन से उपसंहार—

निज भवन गवनेउ सिंधु श्री,
रघुपतिहि यह मत भायऊ ।"

(ऊ) कथा की दृष्टि से काण्ड में दो चरित्र—पूर्वार्द्ध में हनुमत् चरित तथा उत्तरार्द्ध में रामचरित (सीता राम के रूप में) है ।

अतएव 'हरिहरात्मक' होने से इस काण्ड का नाम सुन्दर-काण्ड है । 'हनुमत् चरित्र ललाम' का वर्णन है । रामायण महामाला के रत्न हनुमान् के चरित का वर्णन है, इसलिए यह काण्ड सुन्दर है ।

(ए) "अमरकोष के अनुसार सुन्दर शब्द की व्याख्या इस प्रकार है—सुद्रियते =दृङ् आदरे । अतएव=बहुत आदरणीय—'यद्वा सु उनति, चित द्रवी करोति, उन्दी क्लेदने, सुन्दर'—जिससे चित्त द्रवित हो जाय ।

सुन्दर-काण्ड में कोई प्रसंग ऐसा नहीं है जिससे आदर न उत्पन्न होता हो । बहुत से प्रसंग ऐसे है जिनसे चित्त भी द्रवित होता है । आदरणीय और द्रवित करने वाली पूरी कथा के पूरे प्रसंग—हनुमान की बानरों से विनय, पर्वत से उड़ान, जलनिधि में मैनका-चरित, मैनका से हनुमान जी का व्यवहार, सुरसा-परीक्षा प्रसंग, छायाग्रह विनाश...लंकिनी की स्वकार्य निष्ठा और दक्षता, तुलसिका वृन्दादि से स्वभाव निश्चय,.....त्रिजटा चरित्र, सीता-सान्त्वना आदि तो आदरणीय है ही, साथ ही

यह हृदय को पिघलाकर पानी कर देते हैं।"······अन्य काण्डों में ऐसा नहीं हैं। बालकाण्ड में सती की अश्रद्धा पतिवचन पर अविश्वास, असत्य भाषण, अयोध्या में कैकेयी-मंथरा चरित, भरत द्वारा माँ का अधिक्षेप, पतिशव घर में और कैकेयी—"सजि आरती मुदित उठि धाई·· ", अरण्य में सीता के मर्म वचन, रावण चरित, किष्किन्धा में सुग्रीव चरित "जेहि अध बधेउ व्याध जिमि बाली, फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली।" लंका मे मंदोदरी का पति को नीच निर्ल्लज कहना, बानरों का "धरि केस नारि निकारि बाहेर···। "उत्तरकाण्ड में गरुड़ मोह, भुशुण्डि मोह, रामराज्य, सीता निन्दा आदरोत्पादक नहीं है !"

सुन्दर-काण्ड के पारायण करने के कारण

१. हनुमान जिनके इष्ट हैं वे सुन्दरकाण्ड पढ़ते है क्योंकि इस काण्ड में हनुमान-चरित का वर्णन है।

२. सुन्दरकाण्ड रामायण का हृदय है। अतएव महत्वपूर्ण है।

३. छोटा काण्ड है। पारायण में समय कम लगता है।

(कदाचित् यह विचार भ्रमपूर्ण है। सबसे छोटा काण्ड किष्किन्धा है जिसमें ३० दोहे है जबकि सुन्दरकाण्ड में ६० दोहे है।)

४. कार्यसिद्धि एवं कष्टनिवारण के लिए इस काण्ड का पारायण किया जाता है। हनुमान के कार्य (रामकार्य) की सिद्धि इस काण्ड में हुई है। इसलिए इस काण्ड का पारायण किया जाता है।

५. सुन्दर-काण्ड की शब्दयोजना अपेक्षाकृत सरल है तथा इस काण्ड से प्रारंभ करके रामायण पढ़ना आ सकता है !

६. अन्य काण्ड दोहा या सोरठे से प्रारम्भ हुए हैं जबकि सुन्दरकाण्ड चौपाई से प्रारम्भ हुआ है। बालकाण्ड में (३६—३७) दी हुई प्रतीक योजना के अनुकूल "पुरइन सघन चारु चौपाई" तथा "छन्द सोरठा सुन्दर दोहा, सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा" बताए गए हैं। दोहा कदाचित् विश्राम के लिए प्रयुक्त हुआ है। किष्किन्धा-काण्ड के अन्त तक हनुमान तथा अन्य वानरों को समुद्रतट पर संध्या हो गई। इसलिए कमल के स्थान में पुरइन को स्थान दिया गया है। इस काण्ड में सीता की कथा है, इसलिए भी पुरइन से प्रारम्भ करना उचित है। पुरइन कामनापूर्ति की भी द्योतक है (स्वयं पुरइन शब्द से)। इसलिए कामनापूर्ति के लिए इस काण्ड की योजना की गई है। एतदर्थ पारायण होता है।

७. इस काण्ड का फल "तरहिं भव सिंधु बिना जलजान" रखा गया है जबकि अन्य काण्डों का फल निम्नलिखित रूप में इस आदर्श फल से निम्नश्रेणी का है। इस आदर्श फल की प्राप्ति के लिए ही इस काण्ड का पारायण किया जाता है।

बालकाण्ड—"तिन्ह कहुँ सदा उछाहु।"

अयो०—"अवसि होइ भव रस बिरति।"

अरण्य०—"राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग।"

किष्कि०—"तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं।"
लंका०—"बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहिं देहिं भगवान।"
उतर०—"ते संसार पतंग घोर किरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः।"

उपर्युक्त विवरण के विवेचन की न तो यहाँ आवश्यकता है न विवेच्य विषय से उसका सम्बन्ध ही है। यहाँ इन मतों का उल्लेख इसलिए किया गया है कि प्रस्तुत प्रसंग का महत्त्व स्पष्ट हो जाय। इन मतों की अपनी-अपनी विशेषता है किन्तु मैं समझता हूँ इन सब मतों की पृष्ठभूमि में करुणरस की प्रयोगात्मक महत्वपूर्ण प्रक्रिया ही विशेषरूप से उल्लेखनीय है जिसकी ओर अभी तक किसी प्रकार विद्वानों का ध्यान नहीं गया है।

सुन्दरकाण्ड में करुणरस की चरमावस्था के दर्शन होते हैं। महारानी सीता अपने कष्ट एवं यातना को असह्य देखकर मृत्यु की याचना ही नहीं करती प्रत्युत आत्मघात के लिए प्रयत्न भी करती हैं। हिन्दी रामकाव्य के कलाकारों की ऐसी सुन्दर योजना है कि हनुमान के परिचय से पूर्व तक महारानी जी को अपनी मुक्ति का विश्वास करने के लिए कोई आधार नहीं है। वह विश्वास नहीं कर सकतीं कि उनके हरण की सूचना प्रभु को मिल गई होगी तथा वह उनकी मुक्ति के लिए प्रयत्नशील होंगे। उनका यह समझना युक्तियुक्त समझा जा सकता है कि भगवान यह समझ रहे होंगे कि किसी वन्य जन्तु ने सीता को खा लिया होगा। इस प्रकार सीता की स्थिति उपर्युक्त परिस्थितियों में पूर्णतया करुण की हैं विप्रलंभ की नहीं है, विप्रलंभ की हनुमान के परिचय के बाद से हो जाती हैं।

रामायण में करुण की इस प्रकार की स्थिति अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगी। महाराज दशरथ की व्यथा एवं वेदना का अन्त उनकी मृत्यु में हो जाता है। यदि कहीं कवि उनको जीवित रखते तो करुणरस की उत्कृष्ट अनुभूति संभव होती। फिर भी वह वात्सल्य का प्रसंग होता तथा करुण के क्षेत्र में सुन्दरकाण्डगत सीता की करुणदशा के समकक्ष नहीं रखा जा सकता था। इसी प्रकार भरत की वियोग दशा का रामायण में अद्वितीय चित्रण है किन्तु यह प्रसंग भी प्रियप्रयतमा के वियोग की तुलना में करुण के क्षेत्र से दूर रहेगा। इस प्रकार सुन्दरकाण्डगत सीता का करुण-प्रसंग करुणरस के क्षेत्र की एकमात्र उत्कृष्ट उपलब्धि है जिसका प्रयोगात्मक प्रभाव विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है।

करुणरस के प्रयोगात्मक प्रभाव की चर्चा करुणरस के शास्त्रीय अध्ययन के अन्तर्गत कर चुके हैं। हृदय को द्रवित करने की बात उपर्युक्त मतों में से एक स्थान पर कही गई है। इस प्रकार इस मत का संकेत करुण की प्रभविष्णुता की ओर है। "मानव-शोक में देवताओं की सृष्टि होती है तथा शोक अपने ठोस रूप में मानव चरित्र है"—हेगल की टिप्पणी के ये भाव यहाँ पुनः दुहराते हुए कहा जा सकता है कि जीवन का लक्ष्य भवसागर से मुक्ति अथवा भगवान की प्राप्ति मानव-चरित्र पर ही

आधारित है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए करुणरस का प्रयोग अपेक्षित है।

अपने दो शब्दों में मैंने अपने दो छात्रों पर किए गए करुणरस के प्रयोग की चर्चा की है जिस में मुझे पूर्ण सफलता मिली। इस प्रयोग को अन्य व्यक्ति भी कर सकते हैं तथा करुणरस के प्रयोग का महत्त्व देख सकते हैं। यही कारण है कि हिन्दू धर्म एवं संस्कृति में विश्वास रखने वाले असंख्य व्यक्ति सुन्दरकाण्ड का नित्य पारायण करते है और लाभ उठाते है। मेरा प्रयोग भी इसी प्रकार का है। व्यक्तित्त्व की दुहरी स्थिति अपशब्दों की बरबस स्मृति तथा मानसिक क्षोभ, मानस रोग आदि के लिए अन्य किसी उपचार के स्थान में करुणरस के काव्य का पारायण, मनन तथा पठित काव्य की संक्षिप्ति प्रस्तुत करना मेरे प्रयोग की मोटी रूपरेखा है जिसका प्रयोग मैं कर चुका हूँ।

परिशिष्ट--२

रामसाहित्य की सूची

संस्कृत राम-साहित्य

प्राचीन राम-साहित्य १—प्राचीन रामसाहित्य का मूल स्रोत वाल्मीकि-रामायण कही जाएगी तथा वाल्मीकि प्राचीनतम स्रष्टा।

२—महाभारत में वनपर्व के अन्तर्गत संक्षेप में वाल्मीकीय रामयण की कथा दी गई है।

३—अष्टादश पुराणों में—पद्मपुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, श्रीमद्भागवत्, नृसिंहपुराण, विष्णुपुराण, अग्निपुराण, प्रभृति में प्राचीन रामसाहित्य सुरक्षित है।

४—पौराणिक रामायणों में—ब्रह्माण्ड पुराण के अन्तर्गत "अध्यात्म रामायण" तथा अन्य पौराणिक ढंग की रामायणें—महारामायण, आनन्द रामायण, भुशुण्डि रामायण, अद्भुत रामायण आदि हैं।

५—रघुवंश—कालिदास कृत।

६—रामचरित—अभिनव कृत।

७—रावण-वध—भट्टि कृत।

८—रावणार्जुनीय या अर्जुनरावणीय—भौमकभट्ट कृत।

६—जानकीहरण—कुमारदास कृत।

१०—रामायण मंजरी—क्षेमेन्द्र कृत।

११—रघुवीर चरित—मल्लिनाथ कृत।

नाटक

उत्तर रामचरित—भवभूति कृत, जनर्धराघव—मुरारि कृत, बाल-मायण—राजशेखर कृत, हनुमन्नाटक—मधुसूदन और दामोदर मिश्र कृत, प्रसन्नराघव—जयदेव कृत।

प्राकृत राम-साहित्य

सेतु-वन्ध—प्रवर सेन कृत।

भ्रंश राम-साहित्य

महापुराण—पुष्पदन्त कृत, रामायण—स्वयंभ कृत तथा अन्य फुटकर नाएँ।

मध्ययुगीन हिन्दी राम-साहित्य

कृति	लेखक
१—रामसीता चरित्र	मालचन्द जैन
२—भावार्थ रामायण	एकनाथ स्वामी
३—हनुमतमोक्ष कथा	ब्रह्मरायमल जैन
४—हनुमान चरित्र	राममल्ल पाण्डेय
५—रामचरित मानस	तुलसीदास
६—श्रीराम भजन मंजरी	अभ्रदास
७—ध्यान मंजरी	अभ्रदास
८—हनुमन्नाटक टीका	बलभद्र मिश्र
९—हनुमान जी का तमांचा	लक्ष्मीनारायण मिश्र
१०—मानस-प्रश्नावली	घनश्याम शुक्ल
११—सीता चरित्र	रायमल ब्रह्मचारी
१२—रावण मंदोदरी संवाद	मुनिलावन्य
१३—राम मुक्तावली	तुलसीदास
१४—तुलसीदास जी की बानी	—
१५—बालचरित्र	हृदयराम पंजाबी
१६—मलूक रामायण	मलूकदास
१७—रामावतार लीला	—
१८—रामायण	चिन्तामणि त्रिपाठी
१९—भावा रामायण	कपूरचन्द
२०—सीता स्वयंवर	गिरधर
२१—रामचरित्र कथा	बारहट नरसिंहदास
२२—जनक पचीसी	मंडन मिश्र
२३—जानकीजू का विवाह	—
२४—रामचरित्र	मानदास व्रजबासी
२५—सीता चरित्र	रामचन्द्र
२६—रामायण	भगवानहित
२७—रामविलास रामायण	रामजी
२८—सीताराम ध्यान मंजरी	बालअली

२९—रामरहस्य कलेवा	परबते सोनार
३०—ध्यान मंजरी	बालकृष्ण नायक
३१—नेह प्रकाशिका	—
३२—अवधविलास	लालदास
३३—भरत की बारामासी	—
३४—रामाश्वमेध	मोहन
३५—रामरत्नावली	अनाथदास
३६—रामचरित्र	चतुर्भुजदास
३७—हनुमान चरित्र	सुन्दरदास जैन
३८—रामायण महानाटक	प्राणचन्द
३९—हनुमान-नाटक भाषा	हृदयराम पंजाबी

परिशिष्ट--३

सहायक ग्रन्थों की सूची

संस्कृत—

भरतमुनि	नाट्य शास्त्र
जगन्नाथ	रस गंगाधर
विश्वनाथ	साहित्य दर्पण
वाग्भट्ट	काव्यानुशासन
मम्मट भट्ट	काव्य प्रकाश
दण्डी	काव्यादर्श
रूद्रट	काव्यालंकार
धनंजय	दशरूपक
श्रीभोज	सरस्वती कंठाभरण
हेमचन्द्र	काव्यानुशासन
सोमेश्वर	मानसोल्लास
शारदातनय	भावप्रकाश
——	छाँदोग्य उपनिषद्
आनन्द वर्धन	ध्वन्यालोक
सीताराम चतुर्वेदी	कालिदास ग्रन्थावली
भवभूति	उत्तर रामचरित
वाल्मीकि	रामायण
——	श्रीमद्भागवत्-दशमस्कन्ध
बलदेव उपाध्याय	संस्कृत-साहित्य का इतिहास
सेठ कन्हैयालाल पोद्दार	संस्कृत-साहित्य का इतिहास।

हिन्दी—

रामचन्द्र शुक्ल	चिन्तामणि प्रथम तथा द्वितीय भाग
रामचन्द्र शुक्ल	हिन्दी-साहित्य का इतिहास
रामचन्द्र शुक्ल	सूरदास
रामचन्द्र शुक्ल	तुलसीदास
आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी-साहित्य की भूमिका
आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी	साहित्य का मर्म
आचर्य हजारीप्रसाद द्विवेदी	कवीर
आचर्य हजारीप्रसाद द्विवेदी	नाथ संप्रदाय
डा० रामकुमार वर्मा	हिन्दी सा० का आलोचनात्मक इतिहास
डा० रामकुमार वर्मा	कवीर का रहस्यवाद
इलाचन्द्र जोशी	आधुनिक हिन्दी-साहित्य में मनोविज्ञान.
सुधांसु	जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धांत
जगदानन्द एम० ए०	मनोविज्ञान
डा० जॉन कैनेडी	चिन्ता
डा बल्देवप्रसाद उपाध्याय	भारतीय दर्शन
विश्वनाथप्रसाद मिश्र	वाङमय विमर्श
सेठ कन्हैयालाल पोद्दार	काव्यकल्पद्रुम-रसमंजरी
गुलाबराय	नवरस
गुलाबराय	सिद्धान्त और अध्ययन
गुलाबराय	साहित्य और समीक्षा
गुलाबराय	रस और दोष
प्रसाद	काव्यकला तथा अन्य निबंध
हरिशंकर शर्मा	रस रत्नाकर
डा० भगवानदास	द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ—रसमीमांसा
हरिऔध	रस कलश की भूमिका
डा० सत्येन्द्र	ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन
डा० सत्येन्द्र	ब्रज की लोक कहानियाँ
डा० ब्रजेश्वर वर्मा	सूरदास
सूरदास	सूरसागर
तुलसीदास	रामचरित मानस, गीतावली
केशवदास	रामचन्द्रिका

अँग्रेजी—

डा० भगवानदास	साइंस ऑफ द इमोशन्स
मैक डूगल	सोशल साइकलोजी
डारविन	एक्सप्रैसन ऑफ इमोशन्स इन मैन एण्ड एनीमल
क्रोसे	अएसैथैटिक
रिचार्ड	प्रिंसिपलस ऑफ लिटरेरी क्रिटिस्जिम
फ्राइड	इगो एण्ड इड
फ्राइड	इन्टरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम्स
फ्राइड	फ्राइड हिज ड्रीम एण्ड सैक्स थ्योरीज़
अरिस्टोटल	पोइटिक्स
मारशल	पेन, प्लेजर एण्ड अएसथैटिक
ए० शंकरम्	सम ऑसपेक्ट ऑफ लिटरेरी क्रिटस्जिम् इन संस्कृत।

पत्र-पत्रिकाएँ

अमृत बाजार पत्रिका
माधुरी
सरस्वती संवाद
सम्मेलन-पत्रिका
साहित्य-संदेश
नागरी प्रचारिणी पत्रिका
साप्ताहिक हिन्दुस्तान
इण्डियन जनरल आफ साइकलोजी।